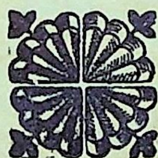
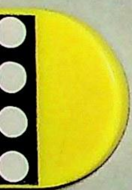
तुलसी-ग्रन्थावली

[तृतीय खंड]



अखिल भारतीय विक्रम परिषद् : काशी



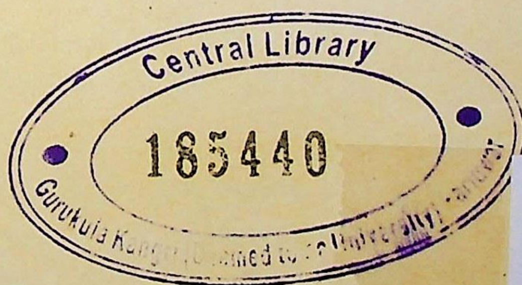
तुलसी-ग्रन्थावली

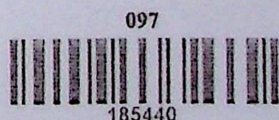
[तृतीय खंड]

गोस्वामी तुलसीदासजीकी जीवनीके विभिन्न स्रोत

तथा

समीक्षात्मक निबंध





अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी

[संवत् २०३०]

प्रकाशक :
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी
६३/४२, उत्तर बेनिया बाग,
वाराणसी

●

प्रथम आवृत्ति
गंगा-दशहरा, संवत् २०३०
१० जून, सन् १९७३

●

मूल्य
सजिल्द : ६०.००

●

मुद्रक :
सुधीर कुमार चतुर्वेदी
सुदर्शन मुद्रक
६३/४२, उत्तर बेनियां बाग,
वाराणसी

परिषद्की ओरसे

कृतज्ञता-भावन

यद्यपि द्वितीय खंडके अपने निवेदनमें हमने यह आशंका व्यक्त की थी कि गोसाईंचरित और मूल गोसाईंचरितके साथ गोस्वामीजीके जीवनचरितसे संबद्ध अन्य सामग्री तथा तुलसी-साहित्यपर अनेक समीक्षात्मक लेखोंको तृतीय खंडके रूपमें प्रकाशित करना संभव न होगा तथापि कृपालु ग्राहकों और विद्वानोंके विशेष आग्रहसे तुलसी-ग्रन्थावलीका यह तृतीय खंड भी प्रकाशित कर दिया जा रहा है। इस खंडमें बाबा बेनीमाधवदास (वास्तवमें भवानीदास)-का गोसाईंचरित, मूल गोसाईंचरित, भक्तमालकी प्रियादासी टीकामें गोसाईंचरित, कविवर अविनाशराय भट्टका श्रीतुलसी-प्रकाश, गौतमचन्द्रिकामें गोस्वामीजीका जीवनचरित, कवि मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत रत्नावली-चरित तथा गोस्वामी तुलसीदासके जीवनचरितसे संबंध रखनेवाले सभी पक्षोंके लेखों और कुछ विवेचनात्मक लेखोंके साथ रामचरितमानसका समीक्षात्मक विवेचन इस खंडमें प्रस्तुत किया गया है। संयोगवश एक ग्रन्थ और भी विजय-रामायण नामक गोस्वामीजीका लिखा हुआ माना जानेवाला प्राप्त हुआ है वह भी परिशिष्टमें दे दिया गया है। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवनचरितसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी सामग्री पूर्ण निष्पक्षताके साथ प्रस्तुत कर दी गई है जिससे विद्वानों और शोध छात्रोंको सुविधा-पूर्वक परीक्षण, समीक्षण और विश्लेषण करनेके लिये सब सामग्री एकत्र प्राप्त हो जाय।

हम श्री लक्ष्मीनिवासजी बिरलाके अनुगृहीत हैं जिन्होंने इस खंड की १०० प्रतियाँ लेकर सहयोग दिया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवनचरित और उनके ग्रन्थोंका मनन करनेवाले विद्वानों और समीक्षकोंको इससे सुविधा होगी।

तुलसी-ग्रन्थावलीके इस तृतीय खंडके प्रकाशनसे पूर्व हमारी परिषद्के परिवारपर सबसे बड़ा मार्मिक दैवी प्रहार यह हुआ कि हमारी परिषद्के अत्यन्त सशक्त सहायक, सदस्य, अनेक विद्याओंके पारंगत विद्वान् और वाक्सिद्ध पुरुष श्री १००८ नारायण स्वामीका २८ मार्च १९७३ को कलकत्तेमें पक्षाघातसे देहावसान हो गया। यह मार्मिक पीडा हम लोगोंके लिये अत्यन्त असह्य सिद्ध हुई। हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि उन ब्रह्मलीन महापुरुषकी कृपा हमपर सदैव बनी रहे।

गंगा दशहरा
संवत् २०३०
काशी।

गयाप्रसाद ज्योतिषी
व्यवस्थापक
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी

संपादकोंकी ओरसे

निवेदन

यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि गोस्वामी तुलसीदासजीके संबंधमें विशेषतः उनके जन्मकाल, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा और गुरुके संबंधमें अभीतक कोई निश्चित, पुष्ट और प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं हो सका। जिस गोसाईंचरित और मूल गोसाइंचरितको बाबा बेनीमाधवदासकी रचना बताया जाता था वह अब किसी भवानीदासका रचा हुआ सिद्ध हो गया है। सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० किशोरीलाल गुप्तने अत्यन्त मनोयोग, निष्पक्षता, विवेकशीलता और तर्कके साथ इस विषयपर अपने लेखमें विस्तारसे विचार किया है। गोसाइंचरित और मूल गोसाइंचरितकी कुछ घटनाओंका समर्थन भक्तमालकी प्रियादासो टीकासे भी हो जाता है किन्तु गोसाइंचरितके कर्त्ता भवानीदासने स्वयं कहा है कि 'नाभादासने भक्तमालमें (वस्तुतः भक्तमालकी प्रियादास-कृत कवित्त-बंध टीकामें) गोसाइंजीका जैसा जीवनचरित लिखा है, मेरा गोसाइंचरित उससे बहुत कुछ भिन्न है।' इसका अर्थ यह है कि उन दोनोंमें भी किसी प्रकारका साम्य नहीं है। अभी मथुरासे भारती अनुसंधान परिषद्की ओरसे प्रकाशित कविवर अविनाशराय भट्ट-रचित श्री तुलसी-प्रकाश नामक एक छोटी-सी पोथी मिली है जिसके संबंधमें बताया गया है कि ये अविनाशराय गोस्वामी तुलसीदासकी ननसाल तारी ग्रामके निवासी और सत्संगी थे। जहाँतक अविनाशराय भट्टके इस तुलसी-प्रकाशकी बात है उस संबंधमें कई शंकाएँ ऐसी हैं जिनका निराकरण हुए बिना उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती—

१. गोस्वामी तुलसीदासजीके जितने भी जीवनचरित प्रकाशित हुए हैं उनमें कहीं भी अविनाशराय भट्टकी चर्चा नहीं हैं।

२. यह ग्रन्थ तुलसीप्रकाश आज तक क्यों नहीं प्रकाशमें आया ? सहसा कैसे प्रकट हो गया ? जिन सज्जनोंके पास उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ थी उन्होंने पहले इसे क्यों नहीं प्रकाशित कराया ?

३. गोस्वामीजी बचपनमें ही घर छोड़कर चले गए तब अविनाशराय भट्टने किस प्रकार उनके साथ सत्संग किया और कब किया ?

४. गोस्वामी तुलसीदासजीका अधिकांश समय तीर्थाटन, अयोध्यावास और काशीवासमें बीता। इस अवधिका विवरण अविनाशराय भट्टको कहाँसे मिला।

केवल यह लिख देने मात्रसे अविनाश राय ब्रह्मभट्टको प्रामाणिक नहीं माना जा सकता कि मैं उनको ननसालका हूँ और मैंने उनके साथ सत्संग किया था। केवल हमारे यहाँ ही नहीं, विश्वभरमें इस प्रकारके प्रेत लेखकोंकी भरमार है जो पाँचवें सवार बननेकी आतुरतामें इस प्रकारकी

रचना करके श्रेय और यश प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहते हैं। जबतक इस ग्रन्थकी मूल प्रतियोंका वैज्ञानिक परीक्षण नहीं हो जाता तबतक इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। विद्वान् लोग इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकें इसलिये अविनाशराय ब्रह्मभट्टका श्रीतुलसी-प्रकाश और हमारे पास उसकी छपी हुई प्रति भेजनेवाले ज्योतिषी पं० राधेश्याम द्विवेदीका तत्संबंधी भूमिकागत अंश इस तृतीय खंडमें दे दिया गया है।

गौतम-चन्द्रिकामें गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवन-चरितके संबंधमें पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्रने 'गोसाईं तुलसीदास' पुस्तकके पृष्ठ २८१, २८२ पर लिखा है—'रामचरितमानसके पाठ-शोधनके प्रसंगमें काशीराज (रामनगर) के वयोवृद्ध साहित्य-मर्मज्ञ श्री चौधुरी छुन्नीसिंहने मुझे अपने घर आमंत्रित किया। उनके यहाँ संवत् १६६६ विक्रमीयकी लिखी पदावली (राम गीतावली) और गीतावली (विनय-पत्रिका)-की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। उन्होंने मुझे वे प्रतियाँ दिखाई। ये भगवान् (नामक) ब्राह्मणकी लिखी हुई हैं। भगवान् ब्राह्मणके संबंधमें चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि इनके पुत्र श्रीकृष्णदत्तने गौतम-चन्द्रिका नामकी पुस्तक अपने वंशके परिचय-स्वरूप लिखी है जो बहुत बड़ी है। उसमें अपने वंशके घनिष्ठ व्यक्तियोंके प्रसंगमें तुलसीदासका वृत्तान्त थोड़ा-सा दिया है। इसके तीन हस्तलेख मैंने अपने तारुण्यमें देखे थे। तुलसीदासके वृत्तके प्रति कुतूहलवश अन्य अपेक्षित अंशोंके साथ उसके अंश भी अपनी बहीपर उतार रक्खे हैं। प्रार्थना की गई कि तुलसीदासका जीवनवृत्त आप अपनी बहीपरसे प्रतिलिपि करा दीजिए। निवेदन स्वीकारकर चौधुरीजीने वार्धक्यकी बाधाका सिंह-विक्रमसे दलनकर अपनी पुरानी बहियाँ निकलवाईं। चार महीनेके परिश्रमके अनन्तर लेखकको उन्होंने स्वयं जीर्ण-शीर्ण बहियोंसे पढ़-पढ़कर प्रतिलिपि करा दी। कुछ पंक्तियाँ नहीं पढ़ी जा सकीं। कुछमें कहीं प्रमादवश शब्दान्तर भी हो सकता है। पर गौतमचन्द्रिकामें तुलसीदासका जो वृत्तांत दिया है वह उनसे मुझे प्राप्त हो गया। मैंने उनसे पूछा कि बहियोंपर क्यों लिखा ? उन्होंने उत्तर दिया कि ग्रन्थस्वामी हस्तलेख देखने भरको मुझे देते थे, उसकी प्रतिलिपि करनेको मना करते थे। मैं हस्तलेख देखते समय अपनी बहीका कार्य भी करता रहता था और गौतमचन्द्रिकासे बहीके दाएँ-बाएँ पार्श्वोंपर आवश्यक अंश भी लिखता चलता था। कई बार करके पूरा अंश उतार पाया हूँ। एकने अनेक बार हस्तलेख देनेमें आनाकानी की तो बहुत दिनोंके अनन्तर दूसरे सज्जनके यहाँ गौतम-चन्द्रिकाका हस्तलेख मिलनेपर उससे उतारा आदि अनेक अनुसंधित्सु-कुतूहल-बर्धिनी वार्ताएँ उन्होंने सुनाईं।"

इन्हीं चौधुरी छुन्नीसिंहने एक बार मुझे भी आमंत्रित किया था। यह बात सन् १६३८-३६ की है। मेरे प्रिय शिष्य सुरही ग्राम-निवासी साहित्य-महोपाध्याय श्री वैद्यनाथ सिंह मुझे उनके यहाँ लिवा ले गए थे। उन्होंने भी मुझे यह बही दिखाई थी। किन्तु मुझे इसकी प्रामाणिकतामें तनिक भी विश्वास नहीं हुआ क्योंकि जब मैंने उनसे इस संबंधमें प्रश्न करने आरंभ किए तो वे उखड़ गए, जिरहमें नहीं ठहर सके। इस बहीपर लिखे तथाकथित गौतम-चन्द्रिकाके गोस्वामीजीकी जीवनीसे संबद्ध तथाकथित भागके संबंधमें निम्नांकित बड़ी महत्वपूर्ण शंकाएँ हैं जिनका समाधान न तो चौधरी छुन्नीसिंहने किया न पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्रने ही अपनी 'गोसाईं तुलसीदास' नामक पुस्तकमें—

१. यदि रामनगर-निवासी चौधुरी छुन्नीसिंहके पास गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवन-चरितसे संबंध रखनेवाली इतनी महत्वपूर्ण सामग्री थी तो उन्होंने बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन आदि साहित्य-महारथियोंको क्यों नहीं दी, जिनसे उनका घनिष्ठ परिचय था अथवा नागरी-प्रचारिणी-सभा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन या काशिराजके पुस्तकालयको ही वह अमूल्य सामग्री क्यों नहीं दे दी और यह अहैतुकी कृपा पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्रपर ही क्यों बरसाई ?

२. चौधुरी छुन्नीसिंहजीने मुझसे कहा था कि इसकी एक ही प्रति मुझे देखनेको मिली है किन्तु मिश्रजीको उन्होंने अपने तारुण्यमें तीन हस्तलेख देखनेकी बात बताई। हो सकता है कि उनका तारुण्य १९३९-४० के पश्चात् भी बना रहा हो और उन्होंने दो हस्तलेख उसके पश्चात् देखे हों। किन्तु उनमेंसे किसी एकके भी स्वामीका नाम या ग्राम न तो उन्होंने मुझे बताया न मिश्रजीको ही। यह सबसे अधिक शंकाजनक बात है।

३. जिन सज्जनोंने उन्हें हस्तलेख देखनेको दिया था और प्रतिलिपि करनेको मना किया था वह तो सामने ही बैठे रहे होंगे और उन्होंने बहीपर प्रतिलिपि करते देखा भी होगा तब उन्होंने कैसे प्रतिलिपि करने दिया होगा और यदि उन्होंने घर जाकर हस्तलेख देखनेको ग्रन्थ दिया होगा तब वे उसकी अच्छे कागजपर प्रतिलिपि कर सकते थे।

४. कृष्णदत्त मिश्रको गौतमचन्द्रिकामें तुलसीदासजीकी जीवनी लिखनेकी क्या आवश्यकता पड़ गई ?

५. यदि चौधुरी छुन्नीसिंहको गौतमचन्द्रिका देखनेको मिली जिसमें गौतम गोत्रज विप्रोंका परिचय है तो उसमें चौधरी छुन्नीसिंहको क्यों रुचि हुई और उन्हें यह कैसे ज्ञात हो गया कि इसमें तुलसीदासका जीवनवृत्त भी है।

६. तथ्य यह है कि चौधुरी छुन्नीसिंह स्वयं साहित्य-मर्मज्ञ, कवि और बड़े कुशल (चतुर व्यक्ति थे। जब उन्हें कोई काम बैठे-बैठे नहीं रहता था तो वे बहीपर ही अपनी कल्पनाको काव्य-रूपमें उतारते रहते थे। यह गौतम-चन्द्रिकाका अंश भगवान् नामक ब्राह्मणके पुत्र किसी कृष्णदत्त मिश्रका न होकर स्वयं चौधुरी छुन्नीसिंहका कौशल है और विचित्र बात तो यह है कि पं० विश्वनाथ मिश्रने इस भयंकर मायाजालको प्रामाणिक भी मान लिया।

वास्तवमें यह ग्रन्थ पूर्णतः जाली, अत्यन्त भ्रामक और नितान्त अविश्वसनीय है।

श्री उदयशंकर दुबेने अपने लेखमें यह सिद्ध किया है गोस्वामीजीने अपने गुरुसे सूकरखेतमें रामकथा न सुनकर कुरुक्षेत्रमें रामकथा सुनी थी।

डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्लका पक्ष है कि मानसका तापस और गोस्वामीजीके गुरु साक्षात् शिवजी ही थे।

श्री विष्णुदत्त दीक्षितने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि गोस्वामीजीका जन्मस्थान घाघरा-सरयूके संगमपर सूकरक्षेत्रके पास (गोंडा जिलेमें) था।

डॉ० रामदत्त भारद्वाजने कवि मुरलीधर चतुर्वेदीकृत रत्नावली-चरित भेजा है जो इस खंडके पृष्ठ १३१ से १३७ तक प्रकाशित है। इसकी प्रामाणिकताके संबंधमें तबतक कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता जब तक इसके रचयिताकी प्रामाणिकता सिद्ध न हो जाय।

गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवनवृत्तके संबंधमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जिन विद्वानोंने उनके जीवनचरितपर विचार किया है उनमेंसे अधिकांशने स्थान-भक्तिके आवेगमें येन केन प्रकारेण तुलसीदासजीको अपने स्थानका सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। जब गोस्वामीजी बचपनमें मारे-मारे फिरते थे और उन्हें भोजनका भी ठिकाना नहीं था तब तो उनके गाँववालोंने उन्हें पूछा-तक नहीं और अब जब उनकी प्रसिद्धि और कीर्त्ति विश्वव्यापक हो गई तब सभी उन्हें अपने यहाँका बतानेके लिये भिड़े पड़ रहे हैं। राजापुर, सोरों (एटा) और सूकरखेत (घाघरा-सरयूके संगमपर गोंडा ज़िला) तो गोस्वामीजीके जन्म-स्थानके अधिकारी थे ही, बलियाके श्रीकुलदीप नारायण राय झड़पने एक बड़ी मोटी पुस्तक लिखकर यह सिद्ध करना चाहा है कि गोस्वामीजी बलियाके भूमिहार ब्राह्मण थे। उन्होंने भी सोरों और सूकरखेतवालोंके समान गोस्वामीजीके माता-पिता, जन्म-स्थान, ससुराल, सास, ससुर सबका पता-ठिकाना लगा लिया है। वास्तविकता यह है कि इनमेंसे कोई भी पक्ष अभीतक अपनी असंदिग्ध प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर पाया। जहाँतक तुलसी-ग्रन्थावलीके संपादक-मंडलका प्रश्न है, हम लोग केवल इतना मानते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासने अयोध्यामें रामचरित-मानसकी रचना की, काशीमें कुछ ग्रन्थोंकी रचना की और वहाँ जीवनपर्यन्त रहे। चित्रकूटमें भी उन्होंने निवास किया। इससे अधिक कोई प्रामाणिक बात नहीं मिलती। प्रायः सभी लेखकोंने गज़ेटियरोंकी चर्चा की है किन्तु वे सब तो जनश्रुतियोंके आधारपर लिखे गए हैं। उनकी दुहाई बराबर व्यर्थ क्यों दी जा रही है?

हमारा यह प्रयास रहा है कि गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवनके संबंधमें जितने प्रकारकी सामग्री है सब निष्पक्ष रूपमें प्रस्तुत कर दी जाय जिससे सुविज्ञ विचारकोंको सत्यका अन्वेषण करने और निर्णय करनेमें सुविधा हो।

हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि विभिन्न पक्षोंके लेखकोंने अत्यन्त सहृदयताके साथ हमें सहयोग दिया और इस खंडके लिये सामग्री प्रस्तुत करनेमें सहायता दी। हम उन सभी मित्रोंके बड़े ऋणी हैं।

इस तृतीय खंडकी समीक्षात्मक लेख-मालामें श्री इन्द्रचन्द्र नारंगका अत्यन्त गवेषणात्मक 'रामका वन-प्रवास और रामलीला' शीर्षक लेख दिया गया है जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया है कि न तो विजया-दशमीको रावण मारा गया न दीप-मालिकाके दिन रामका राज्याभिषेक हुआ। यह लेख सभी विद्वानोंके लिये विचारणीय है। इसके अनुसार चैत्रकी अमावस्याको रामने रावणका वध किया और वे पुष्य नक्षत्रमें चैत्र मासमें अयोध्या लौटे। उन्होंने इस लेखमें बताया है कि संभवतः शाक्तोंके प्रभावसे विजया-दशमीको रावणके मारे जानेकी बात प्रसिद्ध हुई। नारंगजीने देवी-भागवतसे उद्धरण देकर यह बात प्रमाणित भी की है।

हमारे पास बहुत-सी ऐसी सामग्री भी आई जो ऐसे निबंधोंके रूपमें थी जो अनेक पुस्तकोंमें छप भी गई है इसलिये वह सब सामग्री सधन्यवाद लौटा दी गई। केवल ऐसे ही लेख लिए गए

हैं जो गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवनके संबंधमें शोध-कार्यमें सहायक हो सकें। अंतिम रामचरितमानसपर विवेचनात्मक लेख संपादक-मंडलकी ओरसे है। उसके लिये बहुतसे मित्रोंने आग्रह किया था कि सामान्य पाठककों, अध्येताओं और व्याख्याताओंकी सुविधाके लिये ऐसा लेख दे दिया जाय जिसमें रामचरितमानसके सब पक्षोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन हो। केवल इसी वृत्तिसे वह लेख दे दिया गया है।

मैं अपने सभी सहयोगियोंको और लेखकोंको हृदयसे धन्यवाद और साधुवाद देता हूँ विशेषतः पं० विश्वनाथ मुखर्जीको, जिन्होंने बड़ी कृपा करके मेरी अनुपस्थितिमें इसके प्रारंभिक अधिकांश भागके मुद्रण-संशोधनकी व्यवस्था देखी थी।

गंगा दशहरा
संवत २०३०

—सीताराम चतुर्वेदी

तुलसी-ग्रन्थावली



[तृतीय खण्ड]



सम्पादक-मंडल



आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
पंडित विश्वनाथ मुखर्जी
डॉ० किशोरी लाल गुप्त
डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्ल
पंडित करुणापति त्रिपाठी
श्री धर्मशील चतुर्वेदी
पंडित यज्ञनारायण चतुर्वेदी
डॉ० छबिनाथ पाण्डेय
श्री विष्णुकांत शास्त्री
श्री इन्द्रचन्द्र नारंग



लेख-माला

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

तुलसी - ग्रन्थावली

[तृतीय खंड]

१

गोसाईं - चरित्र

भवानीदास (बाबा बेनीमाधवदास)

॥ अथ श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदासजूको चरित लिख्यते ॥

मंगलाचरण

[गणेश-स्तुति] चौपाई

बरनौं जगवंदन गननायक । गिरिजा संकर सुवन विनायक ॥
सिधि दायक दुख दोष नसायक । अच्युत गुन गायक सब लायक ॥
बुद्धि - भवन सुख - सदन कृपानिधि । जानत राम नाम महिमा विधि ॥
अग जग जीव वंदि सुख पावत । सुनि 'दासानुदास' जसु गावत ॥

[शिव-स्तुति] चौपाई

संकर सहज कृपालु भक्ति - प्रद । अवढर दानि पुरान वेद बद ॥
सुर नर असुर चराचर वंदित । सियाराम जस रस आनंदित ॥
स्वारथ संपदादि परमारथ । भक्त भागवत जौन जथारथ ॥
मांगत भाय कुभाय निहोरे । देत दयाल द्रवत सुठि थोरे ॥
रामहि प्रिय सेवक सुखदाई । किहि न भजे तिहि गति मति पाई ॥

छन्द हरिगीतिका

पाई न गति किन पतित जन भोरेहु भजे त्रैलोचनं।
पक्षी कपोतन प्रान किन विधि गोध ग्रामिष सोचनं॥
दियौ ग्वाल सुत धन ज्ञान मृदु दिय बाल केलि सकोचनं।
ग्ररु प्रबल नृप को मित्र के जो चढ़ो देस दबोचनं॥
सतिहि ग्रहिवाती कियौ बँदि काढ़ि नृप कहँ राज दै।
द्विज दूसरो सुत दियौ ता सुत नारि किय जन बचन लै॥
एक विप्र पुत्रहि धन दियौ पुनि दूसरो कियो नृप धनी।
गन्धर्व सो कन्या देवाई रानि कीन्हीं ब्राह्मनी॥
तेहि नाम बल रिषि दियौ विसुवहि द्रव्य राधारानि कै।
ज्यायौ मृतक रानी तनै बँदि काटि तब तेहि राजि दै॥
ह्वै व्याघ्र द्विज ग्ररु तासु नारि बिदारि* जन परिछा लई।
सब कुटुंब कैलासी कियौ पुनि जरा मरण रहित भई॥
एक विप्र दिय बरदान विधवहि सुतवती ग्रहिवात को।
हित बचन सपने गर्भिनी तिय मिलो पति दिष्टांत को॥
एक स्वान लोटि विभूति सो लगि द्वार सुर तन पावते।
एक राछसहि सुरलोक दिय रिसि तोहि भूति प्रभाव ते॥
उबराइ पावक भरि मया त्रै वधिक जारै तारि कै।
परभाव सो को कहि सकै गति प्रगट यह जेहि द्वारि कै॥
रुद्राक्ष बाँधी कंठ कपि के ताहि किय नृप सुत प्रभो।
सब कुटुम्ब बिस्वहि तारि शिव ताको दई सुरपुर विभो॥
जमराज वीरक बैर गहि जन हित भयो सुख ग्रद्भुतो।
दई सहस वर्ष कि ग्रायुदा नृप पुत्र जो सु मृतक हुतो॥
एक ग्रधम नारी उमा तारी तासु पति राक्षस जु तो।
तेहि तारि गन पदवी दई जै जै महेस नमामि तो॥
प्रभु तारि ग्रगनित पतित मैं जेते सुने तेते लिखे।
ते सकल मो सम होहिं नहिं जो मैं शिरोमनि कलमषे॥
मोउ तारियेब कृपालु उर पद धारिये शिव ए महे।
गुण ग्राम प्रभु के गुनो निसि दिन करि महेश नमामि हे॥

दोहा

याको टीको विशद ग्रति, द्वै विंशति ग्रध्याय। श्रीमत सौनक सूत कृत, सो भाषा करि गाय॥

[भवानी स्तुति] हरिगीतिका छंद

गिरिजा ग्रखिल ब्रह्माण्ड सिरजा जिन्हो धिरजा दीजिए।
चरनारविंद मुकुन्द सुचि मकरंद ग्रलि मोहि कीजिऐ॥

* बिदारि = बिड़ारि।

तव नाथ गाथ उदार अति सो मातु सब तुव हाथ है।
सुर नर असुर श्रुति सुजस गावत सुनत नावत माथ है॥
सब गुन रहित अवगुन सहित तव चरन दृढ़ विश्वास हो।
धरि आस संज्ञा नाम को जाँचै 'भवानीदास' हो॥
झूँठेहु फुर निज दास की पति लाज करि आयौ सबै।
निज दिसि निहारि पुरारि प्रिय रखि लीजिए अजहू अबै॥
श्री देव गुरु महिमा कथा बरनी जो निज भगवान हो।
महिमा महा श्री मुख भन्यौ श्रुति साखि बेद पुरान हो॥
तव कृपा बिन तरिबो अगम भव सिन्धु अति दुस्तर महा।
जोगेन्द्र सुर परजंत अग जग जीव की गनना कहा॥
धरि हृदय नलिन दिनेश अनुग्रह दास त्रास निवारनं।
रोगादि दोस त्रिदोष तम अरि मोह विपिन दवारनं॥
मन क्रम वचन उर धरि सुमिरि आचर्ण प्रभु गुन गाथ हो।
जेहि प्रति चरन एक बरन लीन्हें नाम प्रगटत नाथ हो॥

(अथ श्रीराम-स्तुति) बहर तवील, [1]दंडक छन्द

सुमिरौ रघुपति, महाराज महावीर, सरण प्रनत हरण पीर, धरे धनु सर तूनीर, समन संकट भव धीर।

कृपासागर जगदीस, मीस त्रिभुवन को ईस, करण कष्ट मही खीस, जयति कोसल अधीस, सेत बाँधन वारीस, बाँधौ राक्स भुज बीस, बंदि छोरे तेतीस, मुदित दिनकर रजनीस, गनत सुजस सहस सीस।

सहित ब्रह्मा तिपुरारि, कोऊ पावत न पार, प्रभु लीला अवतार, निराकार निराधार, जगत करता हरण, मेदिनी को भार, गुनागार अति उदार, प्रबल दुस्तर संसार, ग्रसित कलमष नरनारि, प्रभु नाम ते निस्तार, बदत बेदौ कामारि, न कछु पूजा परकार, ना कछु कृतक विस्तार, यही तत्व समाचार, पतिपावन दातार, प्रभु लीजे निरवार। बँधो माया के जाल[2],

दया सिन्धु दया रूप, सुजस गावत अहि भूप, परे निंदक तम कूप, लीजे काढ़ि कृपा आल। रघुबर राघो रघुवंस, विभूषण अवतंस, थके ध्याइ परम हंस।
केहूँ ध्याइ न पाया, न केहू गाइ सिराय। न कोई छुइ सकै छाया, जो तेरी दुस्तर माया॥
जिन्हों ब्रह्मा उपजाया, सगरा जगत घुलाया। देव ब्रह्मादि भुलाया, न कहीं आया न धाया॥
न किन्हौं जन्म पाया, न कोइ संग सहाया। न किन्ही[3] ढंग बताया, विधि परपंच रचाया।
प्रभु तेहि माहं छपाया, निज परभाव लखाया। निजपरकास देखाया, यही चहू वेदन गाया॥
वही त्रिभुवन को राया, जो कोई तहि सरन आया। सद पंकज लौ लाया, सोई सरवज्ञ कहाया।
सुदासन जिव काया, प्रभु सिरजा उपजाया। प्रभु घट माह समाया, तेहि ते केहि न जनाया॥

---

१ बहर तबील = बह्र तबील (अरबी शब्द) यगण, यगण, गुरु + सगण, यगण, गु= ।SS, ।SS,S+।।S, ।SS,S) २. जाल = जार ३. किन्हीं =कौन्हीं

किलविष काम लोभादि लोभाया, कल्मष मारि गिराया। न देखौं और उपाया, हारि कै तोहि सरनआया ।।
रखि लीजै रघुराया, कीजे निज दासन दाया। ए दयासिंधु दयाला, लखि कलि काल कराला ।।
प्रभु लीला अवतारी, सत्य संकल्प मुरारी। लखि निज दास दुखारी, बधे असुराधिप भारी ।।
किए सुर साधु सुखारी, मानुस आकृत्य सँवारी। संखासुर वपुष विदारी, ह्वै कच्छप असुरारी ।।
सुरासुर पैज सँवारी, जग्य वराह अघारी। रद ऊपर महि धारी ।।
बधे अरि हाटक लोचन, जन प्रह्लाद के मोचन। बधे हरनाकुश पोचन, देव छले वलिपुत्र विरोचन ।।
भृगुपति छत्री दबोचन, रघुपति राजीव लोचन। मधुकैटभ मदमोचन ।।
रावनारि रघुनायक, धरे कर सारँग सायक। जाके हनुमंत से पायक, सब लायक जदुरायक ।।
विश्व व्यापक वरदायक, खल कंसादि ढहायक। सुपर्ण जननी बचायक, बोध ह्वै दास सहायक ।।
दीन दासन मन भायक, कल्की कलि कुल दायक। खल जमनादि सँतायक, दस अवतार धरायक ।।
तिहुँपुर ताप हरायक, हम तोहि दास कहायक। सो विषै बस मन कायक, निरलज्जाह लजायक ।।
सुनिकै तोहि सरनायक, कि सारद बानि विनायक। निरंतर तव गुन गायक, निज सेवक सुखदायक ।।
निज दासन रखवाला। करि आए, करते हैं, करिहैं दासन दाया ।।
यह जुग जुग चलि आया, निज दासानि बढ़ाया। कलि कालानि बचाया, अपनी सरन कराया ।।
करुना कर बिन कारन, राग दोषादि निवारन। अघ औगुननि विसारन, संताप ताप भी टारन[1] ।।
गुन कीरति के संचारन, दास दुख दूषन दारन। सब विधि जन हित कारन, जन हित पाहन फारन ।।
नरहरि ह्वै ललकारन, किय प्रबल दैत संघारन। कर गहि बान उबारन, तैसिय दुरमति दारन ।।
हरै निज दास बिकारन, पातकी गति निरवारन। गुन औगुन न बिचारन, लोक परलोक सँवारन ।।
जै जै पतित उबारन, तन धरि हरि महि भारन। सुखसागर रघुराई, जन रंजन सुखदाई ।।
दुख भंजन पद कंजन, बसै मधुकर मन सज्जन। खल कामादिक गंजन, निर्गुन नित्य निरंजन ।।
त्रिगुनातीत उदासी, सर्व ब्रह्माण्ड प्रकासी। सच्चिदानन्द विलासी, अविकारी अविनासी ।।
जासु बल शंकर कासी, मुक्ति श्री नाम उपासी। जाके माया सेवक दासी, कोटि ब्रह्मांड प्रकासी ।।
सोइ सुख संपति रासी, छीर सागर को निवासी। निरंतर घट घट वासी ।।
विश्व सै रूप विसाला, निर्गुन सब गुन वाला।
राम घनश्याम गुनाकर, जग अभिराम प्रभाकर। विश्व भूषन करुनाकर, जगपूषन अघ तम हर ।।
दास दोषन दुरमति दर, निकंदन दक्ष सहित जर। खल दल बल रजनीचर, हति त्रिसिरादि प्रबल खर ।।
ताप तिहू ज्वाला के जलधर, निज इच्छा सों वपुष धर। गहे कर चाप सुभग सर, धरे कटि पीत पितंबर ।।
मोहे छवि देखि असम-सर, करै सुर सेव सुमन झर। ध्यावै ब्रह्मादि निरंतर, गावै जस सुर नर मुनिवर ।।
पुकारत वेद निगम वर, दास सुरधेनु फलत तर। सुफलित फूल रहित फर, जै रघुनायक रघुबर ।।
जै जै रावन के अरि[2], ररिहा रारि करत ररि। धरे प्रभु चरनन पर सिर, झरिकै कल मल के उर ।।
किहौ औगुन को घर, नहिं सब पायौ दूसर। प्रभु करुनासागर, पुकारै वेद बिरद वर ।।
जो किहौ पापन विस्तार, नहिं संभूत विपति हर। तव प्रभु नाम विसंभर ।।
विश्व को भरन पोषावै, जंत जड़ उपर लगावै। अकरम करम कहावै, अपरंपार कहावै ।।
जाकी गति जानि न जावै, नेति नेति वेदहू गावै। ऐसा दुर्गम दरसावै, सोई बस दासन आवै ।।
जसुदा नाच नचावै, खेलावै कौसिल्या रानी गावै। जसुदा सब खानि छड़ावै, सामंत हलावै ।।

१. भी टारन = भिटारन २. अरि = अर

दया सिंधु दयाला।
रावरे गुन निज औगुन जो कछु किंचिद भाखौ। या लिखैं पर चितु राखौं, लै जन्म कोटिन लाखौं॥
कल्पे कोटि करोरी, लहै न मो मति भोरी। अस अघ ओघ अघोरी, कुमतैं कोटि बटोरी॥
धिग धिक धंधक घोरी, सुनि औगुन गति मोरी। नरकहु नाक सिकोरी, बात कहौ भौंह मिरोरी॥
सुपच जमनादि अजामिल, के तौ गनिकौ कि कथा मिलि। कियौ मोहि सब विधि गाफिल॥
कि पतित पावन बाना, उधारन अधम बखाना। पुकारै वेद पुराना, पुनि लखि बैनन्ह जाना॥
तब ही निहचै माना, न इहाँ जप तप दाना। नहिं सेवा नहिं ध्याना, नहिं पूजा नहिं ज्ञाना॥
प्रभु किरपा परिमाना, याके सब और बहाना। ए दयानिधि भगवाना, चहौं गति न निर्बाना॥
चहौं अवलंब न आना, जेहि जेहि जोनि जहाना। फिरौं बस कर्मन नाना, लहौं पद प्रेम अमाना॥
करौं नित तोहि गुन गाना, यही मन होउ ठेकाना। यही जीवनि यही प्राना, यही सुमिरन यही माला॥

छन्द

अनंत अविरल अनंत लीला अलेख अविचल अलख अरूपं।
अनघ अनामै अगम अगोचर अतित अनाभव अमित सरूपं॥
अकाल मूरति कृपाल केशव कलेस नासक कलुष विभंजन।
निरीह निर्गुन निभर्म निरभै, निमोह निरुपाधि नित निरंजन।
महेस अघहर सुरेस वंदित गनेस गावत गुनत निरंतर।
कवीस नारद समेत सारद सुमिरत सेसौ अगम निगम वर॥
दुरंत दुर्गम अत्यंत दुर्लभ सुलभ स्वदासन दनुज विध्वंसन।
दारिद्र दूषन दमन दयानिधि दयाल माधव दिनेस वंसन॥

दोहा

जाको अमित प्रभाव है, वेद न पावत पार। गुन अनंत किमि कहि सकै, जेइं मति मंद गंवार॥

कवित्त (सवैया)

नेति कै कै श्रुति सन्त अनंत, गनेस गनंत न गाइ चुकाई।
श्रुति सारद नारद काव्य अनेक महंत गुनंत अत्यन्त उपाई॥
निगमागम वेद पुराण रटंत किते कलपांत लै अंत न पाई।
दुर्गम दुर्लभ दूरि दुरंत सो क्यों जड़ जंत सो जाइ गनाई॥

दोहा

परम धरम यह 'दास' को अखिल छेम कल्यान। राम नाम उच्चरन मन, चरन कमल को ध्यान॥

कुंडलिया (छप्पय)

चरन सरन रघुनाथ के हरन घोर त्रै ताप। प्रेम नेम करि उर धरन जाको प्रगट प्रताप॥
जाको प्रगट प्रताप आपु प्रभु जो उर धारैं। जीव कृतारथ होइ लोक परलोक संवारै॥
रघुनाथ अनाथन नाथ नित, रखि आए राखत सरन। निज दीन 'दास दासानि' को, दीजे सरनागत चरन॥

दोहा

चरन सरन रघुनाथ के संतन जीवन प्रान। 'दासन' सर्व सुसर्व धन, संतत सब सुखदानि॥

मनहर छन्द

अरुन मृदुल पद सुन्दर सु थल सीत। निर्मल नवल नोखे पंकज बरन हैं॥
लहलहे कोमल ललित रतनारे प्यारे। तरुन गुलाब आब आभा के हरन हैं॥

सीतल सुखद 'दास' प्रान धन मन प्रान। नेक हिये आए जात जीव की जरन है॥
भंजन कलेश सुर रंजन सुरभि धर। संकट हरन रघुपति के चरन हैं॥
विभु सब जगत विचित्र नग अंगन मो। तेज श्री प्रकाश अघ तम के तरन हैं॥
नखन की आभा कोटि भानहू की सोभा हरे। कमल कोस को भाता में परचो ओस कन हैं॥
अगमि दुति पाइ झलकत मरकत सोने। जानत प्रताप जाको गौतम घरनि है॥
करुना करन, 'दास' दूपन दरन। सोच संकट हरन, रघुपति के चरन हैं॥
जाकी रज इच्छित है संभु सनकादि अज। भूप राजि राजि कर्त जोग आचरन है॥
जाको मैल सुर्सरी महेस निज सिर धरि। राजै भगवती विश्व तारन तरनि है॥
जाको धोइ केवट सुजस भाग भाजन भो। ताको जस कहे होत जग उद्धरन है॥
चित्रकूट फिरन, भरत जी को सुमिरन। संकट हरन रघुपति के चरन हैं॥
जो पै है विमुख ऐसे पद के समूह सुख। तोपै ऐसे जीवन ते नीकोई मरन है॥
सूकर खर कूकर के जीवनो भलो है तासो। जोपै नहिं आयो रघुनायक सरन है॥
जाके विसवास आस काल को कलेवा जीव। होत अमरनि डर जम के डरन है॥
पंचवटी दंडक की भूमि पावन करन। सोच संकट हरन, रघुपति के चरन हैं॥
विस्व के विलोचन-चकोरनि के चंद्रमा। रमा निवास दृग-अलि सिय मुख सरोज है॥
सिय हिय नैन कर कमल ललित लालित। प्रभु चरनारविंद हर रुज रोज है॥
विस्व सार अंस सार सारन को सार जानि। जग पद जल प्रभु आंगन भिषोज है॥
इन्द्र जोगेंद्र अज खेहज प्रभाव जानि। सेवै लेवै लाह 'दास' अरिहू मनोज है॥
जिनके दयाल दास दीन के प्रनतपाल। करत निहाल जाको सुमिरन पन है॥
चित्तहू की जरनि सो सीतल करन हारे। दुख के हरन हारे सुख के भरन हैं॥
दारिद्र दवारि के घन मूसलन धार। पतित उजारन सो कुमति सुधरन है॥
'दास' हू की इच्छा रुचि पोषन भरन। सोच संकट हरन, रघुपति के चरन है॥

[राम भक्तोंकी स्तुति] (संत महिमा)

तिन चरनन सिर नाइके, जे चरनन के दास। तिनके पद जो भय हरन, वन्दों सब सुख रास॥
चरन उपासक राम के, सुर नर असुर समेत। बंदो सबके पद कमल, हृदय सुद्ध मति हेत॥

[बाल्मीकि स्तुति] छप्पै

बंदौं मुनि पद कंज आदि कवि भवनिधि करसन। रामचरन अभिराम श्याम घन सुचि जल बरसन।
जग जीवन निस्तार हेत सुन्दर वपु धारचो। संश्रित परे अवर्न भूत गहि बाहँ उबारचो॥
तुलसिदास ह्वै कलि कलुष, विषम घोर जहँ ताप त्रय। भवसागर अवघट विकट, सुघट सेतु हरिचरित किय॥

सोरठा

संत अनंत समान, पुनि पुनि प्रभु निज सुख कह्यो। महिमा सब जग जान, ध्याइ परम पद पाइए॥

चौपाई

संत चरन संतत सुखकारी। आधि व्याधि संकट भय हारी॥
महिमा अगम सुगम सब काहू। हरन सोक जग लोक निबाहू॥
सुगति सुमति संपति सुखदाई। कलि दुख भाजन यह जिन पाई॥
सो निज हिय जानत गुन ताके। बरनै कवि असि मति बड़ि काके॥

बिन हरि कृपा न सो संजोगा। तेहि संग्रह बिन मिटै न रोगा॥
सुभ सोपान राम पथ ही को। चढ़ि जो जानत तेहि सिर टीको॥
सनकादिक सुक नारद सारद। कहत जो ते विज्ञान बिसारद॥
ते जानत मानत अरु भानत। सुर गन मुनि जन जानि बखानत॥
जानत महिमा जासु गोसाईं। सुख पायो बरन्यौ बहु भाई॥
लीन ब्रह्म-सुख ह्वै बहु त्यागी। जेहि हनुमंत सुनत अनुरागी॥

[हनुमान स्तुति] छंद हरिगीतिका

हनुमंत संत अनन्त बहु विधि करन धारन तन बली।
रघुनाथ चरन सरोज रस उनमत्त रमि[1] अह निसि अली॥
प्रभु आपु गुन गन जासु बरनत और की कहिए कहा।
जाको रिनी त्रिभुवन धनी को कहि सकै महिमा महा॥
जन दीन वत्सल, हीन मत्सर, मीन रघुपति प्रेम है।
बसि कियो त्रिभुवन नाथ पावन गाथ निरुपधि नेम है।
रघुनाथ जन रच्छक सो पच्छक दच्छ गायक साम को।
महि जल गगन गत ब्रह्म रत जिन जीति ल्यायौ राम को॥
रघुनाथ प्रेम रँगो रँगीलो गहे दिढ़ विस्वास को।
लखि प्रात लीलो भान यह लघु चरित बाल विलास को॥
रवि राहु वासव मान ढीलो गर्व खीलो वजर को।
हनुमत हठीलो बाल लीलो सरन जानकि अजर को॥
रनधीर वीर समीर को सुत, दूत प्रिय रघुबीर को।
गुन नीरनिधि भवभीर मेटन हरत जन की पीर को॥
सोइ दिढ़ वसीलो पाय तुलसीदास हरि रति मति लहे।
जड़ 'दास' तासु न भजहिं हित चित नित नमामि नमामि हे॥

दोहा

जद्यपि महिमा अमित अति, सो किमि कै कहि जात।
कहि सब निज अनुसार मति, जिमि नभ मसक उड़ात॥

सवैया

कहि कौन सकै प्रभु दासत के कमलासन हूँ जिनके गुन गाए।
निज चित्त विलासन के सुख हेत, प्रबंध करै अपने मन भाए॥
भावै नहीं बिसई रस लीन, निरच्छर दास हूँ माथ नवाए।
राखिए आपनी ओर निहारि, सदा सरनागद राखत आए॥

भूमिका

सोरठा

यह बल मनहि दिढ़ाय, राम चरन सिर नाइकै। कहौं कछू यक गाइ, श्री गोसाईं अद्भुत चरित॥

१ रमि = रमित

दोहा

कह्यौ गोसाइँ अति सुखद, दोहा सब सुख रास। दासन के अवलंब हित, कारन कियो प्रकास ।।

श्री गोसाइँ कृत दोहा

"सबहि कहावत राम के, सबहि राम की आस। राम कहहिं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलदीदास"
कविता रीति एकौ नहीं, अवरौ सब गुन हीन। दासन जस सम्बन्ध लखि, करिहैं छोह प्रवीन।।
रामचरित रस भृङ्ग जे, प्रभु पद दिढ़ अस नेह। श्री गोसाइँ अनुकूल नित, तिनहि परम प्रिय एह ।।

[नारायण दास कृत दोहा]

"अग्रदास अज्ञा दई, हरि भक्तन गुन गाव। भवसागर के तरन को, नाहिन आन उपाव" ।।
ताते कछुक प्रसंग सुभ, सुन्यौ जो सत संवाद। संत सिरोमनि हूँ दई अज्ञा राम प्रसाद ।।

श्री स्वामी रामप्रसाद कृत सवैया

"जिनको सतभाव प्रभाव सदा, सुभ रामहि के पद पंकज नीको।
मानो विराग उपासना प्रेम को, नेम को है इनही सिर टीको ।।
रति रामहिं सों, मति रामहिं सों, गति राम सों, बाना धरे सिय पी को।
दच्छ मनौ ग्रह पूरित अच्छ प्रतच्छ सरूप गोसाईंहिं जी की ।।
चातिक वृत्ति सो सातिक रूप मनो नभ निर्मल कातिक ही को।
पातक पुंज सिराहिं विलोकत दीन दयाल, विषै रस फीको ।।
पूजा मो अंग, प्रसंग मो कान, सो ध्यान धरे रघुनन्दन सी को।
चक्षु मो रूप धरे हरि पच्छ प्रतच्छ सरूप गोसाइँहि जी को ।।

मनहर

वेद कौ विधान लए, पूरन पुरान मत मानत प्रभाव साधु सिद्धि सब ठाइँ के ।।
प्रेम रस भीने पद परम नवीने कहि दीने हैं अखेद कवि भेद जहँ ताइँ के ।।
दया दरसावै बरसावे प्रेम पूरो जल। हियो हुलसावै जौन पाहन के नाइँ के ।।
स्वामी के चरित और बापुरो बखानै कौन। वृत्ति यह बाँटे परी तुलसी गोसाइँ के ।।

[राम प्रसाद की गुरु-परंपरा] छप्पै

श्री स्वामी नँदलाल ब्रह्म रत राम परायन। नगर सरीले बास, ब्रह्म कुलके सुखदायन ।।
श्रीमत जोधाराम जिनहि कुल कमल दिवाकर। जथा नाम प्रभु आप मनो तन धरे कृपा कर ।।
प्रथम कछुक वंदन कियौ, श्री गुरुदेव जे परम हित।
अमित दानि नर रूप हरि, तिन गुन गन की काह मिति ।।
श्रीमत चरन सुदास दुतिय प्रिय जन स्वामी के। तिनके गुन अभिराम, राम रति सब विधि नीके ।।
श्री हीरामनि दास जो तिनके गुन गन पंडित। शास्त्र तत्व रति राम ज्ञान आचारज पंडित ।।
तेहि कुल कैरव सुधानिधि, राम प्रसाद प्रकास किय।
हित चरन विषै रस अवध बसि, श्री स्वामी की वृत्ति किय ।।
मोहि आपन करि जानि मानि कुल कानि पच्छ धरि। नतरु विषै लपटान कौन हौ पात्र कर ।।
विविध प्रसंग सुनाइ गोसाइँ के सुखदायक। भो निदेस ये चरित करहु भाषा गुन नायक ।।
अज्ञा सिर धरि जोरि कर, विनवौ कवि कोविद चरन।
लखि चूक छिमा कीबो अबुध, जानि 'दस' अपनी सरन ।।

सोरठा

जद्यपि सब विधि हीन, छोटे खोटे पीन अघ। करहि छोह परबीन, जैसो कैसो 'दास' लखि ॥

मनहर

दास दासरथी को हौं, दीन दीनानाथ जू को। धूत धनुधारिहू[1] को अघी अवधेस को ॥
ररिहा रघुबीर को, मुररिहा मुरारि जू को। पतित प्रतिपाल जू कों, रमला रमेस को ॥
नीच निश्चरारि को, कमीना कमलापति को। कपटी कैटभारि को, हौं रहुवा हृषीकेस को ॥
सठ सीतानाथ को, बेसरम बिसम्भर को। क्रूर कारुनीक को, कपूत कौसलेस को ॥
जड़ जानकीस को, अभागी अघ-भंजन को। माधो जू को मूर्ख, राउ रघुकुल दिनेस को ॥
गुनही गुनग्राही को, गुलाम गुननायक को। चोर चक्रधर चाप - भंजन महेस को ॥
निधनी निधान को, निकम्मा नीति निधि जू को। खल अखिलेस भोंदू भोरो भुवनेस को ॥
सठ सीतापति को, हौं मोथर महराज ही को। अनख आलसी अबुध अवध नरेस को ॥

दोहा

जो अपने औगुन कहौं, होइ कथा विस्तार। ताते करि संक्षेप पद बन्दौं बारम्बार ॥

[नाभादासकी गुरु - परम्परा]

श्री समुद्र श्री ब्रह्म रत जगत गुरू जगवंद। श्री गोसाईं राममय श्रीमत रामानंद ॥

छप्पै

प्रगट ब्रह्म अवतार जगत कल्यान उबारन। कलिमल ग्रसितक जीव सेतु भवसागर तारन ॥
विषय मोह तम तरनि तरुन अघ ओघ नसावन। सुरसरि सरिस प्रताप पतित पावन दुख दावन ॥
पुनि श्री अनंतानंद जी, कृष्णदास पौहारि पुनि। श्री अग्रदास रघुनाथ प्रिय, गावत जिनके जगत गुन ॥

दोहा

जिन को नभ बानी भई, श्रीमत सारद टेरि। प्रगटौ मम दासन सुजस तिहूँ काल के हेरि ॥

चौपैया छंद

तब श्रीमत सारद, बुद्धि विसारद, तीनि काल की सुधि धारन।
सुर कष्ट निवारन, जस विस्तारन, असुर सँघारन हित कारन ॥
खल कुमति सुधारन, जन निस्तारन, विषै उबारन निरवारन।
निज दास सँभारन, सब सुखसारन, विपति विदारन भयहारन ॥
देवी तब कहि अस, प्रगट करौ जस, भक्तमाल जन सुखदाई।
अज्ञा जो दीन्हीं, सिर धरि लीन्हीं, करि विचार चित यौं आई ॥
माता सुनि लीजे, करुना कीजे, नाभा जू को मति दीजे।
बरनौ श्री साधन, परम अगाधन, अवराधन हरि अघ छीजे ॥
तब श्रीमत नाभा, ज्यौं रवि आभा, तीनि काल को ज्ञान लह्यौ।
भक्तन को जस, जस चाहिय तस, भूत भविष[2] व्रतमान कह्यो ॥

दोहा

श्री नाभा जू जो रच्यौ, भक्तन चरित जहाज। कछु प्रसंग तामे विदित, गावत संत समाज ॥

---

१. धनुधारिहू = धनुषधारीहू। २. भविष=भविष्य।

छप्पय

ताहू ते यह भिन्न कथा अद्भुत सुखदाई। कहौं जथामति गाइ पाइ हरि संत सहाई॥
सकल अपूरब कथा विचित्र प्रसंग विविध विधि। हरि प्रिय जन अभ्यास नवल बरनौं मंगल निधि॥
नो नित्य राम सो ते कह्यो, कछुक चरित कृत पारसी। ताहू ते यह भिन्न मति, जथा जगत बानारसी॥

अवध खंड

(क) [१. अथ रामचरितमानस प्रसंग]

दोहा

श्री हनुमंत प्रसंग सुभ, प्रथम चरित विस्तार। लह्यो गोसाईं दरस रस, विदित सकल संसार॥

हरिगीतिका छंद

संसार विदित प्रभाव दास सो पाइ गरभित प्रेम ह्वै। परिपूरि भूरि सुभाग अति अनुराग प्रभु को नेम ह्वै॥
उनमत्त परमानंद सुख रस अवध वास करावनी। रघुनाथ लीला विविध विधि जिन रूप धरि प्रगटी भनी॥
अति मगन प्रेम अनेक लीला अमित कीरति सोहनी।नित नवल चरिताचरित मनहु विचित्र त्रिभुवन मोहनी।
अति उमग अधिक सुजन्मकी उत्साहकी उपमा भनी। बहु काल लीला बालकी रचना अलौकिक तहँ घनी॥
उपवीत व्याह उछाह लीला एक एक न कहि परै। नर नाग सुर गंधर्व किन्नर देव जच्छन मन हरै॥
करि गान सुभ गीतावली रागावली दोहावली। मुनि व्योम सुरन विमान विथके शिव समाधि हली चली॥
सुभ गान रामायन कृतारथ हेत कल्प लता फली। स्वारथ पदारथ देत, दुख हरि लेत, दै रति निर्मली॥
जेहि गाइ हरि पद पाइ जन जे सर्व अभिमत गति लहै।
मन मीन करि हरि चरित सागर तासु गुन किमि कवि कहै॥

दोहा

यहि सुभ करुना सीलमय, रामपुरी आसीन। जेहि सुख मगन भुसुंडि शिव, मुनिवर परम प्रवीन॥

सोरठा

एक दिन विह्वल प्रेम, श्री रामायन गान किय। प्रीति रीतिको नेम, अति सुन्दर बानी मधुर॥

छप्पै

जबै मंगलाचरन किए उच्चार पुलक तन। भए सिथिल तन बैन सहित श्रोतन मगन्न मन॥
द्रवै रूप ह्वै गए सकल मंदिर चेतन जड़। पुहुप कथा पर रहे तेउ गिरि गए धरनि गड़॥
जद्यपि गच मंदिर रुचिर, भो कोमल नौनीत सम। चितन दसा किमि कहि सकै, कवि बरननकी कौन गम॥

दोहा

यहि विधि बानी सकल जो भनत संत सिरताज। करि उपनेत निकाइ कर, सुनइ बधाइ समाज॥

कुण्डलिया

जाके अजहू राम पद, प्रेम पुनीत प्रतीति। तन मन धन सरबसु तिन्हें रामायनकी प्रीति॥
रामायनकी प्रीति तिन्हैं जुग लोक उबारन। करै सर्व कल्यान कुअंक लिलाट मिटारन॥
कृतजुग सो लहि आजु भई नहिं सुरतरु काके। मन वच कर्म प्रतीति प्रीति अजहू है जाके॥

दोहा

परम साधु जेहि प्राप्ति है, पायो पद निर्वान। महिमा राम चरित्र की, कहि निज बुद्धि प्रमान॥

(ख) छंद चंचला

श्री स्वामी नंदलालके जन एक प्रिय दयालदास । ते ह्वै विषै उदास कियौ देवसरि निकट नेवास ॥
नित कथा प्रसंग होइ, भाँति भाँतिको विलास । श्री गोसाइँ बानि के, प्रमोद दोष दुःख नास ॥
तीन वर्ष एक चित्त, एक आग्र सावकास । रसखानि व्रत ठानि सुनौ, लहि अनंद प्रेम रास ॥
उद्धारो विचित्र काव्य, कीन कवित सौ पचास । इष्ट भई ते बखान, करि सप्रेम मति प्रकास ॥

दोहा

सब दोहानि कवित्त को, देखि बड़ो विस्तार । ता कारन तकि एक कह्यो, जानब यही प्रकार ॥

(दयालदास कृत—रामायण महिमा) कवित्त

"सुर तरु लता में चारि फल हैं फलित किधौं कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी ॥
किधौं चिंतामनिन की माल उर सोभित विसाल कंठ में घरे है जोति झलकावनी ॥
प्रभु की कहानी ते गोसाईं की मधुर बानी मुक्ति-सुखदानी रस-खानि मनभावनी ॥
खाँड़ की खिझावनो सी, कंद की कुठावनी सी, सिता को सतावनो सी, सुधा सकुचावनी" ॥

दोहा

परम मधुर पावन करनि, सकल मुक्तिकी दानि । तुलसी कृत रघुबर कथा, की सुरसरि रसखानि ॥

छप्पै

या विधि स्वामी रूपलाल जेहि के अनन्य गति । जानकि चरन सरोज प्रेम दिढ़ प्रीति गूढ़ मति ॥
लहि भवसागर पार एक व्रत एक उपासन । ह्वै जग ते निरवर्त जनकपुर कीन्हो आसन ॥
श्री अवध दरस हित कबहुँ जो, त्रै वासर वासा करै ।
जलहू अचवै नहीं पुरी को, जनक पच्छ जिय दिढ़ धरै ॥

दोहा

सुनै रमायन परम हित, विपुल काल धरि नेम । बहु विधान अस्तुति करै, विह्वल पुलकित प्रेम ॥

[रूपलाल कृत रामायण महिमा] छप्पै

"कृतजुग सिन्धु निर्गत तहाँ विधि एक जौ । त्रेता उपज्यौ मोह आदि कवि पोत ज्यौं ॥
द्वापर विषय सु झौंर लहर औ भंवर सत । व्यास आदि मुनि बेगि काल तेहि उबारत ॥
कलि कलंक कलिमल कलुष, सत सहस्र लहरिन भरत ।
तुलसिदास बानी विमल, तेहि जहाज चढ़ि नर तरत" ॥

दोहा

इमि निज मति मन विविधि विधि, बरनहिं संत सुजान । तहाँ कुटिल मम मंद मति, क्यों करि सकौं बखान ॥
राका-ससि-जस राम, दिसि-प्राची तुलसीदास । पूरि रह्यो जग-नभ अचल करत तिहू पुर आस ॥

२ अथ नाभा जू प्रसंग : छप्पै

एक दिन दरसन हेत श्रीमत नाभा जू आए । समै ध्यान को जानि जनन सोइ आइ जनाए ॥
आदर कछू न कियौ, न नाभा को पहिचान्यौ । दंड एक मग जोइ बहुरि उन कीन पयानौ ॥
वाही दिन वृंदा विपिन, गवन कीन ततकाल तिन ।
इहाँ गोसाईं जनन सों सुन्यौ, गए कछु काल दिन ॥

दोहा

सुनि वृतांत पछिताइकै, तिन्हैं दियौ उपदेस । ऐसे भगवत जनन को क्यों नहिं कह्यो सँदेस ॥

छप्पै

यह हरिजन अपमान बड़ो अघ सह्यौ न पारौं। तिन्हैं मिले बिन भारनि आदर को न सँभारौ ॥
कियो तुरंत ही गवन, चले मथुरा की धाँई। बीच न भयौ मिलाप, पहुँचे वृंदावन जाई ॥
श्री वृंदावन पहुँचे जबै, सुनि नाभा आगे लियौ। बहु विधि ते सनमान करि, अतिहि उच्च आसन दियौ ॥

दोहा

सब प्रकार पूजा करी, बहु विधि मन चित लाइ। सारद प्रेरकके मते, अस्तुति कही बनाइ ॥

(नाभादास कृत) छप्पै

'त्रेता काव्य निबंध करी सतकोटि रमायन। एक अच्छर उद्धरै ब्रह्म हत्या :जु परायन ॥
अब भक्तन सुख हेत बहुरि भाषा विस्तारी। रामचरित रस मत्त अनंत निसि दिन व्रतधारी ॥
संसार अपारके पार कहँ, सुगम रूप नौका लयौ। कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीक तुलसी भयौ ॥'

सुनि वर बिनै बहोरि गोसाइँ कहि समुझायौ। गुप्त करिय करि कृपा जो इमि पदवी दै गायौ ॥
तब नाभा जू कह्यौ मोहि अज्ञा है स्वामी। जानि बूझि किमि कहौ गोसाईं अंतरजामी ॥
प्रभु दासनकी महिमा महा, कहौं जथा परमान सोइ। सोउ प्रेरक हरि ओरते, यामें पच्छ न पात कोइ ॥

दोहा

किमि ताते घटि बढ़ि कहौं, सब जानत सरवज्ञ। तासु अवज्ञा परम अघ, करै कौन मति अज्ञ ॥

[३ अथ कृष्णमूर्ति का धनुर्धारण प्रसंग]

श्री नाभा जी आदि दै, और संत कृत बेत। चले गोसाईं संग सब, दरस करावन हेत ॥

झूलना (छप्पय)

सन्मुख होत सरूपके सबहिन नायौ सीस। चले गोसाइँ अग्र कहि जैति कोसलाधीस ॥
जैति कोसलाधीस ईस ईसान रमापति। सर्व भाव सब रूप सर्वमय सर्व सर्वगति ॥
सब गति कृत उदाहरन हरन संसय दारुन दुख। द्वैत दुरासा दुरबुद्धि नासत जो तिहि सन्मुख ॥

श्रीमत गोसाईं कृत दोहा

"काह कहौं छबि आज की, भले बने हौ नाथ। तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान ल्यौ हाथ ॥"

छप्पै

प्रभु सरवज्ञ सुजान सर्व व्यापक सब लायक। सर्वरूप सब ईस सर्व ऊपर सब नायक ॥
सर्व हृदय विश्राम सर्व अग जग सब रामत। सर्वमई भगवान सर्व परबस मय नामत ॥
समरथ्थ सर्व सब भाँति प्रभु, सर्वरूपमय सर्वगत।
निज रुचि बिहाय रुचि दास की, रखि आए, राखत रहत ॥

दोहा

मुरली मुकुट दुराय के, धरयो धनुष सर हाथ। तुलसी रुचि लखि दास की, नाथ भए रघुनाथ ॥
साष्टांग दण्डवत करि, पुनि पुनि नायौ माथ। कर जोरे अस्तुति करी, जय जय जय रघुनाथ ॥

छप्पै

जै जै जै रघुनाथ नाथ नाथनके नायक। जानत महिमा ब्रह्म सम्भु सनकादि विनायक ॥
जै जै जै रघुबीर धीर सब विधि सब लायक। रजनीचर बन धूम पवन-नन्दन प्रिय पायक ॥
कंसादि पोतना अखिल खल, प्रबल दनुज दारुन दवन। वासुदेव रघुवंसमनि, कृष्णदेव करुना भवन ॥
जैति वृष्णि कुल कुमुद राम राकेस रमापति। रघुकुल कमल दिनेस ईस ईसान सर्व गति ॥

जयति संत जन कामधेनु अभिराम नाम प्रद। जय भक्तन अघ तूल वह्नि अनुकूल वेद वद ॥
जय पतित उधारन सूलहर, रमानाथ राधारमन। विस्वेस विस्वंभर विस्वपति, बीस बाहु दससिर-समन ॥
जनक नगर आनन्द इन्दु आतम दुख भंजन। कमलापति करतार कलित निरुपाधि निरंजन ॥
नित्य निर्भरानन्द नीतिपालन नरनायक। निर्विकार निर्लेप धरे कर सारँग सायक ॥
संसार अपार पयोधि हित, घटजोनी तारन तरन। निज दीन दास पालन विरद, प्रनतपाल असरन-सरन ॥

सोरठा

प्रनतपाल रघुराज, रटत निरन्तर श्रुति सुजस। राखत जन की लाज, धर्मसेतु करुनायतन ॥
इमि गुन गुनत समाज, लह्यो राम रूपी दरस। भक्तन के सिरताज, आजु गोसाईं विदित जग ॥
जोगी तपी विरक्त, साधु सन्त बिसई सरस। तुलसिदास की भक्ति, सबके उर जंत्रित भई ॥

४ अथ श्री कौसिल्यानन्दन वृन्दावन संवाद प्रसंगे

चौपाई

दच्छिन को एक नृपति पुजारी। अति नेष्ठिक बहु प्रतिमा-धारी ॥
श्री रघुनाथ कृपा तेहि कीन्हीं। निज सरूप हित अज्ञा दीन्हीं ॥
मम प्रतिमा अवधहि पहुँचावौ। जनम स्थान आसीन करावौ ॥
लै अज्ञा पालकी चढ़ाई। सुभट द्रव्य बहु लोग पठाई ॥
वृन्दावन पहुँचे (प्रभु ?) आई। लियो बास जमुना तट जाई ॥
विप्र एक दरसन हित आयौ। लखि सरूप बहु भाँति लोभायौ ॥

दोहा

तीनि दिवस वासा भयौ, विप्र न छाँड़ै पास। खान-पान बिसराइ निजु, विकल प्रेम प्रभु आस ॥

चौपाई

जन वत्सल करुनाकर स्वामी। प्रेम विबस दासन अनुगामी ॥
सत्य प्रीति दिज के प्रभु चीन्ही। निज पंडन को अज्ञा दीन्हीं ॥
अब मोहि याहि विप्र घर राखौ। बार बार प्रभु तिनते भाखौ ॥
राम घाट तब मन्दिर साजे। सुभग सिंघासन राम बिराजे ॥
कियो निहाल विप्र निज दासा। रामघाट दिज गृह करि बासा ॥

दोहा

श्रम करि दच्छिन ते चले, अवध जन्म अस्थान। वृन्दावन दिज गृह रहे, ऐसे कृपा-निधान ॥
जाना सो प्रहलाद गज, भीषमादि कपि भालु। रुचि बिहाइ निज, दास रुचि राखत दीनदयालु ॥
जब ते लीला बान धनु, करी कृष्ण भगवान। निज उपासना कहैं लघु, सबन गँवायौ भान ॥

चौपाई

तबते सब मिलि लज्जित रहै। इरखा भाव हृदय निज गहै ॥
तिनहि कृपा करि बोलि पठायौ। प्रभु प्रभाव सबहिन समुझायौ ॥
अमित प्रभाव सर्वगत स्वामी। अवसि दास बसि अन्तरजामी ॥
जेहि जस भाव ताहि तसमानो। एक प्रभाव वस्य जन जानो ॥

दोहा

देखौ प्रभु अवधहि चले, जन्म थान अनुमानि। बीच प्रेम बस विप्र गृह, रहे प्रीति पहिचानि ॥

अथ श्री अयोध्या काण्डे चौपाई

"राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान संत सुर साखी" ॥

अथ श्रीमत गोसाई कृत कवितावलियाँ कवित्त (सवैया)

"प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
ऋखराज ग्रस्यौ गजराज कृपा ततकाल विलंब न कीन तहाँ॥
सुर साखी है राखी है पंडवधू पट लूटत कोटिक भूप जहाँ।
'तुलसी' भजु सोच विमोचन को, जन को प्रन राम न राख्यौ कहाँ" ॥

दोहावलियाँ

"तुलसी जाके आपु तें, सेवक की रुचि मीठि। ऐसे साहेब राम को, क्यों करि दीजे पीठि" ॥

पुनः

इमि सबको परबोधि करि, तिन करि बिनै बहोरि। महाराज समुझाइए, अब एक संसै और ॥
दच्छिन ते प्रभु आइ जो, भए इहाँ आसीन। नाम कौन ठाकुर इन्हैं, कहिये आपु प्रवीन ॥
ठाकुर जन्म-स्थान के, रामलला अभिराम। कौसिल्यानन्दन कहा, ताते इनको नाम ॥
तिन पुनि प्रति उत्तर कियो, हमहि बोध किमि आय। दच्छिन को कोउ होइ सँग, ताते पूँछहु जाय ॥
लियो सोध पूछो जबै, कह्यो सोई तिन नाम। धनि धनि कहि आए तबै, कीन्हों दंड प्रनाम ॥
अजहुँ विराजत माधुरी मूरति अति अभिराम। कौसिल्यानंदन विदित तुलसिदास कृत नाम ॥

सोरठा

पुनि निज बोधहि पाइ, साधु साधु साधुन भन्यो। अस्तुति करी बनाइ, नाभा आदिक संत जे ॥

५ अथ नंददास गुरभाई प्रसंग

छप्पै

कान्हकुब्ज एक विप्र नगर कनउज ढिग वासी। श्री गोसाइँ गुरबंधु श्रीकृष्ण उपासी ॥
नंददास सुभ नाम स्वच्छ कृत पद जग गावै। और कुटुम्बी विप्र भक्त पछ देखि सतावै ॥
विविधि भाँति इरखा करहि, पार न पावहिं वंक वै। तब मृतक गऊ निसि द्वार द्विज डारी वृथा कलंक दै ॥
भोर भयो अपराध लाइ सब मिलि दिज घेरो। कंपमान ह्वै दास भक्तवच्छल तन हेरो ॥
अब प्रभु कछु न बिसाइ, लाज बाने की करिए। होइ खलन को मान भंग, हम साँसति तरिए ॥
करुनाकर गाइ जियाइ तब, दास सुजन जस बिसतरे। खल त्रास मानि सब चेत ह्वै, आनि भक्त चरनन परे ॥

दोहा

तब ते अधिक सप्रेम ह्वै करत कृष्ण गुन गान। आनँद सो बिचरत रहै, नन्ददास सुख खान ॥
सुनि आगमन गोसाइँ को, वृन्दावन मो जाइ। मिले पुलकि अति प्रेम ते, आनँद उर न समाइ ॥
पद सुनाइ करि भेद तहँ, कियो हाँस मुसकाइ। लीला कृष्ण बहुत करौ, राम अलर गुन गाइ ॥
तब कर जोरि बिनै करचो, बिबस बाल अरु दास। तात मात सौंपहि जेहि, तेहि भजु तुलसीदास ॥
प्रथमहि तुमही धरचो मम, नन्ददास अस नाम। दसरथदास न क्यों कह्यो, रटते नित गुन ग्राम ॥
दास जौन सरकार के, करि दीन्हों तुम मोहिं। ताहि भजौं दृढ़ प्रेम करि, यहै कृपा अब होहि ॥
सुनिके अधिक प्रसन्य ह्वै, विपुल प्रसंसा कीन्ह। दिढ़ ह्वै भजन करो सदा, बहु सिख आसिख दीन्ह ॥

६ अथ श्री वृंदावन महंत संवाद

दोहा

एक दिन आए दरस हित, साधक संत महंत। कह्यौ नाथ हम पुरिन की, महिमा सुन्यौ चहंत ।।
सकल पुरिन में अवध की, महिमा सुनी अपार। सुनि पुनि प्रति उत्तर कियौ, निज विचार अनुसार ।।

चौपाई

हमहू दरस अवध को पायौ। इतो प्रभाव दृष्टि नहिं आयौ ।।
और न चमतकार कछु देख्यौ। दीन खीन प्रानी बहु पेख्यौ ।।
बिहसि कह्यौ अब तेहि ते जानौ। प्रगट प्रताप सरस पहिचानौ ।।

दोहा

और पुरिन सब बाँटि लै, धनिक धनेस नरेस। दीन खीन राखे सरन, दीनानाथ दिनेस ।।

श्रीमत गोसाईं कृत कवित्त

"नाकपाल लोकपाल व्यालपाल भूमिपाल पालिबे कृपाल सबही के जी की थाह ली ।।
कादर को आदर काहूँ के न नाहिं देखियत सबही को चाहिए सुजान सेवा टाहली ।।
'तुलसी' सुभाय कही, नहीं कछू पच्छपात कौने ईस कियौ कीस भालु खास माहली ।।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत मोसे दीन दूबरो कपूत कूर काहली" ।।

छप्पै

नहिं संबल, निरधनी, रंक, निर्धिन, निहकिंचन। निरालंब अनगंत, दुखी, जाँचक, निरपच्छन ।।
कूर कुटिल मति रोग दोष बस कायर कामी। राखत सरन उदार पुरुष उर पुर को स्वामी ।।
जग विदित अनाथनि नाथ पुर, सील सिंधु करुना भवन। सब पुरिन माँझ त्रैलोक महँ, कौन पुरी भइ सहगवन।।
विदित जासु परताप प्रभाव अपार अखंडी। जानत संभु सुजान जोगि सनकादि भुसुंडी ।।
जन्मपुरी भगवतन असेस वेदविद भ्राजै। संत रूप हरि बसै सदा नीरज मो राजै ।।
जहँ रमित सच्चिदानंद नित अवध बिहारो दुख दमन। कहौ कौन पुरी हरि धाम कहँ बार बार कीन्हो गमन ।।

दोहा

या विधि महिमा अवध की कही कहाँ लौं जाइ। सकल सभा सो प्रेम लखि, अमित भाँति सुख पाइ ।।
विपुल काल सतसंग हित, कियो वास विश्राम। पुनि आये श्री अवधपुर, जो निज प्रभु को धाम ।।

७ अथ श्री अवध वास प्रसंग

चौपाई

सबै साध दासन जोगवत मन। हीन खीन दीनन प्रतिपालन ।।
बुधन वेद आख्यान करावत। हरि भक्तन हरि भक्ति बढ़ावत ।।
जोगिन जोग जुक्ति की सिच्छा। विषयिनहूँ सुख संपति इच्छा ।।
निज दासन जो मन क्रम बानी। तिन कहँ रति मति सारँगपानी ।।
हरि सुमिरन हरि भजन निरन्तर। बरसत राम प्रेम ह्वै जलधर ।।

दोहा

निसि दिन परमानंद मो, जाति न जानहि जात। स्वासा बिनु रघुपति कहे जानत निरफल गात ।

श्री गोसाइँ कृत दोहा

"संपति सारे जगत की, स्वासा सम नहिँ होइ। सो स्वासा रघुनाथ बिनु, 'तुलसी' वृथा न खोइ" ।।

अरिल्या

या कलि काल कुचाल न साधन साधिया। दान दया दम धर्म न जोग समाधिया ।।
नाम मूल कल्यान, भूल पल आध ना। 'दास' त्यागि अभिमान राम अवराधना ।।
नहिं उपाव कछु और कर्म नहिं नाधना। और सबै दुख मूल, सूल सम बाधना ।।
कर्म क्रिया व्रत धर्म कछू निरुपाध ना। 'दास' त्यागि अभिमान राम अवराध ना ।।

सोरठा

परम धरम यह जान, नर देही को फल यहै। ना तरु ज्यौं खर स्वान, रघुनायक की भक्ति बिन ।।

छप्पै

अहनिसि लीला ललित राम के गुन गन गावै। बहु विधि गाइ नचाइ नृत्य करि प्रभुहि रिझावै ।।
अरु पुनि किहे निहाल अवधवासी नृतकारी। गीतावलि निज दई जो सब संपति सुखकारी ।।
समरथ पाठ अगान की, दई गंधर्वन ते सरस।
पुनि साध द्वार ह्वै जीवका, विषय उहाँ नहिं असपरस ।।

दोहा

अजहूँ लगि तिनकी दसा, अधिक अधिक अधिकान। नर की कहाँ चली हरै मुनि गन करि सुभ गान ।।

———

काशी खण्ड

[८ अथ मधुसूदन सरस्वती निर्णय प्रसंग]

प्रमिताक्षरा छंद

जब यहि विधि विपुल बिताइ काल। कछु दिष्टि परचो कलि को कुचाल ।।
हिंसादिक बाधक भक्त रीति। सुचि मुक्ति दुरी बिच लखि अनीति ।।
तब जगनायक सों बिनै ठानि। यह देखि न जात दयानिधान ।।
भइ अज्ञा यह जुग - धर्म नीति। यहि विधि प्रपंच की इहै रीति ।।
जो सहि न जात यह कलि कुपास। निज कासी मो कीजे निवास ।।
कासी सुखरासी तिहू काल। जहँ रच्छक श्री शंकर दयाल ।।
जो काल कर्म गति सकल रोकि। जमदूत धूत कोउ सक न टोकि ।।
सुनि आए कासी हरन सोक। भए अति प्रसंन्य सोभा बिलोकि ।।

छंद त्रोटक

तब निकसि नगर ढिग वास करचौ। सो अवधहि को जिय पच्छ धरचौ ।।
अति चित प्रसंन्य प्रभु वाकि गह्यौ। सुभ सरित तीर करि वास रह्यौ ।।

प्रमिताक्षरा छंद

सुभ ठांव भवानती गंग तीर। थपि अवध पुरी सुन्दर गंभीर ।।
तहँ अति सुन्दर मंदिर बनाय। जेहि लखत जाहिं पातख सिराय ।।
यह प्रीति रीति दासन अनन्य। जिन धरी धारना धन्य धन्य ।।
नित हरि कीरति लीला बिलास। सुख मैं दुख दूषण को निवास ।।

एक मुक्ति पुरी सहजहि सुपास। जहँ सकल संपदा सुख कि रास ॥
जहँ राम नाम सो रति प्रकास। सपनेहूँ नहिं जहँ जम कि त्रास ॥
दूजे हरि चरित कियौ निवास। एक सुबरन पुनि सोभा सुबास ॥
सब पाइ नयन फल ह्वै निहाल। अगनित लीला उत्सव विसाल ॥
तहँ पंडित बहु श्रुति के निधान। सुर बानी के बकता सुजान ॥
तिन अपने मन बिच कियौ मान। सुनि भाषा रामायन पुरान ॥
तिन कहौ गोसई सों निदान। कछु उचित न कीन्हों यह विधान ॥

संखनारी छंद

सकुच सो करैं पाट सुरदेव बानी। आदि अंत विधि संभु निगमौ न जानी ॥
सोई गूढ़ महिमा भाषा जो बखानी। सबहि को सुगम करि दई बेद बानी ॥

दोहा

एहि विधि ते सब विविध विधि, कोटिन कहि औ ठाई।
सुनति प्रति उत्तर दियो, तब यों हिन्हें गोसाईं ॥

दोहावलियाँ दोहा

"हरिहर जस सुर नर गिरा, बरनहि संत समान[1]। हाड़ी चाटक चारु चिरु राँधे स्वाद सुजान ॥

त्रोटक छंद

यह सुनि वृतांत चित मो न धरी। पुनि बहु विधान की बाद करी ॥
पंडित व्याकरनी मति अगरी। बहु जल्प प्रलाप करी सगरी ॥

हरिगीतिका छंद

श्री संकराचार्ज सरूप सो परतच्छ शिव भगवान को। श्रुति सेतु रच्छा हेतु भो अवतार कृपानिधान को ॥
वादी विवादी पच्छ साधी कछु कुतर्की मान को। निर्मूल हत संसय समन अभिमान करत गुमान को ॥

छप्पय

विदित सकल संसार तेज परताप अखंडी। तेहि गादी आसीन सिरी मदसूदन दंडी।
तहँ मिलिकैं सब गए वेद विद्याधर पंडित। कियौ जाय संवाद नीति कर्मन गुन मंडित।
तब तीनि काल को ज्ञान जिन्ह, समुझायौ कहि विविधि विधि।
अवतार आदि कवि को कह्यौ, जासु दरस ते परम निधि ॥

(मधुसूदन कृत) श्लोक

"परमानन्द यत्र कंश्चित जंगमं तुलसी तरु। कविता मंजरी यस्य रामं भ्रमर भूषितः"[2] ॥

दोहा

सुनि प्रताप जिय जानि कै, सबन नवायौ सीस। प्रभु को अमित प्रभाव कहि, सर्व ईस जगदीस ॥
आइ करी बिनती तबै, अति हित बारहि बार। तुम भव सिन्धु जहाज के करिया धारनहार ॥
यहि मिस बिलसे काल कछु, मगन प्रेम आनन्द। मन बच करम भजहिँ सदा, राम सच्चिदानन्द ॥

---

१. समाज २. आनन्दकानने कश्चित् (ह्यस्मिन्) जंगमस्तुलसीतरुः। कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमर भूषिता !

९ अथ भैरव प्रसंग, मरहटा छंद

एक समै गोसाईं सहज सुभाई, करत जात कर माला।
तहँ शिव गण भैरव महा भयंकर, काशी को कोतवाला ॥
कियैं वेष भयानक, आइ अचानक, डरपायौ बहु भाँती।
प्रभु पद अनुरागी, समाधि न जागी, नेकु न बदली कांती ॥
तब वा दिसि देख्यौ, रूप अलेख्यौ, महाबीर बलवाना।
जाके जस आगे, रवि हिम लागे, अतुल तेज हनुमाना ॥
देखत हिय काँप्यौ, अति भय व्यापौ, कहत न एकौ आई।
तब निकट देखि तेहि, नैन सैन करि, आगे दियो चलाई ॥
तिन कह्यौ बिनै मिस शिव नगरी विच दूसर नगर बसायौ।
जहं एक क्षण शिव, अज्ञा अनादि थल, तहं निज हुकुम चलायौ ॥
मैं नगरी रक्षक, निज प्रभु पच्छक, चाहौं त्रास देखायौ।
रामाज्ञा मानो, साक्षी जानो, कहि हनुमंत बुझायो ॥

दोहा

हौं हूँ रक्षक जनन को, अज्ञा श्री रघुनाथ। तिनको दंड जो करै कोउ, हरौं तासु को माथ ॥
निज गति देखी मंद जब, चल्यौ तज्यौ उतपात। परौ श्रवन संवाद जुग, कह्यौ कौन तुम तात।
वृद्ध विप्र को रूप धरि, आगे भे हनुमान। पूछे उत्तर यों दियौ, कही प्रथम पहिचान ॥
साष्टांग दंडवत तब करि बहु बिनै उदार। भैरवको संवाद सुनि, बरन्यौ पवन कुमार ॥
आए थे तव त्रासको, मैं लीन्हों तेहि रोकि। गवन कियो तब भीत ह्वै, राम प्रताप बिलोकि ॥
सुनत सजल ह्वै पुलक तन, गदगद गिरा गंभीर। बिनै करत चरनन परे दसा बिसारि सरीर ॥
अहो कृपानिधि दीन हित, तिहु पुर प्रगट प्रताप। नीच दास इक जीव हित, अनुगामी प्रभु आप ॥
करि प्रबोध तब गवन किय, शंकर यह बल रास। श्री गोसाईं संवाद सब, कहि अति सुजस प्रकास ॥

मरहटा छंद

तब शिव सुखदाई, जनन सहाई, सब देवन के देवा।
बहु विधि समुझायो, प्रगट जनायो, हरि-भक्तन को भेवा ॥
तिनको सुख दीजे, रच्छा कीजे, इरखा कछु न करीजे।
सुनि अंबरीष दुरवासा की गति, महिमा मानि पतीजे ॥
सो मन क्रम बानी, छाड़ि सयानी, मम सेवक हरि दासा।
भैरव सुनि बानी, महिमा जानी, आयौ मन विस्वासा ॥

दोहा

यहि प्रताप सुख वास करि, नित नव तेज प्रकास। सब प्रकार भ्राजत रुचिर, सुरपुर सरिस विलास।

१० अथ तसकर संवाद प्रसंग—दोहा

देखि देखि संपति सुखद, कुटिल करत उनमानि। तसकर लाई घात तब, कठिन कर्म निज ठानि।
दै सीढी मन्दिर चढ़े, चाहौ भीतर जान। तहँ सरूप दुइ अतुल बल, दीख धरे धनु बान ॥

कवित्त (सवैया)

अति सुन्दर रूप अनूप महा, छबि कोटि मनोज लजावन हारे।
उपमा न कहूँ, सुखमा के सु मन्दिर, मन्दिरहू के बचावन हारे ॥

दिननायक हूँ निसिनायक हूँ मदनायक के मद नावनि हारे।
साँवर गौर किसोर बसो चित चोरनहू के चोरावन हारे॥

चौपाई

रच्छक जब तहँ जागत पाए। लै सोपान और दिसि लाए॥
पुनि चढ़ि के भीतर चलु जबहीं। पहुँचि तहाँ तिन रोक्यौ तबहीं॥
ह्वां ते तब चलि पुनि एक ठाईं। सोइ आचरन कीन्ह बरिआईं॥

प्रमिताक्षरा छंद

तिन्हके पुनि रच्छक रच्छपाल। निज दासन अनुगामी दयाल॥
यहि भाँति गई रजनी सिराइ। चहुँ दिसि मंदिर के करि उपाइ॥

दोहा

तसकर मन बस करि लियौ, यहि मिस कृपानिधान। निसि कर अंत तुरंतही, भए पुनि अन्तरध्यान॥

प्रमिताक्षरा छंद

जब दरस लह्यो तिन बार बार। मोहित ह्वै अपनपौ दियो बार॥
भए ज्यो विछिप्त, बिसरौ अपान। अति विकल लगे प्रभु छवि के बान॥
उनमत्त प्रेम फिरै सोध लेत। चित चोर कहा गए करि अचेत॥
भयौ कौतुक तिनकी दसा देखि। तिन कही आपनी गति बिसेखि॥
प्रभु दरसन ते सब गए सिराइ। छल छिद्र दुरित दुरमति दुराइ॥
जब सुनी गोसाईं सकल बात। बिरतंत जो बीत्यौ सकल रात॥
द्वै चारि दंड लहि रहि अचेत। उठी सीत गात बानी समेत॥
गदगद पुलकित कछु कहि न जात। चख जल प्रवाह बहि दिवस रात॥
हा विस्वंभर दीनन दयाल। निज दासन के रच्छक कृपाल॥
तव गति अलेख अभिमत अखंड। जेहि रोम रोम अगनित ब्रह्मंड॥
सो महिमा इक जानत भुसुंडि। अरु किंचित देख्यौ मारकंडि।
कछु यहौ बड़ी महिमा न होइ। जहँ बदन को मति रही रोइ॥
यह दीरघता अतिही उदार। महिमा समुद्र नहिं पार बार॥
बुधि की गइ सुधि किमि करि प्रलाप। कहँ यह चरित्र, कहँ वह प्रताप॥
अति खोज यहौ नहिं बड़ो बात। किंचित विषया हित सकल रात॥
ईसान ईस नाथानि नाथ। परिकर बाँधे कटि कसे भाथ॥
रखवारी करि तस्कर लोभाइ। यह कौतुक नाथ न उर समाइ॥
महिमा समुझौ लीला विलोकि। केहु भाँति नहीं मन सकौ रोकि॥
अब कछु न चहौं रावर उपाउ। यह दसा देहु मोहि दानि राउ॥
तन मन धन करि बलि वारि वारि। बाने दयाल पर देउ डारि॥
यह बानि उपर बलिहारि जाउं। अब मोकहँ नाहिंन और ठाउं॥
तलफत्त कहत पछिताइ हाइ। यहि विषया हित प्रभु कष्ट पाइ॥
सदकै वरि डारौ देह गेह। इमि कहत कहत ह्वैगे विदेह॥
द्वै चारि घरी महँ सुधहि पाइ। तब मंदिर सकल दियौ लुटाइ॥

सुबरनमय वस्तु अमित असंस । मनो भरतखंड को सार अंस ।।
दए जातरूप बरतन दुराइ । जल हेत ढूँक लोटा रखाइ ।
यह विषय न होनो दुख कि खानि । किमि कष्ट पावते सुखनिधान ।।
इमि करुना करत जो दीख जाइ । जिनकी गई वस्तु बड़ी चोराइ ।
अति व्याकुल देखे दीन लीन । दाया करि तिहँ उपदेस दीन्ह ।।

दोहा

दासन की पदवी दई, कियो कृतारथ रूप । प्रथम बेस जो विदित है, तिन ए चारि सरूप ।।
भए तरन तारन चहूँ, साध समान पुनीत । तिनहूँ ते मारग चले, अति सुन्दर सुखनीत ।।

छप्पै

यों निज दासन हेत जगत पालन लय करता । महिमा अगम अपार दास हित सो वपु धरता ।
जोगवन जन को मान अजाननहूँ प्रतिपालत । ज्यों बालकको मातु अगिनि अहि ते कर घालत ।।
पहिचान राम करुनायतन, सब प्रकास जन कहँ सुखद ।
तुम बिन सब संपति स्वर्गहू, नरक सरिस दासन दुखद ।।

सोरठा

इमि चितवै सुख दैन, महाराज गुन जपन सो । मनसा क्रम अरु बैन, हरि पद पंकज रति सदा ।

११. अथ गनिका संवाद प्रसंग

छप्पै

प्रात नितै अस्नान देव सरि भैरव कासी । जो कोई छिति नाग लोक सुरपुर के वासी ।।
एक दिन करि अस्नान ठाढ़े कटि लौं जल ताईं । तरपन सुमिरन जाप करौ निज सहज सुभाई ।।
तहँ गनिका एक भूषन जटित, बहु सिंगार बहु बसन धर ।
मुख धोवन बैठी जल निकट, जात हुती निज प्रात घर ।।

त्रोटक छंद

तेहि जबहिं गोसाइँ दिष्टि परे । लखि दसा सोच हिय माहिं धरे ।।
यह जीव नहीं जग काह रहै । इमि दीरघ कष्ट शरीर सहै ।।

छंद तोमर

यह माघ मास नहिं रवि प्रकास । जल सीत सु हिम मय यह बतास ।।
तन नगन, नहीं कछु बसन लेस । जल बड़ी बार सों करि प्रवेस ।।
रद बाजहिं थर थर कंपमान । यह कौन जीव का कौन ज्ञान ।।

मरहटा छंद

एक हम सुखवासी, मदन विलासी, मगन रहै रस भोगा ।
सुभ मन्दिर माहीं, पवन न जाहीं, रहै सदा यह जोगा ।।
भूषन मनि माले, साल दुसाले, पगहु न बाहेर काढ़े ।
षट रस को भोजन, भोग परोजन, नित नव सुख रस बाढ़े ।।

दोहा

प्रभु माया की प्रबलता, अंतरजामी जानि । करुना कै जल हाथ लै, बाहेर डारयो आनि ।।

छंद त्रोटक

सो वीर जबै तेहि अंग परचौ। मद मोह कोह अभिमन हरचौ ॥
जम लोकहु देखि परौ सगरो। तहँ न्याव पुरानन को बगरो ॥
जिन काम मोह बिच चित्त परे। पर पुरुष रहे पर दार करे ॥
तिन नारि नरन के रूप घने। सब अष्टधात के खोर बने ॥
धरि पावक दग्ध कै लाल करैं। करवावत है रति नारि नरैं ॥
ते घोर अगिनि ते जबहि डरे। जम ताड़न ऊपर दंड करे ॥

दोहा

तिनकी अति सांसति करहिं, विविधि कष्ट पर लेप। अगिनि दाहि सिर काटियौ, औरौ दुख अति जेय ॥

प्रमिताक्षरा छंद

तहँ बनो जातना को सरीर। छूटत नहिं तन भोगत सो पीर ॥
जम घोर भयंकर दुखद रूप। अरु कष्टन के बहु अंधकूप ॥
मनो निज कर्मन की दसा देखि। भइ कंपमान अतिही विसेखि ॥
यह भय दरस्यौ उर लह्यौ ज्ञान। पुनि कीन्ह कृपा करुनानिधान ॥
भइ चेत पाछिली सुद्धि आनि। हौं पातखमय यह देह मानि ॥
मैं रोम रोम अपराध-धाम। आसक्त काम रत जड़ कुनाम ॥
मम दसा प्रगट है कहौं काहि। अब राखि लेहु प्रभु पाहि पाहि ॥
सुनि स्वामी करुनाकर सुजान। तेहि तुरत कियौ साधन समान ॥
रहे तासु समाजी द्रव्य मीत। बहु द्रव्य दियो कीन्हो पुनीत ॥
सोउ ह्वै विरक्त विषया उदास। कियौ संत समाजन बसो बास ॥
अस करे पतित पावित्रताई। सठ ताहि भजै किन चित्त लाइ ॥
एक दिन कटाछ करिहै कृपाल। तब ह्वै जैहै तोहू निहाल ॥
ताते हो सरत हरन कृपास। भजु राम राम रामहि को दास ॥

दोहा

ऐसे पर-दुख-हरन है, कोमल करुना ऐन। लोक सुजस परलोक सुख, देत कर्म मन बैन ॥

१२ अथ पंडित संवाद प्रसंग

छंद चौपैया

एक दिन दिज पंडित, विद्या मंडित, निगम अगम के बेता ॥
तिन आइ जनायो, पद सिर नायौ, दारिद अति दुख देता ॥
भव लोक कटै नहिं, बैसि द्रव्य नहिं; ना कोई है मेता।
ताते सिर नायौ, प्रगट जनायौ, प्रभु कीजे अब एता ॥
जाते बसि कासी, वेद प्रकासी, देहु जीवका एता।
जिमि प्रभु उदार तिमि सेवकहूँ इमि कहत वेद बुध जेता ॥

पद्धड़ी छंद

तब कह्यौ गोसाइँ दया पात। दिज सुनहु कहौं एक सुद्ध बात।
संपति नर प्रद निरुपाधि नाहिं। कुछ काल मिले पुनि वृथा जाहिं ॥

बहु विघ्न उपद्रव ताहि नाहिं। परि विषया हरि भजनौ भुलाहिं॥
बिनवैं जो देसपति हाथ जोर। तुमसे पंडित अरु मन निहोर॥
सो छिनक विलासी अधिक व्याधि। आधीन काल के बहु उपाधि॥
यौं कहि आए पुनि गंग तीर। कर जोरि करी अस्तुति गंभीर॥
अब मातु सकल दानिन की दानि। कछु बिनती जन की करिय कानि॥
उधरन कृमि[1] कीटन मूढ़ चेत। नर नाग सुरासुर रटत जेत॥

श्रीयुत गोसाईं कृत विनय पत्रिकायां[2]

जै जै भगीरथ नंदिनी, मुनि चय चकोर चंदिनी,।
नर नाग विवुध वंदिनी, जय जह्नु बालिका॥
विष्णुपद सरोज जासि, ईस सीस पर विभासि।
त्रिपथगासि पुन्य पासि, पाप छालिका॥
विमल विपुल बहासि बारि, सीतल त्रै ताप हारि।
भँवर वर विभंगतर तरंग मालिका॥
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धौल धार।
भंजन भुवभार, भक्त कल्प थालिका॥
निज तट बासी विहंग, जल थल चर पसु पतंग।
कीट जटिल तापस सब सरिस पालिका॥
'तुलसी' तब तीर तीर, सुमिरत रघुबीर धीर।
बिचरत मति देहि मोह[3]-महिष कालिका॥

विष्णुपद

जयति जै सुरसरी जगदखिल पावनी। विष्णुपद कंज मकरंद इव अंबु वर॥
बहसि, दुख दहसि, अघ वृंद बिद्रावनी। विमल जल पात्र अज, जुक्त हरि चरन रज[4]॥
विरुज कर वारि, तिपुरारि सिर धामिनी। नह्नु कन्या धन्य पुन्य कृत सगर सुत॥
भूधर द्रोनि बिदरनि बहु नामिनी। जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज॥
मनुज मज्जहिं सुकृत पुंज जुत कामिनी। स्वर्ग सोपान विज्ञान सुज्ञान प्रदे॥
मोह मद मदन पाथोज हिम[5] जामिनी। हरित गंभीर वानीर दुहु तीर वर॥
मध्य धारा लसत विस्व अभिरामिनी। नील परजंक कृत सयन सर्पेस जनु[6]॥
सहस सीसावली[7] स्रोत सुर स्वामिनी। अमित महिमा अमित रूप भूपावली॥
मुकुट मनि वंदिते लोकत्रैगामिनी[8]। देहि रघुवीर पद प्रीति निर्भर मातु॥
'दास तुलसी' त्रास हरनि भव भामिनी*।

राग विलावल

हरत सकल पाप, त्रिविध ताप, सुमिरत सुरसरिता। विमल तर तरंग लसत रघुबरके चरिता॥

---

१. कृमि = क्रम, २. विनय पत्रिका पद १७, ३. मोह—मोहि (मूल प्रति), ४. चरनरज = चरनरज (मूल प्रति) ५. हिम = हिमि (मूल प्रति), वन (विनय पत्रिका)। ६. सयन सर्पेस जनु = सर्पे समनु सहस (मूल प्रति)। ७. सहस सीसावली = सीसावली (मूल प्रति)। ८. वंदिते त्रैलोक गामिनीवंदि = त्रैलोक गामिनी (मूल प्रति)। * वि० पत्रिका पद १८।

तो विन जगदंब गंग कलिमलका करिता । घोर भव अपार सिंधु 'तुलसी' कैसे तरिता† ॥
ईस सीस बसति त्रिपथ लससि नभ[1] पताल धरनि । मुनि सुर[2] नर नाग सिद्धि सुजन मंगल करनि ॥
देखत दुख दोष दुरित दाह दारिद दरनि । सगर सुवन साँसति समनि जलनिधि जल भरनि ॥
महिमा की अवधि करसि वहु विधि हर हरनि । 'तुलसी' करु बानी विमल विमल बारि बरनि‡ ॥

(नंददास कृत) विष्णुपद

जै जै जह्नुनंदिनि, त्रैताप दुख निकंदिनि ।
जै पद सरोज वंदनि, कलि कलुष दोष हारिका ॥
भगीरथ सोक सोख, पावन जस तिहू लोक ।
सगर-सुवन-कोक हेत किरन कारिका ॥
जमपुरको पंथ रोकि, पतितन कोउ सक न टोकि ।
सुर पुर बिच करिहि ओक, सुकृत सारिका ॥
जै सिर धामिनि पुरारि, वेद विदित जस पुकारि ।
वंदत सुर मुनि सुरारि विमल वारिका ॥
जै हरनि दोष दारिद, कीरति सुजस विस्तारिद ।
अघ ओघ तरु कुठारिद, जै जह्नु की कुमारिका ॥
दासन दै निकट वास, दीजै मति को प्रकास ।
वंदत जस 'नंददास' पीत धवल धारिका ॥

दोहा

भागीरथी श्री भगवती, जै भंजनि दुखहारि । भव सागर विस्तारनी, कलि-मल-विटप कुठारि ।

पद्धटिका छन्द

तब वारि परसि संसार जंत । ह्वै शिव सरूप सुरपुर वसंत ॥
नित आवगवन नहिं गुन समान । गय टूटि सभव छिलका विमान ॥
भा नरक सुन्य सुनि रव अवार । भय जयति बिहारनि पार वार ॥
यह तेज प्रताप अमित अखंड । रह्यौ व्यापि सकल ब्रह्मांड चंड ॥
गऊ विप्रन हित रच्छन कृपाल । अबहू जे निज दासन दयाल ॥
जग पतित उधारन कृत उदार । निरगंत विमुख नै तरन तार ॥
पद आश्रित द्विज विद्या बिसाल । तट निकट बसै तव दरस पाल ॥
ते हीन जीवका अति उदार । जाचक तोहि चरन दरिद्र टारि ॥
निज खेत सो भुइ दीजे निकासि । ओहि पार जो बिगहा सौ पचास ॥
निरवर्त होइ जेहि नर कि त्रास । निर्विघ्न सकल महिरुज अकास ॥

छन्द त्रोटक

इमि अस्तुति के जाचो जवही । दइ छाड़ि भूमि ततखन तबही ॥
यह सर्व चरित्र जो विचित्र लह्यौ । दसहू दिसि कौतुक पूरि रह्यौ ॥
तिन उतरि पार निज ठाउँ ठयौ । महि मागे ते यह त्रिगुन भयौ ॥

---

१. नभ=महि (मूल प्रति) । २. मुनि सुर = सुमिरत (मूल प्रति) †वही पद१९ । ‡वही पद २० ।

दोहा

अजहू लग वा पार ते, गंगा जू निज खेत । बड़ी जीवका द्विजन को, निरुपाधिक ह्वै देत ।।
समै पाइ जो जल चढ़ै, बढ़ी जाति महि छाप । तासु सींव नहिं संचरै, देखौ दास प्रताप ।।
और भूमि उपजै जबै, बहु बिगहनके व्याज । ताते चौगुन होत है, अजहू लग तहँ नाज ।।

१३ अथ दुतिय पंडित प्रसंग

छप्पै

अरु एक पंडित हुते बड़े जो भट विद्याधर । ते नित इरखा करहिँ देखि मानता मरहि नर ।।
बन्यो प्रकासित स्वच्छ बड़ेम नो चन्द्र कलाधर । महिमा अतिहि उदार, जो काशी मो सरबोपर ।।
ह्वै गए मलीन अति खीन चित, तुलसिदास जस उदै रवि ।
लोक मानता रहित ह्वै, गए मनो उडगन चन्द्र दबि ।।
अहनिसि इरखा करहिं, वैष्णवन की निंद्या रति । बिद्या वाद विवाद चहै निज जय जस कीरति ।।
बहुत करहि अपवाद एक नहिँ ऊपर पारै । भक्त पराजय चहै अन्त फिरि आपुइ हारै ।।
यह सुनहि गोसाइँ देखतहू, होहि दुखित अति सोच नित ।
गति दासन निंद्या सुरति करि, केवल पर कल्यान हित ।।

दोहा गोसाईं कृत

"पर सुख संपति देखिकै, मृथा जरहिं बिनु आगि । 'तुलसी' ताके भाग तें, गई भलाई भागि" ।।
एक दिन लै दस पाँच मिलि, बैठो गाड़ी साजि । दंड राति रहे जाहिं जब, दिसा भूमि के काज ।।
गयो गोसाइँ तब तहाँ, भए सजग ततकाल । पाछे आवत लख्यौ तहँ, भीम रूप जम काल ।।
सो रच्छक पच्छक बड़ो, सिर लाग्यो आकास । गहे गदा कर मो विकट, निकट आधि पद त्रास ।।
देखत ही तब छूटि गै, सब के संसा देह । गिरत परत मुरछित कुमति, ज्यों त्यों पहुँचे ग्रेह ।।
तदपि अचेत न छाड़ही, बैर भाव की रीति । विपुल काल यहि विधि गये, अरकस ते सु बितीति ।।
केहि प्रकार जब नहिं चलौ, वैरिन को अपकार । तब सब आइ गोसाइँ सों बिनति करी उदार ।।
हम माँगत तुमतें यहै, इहाँ रह्यौ जनि स्वामि । दीजे यह वरदान अब, जैये तजि यह ग्राम ।।
तवै गोसाइँ कवित एक, लिखि शिव मंडफ लाइ । करि दंडवत प्रसन्य ह्वै, चले मुदित सुख पाइ ।।

श्री गोसाईं कृत कवित्त

"सुरसरि सेस त्रिपुरारि हौं तिहारे ग्राम । राम ही को नाम लै लै उदर भरत हौं ।।
'तुलसी न देबे जोग, लेत काहू सों न कछू, । लिखि न भलाई भाल, सोचौ न करत हौं ।।
एतने पर जोर करहि जोरावर जुरि करि । ताको जोर देव दरबार गुदरत हौं ।।
पाइ के उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं । काल्हि कदा काशीनाथ कहे निबरत हौं" ।।

छप्पै

विगत मोह कियौ गवन, तुरंत विलंब न कीन्हों । चित्रकूट सुभ ठौर दरस हित विप्र न चीन्हो ।।
लह्यो दिजन मन काम सकल मिलिके तब आए । विस्वेस्वर मंडफहि दंडवति करन सिधाए ।।
भक्त बछल प्रभु दास बस, आवत देख्यौ दिजन कहँ ।
मंडफ के पट लगि गए, आकसमात सु तुरत तहँ ।।

दोहा

पुनि सकोप बानी भइ, तुम हरिजन अपमान। कीन्हा, देखहुगे अबहि, फल जिमि प्रलय समान ॥
जो कदाचि आनहु तुरत, तुलसीदासहि फेरि। बाँचहुगे, नहिं और है कछु उपाय तेहि केरि ॥
सुनत धाइ पायन परे, जेन केन परकार। ल्याइ विविध अस्तुति करि, मंदिर मँह बैठारि ॥

१४ अथ मृतक प्रसंग

त्रोटक छन्द

यहि भाँति कछुक दिन बीति गए। अपने अपने रस रंग रए ॥
मुखिया एक जुत्थ समाज रहै। भक्तन निंद्या दिढ़ भाव गहै ॥
भई छीन आयुर्दा देह तज्यौ। पतिनी सुभजन रति पतिहि भज्यौ ॥
तब नव सत को सिंगार करयौ। सब तजि पति चरनन ध्यान धरचौ ॥
निज लोक विलोकि विसोक कियौ। दुहु कुल पवित्र गति सुद्ध हियौ ॥
इमि द्वारे मंदिर के निकरी। लखि जात गोसाइँ पाइ परी ॥
करुनामय के मुख यौं निकसौ। अहिवात रहौ, निज गेह बसौ ॥
सुनि श्रवन असीस सकोच कियौ। प्रभु मोहि कस आसिरवाद दियौ ॥

पद्धड़ी छंद

निज स्वामी सँग हौं जरन जात। सहगवन होउ दिढ़ कहौं बात ॥
आचरन बिभूषित लखि कृपाल। लखि दुखित द्रवे पर-दुख-दयाल ॥
भक्तन निंद्या की गति विलोकि। दिज रहित अहित विधि गतिहि रोकि ॥
सब कटुँब बोलायो बचन कीन। हरिदासन हू की सपत लीन ॥

चतुष्पदी छंद

तब मृतक मँगायौ, निकट धरायौ, कह्यौ 'विप्र उठि राम कहौ'।
सो सुनि अँगिरायौ, सीस उठायौ, जनु सोवत निज धाम रहौ ॥
दिज दसा जो देखौ, अति भय लेखौ, उठो चेत ह्वै पाइँ परौ।
प्रभु कौ गुन, औगुनहूँ अपनो जो कियौ फिरि जन्म सबै सुमिरौ ॥

त्रोटक छंद

जो निंद्या रत सब बोलि लए। सब कुटुँब दास ततकाल भए।
ह्वै अति पुनीत मनुहारि करी। हौ विद्या साध जो बुद्धि हरी ॥

पद्धड़ी छन्द

तुम करुनामय करतार रूप। मैं मूढ़ परो तम अंध कूप ॥
अपकार जो मैं कीन्हीं अनेक। उपकार लह्यौ बदले विवेक ॥
भावी मिटाइ विधि गतिहि रोकि। नव जन्म दियौ कीन्हौ विसोक ॥
भइ सकल सुद्ध मति गति पुनीत। गइ सकल अवस्था विषम बीति ॥
बिन कारन ही करुना सरूप। भए साध रीति पावन अनूप ॥

महरटा छन्द

निजु मतिहि लजायो, सीस नवायौ, पहि पाहि प्रभु दास हरी।
दूषण हरि लीजे, दास करीजे, अघ मेरे निज चित न धरी ॥

मैं अधम अयाना, तुम्हें न जाना, त्राहि त्राहि सरनन आयौ ॥
अब मैं सुख मान्यौ, निज हित जान्यौ, सरन कल्प तरु हौं पायौ ॥

त्रोटक छन्द

परलोक नसात लख्यौ तिनको । दायानिधि विरद हुतो जिनको ॥
तेहि हित अपनी प्रभु धरनि धारी । विधि के गति की प्रतिकूल करी ॥

पद्धड़ी छन्द

दुरमति नेवारि सुभ गतिहि देत । कल्यान हेत जन जन्म लेत ॥
तिन ते जड़ भाव भक्ति बढ़ाउ । 'दासानिदास' तिनको कहाउ ॥

(१५ अथ बालक प्रसंग)

पद्धटिका छन्द

यह मृतक जियावन अति प्रताप । रहो सकल दिसा मनो पवन व्याप ॥

त्रोटक छन्द

तब देश देश ते लोग चले । सब जुत्थ जुत्थ अति भाग चले ॥
लहि दरसन होहि सनाथ सबै । अघ ओघ न जानहि जात कबै ॥

पद्धड़ी छंद

निसि दिन दरबार रहै उदार । अति भीर न सूझै वारपार ॥
एक छन न होतु कहुँ सावकास । तब कियो गोसाईं गुफा बास ॥
जब लोग जुरै बहु अति सनेह । एक बार निकासि तब दरस देहिं ॥
रहे बालक तीनि जो प्रेम पीन । जिनकी गति मानहु अंबु मीन ॥
एक कीन्हो मनिकरिनिक निवास । दूजो देवी-मंडप निवास ॥

त्रोटक छन्द

तीजो विश्वेश्वर नाथ रहे । दिन प्रति निघटन ह्वै दरस लहै ॥

पद्धड़ी छन्द

एक दिन आये सब दरस आस । अभ्यागत जती ग्रही उदास ॥
जोगी पंडित अरु राउ रंक । रोगी दुखिया अरु निहकलंक ॥
प्रेमी नेमी बिषई विरक्त । कामी बामी आसक्त सक्त ॥
बलहीन खीन अरु अंध गुंग । भट सुभट नवल अरु सबल पंग ॥
सब जुवा जठर बालक अजान । अरधंग बंग अज्ञान ज्ञान ॥
सब आए बुध विद्या प्रवीन । परि आए सो बालक न तीनि ॥
प्रभु पूछेउ बालक समाचार । नहिं आए सुनि कीन्हौं विचार ॥
अब सकल सभा को यौं सुनाइ । हौं आजु न ऐहौं कहौ जाइ ॥
जब कह्यो आइ तिन सोइ प्रकार । तब ह्वै निरास चले कहि अगार ॥

त्रोटक छन्द

अपमान मलिन सब यौं जु कहैं । हम सकल बालकन सम न अहैं ॥

पद्धड़ी छन्द

पुनि गए सब निज निज लागि काज । फिर भोर भए जुरि सब समाज ॥

दोहा

अन्तरगति सबकी लखी, नासनको अपमान। देखरावन पुनि प्रेमको, ठान्यौ यहि विधि ठानि ॥
सकल सभा सो पुनि कह्यो, अरु बालकन जनाउ। अजहू मो मिलनो नहीं, सब निज-निज गृह जाउ ॥

त्रोटक छन्द

सह बालकहूँ अज्ञा जो भई। तब लोगनहूँ निज बाट लई ॥

पद्धड़ी छन्द

जब बालकहूँ निज गए गेह। अति प्रेम मगन बिह्वल बिदेह ॥
जनु मीन दीन बिन जल सरीर। सो गए विकल ह्वै अति अधीर ॥

त्रोटक छन्द

फिरि भोर भए जब लोग जुरे। प्रभु आपु बालकन सोध करे ॥
एक जन पठाइ तिन सोध लई। गति देखि विदेह भई जो भई ॥

चौपैया छन्द

बहु भाँति जगायौ, चेत न आयौ, जाइ कह्यौ तिन तैसो।
सुनि सभा सराहै, नेति नेति सब, कह्यो गोसाईं जैसो ॥
बालक मृत जान्यौ, बहु दुख मान्यौ, और उपाय न देखो ॥
तब करुनाकर दिए चरनोदक हेत अपनपौ लेखो ॥
जब जाइ श्रवन मम नाम सुनायो, दरसन हेत बोलायो ॥
पद जल मुख डारयौ, नाम उचारयौ, सुनत प्रान घट आयो ॥
इमि प्रेम देखायौ, बोध करायो, संसय दूरि करायौ ॥
जबही सो आए निकसि गोसाईं दरसन दै समझायौ ॥

दोहा

इमि लोगन देखौ सकल, बाल प्रेम मरजाद। गयौ मोह अभिमान तिन, कियौ प्रथम जु विषाद ॥
वा दिन ते बालक सकल, करहि दरस नर-नारि। ते निज पावन प्रेमके नेह निबाहन हार ॥
मन बच क्रम जन छाड़ि छल, कियो प्रेम निरवाहि। सुमति सुगति संपति मुकुति, दई विधातै ताहि ।'

(१६ अथ दंडी प्रसंग)

चौपाई

काशीपुरी विप्र एक रहै। करि निज धर्म कर्म निरबहै ॥
बहुत काल गृह आश्रम धरयौ। दंड करन पुनि वृति संभरयौ ॥
त्याग्यौ सुत वित नारि सनेहा। तीरथ अटन गयौ तजि गेहा ॥
विपुल बरख एहि विधि चलि गयौ। पतिनी मन अस बिसमै भयौ ॥
अमित काल भए पति नहिं आयौ। आयु बीतिकी काहु लोभायौ ॥
ह्वै निरास निरबाहु न देख्यौ। इंद्रिनके बस आपुहि लेख्यौ ॥
तब विचार कीन्हौ मन माहीं। इमि विभिचार किए भल नाहीं ॥
ताते कहूँ ठाँव अब कीजे। अंत निबाहु होइ, दुख छीजे ॥

दोहा

एक बैरागी वेष तहँ, तासो प्रीति डिढ़ाइ। लोक लाजके कारने, तजि गृह चली दुराइ ॥

नारि पुरुषकी प्रीति जसि, करि परिहरि निज ग्रेह । गई कतहूँ यह मो ढकै, प्रथम आचरन नेह ॥

चौपाई

कछु दिनमें दंडी तहँ आयौ । ग्रह गति सुनि लखि बहु दुख पायौ ॥
बैरागी तिय जो लै गयो । करै सोक मनो हिय लै गयो ॥
जों नहिं दंड करौं तिन केरो । तौ केहि काम जोग जप मेरो ॥
तबै बली निज इष्ट पठायौ । पातसाह को पकरि मगायौ ॥

दोहा

बड़ो तेज परताप जेहि, डिल्लीपति सुलतान । पर बस देखौ आपु कह, मुख लखान बिलखान ॥
बोध कियो तब साहको, दीन्हौ यह उपदेश । कंठी मालाको न अब, रहै जगत महँ लेस ॥
बैरागिनको दंड दै, अरु पुनि वेष उतारि । कंठी माला काढ़ि निज, मगवायौ सरकारि ॥
भयौ बाइ दंडी विकल, दंडी रंडी सोग । पाखंडी हरि पद विमुख, खंडी धर्म नियोग ॥
पहुँचायो तिन साहको, वाहि भाँति निदान । ताही छिन सब देस यह, भयौ हुकुम सुलतान ॥
देस देस अज्ञा दई, सूबन सहरन माहि । कंठी माला छोड़ि कै, भरि भरि गाड़िन जाहि ॥
कोउ माला कर आपने, देहि न परसो माथ । कोऊ आपने सौ किए, काहू सिरके साथ ॥
काशीहू मो जबहि पुनि, लागी होन कुचाल । दंडी जाइ कह्यौ तबै, हाकिम सो ततकाल ॥
बैरागिनके जुत्थ महँ, तुलसीको अधिकार । पठवहु लोगन बेगि तहँ, ल्यावहिं माल उतारि ॥
तब तिन कह्यो कि है नहीं, हमको यतनो जोर । वंक दृष्टि करि लखि सकै, तिन दासनकी ओर ॥
तुमहू निज समरत्थ हौ, आपु चलौ यहि काज । तेहि पाछे हमहू चलहिं, निज ले सकल समाज ॥
दंडी कीन्हो आगमन, लाग लोग सब संग । नायब हौ सुलतानके, सहित सैन चतुरंग ॥
पहुँचौ मंदिरके निकट, जबही सैना आइ । आगे पाँव न परि सकै, कीन्हौ बहुत उपाइ ॥
कौतुक देखन कहँ चले, जहँ तहँ लोग बरुथ । अरु सेना सुलतानकी आइ जो भट जूथ ॥

तोमर छन्द

तिन लख्यौ रूप विसाल । मानहु भयंकर काल ॥
सिर लग्यौ जेहि आकास । करि सकै जगत विनास ।
भूधर धरे कर वान । जेहि रोकियौ सब आन ॥
छाड़ै कदाचित बाम । ह्वै जाइ सब खर काम ॥
जो तन कढ़ी लै हस्त । ह्वै जाइ कासी प्रस्त ॥
तब त्रास सिंधु समाइ । सब चले विकल पराइ ॥
निज देह कोउ न सँभार । करै तात भ्रात पुकार ॥
दंडी विकल बिललाइ । गिरि परो निज गृह जाइ ॥
भए कंठगत तेहि प्रान । अब पाहि कृपानिधान ॥
मोहि छिमा कीजे नाथ । अब त्राहि प्रभु रघुनाथ ॥
रखि लीजिए रघुराइ । बाधौ न सनमुख खाइ ॥
यौं विनै करत बनाइ । रोदत बदत बिलखाइ ॥
दाया - समुद्र कृपाल । करुनानिधान दयाल ॥

हरिगीतिका छन्द

करुना-निधान दयाल दीनन पाल अब करियै छमै।
अब त्राहि त्राहि कृपाल पाहि नमामि पाहि नमामि मै ॥
भइ बानि जब लगि माल भरि भरि फिरि न तहँ पहुँचाइहैं।
छल छिद्र परिहरि दास तुलसी सरन नाहिन जाइहै ॥
अघ प्रबल दास अपमानके जब लगि न क्षमा कराइहै।
तब लगि न काहू भाँति ते निज प्रान रक्षा पाइहै ॥
सुनि तुरत फिरि साहै मगायौ हेरु कृत अज्ञा दई।
सो चरन सरन पुकारि छल बल त्यागिके दिक्षा लई ॥
यह दसा प्रगट प्रताप देखो तेज जाकर भानको।
ऐसो न पच्छ सोहाइ जाको ताहि सम अज्ञानको ॥

दोहा

पुनि माला कंठी सकल, पहुँची निज निज ठौर। दास सुजस परताप अति, छाइ रह्यो चहुँ ओर।
'दास' चरित अद्भुत अगम, को कवि बरनै पार। ताको सुमिरन रटन यह, करि निज दास अधार ॥

(१७) सुपच प्रसंग

चौपाई

सुपच एक श्री अवध निवासी। समै प्रभाव संपदा नासी ॥
निधनी रिनी भयौ जब सोई। त्यागि देस, परदेस चलोई ॥
भ्रमत भ्रमत जो कासी गयौ। कछु दिन रहि तहं कर्महि लयौ ॥
एक दिन झारन झार बनाई। डारन हित एक मग यह जाई ॥
करै गंग अस्नान सुभाई। वा दिसि ते आए जु गोसाईं ॥
तेइ तौ नहिं प्रभाव कछु जान्यौ। अबही आयौ हौ जु अयानौ ॥

दोहा

मेरो घर है अवध मो, आयौ अबहि अजान। अनजाने हो मैं कियौ, कछु सकोच सनमान ॥
अवध बसेरी को जबैं, शब्द परो अस कान। तन पुलकित निरभर सजल, बिसरो तुरित अपान ॥

झूलना (कुण्डलिया)

गदगद बानी सिथिल तन, व्याकुल प्रेम अधीर। पूछत आव न बचन तेहि, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥
पुनि पुनि पुलक सरीर, धीर निज धीरज त्याग्यौ। उतकंठित चख नीर नाथ पद मन अनुराग्यौ ॥
प्रेमहि रह्यो समाइ, बिसरि जनि भो आपन पद। सुपचहि भेटि समेटि सजल ह्वै पुनि पुनि गदगद ॥

त्रोटक

तेहि मिलि तब कंठ लगाइ भले। पुनि हाथ गहे लिए संग चले ॥
अति स्वागत पूछि प्रसंग लहे। सुनि दारिद ताके दुःख दहे ॥

पद्धड़ी

तेहि राखि त्रिविधि पहुनाइ कीन्ह। जेहि होइ उरिन अस द्रव्य दीन्ह ॥

दोहा

यहि विधि सो सनमान कै, बिदा करत सकुचात । जाहु लेहु फल जन्म को, मुक्ति पुरी बसि तात ।।
विमुखन को दरसन दियौ, कहत प्रेम भरि गात । पहुँचा सो पुनि आइ गृह, बार बार पछितात ।।

विष्णुपद

ऐसे मैं प्रेम की बलि जाउँ । भए विकल विदेह सुनतहि गाँवही को नाउँ ।।
लाज धर्म उपासना नित कर्महूँ दियौ बाउ । ह्वै सिथिल लोचन सजल अति प्रेम तन पुलकाउ ।।
करि पुनीन अस्नान ठाकुर पूजिबे के भाउ । त्यागि सोउ अनुराग पूजे सुपचही के भाउ ।।

दोहा

अवध नगर को चोहरा, आन गाउँ को भूप । विदित सकल संसार महँ, यह उपखान अनूप ।।
यह प्रभाव श्री अवध को, विदित तिनहि के भाउ । जानु गोसाइँ सारिखे, करि निज बान लखाउ ।।

श्री उत्तरकाण्डे

"अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं राम धनु पानी" ।।

१८ अथ तिरहुति संवाद प्रसंग

चौपाई

(क) जनक नगर की महिमा जैसी । चानहिं 'दास' उपासक तैसी ।।
जानकी जन्मपुरी सुखरासी । श्री निवास अस निगम प्रकासी ।
पावन जनक सुकृत मय धरनी । महिमा तासु जाइ नहिं बरनी ।।
सब प्रकार संपति सुखकारी । जहाँ रमैं श्री जनक दुलारी ।
आदिशक्ति पालन लय करनी । निज इच्छा लीला वपु धरनी ।।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड निकाया । भृकुटि विलास रचै श्रुति गाया ।।
राम प्रताप विदित नहिं काही । सो सब साथ हाथ है जाही ।।
अमित प्रभाव प्रताप अपारा । नेति नेति जेहि निगम उचारा ।।
अज सच्चिदानंद की रानी । महिमा तासु कि जाइ बखानी ।।

हरिगीत छन्द

किमि जाइ महिमा तासु कहि जेहि नेति भाषत निगम हो ।
बल प्रबल अतुलित जासु पद विद्या अविद्या जु गम हो ।।
जब लग न द्रवै दयाल जनक कुमारि भवनिधि अगम हो ।
जेहि नेक कोर कटाछ पतितन सुगति दुर्लभ सुगम हो ।।

दोहावलीयां

'तुलसी' जनककुमारि बिन, जो सुमिरै रघुवीर । सरद रैनि बिनु चन्द्रमा, श्रवे न अमृत नीर" ।।
लालत पालत जानकी, चरन कमल श्रुति भाखि । तिहु पुर पटरानी जनमभूमि दरस अभिलाखि ।।

छप्पै

(ख) जनकनगर कहँ गवन कीन पहुँचे एक ठाइँ ।
नाम विसालापुरी बसै नृप सहज सुभाई ।।
तिन्ह आगे ह्वै लीन्ह, कीन्ह सनमान विविध विधि ।
पुनि पुनि भाग सराहि करी सेवा मंगल निधि ।।

प्रात पयानो कीन्ह जब प्रेम अधीर भा नृपति जिय।
अतिहि दुखित सोचत विकल, बहु बिषाद निज चित्त कीय ।।

दोहा

राखन हेत उपाय बहु किय जब कछु न बसानि । भयौ विकल अति प्रेम लखि, परम लाभ की हानि ।।

छप्पै

ग्वाल एक तहँ रह्यौ, कह्यौ जो आज्ञा पावौं । मैं रोवौं पथ जाइ गोसाईं को बिलमावौं ।।
मै अज्ञा, तिन कह्यो, जाय किमि पैहौ स्वामी । जनकराज को द्वारपाल मैं अन्तरजामी ।।
तब कह्यौ जो अज्ञा करहु तुम, सो सिर धरि हम जाहि तहँ ।
मम संग चलौ अज्ञा यही, कहौ जथारथ जवन जहँ ।।
आजु इहाँ करौ बास, संग मम चलौ सकारे । लै जैहौं निज संग, भली विधि राज दुवारे ।।
फिरि कीन्हौ तहँ बास, मानि अनुसासन बाको । द्वारपाल को भाव देखि, पूजौ बहु ताकौ ।।
तब नृपति पाइ अभिमत विविध, अति ही सुख आसिस लह्यौ ।
पुनि बेतपानि सोइ संग लै, जनकनगर को पथ गह्यौ ।।
(ग) पुनि आगे कहँ चले, जाइ पहुँचे एक ठाइँ । मैथिल ब्राह्मण को समाज, एक लख्यौ तहाँई ।।
तिनसौं पूछौ पंथ, अवधवासी पहिचाने । दै गारी परिहास कियौ, तिन नातो माने ।।
तब कह्यौ गोसाईं तुम हमहिं, गारी बिन समुझे कही ।
श्रीजानकि जी के दास हम, 'दास' बाल अन्तर नहीं ।।
सुनि आनँद अति लह्यो, कह्यो हमहू प्रतिपाले । कोशलगृह के आहिं, कछुक चरचा निज चाले ।।
यहलापुर ते आदि ग्राम द्वादस जो गनाए । किए राम संकल्प हमहिं जब न्यौते आए ।।
लिखि ताँवे पट ऊपर दियौ, साखी श्री हनुमंत करि । हम प्रोहित तुम वंस के, प्रतिपाले रघुवंस घर ।।
कियो अधिक सनमान गोसाईं को गृह ल्याए । कहि अनेक इतिहास पत्र के दरस कराए ।।
ह्वै प्रसन्न बहु भाँति परस्पर अति सुख पाई । तबै कठिन कलि काल धर्म की कथा चलाई ।।
पटनेको सूबा जमन आइ रहे तिन ग्राम सब । परम कष्ट पायो दिजन, होइ जीवका हीन तब ।।
बागमती, बागेश्वरी, कमलेश्वरी, दुगंग । तिरहुति मंडित अजहुँ रहि, सहचरि जानकि संग ।।
बिन पूजे तिनको तहाँ, करे जो कूप तड़ाग । बहु जोजन पै पहुँच तेहि हरै बिलंब न लाग ।।
छिन पूजे एक ग्रामपति, सुभग तड़ाग बनाइ । बीस कोस एक रात्रि बिच पहुँची प्रगट सुभाइ ।।
जमन एक अभिमान तिनि कर्यो सरित महँ जाइ । महिमा सुनि निंद्या करी, कहे बचन अनखाइ ।।
निकसि चलो जल ते जबै, उमड़ी एक तरंग । सहित तुरंग बहो, लख्यौ काहू रूप न रंग ।।

छप्पै

बिपिन बसे बहु ग्राम व्याघ्र-कर भै तहँ होई । ग्राम बधुन करि नेम प्रात अस्नान सदोई ।।
एक दिन पीछे पर्यो व्याघ्र प्राननको हरता । विकल धाइ अधीर गिरी सरनागत सरिता ।।
तब धारा ते बानी भई, भयदायक हुँकार लिय । सुनि व्याघ्र भीत ह्वै रहि गयो, मनो पग-बंधन तासु किय ।।

दोहा

पुनि या विधि बानी भई, बनितन यही सिखाइ । तुमहि न व्यापी व्याघ्र भै, सदा रहौ सुख पाइ ।।
अजहूँ लग वा देश महँ, व्याघ्र भीति अधिकाइ । तिनकी सींव चरै नहीं, मानि आन उर पाइ ।।

ग्राम जे उजरे व्याघ्र भय, जो कोउ चहै बसाई। तिन घर की एक वधू सो, विनती कै लै जाइ॥
सो थापै कमलेश्वरी किंचित जलहि मगाइ। पुनि ढिग व्याघ्र न आवई, देखत ही भय पाइ॥
कह्यो कछुक कमलेश्वरी, महिमा प्रगट प्रताप। ताही विधि बागेश्वरी, जानि हरन तिहु पाप॥
जे द्विज द्वादस ग्रामके, प्रथम कथा भई जासु। बटवारे हित परसपर हो तब करष विनासु॥
सब मिलि विकल विषाद किय, बागमतीके पास। देवि मिटावौ दुख दिजन, सब मिलि कीन्ह उपास॥
तब विप्रन बानी भई, तुम निज निज गृह जाहु। प्रात लखोगे आपनो बटवारो निरबाहु॥
सुनि अज्ञा दिज गृह गए, भई तीनि तब धार। जिमि बटवारो चाहिए, निकसी ग्रामनि फार॥
तीनि थोक तिन दिजनके, करि सिवान अरु भाग। असि प्रतच्छ राजत कला, आजु जुगन जुग जाग॥
पूजो जिनको जानकी, जो त्रिभुवनकी रानि। विप्र तहाँ इस्थित भए, करिकै वृत्ति बटानि॥

छप्पै

करै कल्पना कहै राम संकल्प जो कीन्हो। हरो जमन, तेहि हेत आइ चरनन सिर दीन्हो॥
रामायनको पाठ परायनके विधि ठानो। षट वासर बिन अन्न वारि बीतत तब जानो॥
तब पवन तनय धरि विप्र तन, कंद मूल जल हाथ लिय। आय दियो बहु बिनै करि, तदपि न अंगीकार किय
जब लग लहै न ग्राम करैं नाहिन जल पाना। नातरु जाइ सरीर प्रबोध्यो बहु हनुमाना।
भयो तिहारो काज जानि जलपान करौ वर। कौनिहु विधि नहिं मान, कह्यो तुम कौन जाहु घर॥
तब कह्यौ कि राम प्रभाव हौ, साक्षी श्री हनुमंत की। यह सबै लुप्त अब होत है, यहै बात एक जंत की।
कह्यौ कि यह कलि काल देव कहुँ प्रगट न आवै। काज लहै फल खाहि बुद्धि नहिं पेड़ कटावै॥
जो प्रतीति तुम चित्त तुमहि नित प्रगट पवन सुत। कह्यौ कि तब जानहीं लखैं जब सोइ सरूप चित्त॥
पुनि कह्यौ कि यह कलिकाल मह, प्रगटन हित जनि हठ करौ।
क्यौं हनुमान हनुमान तब महाबीर निज तन धरौ॥
तब दिज चरनन परचौ, विविधि विनती अनुसारी। हम भिक्षुक तोहि नाथ, नाथ सुधि लेहु हमारी॥
कौन कीट जड़ जंतु, जासु अपकार करीजे। कह्यौ दिजन हम भए सनाथ, अब कछु न चहीजे॥
तब रोम युगुल लंगूरके, दै उनको अति छोह किय। एक महा तेज जग भसमकर, दूजो सांति जो कृपा दिय॥
ह्वै सनाथ बल पाइ सकल सूबा पै आए। प्रथम बिनै बहु करी नही समुझौ समुझाए॥
विकट तेज विकराल रोम सो तबही छाड़चौ। चातुर दिसि उठि आगि ज्वाल मनो लंक डाढ़चौ॥
सब घोरसारन हथिसारहू, महलन प्रगटी अगनि अति। ह्वै विकल विप्र चरनन गिरो, त्राहि-त्राहि मैं मंद मति॥

सोरठा

कृपा रूप तब रोम, छाड़त ही भयो सांति सो। हुतो व्रज भयौ मोम, बहु प्रकार बिनती करी॥

छप्पै

आगेहूँको सपत सहित पट्टा लिखी दीन्हो। जान्यो प्रगट प्रताप महा महिमा जिय चीन्हों॥
अजहूँ लग तिन द्विजन डरत पटनेके सूबा। जब ते लख्यौ प्रताप चरित यह देखि अजूबा॥
यह प्रसंग लहि गवन किय, आगेको अति मुदित मन।
ए तिनहि सराहत प्रात ते, कहत गोसाइँ धन्य घन॥

दोहा

(घ) पहुँचे तिरहुति विविधि सुख, पायौ अभिमत रूप। सकल सुकृत अस्थानके, दरसन लह्यौ अनूप॥

पद्धड़ी छन्द

तब जनक नगर बिच करि निवास । जग जननि मातु लीला विलास ।
औतारु व्याहु उत्सव अनेक । करि वेद विहित विधि सह विवेक ।।
यहि मिस बितीत करि अमित काल । बहु भाँति कह्यो उत्सव विसाल ।।
पद वंदि रमा मंगल उदार । भव सागर तारन करनधार ।।
सुख सुकृत सहित आनंद लेत । पुनि आए शिवपुर दरस देत ।।

१९. अथ बनखंडी प्रेत उद्धारन प्रसंग

दोहा

या मिसि बीते काल बहु, हरि कीरति जसु गाइ । कौतुक अद्भूत एक तब, नभ तल प्रगट्यो आइ ।।

चौपाई

व्योम मध्य कौतुक अस पेख्यो । बिन अस्थंभ पुरुष एक देख्यो ।।
भयो कोलाहल नगर मझारी । देखैं कौतुक सब नर नारी ।।
दौरि दौरि जहँ तहँ ते धाई । अद्भुत चरित जो देखै आई ।।
चहु आश्रमके लोग लुगाई । देखै कहै वचन बहु भाई ।।
एक कहै अति संक जनाई । देव चरित कछु जानि न जाई ।।
कोउ कहै मनुष अकास जो उदयो । को जानै विधनाका ठयो ।।
सब मिलि गए गोसाईं पासा । नाथ सो कौतुक लखिय अकासा ।।

छन्द नाराच

कहूँ ते सो उड़ाइ कै मनुष्य एक आयऊ । अकास अंतरीछ मध्य निरालंब देखायऊ ।।
सो देखिबे को ग्राम के अकास दिष्टि लायऊ । अदेव है कि देव है विमान कै लखायऊ ।।

दोहा

नाथ देखिबे जोग है, चरन धारिए आपु । जानि परैगो सबहिको, तासु प्रताप कलापु ।।
मृदु मुसकाइ कह्यो तबै, जानत तासु प्रभाइ । गवन किए मम तुरतही, कौतुक सकल नसाइ ।।
कह्यो गोसाईं विविधि विधि, ते सब लागि लगाइ । चले अग्र करि सकल मिलि, जब पहुँचे तहँ जाइ ।।
प्रेतारूढ़ लख्यो तबै, महापुरुष अभिराम । भयौ दुहूँ दिसि परसपर, दूरिहि ते परनाम ।।
दरस गोसाईं के लह्यो, प्रेत जोनि निजु त्यागि । सुर रूपी भुज चारि धरि, दिष्टि परो बड़ भागि ।।

चौपाई

कनक मुकुट श्रुति कुण्डल सोहै । धरि पीतांबर मुनि मन मोहै ।।

पद्धड़ी छन्द

नौ मेघ गात भूषण अनूप । लाजै अनेक लखि छवि सरूप ।।
सब देखत ही चढ़िकै विमान । सुर लोक चलो अमरन समान ।।

त्रोटक

वनखंडी चितवत भूमि भए । मिलि संग गोसाईं गेह गए ।।
बहु विधि आदर सनमान किए । बर बिनै परसपर पूरि हिए ।।

दोहा

पूछो प्रेत प्रसंग यह, लोगन मन चित लाइ । बनखंडी लागे कहन, विविधि भाँति सुख पाइ ॥

चौपाई

तपोभूमि मम सहज सुपासा । नीमखार महँ सुर मुनि बासा ॥
तहँ अस्थल मम विमल विसाला । बसहिं विपुल मुनि साधु कृपाला ॥
हरि चरचा रहै नित तेहि आश्रम । जासु श्रवन किय जाहि सकल भ्रम ॥
अरु गुन गावहिं साधन ही के । नित नव चरित गोसाइँ जी के ॥
वृच्छ तासु ढिग बहु कालीना । तापर एक प्रेत आसीना ॥
सुनि चरचा नित सकल सभा की । बढ़ी गोसाइँ पद रुचि ताकी ॥
सोचै सदा कवन विधि जाऊँ । किमि मैं दरस परस रस पाऊँ ॥
कहँ मैं अधम असाध अभागी । कहँ सो दरस पुन्य अनुरागी ॥
कासों कहौं देइ पनहाई । जो मोकहँ लैं जाइ लेवाई ॥

दोहा

ऐसो पतित पिसाच हौं, सदा नरक जेहि ठाउँ । पावन हरिदासन जनन, निकट जात जरि जाउँ ॥

चौपाई

जो कदाचि पावौं अवलम्बा । पावन होउँ न लाग विलंबा ॥
सन्मुख होइ जाउँ मैं जबहीं । दरस मात्र अघ नासहिं तबहीं ॥
नरक जोनि ते होउँ कृतारथ । हरि बिन को पुरवै मम स्वारथ ॥
यहि मिसि अहनिसि करै विसूरन । करै गोसाइँ आसा पूरन ॥
एक दिवस मम चित अस आई । परिकरमा हौं करौं सोहाई ॥
तिहुँ पुर के तीरथ जो आए । अति श्रम कै सुर मुनि सब लाए ॥
तीरथ तीनि कोटि जो साढ़े । देवन तिहूँ लोक ते काढ़े ॥
सो नैमिख मंडल महँ अहहीं । बिन तेहि जाने किमि नर लहहीं ॥
देव सबनके अस्थल थापो । भिन्न भिन्न तीरथ सब मापो ॥
द्रव्याधीन मुक्ति पै सोई । बिना द्रव्य यह काज न होई ॥
कहाँ द्रव्य पैए असि भारी । यहि विधि सोच कियो बहु बारी ॥

सोरठा

द्रव्य खोज सुनि प्रेत, तन धरिकै प्रगटत भयो । अमित द्रव्यको हेत, कह्यो जो कारज मम करहु ॥

चौपाई

कह्यो कि एक धन कोस पुराना । अतिहि विसाल न कोऊ जाना ॥
है याही बन महँ मैं कहऊँ । जोपै निज स्वारथ कछु लहऊँ ॥
हौं पिसाच अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरन कीन नहिँ काऊ ॥
विषै भोग रत खल अति कामी । कपटी कुटिल कुमारग गामी ॥
लोभ छोभ मै संतत क्रोधी । रत प्रपंच श्रुति संत विरोधी ॥
हिंसक मिथ्यावाद कुतरकी । दूषक निंदक निगुरा नरकी ॥

धन मद मत्त दंभि अभिमानी। अस्त प्रलापी गर्व गुमानी ॥
पर दारा पर धन अपवादी। द्रोह मोह कोही अनवादि ॥
दया धर्म नहिं राम सनेहो। ताको फल पायौं यहि देही ॥
निसि दिन रहौं नर्कके गेहो। भ्रष्ट अपावनको नित नेही ॥
मल मूत्रहि कर भोजन करऊँ। ना तरु क्षुधा प्यास ज्वर जरऊँ ॥
इन्द्री विकल विषाद बसेरा। हरि चरचा यह जात न हेरा ॥
जरौं ताप त्रै भूखन मरऊँ। दीन विहीन दिनहि दिन गरऊँ ॥
जहँ तहँ फिरौ भ्रष्ट थल रहऊँ। विमुख राम कासों दुख कहऊँ ॥
वस्तु अनेक बहुत कछु देखौं। माल मालियत जहँ तहँ पेखौं ॥
गाड़ो धरो विविध विधि जानौं। देखि देखि वाको दुख मानौं ॥
तासु दाह तजि और न हाथा। अस मैं औगुन सिंधु अनाथा ॥
सुनि मम चित तब दया डोलायौ। काह चहिय तोहि, कहु निज भायौ ॥
मोहिं गोसाईं सनमुख कीजै। पुन्य होइ जग महँ जस लीजै ॥
पुनि निज कारज करिय गोसाईं। धर्म पुन्य मरजाद सुभाई ॥
हौं ही ह्वै वाहन प्रभु केरो। पहुँचैहौं दै सुख बहुतेरो।

दोहा

धन को कोष बताइ मोहिं, पुनि निज पीठ चढ़ाइ। तीरथ सकल कराइ नभ, उड़ो सो काशी आइ ॥
दरस गोसाईं को लह्यो, दिव्य देह को पाइ। देव लोक को सो गयौ, देखत सबै सुभाइ ॥
इमि वृतांत कहि, कछुक रहि, अमित भाँति सुख पाइ। सहित गोसाईं आइ सो, लही द्रव्य अधिकाइ ॥
तीरथ अस्थापे सकल, परिकरमा बँधवाइ। भव निधि तरिबे को मनो, सुन्दर सेतु बनाइ ॥
प्रेत प्रसंग सहेत अति, हरन काल कलुषाइ। अधम जोनि जो श्रवन कृत, हरि सरूप कहँ पाइ ॥
खल सुधरे हरि पद लहे, मृतक जिये जिय जान। अजहुँ न हरिदासन भजहि, मन तजि कपट सयान ॥

चित्रकूट खंड

२०. अथ चित्रकूटको गमन प्रसंग

दोहा

(क) विपुल काल काशी रहे, हरि चरनन की आस। चात्रक घनवत नेम दिढ़, मन वच क्रम विश्वास ॥
पवन तनै के द्वार ह्वै, लहि तब अज्ञा लाहु। दरस सरस सुख पाइहौ, चित्रकूट कहँ जाहु ॥

छप्पै

अतिहीं मगन सप्रेम चले तब चित्रकूट कहँ। चलिबे ही के समै विप्र ह्वै शिव प्रकटे तहँ ॥
धरि दंडी को वेष कह्यो तुम जनि कहुँ जाहू। जेहि कारन तहँ जाहु, इहैं बैठे सोइ लाहू ॥
तब कह्यो कि मोहि अज्ञा भई, लख्यौ ध्यान धरि उमापति।
पुनि बिहँसि दरस दीन्हौं सुखद, प्रगट जनाई आपु गति ॥

सोरठा

चंद लिलाट प्रकास, उदित भयो जान्यो तबै। परयो चरन सुख रास, बहु विधान बिनती करी ॥
हम मन वच क्रम दास, दीजै निज पद रति सदा। यही द्वार ह्वै आस, परमारथ स्वारथहु की ॥
ध्यान किए जब जान, अज्ञा श्री रघुनाथ की। विदा कियो सनमानि, कह्यो कि आयो सीघ्र ही ॥

दोहा

(ख) तब ही राजा विंध को, मुनि करि आगे आइ। अधिक प्रीति अरु प्रेम ते, रजधानिहि लै जाइ ॥
बहुत दिनन सेवा करी, जानि सुभग निज भाग। पुनि तहुँ ते आगे चले, दै दासन अनुराग ॥

छप्पै

ताहि समै नृप दंड हेत काराग्रह सेवा। अति दारुन दरबार पातसाही के नेवा ॥
तो कारन नृप सचिव और करवा एक आए। तेहि भाँति अति प्रेम ते लै सनमान सिधाए ॥
लै बास दीन जब जाइकै, सब मिलि तब करुना करत।
होतो जो आजु नृप सदन निज, केहि केहि विधि हरषन भरत ॥
पर दुख दुखी सुजान सदा दीनन पर दाया। कोमल चित पर हेत निरत मन बच अरु काया ॥
लिखि कागद पर मंत्र एक हनुमंत बलीको। सीतापति पद कंज सरस मकरंद अलीको ॥
सो पर्‌यो दिष्टि नृपकी जबै, भयो निकट अति त्रास हिय।
पुनि लिय बोलाइ दरबार कहँ, नृपति तहाँ तिन विदा किय ॥

त्रोटक

हरषाइ आइ नृप पांइ पर्‌यो। अति पुलक प्रेम मन मोद भर्‌यो ॥
उत्सव विसाल बहु भाँति कियो। आनंद मगन भरिपूरि हियो ॥

पद्धड़ी

दिन प्रति बहु विधि पहुनाइ कीन्ह। निज जन्म सुफल करि लाहु लीन ॥
अरचा चरचा करि ज्ञान पाइ। सब भाँति लह्यो अभिमत अघाइ ॥

छप्पै

सत पथ नृपति प्रवीन प्रष्ण एक दिन कीन्हो इमि। कहिय नाथ सो तत्त्व परै हरिजन चीन्हो किमि ॥
करै असंभव वस्तु प्रगट नट वरद प्रवीना। सुमिरत वेद पुरान अबहु बिद्या आधीना ॥
संछेप गोसाईं बोध किय, भगवत जन के लक्ष यह।
रति होइ कमल पद अति अमल, जेहि प्रसंग ते लखत तहँ ॥

श्रीमत गोसाइँ कृत कविता (सवैया)

"पढ़ि पंडित वेद पुराननको, अपनो अपनो मत ठानत हैं।
बुधिके बल सों छल छिद्र करें, कहु अच्छर भेद बखानत हैं ॥
चितकी वृति डोलत घातनमें, इन बातनमें हरि मानत हैं।
'तुलसी' मुखकी बतिया न सुनै, जियकी जगजीवन जानत हैं" ॥

सोरठा

यहि बिधि बोधहि पाइ, नृपति सीस नायो चरन। अभिमत लह्यो अघाइ, लग्यो विविध सेवा करन ॥

छप्पै

लखि तप छीन सरीर, विविधि सेवा चित लायो । प्रीति रीतिके भाइ, पुष्ट करि देखन चायो ॥
षठ रस भोजन एक छनहि छिन भोग लगावै । मेवा अमित मँगाइ विविधि सेवा कर पावै ॥
इमि कछुक दिन पहुनाइ करि, गात निहारौ छामतर[1] ।
तब विस्मित ह्वै रहि गयौ, लखि कह्यौ गोसाइँ वचन वर ॥

दोहा

कहा ससंकित ह्वै रहे, सत्य कहो वर भूप । लखहि कह्यौ अभिलाष हम, प्रभुको पुष्ट सरूप ॥
ताहूको कृश तन लख्यौ, यह विस्मै मन नाहिं । हेतु कृपा करि कहिय सो, जाते संसै जाहि ॥
वृद्ध देहकी जानियै, इंद्रिन ही के द्वार । हृषीकेश तहँ क्यों करै निज प्रभाव विस्तार ॥

अरिल्ल

प्रवल इंद्रि ह्वै पीन सरीर बढ़ावही । कोह मोह मारादिसे मृगन बसावही ॥
ते अग जग मृग जुत्थ विषैको भाजही । हृषीकेश रघुनाथ सिंह जहँ गाजही ॥

दोहा

सुनि राजा सुख पाइकै, परो पलोटत पाइ । आदि अंत तन गति लखी, लखि विराग अधिकाइ ॥

(२१ अथ 'नारी पलटि सो नर भयो' प्रसंग)

विंध तराई मो रहे, अरु दुइ नृपति प्रवीन । तिनहि सुमैत्री परस्पर संबंधहि प्रन कीन ॥
प्रगट होइ जो सुत सुता, हम तुम गृह सुखदाइ । करहिं तासु सनबंध इमि, कीन्ही मंत्र दिढ़ाइ ॥
प्रभु इच्छा ते प्रगट भइ, दुहु कुल कन्या वर्ग । एक नृपकी रानी समुझि, निज आदर संसर्ग ॥
पुत्र भाव सो प्रगट किय, कन्या रूप दुराय । बाल बधाई विविध विधि, कीन्ह जन्म उत्साह ॥
कछुक दिवस सुख जब गए, कियौ तासु सनबंध । ताही राजा सो प्रथम, कियौ जो वचन प्रबंध ॥
करि विवाह कछु दिन गए, गौनौ लीन्हौ तासु । निज पूरुष गति लखि तबै, कन्यै कियो प्रकासु ॥
समाचार सब चरचि कै, लिखौ पितहि करि रोस । कीन्हो छल अपराध अघ, अति बड़ बनिता कोस ॥
सो पढ़ि भयौ गलानि करि, दुहु दिसि रारि बढ़ाइ । कन्या पिता जो प्रबल अति, तापर चढ़ो बजाइ ॥
बड़ो तेज परताप जेहि, लीन्हौ देस छड़ाइ । सुत रूपी कन्या सहित चलो नरेस पराइ ॥
लीन्हो देसहि जीति तिन, कियो पछेड़ो तासु । सो पराइ आयो कछू, निज प्रतीति अभ्यासु ॥
तब नृप कह्यौ सो प्रबल है हम ते कछु न बसाइ । श्री गोसाईंके चरन सब, हमरे बल ब्योसाइ ॥
पाछे सेना आइकै, चहुँ दिसि घेरा ताहि । चरन गोसाईंके परे, दोउ कहि नृप हित पाहि ॥

छप्पै

सुनि प्रसंग करुना करिके चरनामृत दीन्हो । सीथ प्रसादी दई तुरत दूषन हरि लीन्हो ॥
लेत प्रसादी भो सु पुरुष नर रूप प्रकास्यो । लह्यौ तेज परताप अधिक हिय कमल बिगास्यो ॥
जब सेना आई निकट, कह्यौ गोसाइँ बोलि तेहि ।
यह मम सेवक कीन्हो हुतो वानप्रस्थ प्रन प्रथम जेहि ॥
जब अज्ञा इमि भई गृहस्ताश्रम न सवारन । सो सुनि कै लागो सु विविध विनती अनुसारन ॥
कह्यौ कि हम तो चहैं यही कालिमा विडारन । प्रभु प्रताप जसु पाइ होइ सो कलंक निवारन ॥

---

१. छामतर=छमातर ।

जब बहु प्रकार विनती करी, सो सुन्यौ कुँवर फेरचो मदन।
तन हरष परसपर सुख लह्यौ, प्रमुदित आए निज सदन।।

दोहावलियाँ दोहा

"कबहुँक दरसन संतके, पारस मनी अतीत। नारी पलटि सो नर भयौ, लेत प्रसादी सीत।।
'तुलसी' रघुबर सेवतहि, मिटिगो कालोकाल। नारी पलटि सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल।।

(२२ अथ तीरथराज प्रसंग)

पद्धड़ी छंद

पुनि कछु दिन रहि तहँ गवन कीन। तीरथपति दरसु सो लाहु लीन।।
तहँ मिले गोसाईं मुरारि देव। जिन करी गुर स्यामानंद सेव।।
कछु कह्यो गुर भक्तनको लखाउ। सुख पावहिं साधक सुनि प्रभाउ।।
गुरु बोलन हित पत्री पठाइ। लिखि गयौ सीघ्र ताके सुभाइ।।
जो भोजन करत कदाचि होहु। अचमन न करै इह छाड़ि छोहु।।

दोहा

विधि बस भोजन करत ही, पत्री पहुँची आइ। खोलि पढ़ाई सुनि तुरत, जूठे ही मुख धाइ।।
कोस अठारह आइकै, जल बिन अज्ञा पाइ। सिधारो सोइ ग्राम हित, कहि सब कथा सुनाइ।।
ग्राम हरे है साह जो, ल्यावो ताहि छड़ाइ। सुनि कै गवन कियौ तुरित, पातसाह पै जाइ।।
इक मतंग उनमत्त अति, भारी सुंडादंड। देस उजारचौ तिह तहाँ, दलि मलि अति बरिबंड।।
ताके हित जो साह सुत, आयौ वा बन माहँ। देव मुरारि गए तहाँ, जो कारज मन माहँ।।
करत शाह संवाद ते, प्रेरक स्यामानंद। लोग पराने विकल ह्वै, लखि आगमन गयंद।।
अति उतंग एक मंच पर, शाह तनै आसीन। रहे सो देव मुरारि तहँ, और न मानुष चीन्ह।।
ठाढ़े हुते मुरारि जू, तिन पर पहुँचो आइ। गिरि समान लखि रूप तेहि, कहे वचन मुसकाइ।।
एतो बड़ो सरूप जेहि, महिमा सब जग जान। एक सो हरिके भजन बिन, पांवर जड़ अज्ञान।।
करुना करि हेरो जबै, गिरौ करी बिलखाइ। जल प्रवाह चखते चलो, परो पलोटत पाइ।।
तब द्वै चारिक मालकी, माला बड़ी बनाइ। निज करते जो कृपा करि, दई ताहि पहिराइ।।
गोपालदास अस नाम धरि, करी सुद्ध मति तासु। परम भागवत ह्वै गयौ, सो सतसंगति वास।।
ग्राम ग्राम विचरत फिरै, लिए भेष बहु संग। जो न साधु सेवा करै, करत सोई पुर भंग।।
लखि प्रताप चरनन नयौ, साह भेटि बहु ग्राम। विदा भए पहुँचे जहाँ ग्राम एक अति बाम।।
साकत रूपी सो महा, साध न खोजहि पाइ। तहाँ न अन्न करन चह्यौ, तब तिन कीन्ह उपाइ।।
साध वेष विरचो चहै, कंठी तिलक बनाइ। काहु न अंगीकार किय, फिरे ढूँढ़ि पछिताइ।।
प्रान कंठगत वृद्ध यक, तेहि कंठी बँधवाइ। अन्न देवायो तासु कर, व्रत भंजनके भाइ।।
ततछिन बैस किसोर सो, भयौ जो मृतक सरूप। लखि प्रताप सबहुन लई, कंठी विमुख अनूप।।

सदाव्रती दोहा

तहँ ते चलि इक ग्राम लखि, कौतुक रहे सकाइ। सदाव्रती यक साधु पै, सर मृत्तिका कढ़ाइ।।
देव मुरारिहु सो कह्यो, तब श्रम साधु बचाइ। आपुहि ते सर मित्तिका, निकसि निकसि तट जाइ।।

तब कौतुक लखि चरन गिरि, सदाव्रती सकुचान । साधुनकी सेवा करै, तब ते हरि सम जान ।।
यह विधि देव मुरारिकी, महिमा कही न जाइ । मिले गोसाईं सो तहाँ, अमित भाँति सुख पाइ ।।

(२३ मलूकदास प्रसंग)

तोमर छन्द

तहँ माघ महातम जगत जान । सब आए मकर अन्हान ठान ।।
अभ्यागत वेष जुरे अनेक । भंडारहिको दै सके टेक ।।
तहँ दै भंडार मुरारि देव । करि बहु प्रकार सो साधु सेव ।।
यहि भाँति नेवति कै सब उठाइ । पुनि करत भँडारो मति सकाइ ।।
तिनके प्रिय भक्त मलूकदास । जिन कड़ा नगर कीन्हो नेवास ।।
सुधि पाइ तुरत तोड़ा बँधाइ । निज नाम लखोटा पर लिखाइ ।।

दोहा

गंगहि सौंपि सु बिनै करि, देहु अबहि पहुँचाइ । मानुष को प्राक्रम नहीं, पंज जोजन अँतराई ।।
देवमुरारि अस्नान को, सुरसरि पैठे आइ । चरनन में तोड़ा सोई, बार बार लगि जाइ ।।
तब उठाइ देखो तही, पढ़ तब नाम मलूक । पठयो निज हित बाँधिकै, राखे सहज सलूक ।।
सुरसरि में अस्नान नहिं करत मलूक सुजान । मानहिं अतिहि सकोच सों, लोग कहैं अभिमान ।।
जाइ जनायो गुरन सो, इमि सुरसरि अपमान । करै मलूक अस्नान नहिं, कौन ग्रन्थ को ज्ञान ।।
तिनके संसै हेत जनु, सुरसरि भक्ति देखाइ । गुरु न संक हो नास्तिक, जिन यह चरित लखाइ ।।
सो चरित्र संवाद कहि, चले अमित सुख पाइ । चित्रकूट विश्राम किय जो तिहुकाल सोहाइ ।।

(२४ अथ चित्रकूट प्रसंग)

छन्द हरिगीतिका

चित्रकूट विचित्र कीरति विविधि विधि महिमा महा ।
जो कछु कहिय सो थोरि जो रघुबर विहार-स्थल कहा ।।
सिय सहित क्रीड़ा विपिन लहत अनन्द जग वंदन कर्यो ।
मृगका विहारन गिरिन पै लीला विलासन आदरचो ।।
शत स्वर्ग कोटिन सक्र पूरित भोग ज्यौं दसरथ पुरी ।
सुर धाम सुरपुर छीर सागरहू कि छबि नहिं तेहि जुरी ।।
करै जासु इरषा स्वर्ग नंदन महावन वृन्दावनौ ।
हौं खल महामतिमंद हरि पद विमुख किमि महिमा भनौं ।।

तोमर छन्द

तहँ चित्रकूट निवास । करिकै महातरु वास ।।
ह्वै महा त्याग असंग । पद कमल प्रीति अभंग ।।
हिय ध्यान रसना रटन । इमि करहि गिरि परजटन ।।
जहँ परै निसि, तहँ बास । हरि रट, विगत सब त्रास ।।

दोहा

निकटवर्ति दुइ चारि जन, जिनिहि दरस को नेम । रहे संग ते जाइ सब, करि प्रनाम निज प्रेम ।।

एक दिवस करि परजटन, सहित सखा निहसंक । तिन महँ जानत साधु एक, विधि कीमिया कनंक ।।
कूट कामतानाथ पर, बूटि रसायन केरि । सो अगोटि निज पास रखि, लिय खसोटि जो मेरि ।।
ह्वै प्रसन्न एक दिवस दिय, दरस कामतानाथ । नील सजल तन, पीत पट, सारँग सायक हाथ ।।
सुन्दर सुखद सरूप अति, सकल अंग संपन्य । काम कोटि सोभा हरत, धरत ध्यान ते धन्य ।।
विविधि भाँति अस्तुति करी, धरि चरनन पर माथ । दीनन की सुधि लेइ को, तुम गिन दीनानाथ ।।
श्री निवास श्री वत्स महँ, राखि रोमावलि भंग । पूछी तिन प्रस्न अस कह्यो खंड्यौ जो तुव संग ।।
अस कहि अंतरध्यान भे, विश्व रूप श्रुति संत । बूझौ निज संगीन तब, ताको कारन हेत ।।
तिन निज चोरी कहि दई, लई जो बेलि उपारि । सुनि विषाद बहु विधि कियौ, भए विकल विकरारि ।।
तिनहि अमित उपदेस सो, कृत संकल्प कराइ । मगन प्रेम निरझर पुलक, प्रीति अधिक अधिकाइ ।।
वा दिस विचरत प्रेम बस, बैठे प्रभु एक ठाइ । देख्यौ चरित विचित्र एक, वन मृगया के भाइ ।।

छंद तोमर

मृगया विहार विधानि । दिय दरस आनंद खानि ।।
गुन रूप सील निधान । परिकर कसे धनु बान ।।
छबि तड़ित घन जनु सान । अंजन मनोज अभिमान ।।
सिर मुकुट, कुंडल कान । हिय माल की फहरान ।।
पट हरित मृगया वेष । मन हरत छवि सो विसेषि ।।
हय हरित रंग सुजात । मनु पवन-वेग परात ।।
पाछे लखन गति गूढ़ । कुमैत हय आरूढ़ ।।
रजनीस जनु धरे रूप । अनुगामि रघुकुल भूप ।।
हय सुटकि अति वरजोर । निकसे गोसाइँ ओर ।।
एक मृगी जाति परानि । प्रभु धनुष सर संधानि ।।

दोहा

देखि गोसाइँ दयानिधि, हिंसा मन अनुमानि । मूँदे नैन न सहि सके, भे प्रभु अन्तरध्यान ।।
पाछे आइ सो दरस दिय, हरि प्रिय पवनकुमार । कह्यौ गोसाइँ सो भयो दरस सुकृत सुखसार ।।
तब सुचेत ह्वै विकल भे, बार बार पछिताइ । हौं अचेत जान्यौ नहीं, प्रभु माया लपटाइ ।।
रोदन करि चरनन परे, अति करुना विलखाइ । अज्ञा भइ पय तीर अब, रामघाट रहौ छाइ ।।
उहाँ दरस पुनि पाइहौ, सजि दुख रहौ सुचेत । मैं पुनि आवौंगो प्रथम, दरस करावन हेत ।।
धूप अगर चंदन सहित, सुचि सो वेद कपूर । राख्यौ पूजा हेत सब, कुमकुम मृगमद पूरि ।।

छंद तोमर

हमुमंत आयसु पाइ । तब राम घाटहि जाइ ।।
एक गुफा कूप बनाइ । बसि भजत सिय रघुराइ ।।
श्री स्वामी दरियानंन । गुन विदित जग जिमि चंद ।।
जिनको सुजस रह्यो छाइ । कछु होत दरस लखाइ ।।

छप्पै

एक दिन भोजन हेत गए कहुँ नेवति गोसाइँ । अचवन को जल चह्यौ, कह्यौ उन सहज सुभाई ।।
तुम प्रभु दरियानँद, थोर जल हम सो चाहौ । सो सुनिकैं रहि गए, तुरति तब वह्यौ प्रवाहौ ।।

ढाहत मंदिर चली जब, सो सरिता हरिता गरब।
तब तिन कर जोरि बिनै करी, त्यागि मोह ममता सरब॥
जिनको विदित प्रताप स्वामि सो दरसन कारन। बैठे बाहेर गुफा अहै सो समै विचारन॥
बड़ी बेर मो उठे करै को लघु एक बाधा। सो उन नाहिन लख्यौ गए फिरि गुफा समाधा॥
तब कह्यौ सु दरियानंद जिउ, संतन मरजादा उचटि।
लघु बाधा हित निकसे जो प्रभु, ताहू ते गए साष घटि॥

चौपाई

साधन को आगे ह्वै लीजे। विषयन हेत गुफा पग दीजे॥
सुनि श्री दरियानंद सुबानी। त्राहि कहत निकसे भय मानी॥
मिलि तिन विविधि भाँति सुख पायौ। तदपि कष्ट करि विदा करायौ॥
वा दिन ते तजि गुफा नेवासा। बाँधि मंच पर कोन्हो बासा॥
जो कोउ साधु संत पुनि आवै। करि सनमान निकट बैठावै

छंद तोमर

एहि विधि निरंतर नेम। नित मगन बिह्वल प्रेम॥
रट राम हा रघुबीर। निज विनह मेटहु पीर॥
मुख नाम, नैनन्ह नीर। बिसराइ दसा सरीर॥
तन पुलक जल बरखाइ। कहै विकल तोष बहाइ॥
अब नहिं विलंब समाइ। प्रभु होत क्यों न लखाइ॥
तन मन सो घोल घुमाइ। प्रभु पद कि लेउ बुलाइ॥
यहि मिसि बिबिधि बिलपाइ। जल मीन ज्यौं पलुहाइ।
तब राम तन करुनाइ। निज दीन दरसन आइ॥
निज जन की मानत कानि। हित दासको पहिचानि॥
प्रभु हरत सर्व गलानि। निज जनको राख्यौ मान॥
भए राज कला निधान। तब चढ़िकै रुचिर विमान॥
दिसि बाम त्रिभुवन रानि। पाछे अनुज सुख खानि॥
गहे छत्र चमरन पानि। आगे भए हनुमान॥
बिजई पिनाक रु बान। अति रुचिर सोभा खान॥
अस्तुति करै बहु देव। चढ़े करि विमानन सेव॥
संघट विमानन भीर। मंदाकिनी के तीर॥

दोहा

सब सामग्रि सँवारि कै, पूजा हेत कृपाल। मग जोवत चंदन घसै, आए दीन दयाल॥

छंद रूपमाला

परम अद्भुत अतुल सोभा स्याम तन श्रीराम। देखि छवि ह्वै रहत लज्जित कोटि कोटिन काम॥
रतन मंडित कनकके सिंहासनै आसीन। घनुष धर कर गहे सायक रमानाथ प्रवीन॥
अग्र द्वै तूनीर राखे वीर दसरथ लाल। दीनके सुधि लेत दीनानाथ दीनदयाल॥
जलजमाल विसाल उर पर पीत पट सुभ सोह। नीलघन जुत मनहु दामिनि दमकि त्रिभुवन मोह॥

लखन रिपुहन करत सेवा छत्र सिर फहरान। सिया रानी चमर ढारत विनै कृत हनुमान ॥
रतन मानिक जरे चिंतामनिन सों मुकुटाहि। हरत जोति मयंककी छवि कहै असि मति काहि ॥
अंग अंग विचित्र भूषन भौंह धनु भा जुक्त। नैन मानहु मैन के सर लखत जीवन मुक्त ॥
तिलक रेखा बनी केसरि सुभ्र राजित भाल। श्रवन कुंडन सूर ससि आधीन द्वौ छवि जाल ॥
सती संभू सचीपति सनकादिहू चित भर्म। चिबुक गड़में रहे गड़ि करि काम मन वच कर्म ॥
सचिक्कन स्यामल सलोनी सलीलई अलकानि। हलै चामर पवन ते टुक, नैन के सुखदानि ॥
निंदक छबीली मोहनी मुसकानि ऊपर प्रान। नेवछावरि करि 'दास' डारैं जयति जय भगवान ॥

दोहा

राम घाट मंदाकिनी भई विमानन भीर। तुलसिदास चंदन घसैं, तिलक देहि रघुवीर ॥
लखत थके नैना निमिख, थके बैन सब गात। सो सुखरासि अनंत अति, सहसा उर न समात ॥
ह्वै विदेह निरभर पुलक, ब्रह्महि रहे समाय। भई अवस्था जो दसा, सो केहि विधि कहि जाय ॥
प्रभु सुभाउ सुख जानि लखि, तिनहू बचन गँवाइ। ध्यानावस्थित रहि गए, अस्तुति किमि कहि जाइ ॥
दै निज भक्ति जो ब्रह्म सुख, सो तन मन सुख पाइ। पुनि प्रभु अन्तरध्यान भे, भली भाँति अपनाइ ॥
लीन ब्रह्म-सुख ह्वै सदा, सो मूरति उर राखि। विपुल काल तहँ वास किय, भनत भक्ति बहु भाखि ॥

२५ अथ दरिद्र मोचन प्रसंग

चौपाई

विप्र एक दुख दारिद रासी। चित्रकूटके निकट नेवासी ॥
महा रंक अति दीन दुखारी। जलहु न जाँचे लहै भिखारी ॥
विपति रूप जग सिंधु कराला। नक्र उरग अगनित जंजाला ॥
पैरत थक्यो भयो नकवानी। सब प्रकार निज मन महँ ठानी ॥
करि बहु जतन अमित अन्देसा। बिन तन तजे न मिटहि कलेसा ॥
यहि विधि पयदरनी ढिग आयौ। जोरि काष्ठ बहु चिता बनायो ॥
तासु दसा लखि सब तहँ आए। बरजि अनेक भाँति समुझाए ॥
पै सो तच्यो दरिद्र की आँचा। बिना द्रव्य सब जानि असाँचा ॥
सर्व वस्तु धनही मों जानो। बिन पाए संतोष न आनो ॥
अनल प्रवेस कीन चहै जवहीं। गए दयाल गोसाइँ तबहीं ॥
भाँति अनेक ताहि समझायौ। स्वारथ रत सो कछु न बिसायौ ॥
औगुन धनके कहि बहुतेरे। जो कछु निगम पुरानन टेरे ॥
द्रव्य सकल व्याधिन कर मूला। जेहि लगि सहै अमित भव सूला ॥
द्रव्य करै गुर सजन विरोधी। करै छोभ मद कामी क्रोधी ॥
सुहृद मातु पितु बैर बढ़ावै। कलकल सुर मुनिके करवावै ॥
द्रव्यहि मो कलि को निज बासा। विघन उपद्रव दुरित दरासा ॥
कोटिन औगुन कौन गनावै। जो पद पंकज विमुख करावै ॥
औरौ कहे अनेक प्रसंगा। सो न मानु जो धन मन रंगा ॥

दोहा

कह द्विज द्रव्यहि सर्व गुन, तेहि बिन सकल उदास। स्वारथ परमारथ सकल, मम मति द्रव्यहि वास ॥

कवित्त

द्रव्य ही ते देव पूजा, दान धर्म होत कछु, ।
बिना दाम काम नहिं पुरुष निकाम है ॥
बिना द्रव्य दारा सुत भ्रात मातु पितु सब ।
अरिसे लगत, बिधिहूकी गति बाम है ॥
बिना द्रव्य दुर्जन न जीतो जाइ, आदर न ।
कादर कहावै सुधि बुधि सब खाम है ॥
बिना द्रव्य कहौ कोऊ कौनकी दसा है नीकी ।
मेरे जान निश्चै करि दाम ही मो राम है ॥

दोहा

जानि द्रव्यको दास मन, निज दिढ़ कै बिश्वास । दया सिंधु लै संग तेहि, गए कामता पास ॥

छप्पै

श्री मंदाकिनि तीर घाट एक परम उजागर । तहँ अस्थिर ह्वै कीन विविधि अस्तुति गुन सागर ॥
तोहि दरसन ते जाहिं दुरित दारिद दुख दुरमति । तोहि भजते सब दोष काष्ठ घायल ज्यौं घुरमति ॥
दारुन दरिद्र मोचन मृदुल, सुखदायक रघुनाथ पद ।
ह्वै प्रगट दरस दीजे सुखद, महिमा जाकी वेद वद ॥

दोहा

तब मंदाकिनि मध्य ते, प्रगटो एक पखान । फटिक सिला सुन्दर सुभग, मनहु प्रकासित भान ॥

कुण्डलियाँ

ताके दरसन होत ही, रह्यौ न दुखको लेस । दिज पायौ संतोष सुख, मानहु धनिक धनेस ॥
मानहु धनिक धनेस, दुखनको दूरि बहायौ । लह्यौ परम सँतोष, सकल अघ ओख नसायौ ॥
पायौ सुख बहु भाँति, सहायक हरिजन जाके । भो सब पूरनकाम, कहा कहिए पुनि ताके ॥

सोरठा

भयौ सो अंतरध्यान, सो दारिद मोचन सिला । दुख बन दहन कृसानु, अजहूँ जाको विदित जस ॥

दोहा

अजहुँ गोसाइँ कृत विदित, सो आश्रम सुख धाम । है दरिद्र मोचन तहाँ, प्रगट जथारथ नाम ॥
दिज अजहूँ राजत घनो, बनी बनाई राम । बिदित सकल संसार सो, चित्रकूट ढिग ग्राम ॥

(२६ अथ दिल्लीपति प्रसंग)

दोहा (क)

मृतक जियावन, खल तरन, दीनन दारिद भंग । प्रीति पतित पावन करन, और अनेक प्रसंग ॥
भू मंडल रह्यो छाइकै, गावहिं संत सुजान । लिखि सूबन पठयौ, सुन्यौ दिल्लीपति सुलतान ॥
चौकी पठई साह तब, बेगि सो ल्यावहु जाइ । हमहू निज नैनन लखैं, तासु प्रताप प्रभाइ ॥
आइ कह्यौ तिन चलिय प्रभु, बोल्यो साह सुजान । जमन द्वार भय समुझि तब, सब समाज बिलखान ॥

छंद भुजंग प्रयात

सुनै जो समाचार सोचै बिचारै । गोसाइँ इहाँ ते कहूँ ना पधारै ॥
सुनौ राउ राजानि आए जो ऐसो । न मानै हमैं जो, करै क्यों न कैसो ॥

करैं मेदनी रुंड मुंडो बिहारैं। नहीं जान देहै सो अज्ञा मिटारैं ॥
कहौ जाइ कै साह जौ आप आवैं। नहीं राम दासानको देखि पावैं ॥
भदावर बुँदेले चँदेले बघेले। सबै डागके राव रावत सकेले ॥
कहै देह छन भंगको लाहु लीजे। करैं जो कृपा राम संग्राम कीजै ॥

सोरठा

दिल्लीपति सुलतान, भोज मौज दरिआउ सम। घटसंभव सम पान, करहि रामकी कृपा ते।

चौपैया छन्द

तब कह्यौ गोसाइँ, सहज सुभाइ, सुनि लोजे यह बाता।
जेहि देस रहीजे, तासु अनादर, कीजे उचित न ताता ॥
इमि हांस उपद्रव, देस बिनासन, अनुसासन बिन माने।
कोटिन जिय पीड़ा, अगनित हिंसा, अमित होत हित हाने ॥
निज सुख हित कारन, देस बिडारन, किमि करि काज करीजै।
आपुहि जो जइए, मिलि तेहि अइए, तौ यामेका छाजै ॥
यहि भाँति सिधाए, जनु नहिं आए, नौका रुचिर मँगाई।
चढ़ि चले सुभाए, अति सुख पाए, भजन करत मन भाई ॥
(ख) जमुना तट वासी, नृप सुखरासी, आगे आयौ लैना।
आदर बहु कीन्हो, अति लौ लीन्हो, कहत दीन ह्वै बैना ॥
किरपा अब कीजै, जग जसु लीजे, भवन पवित्र करीजे।
बहु बिनै सुनाई, पद सिर नाई, चित साधुनके सीझे ॥

दोहा

ध्यानावस्थित तेहि समै, हुते गोसाइँ लीन। सबहिन प्रति उत्तर कियौ, रहे जे संग प्रवीन ॥
कियौ न अंगीकार जब, तब निज मन अनुमानि। भय बिन पोइ न प्रीति तब, यहै मतो दिढ़ ठानि ॥
हम भागन आए इते, अब जाने नहिं देहु। जेन केन परकार ते, जन्म लाहु लुटि लेहु ॥
इमि संमत करि सकल मिलि, चले साजि कै सैन। पछिआए जय करत ही, आई कह्यो इमि बैन ॥
दीन्हे बिना जगातिके, अब न पाइहौ जान। नौका ल्याए खैंचि तब लागे साध डेरान ॥
अति सुन्दर मंदिर रुचिर, राखे बसन बिछाइ। तहँ सबहन बैठारि कैं, अस्तुति करी बनाइ ॥
साष्टांग दंडवत करि, बिनै करी बहु भाइ। छमा कीजिए नाथ हम, दीख न और उपाइ ॥
ताते बरिआई करी, हम तुव दासनदास। लह्यो लाभ अब जन्मको, प्रभु चरनतको आस ॥
सेवकाई करि बिबिधि बिधि, आपुहि कियौ प्रसंन्य। पुनि पुनि भाग सराहि निज, कहै धन्य हम धन्य ॥
देखि सांचिलो प्रीतिको, अमित अनुग्रह कीन्ह। प्रतिमा राधेवल्लभहि, लखि उपासना दीन ॥
कृपा दृष्टिको हेरि कै, कीन्हो साधु सुजान। तिन कृत पद हरि जस ललित, विदित सकल जग जान ॥
अजौं विराजत माधुरी मूरति स्यामा स्याम। जमुना तट नृप गृह रुचिर, बन्यौ भक्त अभिराम ॥

चौपाई

(ग) कछु दिन रहि तहँ, कीन्ह पयाना। इंद्रप्रस्थ भेटो सुलताना ॥
कह्यौ साह, "हम सुजस तुम्हारा। सुनि बाढ़ो अभिलाष हमारा ॥
निज प्रभाव कछु हमहि देखावहु। तब हम करते छूटन पावहु" ॥

"हम कछु भाव भेद नहिं जानहिं। उदर भरन हित नाम बखानहिं ।।
यहि विधि प्रति उत्तर बहु कीन्हा। साहै भयो क्रोध कर चीन्हा ।।
कह्यौ कि इनहिं कष्ट अब दीजै। कारागृह बिच प्रविसित कीजै ।।
तब देखाइहै निज परभावा। छूटि जाइ सो करत दुरावा ।।
कहि दुर्वचन कछुक अन्याई। पठयो कारागृह दुखदाई ।।
जिन आपन अरप्यौ भगवाना। वर्तमान मानहि परमाना ।।
सदा अपनपौ रहै दुराए। बिचरहि हरि अज्ञा सचु पाए ।।
वंदी-ग्रह जब कीन्ह नेवासा। अति कुधाम सब भाँति कुपासा ।।

श्रीमत गोसाईं कृत सवैया

"कानन भूधर बारि बयारि दवा विष ज्वाल महा अरि घेरे।
संकट कोटि परो 'तुलसी' तहँ मातु पिता सुत बंधु न नेरे ।।
राखहि राम कृपा करिकै, हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे" ।।

दोहा

दुख सुख ज्ञानी नरन को, यौं व्यापत मन माहिँ। गिरि सागर ज्यों मुकुर में, भार भीजिबो नाहिँ ।।

चौपाई

तदपि नित्य नूतन की व्याधा। होन लगी तब कौन विसाधा ।।
यह जीवन मोहि करिबे काहा। जो न नेम पन मोर निबाहा ।।
अस कहि पवन सुतहि सिर नाई। करि अस्तुति निज बिथा जनाई ।।

विष्णुपद

तोहि न ऐसी बूझिए हनुमान हठीले। साहेब काहु न राम से, तुम से न वसीले ।।
तेरे देखत सिंघ के सुत मेढक लीले। जानत हूँ कलि तेरऊ मनो गुन गन कीले ।।
हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले। सो बल गयो कि भए अब कछु गर्व गहीले ।।
सेवक को परदा फटो तू समरथ सी ले। अधिक आपु ते आपने सनमान सहीले ।।
सांसति 'तुलसीदास' को देखि सुजस तुही ले। तिहू काल तिनको भलो जे राम रँगीले[1] ।।
समरथ सुवन समीर के रघुवीर पियारे। मोपर कीबी तोहि जो करि लेहि भिया रे ।।
तेरी महिमा ते चलै चिंचिनी चिया रे। अँधियारे मेरी बार को त्रिभुवन उजियारे ।।
केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे। केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे ।
खाई खोंची माँगि मैं, तेरो नाम लिया रे। जो तो सो हो तो फिरो मेरे हेत हिया रे ।।
तौ क्यौं वदन दिखावतो कहि वचन रिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जानि जिया रे ।।
तो सो ज्ञाननिधान को सरबज्ञ बिया रे। हौं समुझत साईं द्रोहकी गति छार छिया रे ।।
तेरे स्वामी राम सो स्वामिनी सिया रे। तहँ 'तुलसी' कहै कौनको ताको तकिया रे[2]।।

छन्द हरिगीतिका

गाय जो पद पवनसुतको, प्रगट भो ततकाल हो। बहु रूप देह बिसाल अगनित, जिननकी संख्या नहीं ।।

---

१. विनय पत्रिका पद ३२। २ वही पद ३३

बहु विकट बंदर पवरि मंदिर महल अन्दर जाइकै । साहू सहेलिन सहित करि पति नास अगति बनाइ कै ॥
मारे बिडारे, ग्रह उजारे, जहँ सो तहँ कहरत परे । धरि कच घसीटहिं, सीस पीटहिं हाइ हा बहुधा करे ॥

छन्द भुजंग प्रयात

कोऊ खंभ गहि धाम सुन्दर ढहावैं । कहूँ माथ सो माथ मारै भिरावैं ॥
कोऊ अग्नि लावैं, कोऊ पत्र फोरै । कोऊ चढ़ि अटा, केसरी ज्यों डफोरै ॥
कोऊ माल तोरै, कोऊ चीर फारै । कोऊ गहि चरन पँवारि के द्वार डारै ॥
कोऊ कच खसोटै, बकोटन विदारै । कोऊ साह के केस धारै उखारै ॥
कोऊ साह को नग्न कै दण्ड दीन्हौ । कोऊ कच गहे द्वार मन्दिर के कीन्हौ ॥
कोऊ खैंचि कै आम खासे भवावैं । करै हाइ हाइ न छूटन सो पावैं ॥
कोऊ कूदि कै बंदिखाने ढहायौ । सकल बंधुवन को जहाँ तहँ भगायौ ॥
लख्यौ जब गोसाइँ को साहू सहेली । लियौ जाइ कै गिरि परी चरन पेली ॥
करै हाई हा त्राहि तोबह गोसाइँ । छमा कीजिए राखिए निज भलाई ॥
महा मंद मैं जो किया फल सो पाया । भई दुरदसा हरीदासन सताया ॥
दया दिष्टि कै अब छमा जो करीजै । मनो राम अपने की खैरात दीजै ॥

दोहा

तबै गोसाइँ दयानिधि, अस्तुति करी उदार । महा तेज विकराल गति, छम्यौ न पवनकुमार ॥

विष्णुपद

"अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी । इनको विलगु न मानिए, बोलहिं न बिचारी ॥
लोक रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी । अति बरखे अनबरखेहु देहि दैवहिं गारी ॥
ना कहिं आए नाथ सो भइ सांसति भारी । करि आए कीबो छमा निज और निहारी ॥
समै साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी । सो सब विधि दाया करै अपराध बिसारी ॥
बिगरो सेवक की सदा साहेबहि सुधारी । 'तुलसी' पर तेरी कृपा निरुपाधि निहारी"[1] ॥
कटु कहिए गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाईं । करहिं अनभलेहु को भलो आपनी भलाई ॥
समरथ सभी जो पाइए सुनि पीर पराई । ताहि तक्यो सब ज्यों नदी वारिधि न बोलाई ॥
अपने अपने को भलो चहैं लोग लोगाई । भावै जो जेहि भजै सो सुभ असुभ सगाई ॥
बाँह बोल दै थापिए जेहि निज बरिआई । बिन सेवा सो पालिए सेवक की नाईं ॥
चूक चपलता मेरई तू बड़ो बड़ाई । हौं तौ आदर ढीठ हौं अति नीच निचाई ॥
बंदि छोर विरदावली निगमागम गाई । नीको 'तुलसीदास' को तेरियै निकाई ॥

आरती

मंगल मूरति मारुत नंदन । सकल अमंगल-मूल-निकंदन ॥
पवन तनै संतन हितकारी । हृदय विराजत अवध बिहारी ॥
मात पिता गुर गनपति सारद । सिवा समेत संभु सुक नारद ॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु राम-पद भक्ति निबाहू ॥
बंदौ राम लखन बैदेही । जे 'तुलसी' के परम सनेही ॥

---

१. विनपत्रिका, पद ३४

दोहा

बहुविधि अर्घं छमाइ कै, पुनि अस्नान कराइ। चरनोदक लै सिर धरो, भवन पवित्र कराइ ॥
भेटे ल्याए अमित अति, मनि मुक्ता बहु दर्बि। कह्यौ गोसाईं सों बहुरि, नहिं चाहिए यह सर्बि ॥
"तीन टूक कोपीन के, अरु भाजी बिन लोन। 'तुलसी' रघुबर उर बसैं, इंद्र बापुरा कौन ॥

छप्पै

पुनि अज्ञा इमि दई, कही यह आश्रम पावन। भयो पदांकित महावीर के परम सोहावन ॥
अब नहिं उचित नेवास, अपावन मनुज बास कर। चौकी श्री हनुमंत देव धरनी सो त्रासकर ॥
अब उत्तर दिसि जमुना निकट, बाँधौ गढ़ अरु सुभ नगर।
तेहि नूतन दिल्ली नाम पुनि साहजहानाबाद घर ॥

दोहा

साहजहाँ सुत नाम ते, सुन्दर नगर बसाइ। विपुल काल प्रभुता बढ़ी, रहिहि जगत जसु छाइ ॥
चलत बार कर जोरि कै, माग्यो नृपति सुजान। दरसन हित आवा करौं, दीजे वह बरदान ॥

२७. अथ ग्वाल संवाद प्रसंग

चौपाई

चले तहाँ से सहज सुभाए। संध्या परी एक बन आए ॥
कियो बास तेहि निसि मन कानन। ग्रामादिक जहँ नाउँ निसान न ॥
रहे चरावत बन एक ग्वाला। राखि गोसाईंहि नायो माला ॥
करि दोहनी दूध दुहि ल्यायौ। सादर प्रभु कहँ आनि चढ़ायौ ॥
कृपा दृष्टि करि ताहि विलोका। किय दुख दोषहि विगत विसोका ॥
कछु प्रसाद निज कर ते दीन्हा। कछु उपदेस भजन को कीन्हा ॥
प्रात चले सो ग्वाल सभागी। ह्वै अस्थित समाधि अनुरागी ॥
तीनि दिवस एक चित एक आसन। हरि पद रत दुख दोष विनासन ॥
मगन ध्यान रस लीन समाधी। देखहि कोटि न कोन उपाधी ॥
केहु प्रकार निज दिष्टि न खोलै। घेरि बोलावहि तऊ न बोलै ॥

दोहा

बहुत कह्यौ जब, तब कह्यौ, मोहि नाहिन कछु काज। तुम ते मोहू ते तुमहि, बिनयौ सकल समाज ॥
महा पुरुषकी कृपा ते, मुहि छूट्यौ संसार। चहौ सर्व अब ह्वै सकै, मोते कछु ब्योहार ॥
जबते सो बैठो तहाँ, उठो न प्रेम प्रवीन। जोगिनकी गतिको लह्यौ, ह्वै करि पद लौ लीन ॥
मारग चलो सो तासुको, गावै सुभ अभिराम। पूजनीय अजहूँ विदित, तेहि मंडप सुखधाम ॥

२८. श्री वृंदावन कथन प्रसंग

चौपाई

(क) तहँ ते चलि वृंदावन आए। रामघाट कहँ सीस नवाए ॥
किए सुखेन बास सुभ घाटा। मनहु भजन सुमिरनको ठाटा ॥
साधु संत वृन्दावन वासी। जोगी जती तपी सन्यासी ॥
पंडित ग्रही धनाढ्य भिखारी। दरस पाइ सब भए सुखारी ॥

और वैष्णव जो कोइ आवहिं । जाइ गोसाईं सीस नवावहिं ।।
तिन ते जै श्री राम जो करहीं । जै श्री कृष्ण कहत आदरहीं ।।
यह विधि बहु लोगन जब कीन्हों । तब तिन प्रति इमि कहिबे लीन्हो ।।

दोहा

आक ढाक सब कहत हैं, आम घास अरु खैर । 'तुलसी' वृजके लोग सो, कहा राम सों बैर ।।

चौपाई

(ख) पुनि महंत जो जगत विख्याता । आइ कही सादर तिन बाता ।।
चलिए सुन्दर कुंज विसाला । तहाँ बास अब करिय कपाला ।।
अब जो रामघाट अति पावन । सुखद सुभग दासन मन भावन ।।
सो विहार अस्थली मनोहर । कृष्ण देवकी सब विधि सुन्दर ।।
तहाँ बास लै प्रभुहिं करावहिं । हमहू दरस लहैं सुख पावहिं ।।
राम कृष्ण दोउ एक स्वरूपा । दासन सुखद सुभग जग रूपा ।।

दोहा

आप कृष्ण भगवान जू, बारंबार बखानि । राम धनुष धारी मही, ब्रह्म अनीह अनाम ।।
याते औरो लखि परो, कृष्ण रूप परमान । और सरूप विभूति सब, कहे जात अनुमान ।।
कह्यो गोसाईं विहँसि तब, हमहू पायो ज्ञान । कृष्ण रूप निज रूप है, और विभूति प्रमान ।।
हम रामहिं जानत रह्यो, केवल दसरथनंद । अब इतनो तुमते सुनौं, विभौ रूप जगवंद ।।
"जो जगदीस तो अति भलो, जो महीप तौ भाग । 'तुलसी' चाहत जन्म प्रति, राम चरन अनुराग" ।।
सुनि उपासना रीति गति, महा अनन्य अत्यंत । करत प्रसंसा विविधि विधि, साधु साधु सब संत ।।
हरि पर प्रीति सवाद बहु, हम सुख आसिख हेत । कीन्ह गोसाईं रूप ह्वै, जन उपासना सेत ।।
और जो महापुरुष हुते, अतिहि अगाध गँभीर । विन उन कही कि एकही, कृष्ण रूप रघुवीर ।।
राम कह्यो तौ अति भलो, कृष्ण कल्यौ तौ मूल । उभै नाम भव खेद हर संश्रत संकट सूल ।।
कह्यो गोसाईं सत्य है, यामें संसै नाहिं । तद्यपि प्रीति उपासना, छाइ रही मन माहिं ।।
"राग रोष गुन दोषको, साक्षी हृदय सरोज । 'तुलसी विगसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज" ।।

सोरठा

सुनि बहु विधि सुख पाइ, लह्यो परसपर सकल सुख । कहत कुतर्क बहाइ, विदित राम गुन गुन विमल ।।
बरनत सुजन समाज, गे सब निज निज आश्रमनि । बहु प्रकारको नाज, पठै अमनिया विविध विधि ।।

चौपाई

(ग) बहु विंजन बहु विधिकी भाजी । बहु मिष्ठान विविध विधि साजी ।।
गोरस बहु प्रकार जो आयौ । सबै गोसाइँ फेरि पठायौ ।।
कह्यो अमनिया है यह नाहीं । ताते फेरि पठै तव पाहीं ।।
कृष्ण भोग याको लगि आयौ । पुनि ताको नहिं जात लगायौ ।।

दोहा

सुनि अति ही अचरज भयो, जानि अमनिया सुद्ध । पुनि नूतन मँगवाइ कै, दीन पठै कर निद्ध ।।

चौपाई

यहौ भोग लगि आयौ तैसे । पठयो फेरि प्रथम मिस जैसे ।।

गंज बजारन ते पुनि आन्यौ। पठयो जब पुनि सोइ तुम ठान्यौ ॥
तब सब संत साधु मिलि आए। पूछौ सोइ संवाद चलाए ॥

दोहा

कह्यो गोसाईं भोग जो, लागो होइ सो नाज। तेहि किमि भोग लगाइए, श्री रघुपति महराज ॥
कह्यौ कि हम किमि जानहीं, किमि मानहिं परतीति। हमहि आपु समुझाइए, यह संवाद पुनीत ॥

छन्द भुजंगप्रयात

कह्यौ तब गोसाईं कहा ते अमनिया। मँगायौ जो केहि हाट सो कौन बनिया ॥
तहाँ जाइ देखो, करो तब परेखो। गए ते तहाँ, तब कछू नाहि देखो ॥
कह्यौ आइ स्वामी तुम्हैं चलि दिखावौ। सबै चित्त के संक संसै मिटावौ ॥
चले तब बिहँसि संग तिनके गोसाईं। गए गेह जहँ ते अमनिया मँगाई ॥
कह्यौ तब तिन्हैं रासि पर दिष्टि दीजै। प्रथम तौ जनम को परम लाहु लीजै ॥

दोहा

रासिन ऊपर लख्यौ जब, साधु सुभाग सुजान। भोग करत ताक्यो तहाँ, कृष्णचन्द्र भगवान ॥
बहुरी दूजी रासि पर, करत भोग नंदलाल। अन्न न पर निरख्यौ तबै, अगिनित रूप कृपाल ॥

हरिगीतिका

जै कृपाकंद मुकुंद मोहहि हरन जन सुखदायकं।
अव्यक्त अज निज दास हित वपु धरन जदुकुल नायकं ॥
गुरु जनक जननि सुहृद सुसम सब सुलभ शिव अज दुर्लभं।
गोविंद गोपद गम्य पर गोतीत गोपीवल्लभं ॥
जेहि निगम अगम अरूप गावत संभु ध्यान न पावहीं।
सो वृज अहीरन की लली करि प्रेम बिबस नचावहीं ॥
जेहि जोग मुनि करि जतन कतहुँ न लहत जेहि जग्यन भली।
सो प्रगट करुनाकंद जदुकुल-चन्द्र क्रीड़ित वृज गली।
अरु तारि नारि उधारि दासन निर्विकार निरामयं।
सुखधाम पूरनकाम तन घनश्याम ब्रह्म नमामयं ॥

त्रोटक

नव कमल विलोचन चारुतरं। सुभ नेकु विलोकत तापहरं ॥
मकराकृत कुण्डल झोलन ही। गति बांसुरि नाद अमोलनही ॥
सचराचर मोहत रूप किए। तहँ सोभ धरे करु बास हिए ॥
प्रभु नंद दयाल कृपा करिए। मति दुर्मति मंद करी हरिए ॥
प्रभु आप छमा करुनाकर है। तुम दासहु दीन दयाकर है ॥
उर प्रेरि देवायौ जु दर्स प्रभो। अति दुर्लभ है जो त्रिलोक विभौ ॥
यह लाभ अनन्य के पात्रहि ते। जग जोति न जन्म किते भ्रम ते ॥
शिव ध्यानहु दुर्लभ दर्स लह्यौ। प्रभु दास प्रभाव न जात कह्यौ ॥
निज दासन दै प्रभु प्रीति सदा। करुनाकर श्याम नमामि यदा ॥

दोहा

दरस लाभ दासन दियौ, राखि गोसाईं मान। करुना दाया कृपा करि, भे पुनि अंतरध्यान ॥

त्रोटक

सब धाइ गोसाईं के पाईं परे। हमको तुम नाथ सनाथ करे ॥
हम मोह महा अभिमान भरे। प्रभु दर्सन ते दुख दोष टरे ॥
यतनो श्रम को यहि कारन ही। निज दर्स सो दीन उबारन ही ॥
पुलकावलि लोचन प्रेम करैं। बर बैन परस्पर प्रेम करैं ॥

दोहा

यहि विधि आश्रम आइ कै, अमित भांति सुख पाइ। पुनि नित प्रति भाषौ सरस, दोहा द्वंद नसाइ ॥
'तुलसी' मथुरा राम है, जे करि जानै दोइ। जुग अक्षर के मध्य जो, ताके मुख में सोइ" ॥
कछुक दिवस तहँ बास करि, मग लोगन सुख देत। चित्रकूट रहे आइ पुनि, दरस लाह सुख हेत ॥
रहे तहाँ बहु काल रचि, लीला विविध विलास। लहि अनंद छायौ तहाँ, करि बितीत षट मास ॥

२९ अथ स्वामी नंदलाल कथा प्रसंग

छप्पै छन्द

(क) ताहि समै श्रीमत स्वामी नँदलाल गोसाइँ। छाँड़ि सँडीलो बास रहत प्रभु सहज सुभाईं ॥
बिचरत प्रभु अनुराग मगन वासना विनासे। मनो ब्रह्म वपु धरे, ज्ञान वैराग्य प्रकासे ॥
चित धरो मनोरथ अवध को, गवन कीन तहँ ते सुखद।
पहुँचे मलिहाबाद तेहि खोटो सहर जो विस्व वद ॥

सोरठा

खोटो सब जग जान, बसहिं पठान जो जमन जड़। हरिदासन अपमान, करहिं विविधि विधि त्रास दै ॥

छप्पै

धारे कंठी तिलक भगत जन जो कोउ पावहिं। घेरि उपद्रव करहिं ताहि बहु भाँति सतावहिं ॥
संखध्वनि अरु भजन रीति कछु होन न पावै। और अनीति अनेकन खोटो सहर कहावै ॥
तहँ निकसे श्रीमत स्वामी, तब बहुत भेख निज संग लिय।
लखि साधु सबै विनती करै, यह मग प्रभु किमि गवन किय ॥
अग जग मय सब राम जानि, चलि सहज सुभाई। लख्यौ एक तहँ उग्र जमन, निज बैठ अथाई ॥
बेतपानि तेहि पठै कै तुमको बोल्यौ स्वामी। काज कहा नहिं जात कह्यौ इमि अंतरजामी ॥
सोई कह्यौ जाइ, तिन क्रोध ह्वै, द्वारपाल पुनि पठै द्वै।
फिरि तिन्हैं दियो उत्तर सोई, तबहु न आयो ताहि भै ॥
तब कियो क्रोध परचंड पठान अनेक पठाए। ते अति दारुन रूप उग्रता आनि जनाए ॥
नेकु न मानी कानि, करन लागे बरिआई। कह्यौ कि निज सुधि लेहु, बहुरि हम जाहु लेवाई ॥
तब जाइ दीख निज स्वामि गति, रुधिर मलीन बसन सकल। बिदरन मूल-द्वारको भयौ, महा रोदति विकल ॥

सोरठा

तब पलना पर डारि, लै आए स्वामी सरन। करी अमित मनुहारि, औगुन छमिए दयानिधि ॥

दोहा

मनो दंड सब छाड़िकै, कियो विरंचि विचार। साधुन के अपमान को, दारुन दुःख अपार ॥

ताते दीन्हौ दंड यह, दुख अध्यास सरूप। बिस्व विदित उपखान यह, जो अति निंद्या रूप ॥
संतन रक्षा हेत मनु, सिक्षित अद्भुत जानि। दासन को अपमान फल, प्रगटो ह्वै उपखान ॥

छप्पै (ख)

पुनि ताही पुर वास कियौ एक ठायँ सोहाए। संख-ध्वनि सुनि बाल जुत्थ बहु मारन धाए ॥
तहँ बड़ भागी एक, हटकि तिन्ह कै अड़ आयौ। बहु विधान करि जुद्ध, तिन्हैं तब मारि भगायौ ॥
पुनि सिर नायौ आइ तब, दीन्हों आसिरबाद तेहि। बिजई बिनई होइगो, बहु पृथ्वीको राज लहि ॥

दोहा

संत साध सेवा कियौ, अरु गो बद्ध बराइ। पावैगो ऐस्वर्य बड़, सुजस रहिहि जग छाइ ॥

सोरठा

संखर खां जग जान, विदित भयौ जाको सुजस। प्रन सो सदा व्रत ठान, अजहूँ लगि जेहि कुल सुभग ॥

छप्पै (ग)

कीन्हों कछुक निवास पाठ नितको रामायन। तहँ एक करि परिहास भाट सुत गर्व परायन ॥
जुगल भभँरी ल्याइ सो गांठी आनि बँधायौ। सोऊ करि परिहास कथा पर आनि चढ़ायौ ॥
तब स्वामी कह्यौ विक्षिप्त ह्वै, ततखन व्याकुल ह्वै गयौ ॥
मल मूत्र खान पोवन लग्यौ, विमुख दुहू जग ते भयौ ॥
(घ) और सिष्य एक रह्यौ, तिनहुँ दिज नेवति जेवाँए। थोरो भोज प्रसार, विप्र बहु जेवन आए ॥
कही आनि तिन तबै कि अति लज्या मैं मरऊँ। थोरो भोजन, विप्र बहुत, केहि केहि आदरऊँ ॥
एक हुतौ अगौछा स्वामि कर, दै करुनाकर हेरेऊ।
तेहि डारि पाक पर, सकल जग आवै तऊ न फेरेऊ ॥

दोहा (ङ)

इमि निज गुन अनुसरित प्रभु, चले सकल मग जाहिं। यहि मिसि पहुँचे बात किय, पुरी अजोध्या माहिं ॥

छप्पै

सिंघ पवरि कै निकट जानकी पवरि बिराजत। तहँ प्रभु कीन्ह नेवास जासु लखि सुर पुर लाजत ॥
ग्वालदास प्रभु दास तहाँ सुभ मंदिर साजे। प्रभु अज्ञा पहिचानि, सुखद अस्थान बिराजे ॥
ऊपर सो मंदिर बनो, मध्य कूप राजत रुचिर।
सो अजहु बिराजत दरस हित, दासनको अवलंब वर ॥
एक दिन जन्म उछाह समै दरसन हित स्वामी। चले तहाँ अति भीर बेत मार्‍यो दरबानी ॥
स्वामी बिहवल प्रेम गवन किय पवँरि दुवारे। नहि पायौ तहँ जान बेत लाग्यौ परहारे ॥
तब अंतरजामी दास बस, भगतबछल करुनायतन।
सो तौ निज ऊपर लियौ, जो लाग्यौ निज दास मन ।
भोर भए अस्नान हेत जब बस्तर काढ़े। रुधिर बिलोकत डरे, बिखाद सकल चित बाढ़े ॥
करि सब वंदन व्रतहि करहि बहु विधि कलपाना। यह चरित्र वर दोष नाथ कछु जात न जाना ॥
नँदलाल जो प्रिय मम पारिषद, वा दिसि ते बानी भई।
निसि हन्यौ बेत जो तासु पर, सो हौ निज ऊपर लई ॥

दोहा

धाए पंडा पारषद, कंपमान ह्वै चेत। ल्याए बहु बिधि बिनै करि, महतु करावन हेतु ॥
श्री स्वामी महिमा महा, कही कहाँ लौं जाइ। जे तनमैं रघुनाथ ह्वै, दीन्हों जगत जनाइ ॥

छप्पै

कछु दिन अवध नेवास कीन, उठि सहज सुभाई। चित्रकूट कहँ चले, रहे जहँ छाइ गोसाई ॥
कड़ा नगर बसे श्री मलूक ते मिलि सुख पायो। बूझि परस्पर खेम होत संवाद सोहायो ॥
तहँ वैरागी एक आइ कहि परुष वचन अनखाइ अति।
सब झूठ मलूका कहत है, झूठै पद उर झूठ मत ॥

चौपाई

कहत मलूका तैं बलिहारी। तन मन धन संतन पर वारी ॥

दोहा

यौं महिमा भाष्यौ करत, देत जो सेर पिसान। चहौ और सो लेहु तुम, मैं नहिं झूठ बखान ॥
तन मन वारन मैं कहौं, संतन पर बलिहारि। तुमरे ऊपर नहिं कह्यौं, देखौ चित्त बिचारि ॥
संतन जो देखा चहौ, देखि लेहु ततकाल। केवल परमारथ निरत, आए हैं नँदलाल ॥
करत बतकही स्वामि सों, कछु चरचा निज चाल। कियो उपद्रव साह तब, राखी राम कृपाल ॥
सुनि मुसकाने स्वामी, सो लखि मलूक सकुचान। पूछन लागे हेतु, केहि कारन प्रभु मुसकान ॥
प्रथमहि कियौ दुराव प्रभु, जब मलूक हठ कीन। तब बहु भाँति प्रसंसि कै, पुनि सोइ बरनै लीन ॥
तुम प्रभु पूरन भक्त हौ, परम भागवत आप। अब सोपति यह आपनी जानि, सो करहु प्रलाप ॥
जिन निजपन अरपौ प्रभुहि, ममता झूठ बहाइ। जाति पांति पति राम सब, तेहि गति रहे समाइ ॥
कह्यौ कचाई तब मिटत, जब हरि होत दयाल। तुमसे संतनके मिले, कटत करम जग जाल ॥
उठिकै परिकरमा करी, अस्तुति भाँति अनेक। मोह सरित महँ बहत लखि, प्रभु राखौ दै टेक ॥
(छ) कछुक बास करि पाइ सुख, चित्रकूट पुनि जाइ। दरस गोसाईंको लह्यौ, अमित भाँति सुख पाइ ॥

चौपाई

त्रिकालज्ञ प्रभु कह्यौ गोसाईं। महा पुरुष हौ यहि जग आई ॥
तिनहि विदित रघुपति प्रभुताई। भक्त अनन्य लोक सुखदाई ॥
इतने जग बहु मारग कहई। पढ़ै 'राम रक्षा' अति चहई ॥
अति प्रसन्य ह्वै करुना कीन्हो। निज कर 'रामकवच' लिख दीन्हो ॥

दोहा

रामायन निज कर लिखी, पाठ जो आठो जाम। राम सुन्दर अस नाम पुनि, दीन्हौं सालिग्राम ॥
पाठ हेत रामायनहि, पूजा हेत सरूप। विविधि अनुग्रह करि दई, अरु उपदेस अनूप ॥
तहाँ रहे बहु काल रचि लीला विपिन विलास। सुमिरन भजन अनेक विधि करि विनती षट मास ॥

(३० अथ चंचल शिष्य प्रसंग)

चौपाई

एक दिन बैठे सहज सुभाई। सब समाज अरु साध अथाई ॥
रानी चित्रकूटकी आई। संग सखी बहु सोभ सोहाई ॥

करि दंडवत भेंट धरि आगे। बैठि दरस पावत अनुरागे ।।
जन एक धरत जो दिच्छा आसा। रहैं गोसाईं के तब पासा ।।
दीपक जोति अल्प जिय चीन्हो। अति प्रकास प्रजुलित करि दीन्हो ।।

दोहा

जबै विदा ह्वै सो गई, रानि रूप गुन रासि। कह्यो गोसाईं ताहि तब, जिन कियो दीप प्रकास ।।
चंचलता नाहीं गई, अजौं त्यागि तुम पास। इच्छा दिच्छाकी धरो, कहाँ प्रीति विस्वास ।।
श्री स्वामी दिसि देखिकै, कह्यौ सत्य यह बात। होनहार बिरवान कै होत चीकने पात ।।
चित्रकूट बहु काल बसि, आइ अवध सुख लीन। निज अभिलाखन सों सरस, आँखिनको सुख दीन्ह ।।

पुनः अवध खंड

३१ अथ श्री (सुवर्णमय) अवध प्रसंग

(दोहा)

(क) राम राज लीला रची, औरौ रहसि अनेक। बहु उत्साह सो भजनमें कर सह भक्ति विवेक ।।
जेहि आचरन बसै सदा, अवध बास सुखधाम। ताही मिस नित कृत करहिं रमै राम गुन ग्राम ।।

छप्पै

करै नित्य अस्नान राम घाटादिक सुन्दर। धरै ध्यान जिय जानि सो जब अस्थान मनोहर ।।
एक दिवस कृत जाय सुजन एक हरषित आयौ। हाटक निरमित ईंट गोसाईंहि आनि देखायौ ।।
कह्यौ कि अद्भुत ईंट यह रामकोट पर मैं लह्यौ। लह्यौ गोसाइँ ध्यान करि समाचार या विधि कह्यौ ।।
कह्यौ अजोध्यापुरी लच्छमी रूप बिराजत। सुबरन सर्व सरूप जाहि लखि सुर नर लाजत ।।
अंस तहाँको जानि तहाँई लै धरि आवौ। अति अनुचित अनुमानि जो ताहि बिछोह करावौ ।।
जद्यपि प्रभु यहि विधि कह्यौ, तदपि न भो संदेह गत। श्री अवध रूप नित गीत है, तहँ इमि संसै करहु कत ।।

दोहा

बोध करन हित मृदुल चित, प्रभु करुना अति कीन। पुरी रूप अद्भुत अगम, हरषित बरनै लीन ।।

छप्पै

यह अनादि अस्थली, नेति जेहि वेद बखानै। बिन अत्यंत हरि कृपा, जीव जड़ ताहि कि जानै ।।
करि दिसि नायक तनै, राम निज धाम गए जब। कुसावती एक नगर जाहि कुसडाभ कहै अब ।।
श्री कुश दच्छिन देह महँ, नगरी रचि रहे छाइ जहँ।
जब अवध अनीति अधिक भई, निज सरूप धरि गई तहँ ।।

दोहा

तब उतही संध्या करत तहाँ प्रगट भइ जाइ। जुवति बिलोकी कुँवर जब, कुसमै पूछि रिसाइ ।।

छप्पै

अवधपुरी मैं, रह्यौ पाइ दुख, तुमपै आई। करिए नाथ बिसोक जो निज कुल रीति चलाई ।।
सुनि अति आदर कियौ, बोध करि तुरत पठाए। भोर भए निज सैन साजि श्री अवध सिधाए ।।
ह्वै रजधानी आसोन तब, नीति रीति बहु थिर करी। सो कथा प्रगट रघुवंश महँ, ता कारण सुच्छम धरी ।।

(ख) और एक दिज दुखी दीन दच्छिन महँ रहइ। पावै अधिक कलेस सदा दुख दारुण दहई ॥
सो जस अवधको सुनौ कि है सुबरनमय राजत। जा देखे ते अलग दुरित दुख दारिद भाजत ॥
सुनि सो अति सरधा ते चलौ, विपुल काल गत आइ जब।
लखि औधपुरी जिमि और पुर, भो अति दीन मलीन तब ॥

सोरठा

नहिं प्रभाव कछु देख, लेस न पायो कनकको। कछु दिन जहँ तहँ पेख, चलौ दुखारी अमित ह्वै ॥

दोहा

निकसत नगरी सो लखौ, नारी वृद्ध सरूप। तिन पूछा तुम कौन हो, कहो वृतांत अनूप ।
मैं आयौ सुनि कै सुजस, अवध महातम पीन। सो न लख्यौ, तब तिन कहो, तुम महिमा नहिं चीह्न ॥

छप्पै

ब्रह्मा शिव जिह जपे सु यह है अवध अधारी। सत्त नाम अस नाम अयोध्या नगरी भारी ॥
रहत लोप कलि दृष्टि मलिन मन लखै न पारै। जन अनन्य विस्वास उपासक तेई निहारै ॥
तेहि भयौ न ज्ञान प्रबोध कछु, कह्यौ कि तब हम जानहीं।
जब कछु प्रभाव देखहिं प्रगट, तब प्रतीत उर आनहीं ॥

दोहा

हेतु विपुल कांकर परे, कहि एक लेहु उठाइ। लीन्हों दिज तबही लख्यौ सुबरन परम सुहाइ ॥
दै सुजीवका जनमकी, भइ पुनि अंतरध्यान। पाइ लोक परलोक सुख, चलो दिज जैति बखान ॥

चौपाई

कहि अनीत सोइ ठांव धरायौ। पर तिन संसै नास न पायौ ॥
तबै गोसाईं अन्तरजामी। प्रीति प्रतीति हेत करुनामी ॥
कह्यौ जो कछुक होइ संदेहू। तौ किन जाइ परिच्छा लेहू ॥

दोहा

जो तुमरे मन भावना, ल्यावो फेरि उठाइ। निज भावना समान अब, ह्वै है तुम्हैं लखाइ ॥

चौपाई

फेरि उठाइ ल्याइ जब देख्यौ। कहूँ कनक जो लेस न पेख्यौ ॥
कौतुक देखि भटकि कै रह्यौ। बहुरि गोसाईं तिन प्रति कह्यौ ॥

दोहा

तुम प्रतीति संसै जथा, तैसी होत लखाइ। चमतकार निज प्रगट करि, लीन्हो आपु छपाइ ॥

३२. अथ श्री मुक्तामनि संवाद प्रसंग

दोहा

मुक्तामनि एक साधु जन, सिंह पवरि पर बास। श्री स्वामी नंदलाल सों, सखा भाव सुखरास ॥
तिन कृत पद इक ललित अति, सैन समै रघुनाथ। सुनि गोसाइँ प्रमुदित भए, मिलि तिन कियौ सनाथ ॥
हित करि निज सम करि लियौ, ज्यौं दीपक सों जोति। मुक्तामनि करि मुक्ति जन राख्यौ आपु समोत ॥
रितु वसंत एक समै रस रंग भरे रघुनाथ। प्रमुदित खेलत फागु निज, अनुज सखा लिय साथ ॥

राग बसंत

खेलत बसंत दसरथ कुमार। सुर रंजन भंजन भूमि भार॥
द्वादस द्वारे कंचन निकेत। बैठे कनक सिंहासन सोभ देत॥
आगे हेम चीर सोहत वितान। धुनि पूरि रही नौबति निसान॥
गहे छत्र चमर तीनौ कुमार। पट पीट धरे सोभा अगार॥
सब कुँवरि छबीली सीय संग। पहिरे पट भूषन बिबिधि रंग॥
झोरिन अबीर पिचकारि साथ। उचरत वंदीजन सुजस गाथ॥
बाजत मृदंग बीना सितार। मंजीर तार अगिनित प्रकार॥
करै नृत्य अपसरा सरस गान। सब स्वांग विदूषक विधि विधान॥
सुभ अनुज सहित करुनानिधान। सुर कौतुक लखि विथके विमान॥
रस रंग बढ़ो बरनो न जाइ। भयौ बिबस हृदय आनंद समाइ॥
अति मगन भए सुर नर अचेत। बूड़े सुख वारिध थाह लेत॥
सो सुख अपार हिय नहिं समाय। सुनि गुन सु 'दास' बलिहारि जाय॥

दोहा

यह विधि खेलत फागु रस, रंग भरे सुख रास। जुगुल जाम ऊपर गई, जामिनि नृत्य विलास॥
अर्द्ध रातिके बीच नित सैंन करत सुखदानि। सो वितीत बिरिया भई, सुनत अपसरा गान॥
वृद्ध दायक दच्छ अति, निरत सकल गृह काज। मानहि पटरानी जिन्हैं दसरथ राजधिराज॥
कौसिल्या पठई जबै बोलन जाइ न कोइ। आलस ह्वै नृप उठि गए, मग प्यारीकी जोइ॥

(मुक्तामिणदास कृत) विष्णुपद-राग विहाग

सैंन करहु रघुबीर पियारे।
हौं पठई आई कौसिल्या बड़े भाग उठि सदन सिधारे॥
जुगुल जाम जामिनी बितीती नैनन नींद भरे रतनारे॥
प्रमुदित सरद कोकनद मानो मंद समीर मलै कर धारे॥
रतन जड़ित मनिमय मंदिर महँ रुचि रुचि सोभित जनक सुता रे।
मग जोवत सहचरी सियाकी सैंन उचित सब सौज संवारे॥
अति आलसजुत भए हैं भरत जू, लखन लाल रिपुहन उजियारे॥
सुनत सकल दै पान विदा करि, उठे 'दास मुक्ता' जब वारे॥

(३३. अथ अवध खंड तीर्थाटन प्रसंग)

दोहा

अवध बास बहु काल करि, लाहु जन्मको लीन्ह। सह समाज निज गवन तब, नीमसार कहँ कीन्ह॥

छप्पै

(क. रौन्हाई)—
प्रथम रुन्हाई लखि अनादि थल बासा कीन्हो। श्री रवि कुल अँबरीष नृपत सुकृती जिन्ह चीन्हो॥
जासु तनै चक्कवै मानधाता जस राजत। सुनि रावन चढ़ि गयो द्वैत आयो जहँ गाजत॥

सुइ रावनादिक पच्छिन जित्यौ, भयौ पराजय तासु जब।
सो विजई अस्थान लखि, धरो रौन्हाई नाम तब ।।

दोहा

(ख. सूकर खेत)—

दुतिय बास अघनास किय, पावन सूकरखेत। त्रय जोजन जे अवध ते, दास दरस सुख हेत ।।
जहँ श्री गुरु नरसिंह सन, सुनी कथा लहि ज्ञान। सो अनादि तीरथ विदित, सगुन देव अस्थान ।।
श्री नारायन जगत पति, जग हित जक्त अधार। धारो बपु बाराह जब, आदि पुरुष औतार ।।
शब्द घुरघुरा ते भयौ घाघर सरित प्रवाह। देव जच्छ गंधर्व सब, अस्ति प्रलोवत ताह ।।
भई बिमानन भीर बहु, सत जोजनके फेर। तब अज्ञा भइ सबन कहँ, करौ पुन्य थल हेर ।।
चली विमानन भीर तब, श्री बाराह समेत। सरजू संगम घुरघुरा, तहँ बन सूकर खेत ।।
सत जोजनकी सभा भइ, वेद विदित उपचार। देवनके कारज सकल, कीजे जगत उधार ।।

(ग, पसका)—

षट जोजन है अवध ते, पसका सो परमान। बास कछुक दिन करि तहाँ, चरचा वेद पुरान ।।

(घ, सियबार)— छप्पै

तहँ ते चलि दुइ कोस ग्राम सियबार कहावै। सीता जू को धाम ग्राम सो वेदन गावै ।।
बनो अजहुँ सियकूप अनूपम सुधा पानि जहँ। दासनको अवलंब करै परजटन जाय तहँ ।।
तहँ रहि तब संगत ह्वै बहुरि,करि सब तीरथ जहाँ तहँ।यहि मिसि आए ढिग लखनपुर श्री हनुमत अस्थान जहँ।।

(ङ, लखनपुर)—

तहाँ बास करि भजन बहुरि लछिमनपुर आए। लखनलाल अस्थान निरखि लोचन जल छाए ।।
कियौ वास विश्राम पुरी सेवनके कारन। विषै कूप तम परे तिन्हें गहि बांह उबारन ।।
सब ग्रस्त उदासी जोगिजन, अभिमत सिख आसिख लह्यौ।मनो सुकृत सवनको रूप धरि,आइलखनपुर मो रह्यौ।।

प्रमिताक्षरा छंद

कहुँ दीननको प्रतिपाल करै। कहुँ साधनके मन मोद भरै ।।
कहुँ लखनलालके चरित बचै। कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचै ।।
कहुँ रामायन सुभ गान सचै। उत्साह कोलाहल भौर मचै ।।
कहुँ आरत जनके दुःख हरै। कहुँ अज्ञानन पर ज्ञान धरै ।।

(लखनपुरके भाटकी कथा)— छन्द

दीन एक भाट बुद्धि ज्ञानके दिए कपाट। अच्छरौ न कहै सोइ ज्ञान मान ते पराट ।।
कृस सरीर अति अधीर, पाँवर जड़ रजत जाट। विलख वदन काढ़ि रदन आनि धरो पद लिलाट ।।
जीउका विहीन और सब विधान ते कुठाट। चारिहू चने न लाहु वस्त्रहू लहै न टाट ।।
बुद्धि भाग कर्म हीन, लालची चहो बराट। धोबी कैसो स्वान फिरै, नेकहू न घर न घाट ।।

चौपाई

कोमल चित जब ताहि बिलोका। कृपा दृष्टि ते कीन्ह बिसोका ।।
दई सामर्थ काव्यकी ऐसी। सरस आपनी बानी जैसी ।।
अरु संपति दीन्ही बहुतेरो। रहित विघ्न निरुपाधि घनेरी ।।

दोहा

करै काव्य सो लखि परै, मनो गोसाईं मान। बसत लखनपर अजहुँ सो सुभग तासु संतान ॥

(च. मड़िआउँ)—

लखन नगर ढिग ग्राम इक, नाम सुभग मड़िआउँ। बसै तहाँ एक भक्त जन, कायथ भीषम नाउँ।
सो गायो कोउ ग्रामको, रामचरन विस्वास। नखसिख बर्नन चर्चरी, करि निज बुद्धि प्रकास ॥
सो सुनि महा प्रसन्य भे, दरस हेत आसक्त। चले मिलन मड़िआउँको, रह जहँ भीषम भक्त ॥
तीन कोस आए निकसि 'चनहट' ग्राम सु नाम। बैठे तहँ एक कूप ढिग, अँचयो जल अभिराम ॥
जल बरनन ताको कियौ, भयौ अति पावन सीत। राजत 'सेख सराइ' ढिग, मग बिच अजहुँ पुनीत ॥
चौधराइ सुनि दिजन की भीषम कानोगोइ। जानि परस्पर द्रोह तहँ, पूछे कह सब कोइ ॥
करि विचार मन महँ ठयो, अब नहिं तिन गृह जान। बढ़ै गर्व तिनके अधिक, होइ सकल हित हान ॥

सोरठा

(छ. मलीहाबाद)—

फिरे पाइ संवाद, गवन कियौ तहँ ते सुभग। पहुँचे मलिहयाबाद, दरस लाहु-दासन दियो ॥

दोहा

मलिहयाबादी भाट इक, परम वैष्णव तेउ। तिन बहु विधि पूजा करी, बहु प्रकार करि सेउ ॥
तब निज पुस्तक दिय तिन्है, रामायन रामैन। अजहुँ विराजत तिन सदन, हरि भक्तन सुख दैन ॥
सिंहासन आसीन रहि, दरसन पावहिं संत। ते करि पूजा आरचा, सुख संपदा लहंत ॥
मन वच कम जिन्हैं भयो, रामायन सों प्रेम। पाठ धारना श्रवन करि, लहत सदा सुख छेम ॥

(ज. कोटरा)—

तहँ ते चलि अस्नान जिय, जरि प्रभावती आस। बालमीक आश्रम जहाँ, श्री निवास सुखरास ॥
निकट रसूलाबाद के, ग्राम कोटरा नाम। जहँ अनन्य माधौ भए, विदित जासु गुन ग्राम ॥

छप्पै

लरिकाई ननिहाल पच्छ रहि कृषी बचावैं। चुगहि जो पच्छी खेत, तिनहिं नहिं नेकु सतावैं ॥
देख्यौ तिन जब खेत, नाज को लेस रह्यौ नहिं। गुजरन सांसति दुरे सो तरु कोटर अबिलौ तहँ ॥
तहँ कृपा कपाली की भई, दरस सरस रस सुख लह्यौ। रहे मगन ब्रह्म सुख लीन ह्वै, सो न जात मोपै कह्यौ॥
चहुँ निसि ढूँढत फिरें लोग, कहुँ खोज न पावैं। माता रोदन फिरै, विकल निज मति कलपावैं ॥
लहि बाल न कछु सोध, सु तरु तर रोदन कीन्हों। सुनि मृदु चित तब निकसि. दया करि दरसन दीन्हों
माता रोदन करहु जनि, को काको सुत मातु पितु।
इक प्रनतपाल रघुनाथ बिन, और कहू जनि देहु चितु ॥

विष्णुपद माधो अनन्य कृत

ऐसो सोच न करिए माता। देव लोक सुर देह धरी जिन किन पाई कुसलता ॥
पाराकर्मी को भीषम से, करन दानि से दाता। जिनके चक्र चलत है अजहूँ, घरी न भयौ बिलाता ॥
मृत्यु बाँधि रावन बसि राखी, भयौ गर्भ भरुहाता। तेऊ उड़ि उड़ि भए काल बस, ज्यों तरिवरके पाता ॥
सुनि जननी अब सावधान ह्वै, परम पुरातम बाता। माधो अनन्यदास भे हरिके, कौन काहि को नाता ॥

सोरठा

करि बहु विधि सनमान, मातहि दीन्हों ज्ञान दिढ़। करहिं राम गुन गान, नित नूतन लौलीन चित ॥

छप्पै

यहि प्रकार लहि राम कृपा भवसिन्धु किनारो। ह्वै विरक्त हरि लीन सुजस सब जग विस्तारो ॥
ठाकुर द्वारा रचि विसाल, अजहूँ सो भ्राजत। धवल धाम अभिराम महा अति दीप बिराजत ॥
तिन्हैं अनन्य माधो मिले, अति आनंद भयो परसपर।
एक पद बनाइ निज दीनता, अति सप्रेम पढ़ि भेंट कर ॥

(गोसाईं कृत विष्णु पद)

"मैं हरि पतित पावन सुने। हौं पतित, तुम पतित पावन, दोऊबानक बने ॥
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने। और पतित अनेक तारे जात का पहँ गने ॥
जमन नाम अजान लीन्हो नरक जमपुर मने। 'दास तुलसी' सरन आए राखिए अपने' ॥

दोहा

सुनिकै पद गदगद भए, मिले पुलकि उठि धाइ। निज पद प्रतिउत्तर दियौ, करि प्रबोध जस गाइ ॥

(अनन्यमाधौदास कृत विष्णुपद)

तब ते कहाँ पतित नर रह्यौ। जब ते गुरु उपदेस दीन्हो नाम-नौका गह्यौ ॥
लोह जैसे परसि पारस नाम कंचन लह्यौ। कस न कसि कसि लेहु स्वामी, अज नु चाहन चह्यौ ॥
उभरि आयौ विरह वानी, मोल महँगे कह्यौ। खीर नीर ते भयो न्यारो, नर्क ते निर्वह्यौ ॥
मूल माखन हाथ आयौ, त्यागि सरवर मह्यौ। अनन्यमाधौदास तुलसी भव जलधि भव निर्वह्यौ ॥

दोहा

रहि तहँ कछु सतसंग करि, विविधि भाँति सुख पाइ। ब्रह्मावर्त सु देवसरि दरस परस करि जाइ ॥

(भ. बिठूर में) बाल्मीकि आश्रम दर्शन. दोहा

बाल्मीकि आश्रम निरखि, पूजी सिय पद धूरि। भए प्रेम व्याकुल, सिथिल गात, द्रिगन जल पूरि ॥
श्री जानकी सरोज पद, अविगति भूमि निहारि। बार बार तन पुलक ह्वै, दसा सरीर बिसारि ॥
श्री महाराज कुमार सुभ जन्म भूमि जिय जानि। आश्रम आदि अनादि कवि, लखि पुनि पुनि पुलकानि ॥
बहु विधि सुमिरन भजन करि, विमल बात सुख भूरि। लहि सुरसरि अस्नान सुख, चले सुकृत मयपूरि ॥

(ज. संडीला) छप्पै

गुनत राम गुन विमल सँडीले पहुँचे जाई। गए एक दिज द्वार बोलावन चहि तब ताई ॥
दिज घरनी करि क्रोध, कटुक कह्यौ जाचक जानी। बिप्र नहीं घर, जाहु, न भिच्छा बास ठेकानी ॥
हँसि द्विज द्वारे को दरस करि, चले तहाँ ते मृदुल चित।
खोजन लाग्यो ठांव कहुँ, सुभग सुखद निसि बास हित ॥

दोहा

नगर लोग एक बोलेऊ, नाइ चरन पर भाल। रामचन्द्र को बाग यह, नगर निकट सो विसाल ॥
नाम सुन्यौ निज काम-तरु, मगन प्रेम आनंद। तहाँ जाइ विश्राम किय, दासन कुमुदिन चंद ॥
सुन्यौ विप्र जब आइ सो, समाचार सुभ नाम। खीझि नारि, सिर नाइ पद, करि बहु बिनै प्रनाम ॥
कह्यौ कि प्रभु अब चलिये निज, कीजे भवन पुनीत। तासु बोध करि विविध विधि, अतिहि प्रीति की रीति ॥

दरस मात्र तब द्वार को, रह्यो मनोरथ मोर । वा ग्रह जनमौ चहत एक, किंकर नंद किशोर ।।
विदा कीन सनमानि तेहि, बहु लोगन सुख दीन्ह । प्रात नाइ रघुनाथ पद माथ, गवन पुनि कीन्ह ।।
(ट) ग्रामपती इक ग्राम को बैठो करत समाज । वाही ढिग निकसे सहित प्रतिमा श्री रघुराज ।।
सो न नयो, नहिं आदर्‌यौ, नहिं भो सो उठि ठाढ़ । उठिहू पग नहिं सिर धरो, प्रभु कहि तब महि छाड़।।
अस कहि प्रभु आगे चले, तुरत काल कछु पाय । और भूमिपति निकट को, लीन्हीं भूमि छड़ाय ।।
अजहूँ लगि पाई नहीं, करि करि जतनन ओघ । मरि मरि गए लहे नहीं, भक्तन वचन अमोघ ।।

छप्पै

(ठ) और ग्राम ढिग गए, तहाँ कायथ कछु बैठे । करि आदर भए संग, सो जब लगि ग्रामहि पैठे ।।
पूछि जीविका वृत्ति, भयौ निज कहा तिहारो । भाट बसै यहि ग्राम, करै निरबाह हमारो ।।
सो कह्यौ कि तब अतिही भलो, भयौ करै निरबाह नित ।
अजहूँ लगि उन कायथन, है भाँटन सों राह रति ।।

(ड) पुनि चलि कै एक ग्राम मध्य बासा लिय चाह्यौ । विप्र एक को द्वार देखि अति स्वच्छ सराह्यौ ।।
तहाँ चह्यौ विश्राम, क्रोध करि दिज अस भाख्यौ । हम आपुहि हैरान, न काहुइ चाहत राख्यौ ।।
तब कह्यौ रहो तुम, ठाँव नहिं, हमहि रहन को अति घनो ।।
ताही छिन गति ह्वै गई, विप्रन जिमि निज मुख भनो ।

छन्द

तहाँ जोलाहे सो करत पाई । वृतांत दरसी ह्वै त्रास खाई ।।
ते आइ आगे ह्वै मग बनायौ । सुपास आश्रम भलो देखायौ ।।
कह्यो कि अज्ञा जो कछु करीजै । सकोच परिहरहि निदेस दीजै ।।
इहां सो सब राम की कृपा पाही । दाया तुम्हारी सो खोरि नाहीं ।।

दोहावलियां

"बरखि विस्व करि हरषि धन, हरै गात की त्रास । 'तुलसी' निज गुन दोष ते, जल ते जरत जवास।।
बरसत करषत आवही, हरषत अंजुलि भान । 'तुलसी' चाहै संत सुर अति सनेह सनमान" ।।
(ढ) यहि विधि लोगन देत सुख नोमषार को जाइ । अति सप्रेम तीरथ किए, रहे अवध महँ छाइ ।।

(३४ वंशीधर मिश्र प्रसंग)

(क) कह्यौ सँडोले विप्र गृह, प्रगट होइ हरिदास । सुनो चरित्र विचित्र तेहि, कियौ जो सुभग प्रकास ।।

चौपाई

तेहि दिज के सुत भा अति सुन्दर । रूपवंत कुल कंज दिवाकर ।।
बंसीधर अस नाम जो भयऊ । जथा नाम गुन बुधि कृत ठयऊ ।।
मुरली मोर चंद्रिका धारी । नृत्रत गावत गुन गिरिधारी ।।

दोहा

जुवा अवस्था यों रह्यो, मगन प्रेम आनंद । संसारी व्योहार कछु, नहिं जान्यो कुलचंद ।।

चौपाई

(ख) रोगी एक जो रकत बिकारा । भयो रोग बस अति बिकरारा ।।
बहु उपाय कियौ कछु न छमायो । करि भेषज अगिनित न बिसायौ ।।

भा निरास तजि के निज बासा। ठाकुर द्वार चलो धरि आसा ॥
विकल असक्त चलै नहिं पावै। दारुन रोग जो अधिक सतावै ॥

दोहा

तब करुनानिधि दया करि, स्वप्न दिखायौ ताहि। बंसीधर एक मिश्र है, नगर सँडीले माहिं ॥

चौपाई

ताको जूठो भोजन लेहू। मिटिहि रोग, नहिं कछु संदेहू ॥
तदपि कछू निश्चै नहिं आन्यौ। चलौ सोई मग जो मन ठान्यौ ॥
ता दिन फिरि सपनो तेहि भयौ। आज्ञा भई तहाँ किन गयौ ॥
अब आज्ञा सिर धरि तहँ जाहू। पैहौ सुख, मिटिहै दुख दाहू ॥

छप्पै

कृष्ण रूप मम हुतौ जबै, तब संग रह्यौ है। नाम मनसुखा ग्वाल, सो अब दिज जन्म लह्यौ है ॥
और जो लच्छन सबै, प्रभू नै ताहि बतायौ। चहौ तहाँ सोइ नाम प्रथम को लै गोहरायौ ॥
यह नाम जो पूरब जन्म कर, लै ग्वालहि कहि टेरियौ। सुनि सुनाम जो आह तहँ, वंसीधर कर हेरियौ ॥

चौपाई

अस सुनिकै मन आनंद कीन्हों। फिरिकै तुरत बात सोइ लीन्हो ॥
पहुँचे जबै सँडीले माहीं। गे बंसीधर के ग्रह पाहीं।
पूरब जन्म जो ताहि सिखायौ। ले सु ग्वाल कहिकै गोहरायौ ॥

दोहा

परी श्रवन जब सो गिरा, भोजनहू तजि धाइ। लीन्हो नहिं आचमन मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥

चौपाई

द्वारे आइ चक्रित जब हेरो। हे विधना मोहि कौने टेरो ॥
पाइँ परत रोगी तहँ पायौ। त्राहि त्राहि कहि ताहि उठायौ ॥
पूंछो समाचार, तिन कह्यौ। सुनि दुराव अतिही दिज गह्यो ॥
सो ढिग चरन गहे कहि पाही। अब मोहिं लीजै नाथ निबाही ॥
निज ठाकुर की अज्ञा मानी। करहु कृपा मोहि सेवक जानी ॥

दोहा

कहौ तबै हरखाइ तेहि, यह न जनावौ काहु। कछु मिष्ठान अमानिया, ल्यावहु बेगिहि जाहु।

भुजंगप्रयात

तबै धाइकै सो बतासा लै आयो। धरे आइ आगे, प्रभू भोग लायौ ॥
प्रथम द्वै बतासा जो निज मुख्य पायौ। रहा जो सबै सेष ताको खवायौ ॥

दोहा

भई दसा ताकी सुभग, कंचन काय लखाइ। प्रभु गुन गन अद्भुत गनत, चलो सदन सुख पाइ ॥
कहँ लग द्विज के गुन कहौं, भक्त रीति बहु भांति। पुनि कौतुकमय अति सरल, जानत पाँच न सात ॥

चौपाई

बाल सुभाव धरे अति भोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
इमि विचित्र हरिजन सुखदाई। सबन देत सिख भजन उपाई ॥
करत और उपदेस सुखारो। कठिन काल लखि राम सँभारो ॥
सुत बित नारि सकल परिवारा। दुख रूपी तेहि सब संसारा ॥
जेहि तू मगन, सो काम न ऐहै। अजहूँ जारत, तबहूँ जरैहै ॥

(गोसाईं तुलसीदास कृत) दोहा

"हरे चरहिं, तापै बरे, फरे पसारहि हाथ। 'तुलसी' स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥

(बंशीधर कृत) कबित्त

"जिन्हें तू मगन, ते न तेरे, तिन्हें ताकि देखो।
नगन निकारि कै चढ़ाइबे को चीता है ॥
सपने की संपदा सुलभ साथ सबही के।
सोई हित लाग्यो, हरि नाम अनहीता है ॥
कहैं 'मिश्र बंशीधर' ऐसी कबहूँ न आई।
मति, जैसी चहूँ छहूँ ठहराय गीता है ॥
चेतो नाहिं परैगो या तारी ताके चलो अब।
सीता राम भजि ले जनम जात बीता है" ॥

(गोसाईं तुलसीदास कृत) दोहा

"तुलसी, विलँब न कीजिए, भजि लीजे रघुबीर। तन तरकस से जात है स्वाँस सार के तीर ॥
कासी विधि-बस तन तजै, हठि तन तजै प्रयाग। 'तुलसी' जो फल सो सुलभ राम नाम अनुराग" ॥

(बंशीधर मिश्र कृत) कवित्त (सवैया)

"जो फल ना कुरुक्षेत्र में विप्रन कंचन को भुव दान दिए ते।
जो फल जोग औ जग्य किये नहिं, जो फल धूमहू पान किए ते ॥
जो फल ना महि दान दिए, सब तीरहुँ परिक्रमे किए तें।
जो फल 'बंसी' सो कोटि उपाइ ते, सो फल राम के नाम लिए ते ॥

चौपाई

(घ) इमि उपदेस परम उपकारा। हेत रहित परहित उद्धारा ॥
बिचरत यहि आचरन सुभाए। प्रभु,गुन गान करत सचु पाए ॥
मम स्वामी के निकट निवासी। रहित सदा आनँद सुखरासी ॥
एक दिस रास रचो सुखसिंधा। दयालदास स्वामी गुरुबन्धो ॥

दोहा

बंसीधर तहँ मगन ह्वै, गावत गुन गोविंद। संग रहस धारीन के, मगन प्रेम आनन्द ॥

चौपाई

नाचैं बहु विधि क्रीड़ा करहीं। अति आनन्द उमगि उर भरहीं ॥
दयालदास कृत पद तिन गायौ। संगी द्विज सुख-सिन्धु समायौ ॥
परो प्रसंग एक तहँ ऐसो। प्रेमी प्रान हरन को जैसो ॥

छंद

सु प्रसंग सुनि सप्रेम चित्त हारियतु है। दयालदास रीझि रीझि प्रान वारिमतु है॥

दोहा

कह्यो अन्तरा जवहिं सो, सरस रास रस रंग। गिरे भूमि घर ते विकल, मनो प्रान को भंग॥
भयो सुचित जब बहुरि इक, गायौ पद अनुराग। भो उत्साह विहार की, श्री राधिका विराग॥

विष्णुपद

सुधि करत कमल दल नैन की। वै दिन बिसरि गये मनमोहन, बाँह उसीसे सैन की॥

त्रोटक

सो सुनि उसीसे कर दियौ। जो कछु सुन्यौ सोई कियौ॥
करि प्रेम नेवछावरि हियौ। को करै जग प्रेमी बियौ॥
तब प्रान परिहरि तन चलो। ब्रह्माण्ड भेदत मग भलो॥

मालती छंद

प्रेम प्रन हुतो जैसा। कियो निरवाह तैसा॥
नेहके बान लागे। प्रान लै प्रान भागे॥

छंद

गति सुभग सँवारी, जन्मको लाहु लीन्हा। प्रीतिकी अवधि जैसी, सो प्रेम परिमान कीन्हा॥

दोहा

बाना बाँधो नाथको, भलो निबाह्यो सूर। जीवत ताही रँग रँगो, मरन सोई रस पूर॥
बंशीधरकी मीचु सम, कह्यो चारि फल काह। जियत मरत हरिसौं कियौ, प्रेम प्रीति निर्वाह॥

चौपाई

ताही समै साधु सुखदाई। महापुरुष साधा हलवाई॥
खैराबाद सो आश्रम राजै। कथा पढ़ै नित नेह समाजै॥

दोहा

निज समाज सों यों कह्यो, चितैं बिमान अकास। देखो बंसीधर कियौ, गवन सुभग सुर वास॥
दिव्य दिष्टि बिनकौ लखै, तब इमि कह्यौ बखानि। नगर सँडीलो दखिन दिसि, जोजन आठ प्रमान॥
वंसीधरके नाम इक, बसे 'विलोंधी' ग्राम। सवा पहर दिन रहस बिच, गवन कियो सुरधाम॥
अंतर जोजन पाँचको, ह्यां ते है सो ठाउँ। तिन प्रतीति हित कहि दियौ, सकल ठेकाने गाउँ॥
गति औतारी जननकी, लखै सुलच्छन लोग। जो तन मन हरि रँग रँगे, त्यागि विषै रस भोग॥
(ङ) तिन दिजको बालक हुतो, परम भागवत सोइ। मोर चंद्रिका मुरलिको, बढ़ो प्रेम अधिकोइ॥
बाना मुरलीको धरे, नाम सो सुन्दर स्याम। स्वामहिके पुनि रंग रँगे, मन बच क्रम अभिराम॥

छप्पै

सुनि एक हाकिम जमन, परीछा हेत बोलायौ। हमहि सुनावाहु नाद, सो बहु विधि त्रास देखायौ॥
कह्यो कि रे पापिष्ट कलावंत हमहि न जानो। हरि तजि औरन हेत, न नादत निश्चै मानो॥
तब नहिं मान्यौ जमन जड़, त्रासित करि बंधन कियौ।
दिन दूसरे गिलान करि, प्रान प्रान हित कहँ दियौ॥

प्रभुके बंसी बानि पर, तजो देह छन भंग। देव न सरवरि करि सकै, बरनौ कहा प्रसंग ॥
लखि कलिकाल कराल मन, छाड़ो तन तृन तोरि। करी सुरति गोलोककी, गहि बंसी सुख डोरि ॥

३५. अथ भक्त पिहानीको प्रसंग

(क) दोहा

बसौ गोसाईं अवध जो, नोमसार सुभ थान। विपुल काल रहि विविधि विधि, करत राम गुन गान ॥
सुन्यौ भक्त एक भागवत, जिनके सुभ गुन ग्राम। बसत पिहानी नगर दिज, सुकुल बंस अभिराम ॥
दरस बद्रिकाश्रम कियौ, आवत मग किय बास। वृच्छ तरे जहँ प्रेत एक, रह दायक दुख रास ॥
बास करत हटक्यो सवन, राकसको भय जानि। जीवनको दुखदानि है, और सो हरता प्रान ॥
कह्यौ कि डेरा लै चुके, अब तो हमरे राम। होनहार सो अमिट है, आदि मध्य परिनाम ॥
निसि प्रवेस आयो विकट, महा भीम तम कूप। कर लीन्हें एक तरु सिला, अति विसाल गिरि रूप ॥
देखि भीम सुमिरन कियौ, आए पवन कुमार। बिकट रूप महाबीरको, लखत भयौ बिकरार ॥
जिव अवसेखन गति भई, तब करि बिनै उदार। प्रभु रक्षा करवाइए, चहत होन जरि छार ॥
काहू जिनि दुख देहु, पुनि छाड़हु यह अस्थान। पुनि याहीकी सप्थ करु, तब बाँचहि तव प्रान ॥
ह्वै बिनती जब बचन करि, तब रच्छा करवाइ। कह्यो सिला जो विसाल यह, मम अस्थान पहुँचाइ ॥
पाइ सो रच्छा प्रानकी, सिला तहाँ धरि आइ। बिदा भयौ पुनि उतर दिसि, हाथ जोरि सिर नाइ ॥

चौपाई

(ख) तहाँ ते इंद्रप्रस्थ चलि आए। सुनत साह सनमान कराए ॥
पुनि निज निकट सो बास देवायौ। सेवा बहु प्रकार करवायौ ॥
विपुल काल तहँ बासा कीन्हों। साहहि बहु प्रकार सुख दीन्हों ॥
एक दिन पूछौ साह जोतिषिन। दुइज चंद कब होइ कहँ पुनि ॥
दिजन दुइजके दुइ दिन कह्यौ। तहँ एक जच्छ उपासक रह्यौ ॥
तिन हठि कह्यौ दुइज हइ आजू। झूठ कहत दिज बचन बेकाजू ॥
विप्रन पुनि विचार करवायौ। कहूँ दुइजको लेस न पावौ ॥
संध्या भई, दिवस जब नास्यौ। थारीको रज चंद्र प्रकास्यौ ॥
जच्छ गहे कर चढ़ो अकासा। सबहिन लख्यो सो चंद्र प्रकासा ॥

दोहा

भए निरादर सकल दिज, गए सुकुलके पास। सुनि सो जान्यौ, छल करि, कीन्हों चंद्र प्रकास ॥
तब विप्रन बिनती करी, मिटत बेद मरजाद। होत निरादरको अजस, बाढ़त दिजन विषाद ॥
सुमिरन करि तिन पवन सुत, चढ़ि अकास पर जाइ। मारि चरन सोइ चंद्रमा, दीह्नो धरनि गिराइ ॥

छप्पै

लखि कौतुक सुलतान, छलीको दूरि करायौ। पुनि तेहि जच्छहि प्रेरि, साहको भय दिखरायौ ॥
बहु सो आदर पाइ, दिजनको फिरि झूठा करि। करि असत्य परलाप विविध नरकी आयौ सरि ॥
तब कह्यौ साह ते सुकुल अस, सबको बल सुमिरन भजन।
जपमाल लेहु हम दुहुनकी, परचो हित डारो अगिन ॥

दोहा

जो असत्य सो जरैगी, सत्य न पावै नास। ठानि मंत्र बहु कष्ट धरि, कीन्हों अगिनि प्रकास ।।
दोउ माला मँगवाइके, अगिनि समर्पन कीन। सारी निसि पावक दगध, प्रात तासु सुधि लीन।
वाकी माला भस्म भइ, इनकी तसम न लेस। करि विडंबना विविधि तब, ताहि निकास्यौ देस ।।
इनहि साह पदवी दई, भगत सिरोमनि राम। रह्यौ सुजस जग छाइ कै, पुनि आयौ निज धाम ।।
इह अदभुत अचरज भयौ, देखत सिला प्रहार। संसै मिटि सो सिला ते, मंदिर रचो उदार ।।
(ग) सुन्यौ गोसाइँ सुजस इमि, नीमषारमें आइ। मिले परसपर सुख लह्यौ, गुष्टि करी बहु भाइ ।।
कीन्ह गोसाइँ प्रश्न एक, कहिए स्वामि सुजान। कौन द्वार निज प्रीतिको, मिलै जो सारंगपान ।।
जीव लहै किमि ईस को, कहिए तासु उपाइ। लहि भवसागर पार जेहि, रहि सुख सिंधु समाइ ।।
बीज मंत्र उपदेश गुरु मुख दुराव हम जान। और विचार जो तुम कहौ, सोइ सिद्धांत प्रमान ।।
कह्यौ गोसाइँ है यही, परम तत्व सुखरास। यह वितरेक न और है, कह श्रुति संत प्रकास ।।
या मिस प्रभु के गुनन तकि, किय बितीत बहु काल। आवन पावन तहँ बढ़ो, संत सनेह कृपाल ।।
पुनि बिनती करि विविधि विधि विदा भए सुख पाइ। नीमषार आश्रम अवध, बसि प्रभुके गुन गाइ ।।
भए विदा पुलकत सजल, तीरथ बिछुरन हेत। आइ रहे मिसरिख बहुरि, सकल समाज समेत ।।

३६. अथ बंसीवट प्रसंग

दोहा

ग्राम एक जैरामपुर, मिसिरिखि पूरब भाग। भूमिपाल तेहि ग्राम को, मिलो सो बड़ अनुराग ।।
नाम सुनत जैरामपुर, कियो गोसाइँ छोह। तब तिन अपनो दुख कह्यौ, मरहिं तुरुकके ग्रेह ।।
नृपति महा दारुन दुखद, रहत हमारे ग्राम। चरन धारिए कृपा करि, पूजै सब मन काम ।।

छप्पै

लखि सो प्रीति को भाव, नामको नाता मान्यौ। पर दुख दुखी दयाल, सहज तहँ कीन्ह पयानौ ।।
वृन्दावन जब रहे, तहाँ एक सहज सुभाए। सुखि डार बट छरी, सो प्रभु सहजहि रखवाए ।।
कहि बंसीबट परसाद, सो गाड़ि जमायौ, दियो जल।
तहँ कह्यौ थापना बट रुचिर, व्याधि नास हित करि अचल ।।

दोहा

अगहन सुकुला पंचमी, राम व्याह उत्साह। सदा रहस बट तर करेहु, होइहि सब सुख लाहु ।।

चौपाई

एक दिन रहि तहँ कीन्ह पयानो। बट साखानि छिप्र हरिआनो ।।
पलुहै लाग सो वृच्छ सुपासा। अलपकाल बढ़ि लाग अकासा ।।
प्रीति पेखि दुख दूरि पराने। मिटे ताप, परिताप पराने ।।

दोहा

बट बढ़ि भो विस्तार अति, छाया बिसद गँभीर। श्रुति अज्ञा तेहि तर अजहुँ, होत रहसकी भीर ।।

चौपाइ

एक समै हाकिमकी त्रासा। भाजो ग्राम छाड़ि निज बासा।
समै पंचमीको जब आयो। हिम रितु अगहन मास सोहायो ।।
ग्रामपति मन बिसमै छायो। भागे ग्राम न बनत बनायो ।।

दोहा

दरसन लगि निज नेम हित, अर्द्ध राति सब आइ। देखो वंसीवट तरे, होत रहस सुखदाइ ॥

सोरठा

अद्‌भुत लख्यौ चरित्र, बहु मृदंग धुनि बीन की। होत रहस्य विचित्र, गावत सोइ पद रहस के ॥

दोहा

नृत्य सब्द रह्यो छाइ कै, अरु प्रकास अधिकाइ। पै अदिष्ट सब रूप है, सुनि धुनि दसा सिराइ ॥
अजहूँ वंसीवट तरे, रुचिर रहस की रीति। ग्रामपतिनके बंस मो, चलो जाइ सौ नीति ॥
बसत धौरपारा निकट, नदी सरस्वती लागि। तासु निकट जैरामपुर, विदित रहस जग जागि ॥

(क) (३७. प्रत्यागमन प्रसंग)

तहाँ ते चलि आए वहुरि, खैराबाद सुजान। सकल सराहै भाग निज, करि आदर सनमान ॥
मिलि तहँ साध सहेत करि- दीन बचन वहु भाखि। लीन प्रेम ह्वै अति सुफल, माथ चरन तर राखि ॥
दै करि आसिरबाद तिन, आए घाघर तीर। जानि अवध सनबंध जिय, नैनन्ह आयौ नीर ॥

अथ रामपुर प्रसंग

(ख) दोहा

अवध रूप छायौ द्रिगन, उमग्यौ प्रेम अपार। मगन ध्यान रस दंड युग, दसा सरीर बिसारि ॥
पूजि विविधि करि आरती, अतिहीं प्रेम अधीर। वस्तु भावना भवन भरि, चले नगर रघुबीर ॥

छप्पै

आगे दई चलाइ वस्तु भरि दुइ जल-जाना। सह समाज चढ़ि चले करत रघुपति गुन गाना ॥
सै लख को एक ग्राम, रामपुर नाम है ताको। रोकि अगमनी नाव, अठालो है यह काको ॥
अब बिन जगाति नहिं छूटिहैं, कह्यौ बहुत, तिन मान नहिं।
जस जाति कुजाति जगाति के, काहूकी जेहि कानि नहिं ॥
असवारीकी नाव, जबै पहुँची तेहि ठाऊँ। साधुन ही बहु कह्यौ, बतायौ जद्यपि नाऊँ ॥
ताहू पर नहिं मान, तबै तिन पूछ गोसाइँ। कहा ग्रामको नाम, कौन भुइधर यहि ठाईं।
कह्यौ हृदैरामको ग्राम यह, नाम रामपुर विस्व मन। छत्रि जाति तन तदपि है, रामदास मन नाम जन ॥

दोहा

तब निज मन अनुमान किय, अब ऐसे सुभ ठौर। आवै वस्तु जो काम तौ, हमहि न चाहिय और ॥
वस्तु अनेक अमोल अति, अरु बहु जिनिसि सुदेस। सब छाड़ै ज्यौं भेट किय, साध नरेस धनेस।

छंद चौपैया

तब हरखि गोसाइँ, बिनै सुनाई, अब मोहिं अज्ञा दीजै।
मम भाग बड़ाई, वस्पु भाव जो अंगीकार करीजै ॥
हाँकौ जलजाना, चले सुजाना, जोजन भरि जब आए।
सुनि ग्रामपती यह बरजि विविधि पुनि नौका चढ़ि चढ़ि धाए ॥
बहु सीघ्र चलाई, पहुँचे आई, सादर सीस नवाए।
करि बहु मनुहारी, बिनैनुसारी, नाथ न जाहु बराए ॥

अब परिश्रम कीजै, जग जसु लीजै, पावन भवन करीजै।
हम सुकृत न छीजै, सोइ करुना करि, पदवी दासन दीजै॥
बिनती बहु जानि, नेकु न मानी, तब कीन्ही बरियाई।
सब भए उतारे भागन भारे, नौका खैंचि चलाई॥
यहि विधि लै आए, अति सुख पाए, अस्तुति बहु विधि लाई।
अति आरति करि करि, आनँद भरि भरि, दियौ बास सुखदाई॥
सेवा बस कीन्हें, अति सब लीने, ब्रह्महिके रस भीने।
गुन भाव सु ग्राही, प्रेमहि चाही, मानि सबै विधि लीन्हे॥

त्रोटक छंद

तब ह्वै प्रसंन्य तहं बास कियो। अभिलाखिन दरस हुलास दियो॥
बहु भजन उपाइ रचे बिरचे। चख धारन के सुख साज सचे॥
सब लोक बिसोक सनाथ किए। बहु संपति अभिमत दान दिए॥

चौपाई

मथुरा नाम हुतो एक खेरो। मानो सर्वस जस गुन घेरो॥
तहँ सो आश्रम सुभग बनायो। निज समाज को साध टिकायो॥
रामायन निज लिखी सो दीन्ही। मनो थापना तीरथ कीन्हीं॥
छत्रिन मांगि लियौ बरदाना। हमहिं करहि नहिं भय सुलताना॥
बाचैं तुरुक धार की बाधा। भजन करैं गृह बसि निरुपाधा॥
तब हनुमंत थापना कीन्हीं। मनौ अभै पदवी तिन दीन्हीं॥

दोहा

अजहूँ लग तेहि ग्रामहू, तुरुक कटक जौ जाइ। होइ बिघन तेहि सैन को पावै नेकु सजाइ॥

(३८. अथ अवध वास प्रसंग)

सोरठा

इमि सबही सुख देत, आइ अवध पुर दरस किय। सकल समाज समेत, प्रेम पुलक पूरित हियौ॥

दोहा

प्रथमहि परिकरमा बड़ी, नगरी सीवहिं सींव। करि प्रविसहिं पुर राखि उर, राम नैनराजीव॥

छप्पै

पुनि अवध महातम पाठ देखि परजटन करहिं नित। पगन अटैं, मुख रटैं नाम, रघुनाथ चरन चित॥
अंग सकल साष्टांग दंडवतहीं से अरपैं। मनसा वाचा कर्म अपनपौ नाथ समरपैं॥
इहि भाँति रमत नित अवधपुर, राम राम रसना रटत।
जेहि मग निकसत बिगसत बदन, तहँ तिनके कलमष कटत॥

(३९. अथ राजीवलोचनी प्रसंग)

छंद त्रोटक

इक समय गोसाइँ जात चले। रघुनाथहिं के गुन ग्राम रले॥
तहँ प्रेमी एक सो प्रेमहि में। गुन गावत प्रेम के नेमहि में॥
सुनिबे को गोसाइँ ठाढ़ रहे। जब लौं प्रभु के गुन ग्राम कहे॥

छप्पै

सुन्दर पद इक गान करत जो चित्त विमोहै। सरस राग माधुर्य मृदुल बानी सो पोहै॥
करै प्रेम सों गान प्रान प्रेमी के हारे। और नहीं कछु जान सो अच्छर की बुधि धारे॥
तब यह प्रसंग इक परो वर, रघुवर राजविलोचनं। तेहि बार बार कीन्हों सुखी, मृदु बानी दुखमोचनं॥
जब गायौ अति प्रेम पाठ राजीवलोचनी। बहुत सराहो ताहि गान तुव अधिक रोचनी॥
राजिबलोचन थोर कह्यो राजीवविलोचन। और सकल तेहि: गान सरस भव भेद: विमोचन॥
सुनि सुबुद्धि लहि, पाइ, सिख, फिरि जो कबहु सो गान किय।
अभ्यास प्रथम आछरन को, सो सुख समुझत सोच हिय॥
होइ तबै बेछिप्त प्रेम को सो सुधि करई। अंतरजामी स्वामी सब भावन अनुसरई॥
दियौ गोसाइँ सीख कि हौं सब घट-घट बासी। हौंहि पुरुष हौं नारि सर्वमय द्वैत बिनासी॥
तुम ताहि सिखायो ज्ञान जो, प्रेमहिं को विक्षिप्त किय। हौं सर्व-भाव-गाही रह्यौ, चित्त सरूपी सर्व हिय॥

दोहा

प्रभु बानी इमि कान सुनि, कम्पमान अति त्रास। हौं अज्ञान छमा करहु, त्राहि त्राहि गुन रास॥
बहु बिधान करि बिनै बहु, व्यापक सर्व निवास। गुनत स्वामि करुना कृपा, धाइ आइ तेहि पास॥

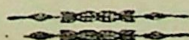
कुण्डल्या

हम जो सिखायो ज्ञान तुम, तेहि असुद्ध करि जान। चूक भई समुझौ नहीं, करौ सोई बिधि गान॥
करौ सोई विधि गान, न तुम सरि कोउ बड़ सर के। जासु गान करै कान, स्वामि नित विधि हरि हर के॥
तुम सरवज्ञ सुजान, तुम्हैं सब पढ़ो पढ़ायौ। छमा करहु अज्ञान, छाड़ि पद हम जो सिखायौ॥
'दासन' चारिउ वेद कह, अष्टादसहु पुरान। छहू सास्त्र अरु उपनिषद, और सबै बुधिवान॥
और सबै बुधिवान, संत निगमागम सुस्मृत। सोइ सरवज्ञ सुजान, प्रेम जाके प्रभु-पद-रति॥
रति रघुनायक चरण को, सर्व धर्म की रास। परम धरम धन प्रान मन, भजु हरि के गुन 'दास'॥

४०. अथ प्रभु वाल कथा

छप्पै

एक समै संवाद सुन्यौ बहु संत समाजहिं। कोसल राजकुमार जबहिं सिसु रूप बिराजहिं॥
रोवनि धौवनि लाल हेत कौसिल्या रानी। सूकर सावक भेंट सो बाल नेछावरि मानी॥
जब यहि प्रसंग कानन परचौ, प्रानन जिनको हरि लियौ।
सामरथि न सुनिबे की रही, मनो नेछावरि करि हियौ॥
मगन प्रेम आनंद विदेह सरीर बिसारे। सुद्धि बुद्धि तन प्रान ज्ञान मनो सर्वसु हारे॥
दंड एक लहि रहे प्रेम के सिंधु समाने। प्रेम रतन मनो पाइ बहुरि तहँ ते उमथाने।
निर्भर प्रेम अनंद ह्वै, वारि विलोचन पुलक हिय।
तेहि सूकर की बलिहारि अति, नाथ कदाचिद करहु जिय॥



पुनः काशी खंड

(४१ अथ भीषम कानोगो प्रसंग)

दोहा

एहि विधि प्रभु गुन गन मगन, कियौ वास बहुकाल। पुनि आए कासी सुखद, जो सिवपुरी विसाल ॥
कछुक काल इहि विधि गए, सुनि तब भीषम भक्त। कानोगो मड़िआउँ को, जो अति प्रेमासक्त ॥
सुनि गोसाईं दिज द्रोह की, संका मन अनुमान। आइ ग्राम ढिग फिरि गए, जानि विप्र अनुमान ॥
धिग जोवन व्यौहार धिग, संत विमुख जिय जानि। तातै अपने दंडवत, करत सो चल्यौ सुजान ॥
इहि बिधि आए सिवपुरी, मिलि करि बिनै बनाइ। गंगा अस्तुति भेंट धरि, बरन्यौ जस रघुराइ ॥
करि कछु दिन सतसंग ह्वै कृपा पात्र रघुबीर। लहि विराग त्यागो सकल, विषै वास भवभीर ॥
कह्यौ गोसाईं बहुरि तिन, अमित दियौ उपदेस। भजन राम करिबो करो, कहा भेस आभेस ॥

गोसाईं कृत

"जे जन रूखे विषै रस, चिकने राम सनेह। 'तुलसी' ते प्रिय राम कहँ, कानन बसैं कि ग्रेह" ॥
भलीभाँति अपनाइकै बिदा कीन सनमानि। तजि ममता संसारकी, भजियौ सारँगपानि ॥
यहि विधि परहित निरत नित, राम चरन रत प्रेम। करि आचरन सोई चहै, अखिल जीवकी छेम ॥

गोसाईं कृत

"जथा लीन संतोष सुख, रघुपति चरन सनेह। 'तुलसी' जो मन बस्य है, जस कानन तस ग्रेह ॥

४२. अथ भाट प्रसंग

छप्पै

भाट एक उदघाट आपनो जग ते कीन्हौ। ह्वै करि विषय उदास, बास कासी चित दीन्हौ ॥
आयो दरसन हेत, तहाँ लगि जान न पायौ। निकट परे सो बनै आपही बिथा जनायौ ॥
पुनि कह्यो कि मम मति प्रभुहिकी, कासी बास कराइए ॥
मद मोह लोभ कामादि खल, ऐसे रिपुन बचाइए ॥
तबहिं तसई कह्यौ गोसाईं उत्तर दीन्हो। कासी विदित उदार मुक्ति पुर जग जेहि चीह्नौ ॥
करहु सो बास सुखेन जहाँ तहँ ठाउँ घनेरे। भजन रामको सार दूरि तटका कहि नेरे ॥
पुनि उत्तर दियो विचारि तब, कछु बनाउ नहिं मम बनो।
लिखि कबित एक अरजी पठै, जू अब मोहि सरनागत गनो ॥

(चंद्रमणि भाट कृत) कवित्त (सवैया)

"पन दोइ कि भोग विषै विष या, अब जो रह्यौ सो न खसाइए जू ॥
अब लौं बस इंद्रिन लोग हस्यौ, अब तौ जनि नाथ हसाइए जू" ॥

छंद त्रोटक

अरजी तिन जाइ दई जबही। पदके पर दिष्टि परी तबही ॥
पुलकावलि ह्वै तन प्रेम छयो। अति आतुरता सुनि बोलि लियौ ॥
सब भाँति सनाथ निहाल कियौ। जो चह्यौ सो कह्यो सुभ बास दियौ ॥

इमि आरति दीननकी हरते। निहसंबलहूँको धनी करते॥
इहि भाँति कछू दिन भीति गए। प्रभुके गुनके रस रंग गए।

४३. अथ व्याधि विमोचन प्रसंग

छंद अरिल्य

एक समै इक व्याधि देव कृत यौं भई। तिक्षरण डाकी विषम सकल भूम्मनमई॥
जाको मारै डांक सोई तन त्यागई। भेषज मृत्यु उपाइ कछू नहिं लागई॥

छप्पै

यहि विधि आधा नगर खाइ व्याधा जब डारचो। ह्वै व्याकुल पुर लोग गोसाइँहि जाइ पुकारचो॥
लागिय नाथ गोहारि और बल अब न बमाता। राखहि हरिके दास कि सिरजनहार विधाता॥
प्रभु पाहि पाहि दीनन हितू, हमै राखिये स्वामी अब। अति कष्ट ससंकित रोग भय, मरो जात है जीव सब॥

चौपाई

सुनि दयाल अति बिह्वल बानी। पुलकित जोरि पंकरुह पानी॥
गदगद बचन नैन भरि बारी। अस्तुति श्री हनुमत अनुसारी॥

छंद

जैति हनुमंत कृत जातना जंतु खल। भक्ति भगवंत दातार दाता॥
अर्थ धर्मादि कामापवर्गादि सुख। विभव वैराग प्रभु चरन राता॥
जयति सर्वज्ञ सुकृतज्ञ रघुनाथको। काल विकराल जेहि डर डेराता॥
'दास' बिस्वास चिंतामनि कलतरु। जयति हनुमंत जय जगत त्राता॥
रामके सुजसको विमल निर्मल अमी। पिवत नित रात दिन नहिं अघाता॥
राम छवि रूपके सिन्धुके मीन ह्वै। बसत नित रमित गुन गान गाता॥
जयति रामायरण: श्रवन संजात अति। पुलकि हिय प्रेम नहिं तन समाता॥
नामके प्रेमको, 'दास' के छेमको। जयति हनुमंत जय जगत त्राता॥
तेज बल विपुल परमित पराक्रम एक। भूमि पाताल जल गगन गाता॥
दसकंध घटकर्ण सह सक्रजित। कालनेमादि खल कर्न सकुल निपाता॥
करत परहार संघार राकस सुभट। दलन दल रजनिचर सर्वघाता॥
'दास' रच्छा करन, सुजन पोषण भरन। जयति हनुमंत जय जगत त्राता॥
जय सनक सनकादि सेषादि सारद गनप। गुनत गुन जासु संकर विधाता॥
काल गुन कर्म माया मदन मद मथन। एक रघुबीर पद मस्त माता॥
जयति महिदेव सुर सिद्ध संसार हित। 'दास' को कल्प - तरु पाहि पाता॥
प्रबल बरजोर, सरि भक्त सिरमौर। जैं जयति हनुमंत जय जगत त्राता॥
प्रनतको दुख हरत, काल जासो डरत। अमित ब्रह्मांड तनं जो जपाता॥
विकट दुख दोष, कलि कलुष पापोघ। अघ घोर त्रय ताप संताप हाता॥
करत रच्छा देत सीख सिच्छा सुभग। दासके नाम सों मान नाता॥
कहा जाँचै 'दास' ओर सतसार भुज। जयति हनुमंत जय जगत त्राता॥

गोसाइँ कृत स्तुति-कवित्त[1]

सेवककी सेवकाई जानि जानकीस मानि। सानकूल सूलपानि नवै नाथ नाकको ॥
देवी देव दनुज दयावान ह्वै जोरै हाथ। वापुरो बराक और राजा राव राँकको ॥
सोवत जागत बैठे बागत विनोद मोद। ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँकको ॥
सब दिन रूरौ परै पूरो जहाँ तहाँ ताहि। जाके हिय हुलसत हनुमान हाँकको ॥
महा बलसीम, महा भीम, महा बानइत। महा बीर विदित बरायो रघुबीरके ॥
कुलिस कठोर तन जोर परै रोर रन। करुना कलित मन धार्मिक धीरके।
दुर्जनके कालसे कराल, सुर सज्जनको। सुमिरे हरनहार 'तुलसी' के पीरके ॥
सिय सुखदायक, दुलारो रघुनायकको। सेवक सहायक ह्वै साहसी समीरके ॥
रचिबेको विधि जैसे, पालिबेको हरि हर। मीचु मारिबेको, ज्याइबेको सुधा पान भो ॥
धरिबेको धरनि, तरनि तम दरिबेको। सोकको कृसानु, पोषिबेको हिम भान भो ॥
खल दल दोषिबे, सुजन परितोषिबेको। मागिबे मलीन ताको मोदक सुदान भो ॥
आरतको आरति नेवारिबेको तिहूँ पुर। 'तुलसी' को साहेब हठीलो हनुमान भो ॥

दोहा

जयति गोसाइँ जयति जय, पूरि रह्यो चहुँ ओर। जीव दान दियो जगतको जै केसरी किसोर ॥

सोरठा

संत सरिस विटपान, भूधर धरनी आदि दै। परहित कारन जान, पांचहुकी करनी सुखद ॥

४४. अथ मीराबाईको प्रसंग

कुंडल्या

रानाकी सुत-बधू इक, कीरति जग अभिराम। परम भागवत भक्ति दिढ़, मीराबाई नाम ॥
मीराबाई नाम विषै रस परस घटायो। सकल कामना हीन चित्त हरि चरनन लायौ ॥
लायौ चरनन चित्त, साधु सेवा प्रन ठाना। लखि निज लज्जा भंग, बहुत बरजै तेहि राना ॥

अरिल्ल

कौन सुने केहि बैन, प्रान हरि-पद बसै। बिष नहिं चढ़ै सरीर, भुवंगम जो डसै ॥
जाति पाँति कुल धर्म कानि लज्जा नहीं। परम परा वर प्रेम प्रीति लागत जहीं ॥

दोहा

बहु बरजे राना सु तौ, नेकु न कहूँ लजाइ। प्रेम न होत प्रबोध कहुँ, सिमृत वेद कहाइ ॥

त्रोटक

तब भूपति एक उपाइ कियौ। अति घोर हलाहल घोरि दियौ ॥
एक सीकर जासु पखान परै। ह्वै कै सतखंड मही बगरै ॥
कहि ठाकुरको चरनामृत है। सुर मारगको मनमोदक है ॥
तेहि सादर मीरा पाइ गई। अतिहीं सुखसिंधु समाइ गई ॥
छन एक लखो जो कछू न भयौ। पुनि और सोई विधि जानि दयो ॥
सोउ पान कियौ सुख दानि लयौ। विष कोटि पियूषन दान भयौ ॥

---

१. हनुमान बाहुक कवित्त १२,१०,११

छप्पै

पुनि इक विषम भुवंग पेटारी मो धरि ल्यायो । कहिकै सालिग्राम सो मीरा पै पठवायो ।।
सुनि आगे ह्वै लीन सुभग नेउछावरि कीन्हो । करि सादर आसीन दरस हित दुष्ट जो दीन्हो ।।
तिन पन्नग सोइ रूप लखि, अगिनित दुख आनँद लह्यो ।
बहु पूजा आरति बिनै करि, नाना विधि अस्तुति कह्यो ।।

दोहा

सुनि प्रतीति पन लखत ही, सालिग्राम सरूप । कंपमान अति भीत ह्वै, पाइ परो तब भूप ।।

छप्पै

इमि ह्वै रहित उपाइ तवै कुल गुरुन बोलायौ । बहु प्रकार ह्वै दीन, लाज कुल-कानि जनायौ ।।
तुम हौ गुरु गोविन्द तुम्हारो अज्ञा मानो । तुव आयसु अनुसरित भक्त परमित पहिचानो ।।
गुरु सिखै पठायो विविधि विधि, बहु धनको लालच दियौ ।
लखि मीरा गुरु आगमन, अति आदर आगे लियौ ।।
लागे गुरु उपदेस करन, कुल-कानि जनाई । करौ भजन निरुपाधि, सदन अपने सुख पाई ।
पुरुष जननकी भीर, उचित नाहिन यह कर्मा । होत लाज कुल हानि, गवन जनि करि पर सर्मा ।।
राजाधिराजकी बधू तुम, तुम कौ तौ सोभित नहीं । सब जान अजान अनीति हित, सुनौ राजमंदिर कही ।।
इमि गुरु दियो निदेस न मानौ तौ बड़ पातक । साधुनहू सो विमुख कर्म मम प्रानन घातक ।।
दोऊ विधि है दुखद कछू नहिं अब बनि आवै । कासौं बूझौं जाइ कवन यह कष्ट मिटावै ।।
इमि कठिन धर्म संकट पर्यो, तब चितमें इमि आयऊ ।
निज सकल अवस्था कथा लिखि, कासिहिं प्रगट पठायऊ ।।

छन्द तोमर

सो पठै गोसाइँ समाचार । जिमि लिखि हुती निज गति विचार ।।
सतसंगति विमुख भयौ न जाइ । गुर वचन तजे पातक बनाइ ।।
अब महाराज समको सुजान । अज्ञा जो दीजो सोइ प्रमान ।।
तब लिख्यौ एक प्रभु पद बनाइ । जेहि समुझि ज्ञान, संसै बिलाइ ।।

विष्णुपद विनय पत्रिका

जिनके प्रिय न राम बैदेही ।
त्यागिय तिन्हैं कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं ।
रघुपति विमुख जानि लघु त्रिन इव तजत न सुकृत डेराहीं ।।
तज्यौ पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
गुरु बलि, तजो नाह वृज कवितन, भे सब मंगलकारी ।।
नातो नेह रामको मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन काह आँखि जो फूटै, बहुतै कहौं कहाँ लौं ।।
'तुलसी' सोइ सब भाँति आपनो, पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जाते होइ सनेह राम सों, यह तौ मतौ हमारो ।।

दोहा

पढ़तै पद मीरा मनो, अभिमत लह्यो अघाइ । दिढ़ता निज आचरनकी, लखि सुखसिंधु समाइ ।।
गुरुहू पद सोइ पाठ करि, लह्यो बिमल बैराग । मीराको अपनो सहित, सरस सराह्यो भाग ।।

(ख) अथ श्रीमत् गोसाइँ जीको मिलन

चौपाई

त्याग्यो सुनि सब गुन गन भावन । अति अगाध मति दिढ़ पारायन ।।
दरसन हित मीरा तहँ आई । तब सुनि यह कहि बेगि पठाई ।।
इहाँ काज तिय जनको नाहीं । रहो सदन हरि भजन कराहीं ।।
सुनि अज्ञा तब इमि हठ ठानी । जैहौं सुनि प्रभु मुखकी बानी ।।
तबै गोसाइँ ओट करायौ । पुनि अज्ञा हित बोलि पठायौ ।।

दोहा

कह्यौ कि तुम ग्रह जाइ निज, हरि सुमिरहु चित लाइ । ह्यां अबलनको काज कहँ, रहो भवन सुख छाइ ।।

चौपाई

कह्यौ आपु छमियौ अपराधा । बिनती कछुक करौ निरुपाधा ।।
अजहूँ मत काचो प्रभु केरो । नारि पुरुष व्यौहारहि हेरो ।।
उर पुरुषारथ निज करि जानौ । पुरुष रूप प्रभु नहिं पहिचानौ ।।
आदि पुरुष पुरुषोत्तम ईसा । सचराचर स्वामी जगदीसा ।।
एकै प्रभू सर्व घट वासी । अग जग मय प्रभु द्वैत बिनासी ।।
तेहि बितरेक और पति नाहीं । पुरुषारथ सबको जेहि माहीं ।।

दोहा

पुनि उपासना रीति ह्वै, पतिव्रताके भाउ । दासन पति सोइ स्वामि जे, अंतरजामी नाउँ ।।
सुनत गोसाईं मगन ह्वै, कीन्ह अमित मनुहारि । जब कब गुर सिच्छा हमहि, भई तुम्हारे द्वार ।।
हम तुम ते नाहिन उरिन, कीन्ह बिनै बहु बार । दीन्हों कासी-वास पुनि 'दास' लह्यौ सुख सार ।।

४५. अथ हत्यामोचन प्रसंग

छप्पै

बुध समाज एक समै गोसाइँ सहज बिराजै । देखि सद्रिस सुभ नीति देव सुरनायक लाजै ।।
कासीको इक विप्र भयौ विधि बस अपराधी । हत्या दूषन लागि भ्रमै भिच्छा व्रत साधी ।।
जै सीताराम सु नाम कहि, भिच्छा सब्द प्रकास किय ।
सुनि अति अनुरागित प्रेम ह्वै, ताहि तुरत प्रभु बोलि लिय ।।
अतिहीं आदर सहित निकट निज आसन दीन्हो । आनपरसको भाव भ्रांति कछु मनहि न चीन्हो ।।
पंगतिमें बैठारि बहुरि भोजन करवायौ । निज कुटुम्ब कृत दोष सु तब तेहि रोइ सुनायौ ।।
बहु बार सो तीरथ अटन किय, अजहुँ कुटुंब न आदरै ।
नहिं बैठन पावत कुल सभा, अघ दूषन मम उर धरै ।।
करि करुनामय बोध तासु पुनि दिजन बोलायौ । राम नाम महिमा सो तिन्है पूछो बहु भायौ ।।
पंच सहस नित नाम महातम जो श्रुनि गायौ । औरो महिमा विविधि गोसाइँ कहि समुझायौ ।।

तब कह्यौ कि ऐसो नाम सोइ, लेत न हत्या मिटत किमि ।
तब प्रतिउत्तर कियौ लोक मत, जिमि सब मानत हमहु तिमि ।।
पुनि सब मिलि कियौ मंत्र, फेरि इरषाके भाई । चलै न कछू उपाइ, कदाचित चहै गोसाइँ ।।
सकल मंत्र इमि ठयो नँदीसुर शिवको बाहन । याके कर ते करै प्रसाद जो मूरति पाहन ।।
अघ नास्यो तब हम जानहीं, सब मिलि संमत कह्यौ अस ।
तब कह्यौ गोसाइँ रहो दिढ़, ताहू पर जो कह्यौ जस ।।
परचौ नगर अहभोर दिजन भयौ बाद गोसाइँहि । अब धौं क्यों निरबहै, जुरे सब कौतुक भाइँहि ।।
भई भीर अति बार, द्वार नहिं कोऊ पावै । सापराध दिज किमि मूरति पाहनहिँ खवावै ।।
तब कह्यौ गोसाइँ रोष करि, तुम विस्वेस्वर बिपति हत ।
त्रिन चरै नादिया तासु कर, राम नाम महिमा जो सति ।।
सुनतहिं वचन सरोष, भई मंडप नभ बानी । महा विषद गंभीर, मनो करुनामृत सानी ।।
तुम सम तुलसीदास, नाम महिमाको जानै । दिज बापुरो बराक कहा मति कलिमल सानैं ।।
'रा' अक्षर गयौ तासु अघ, पुनि तेहिं दास जो काम तरु ।
वृष पाहनहू भच्छन कियो, दिज कर ते, मनो छुधित वरु ।।

दोहा

पुहुप वृष्टि नभ ते भई, जय जै सब्द सराहि । दिज लज्जित चरनन पर्‌यौ, त्राहि त्राहि कर पाहि ।।

छप्पै

इमि सब अस्तुति करहिं देखि हत्याको मोचन । जिन जिन कीन्हों बाद भरहिँ ते अधिक सकोचन ।।
पुष्ठ विधि किय रंक पियूष हलाहल करई । कठिन कालिमा मेटि, सुजस जग में विस्तरई ।।
ऐसो सुभाव पर पार जेहि, तिन गुन गन कहँ लौं कहिय ।
करु 'दास' निरूपन तासु पद, और कहा कासो चहिय ।।

४६. अथ कबेस्वर प्रसंग

दोहा

कवि एक निन्दक जगतको, करै भड़ौवा काब । काहूकी जेहि त्रास नहिं, बिचरै सो निज भाव ।।
आयौ दरसन हेत प्रभु, सुनि ताकी करतूति । कहौ तासु किमि करि मिलैं, निन्दा जासु बिभूति ।।
बहुत दिवस यहि विधि रहौ, दरसन पायौ नाहिँ । कियौ भड़ौवा, ह्वै गई अस्तुति ताही माहिँ ।।

छंद अरिल्ल

तामें परौ प्रसंग जो दिनकर रामको । भये पुलकित सुनि सुसरीर कि मो सम बामको ।।
जेहि तेहि भाँति कहायौ मैं निजु स्वामिको । सुफल जन्म भयौ आजु निलज्ज निकामको ।।

दोहावलियाँ—दोहा

"हौं हुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास । साहेब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास"
सजल नयन ह्वै पुलक तन, लीन्हौ ताहि बुलाई । अभिमत दान दियो, लियौ भली भाँति अपनाइ ।।

४७. अथ विप्र गोंसाईं प्रसंग

दोहा

विप्र एक अति प्रेम बड़, रह्यो गोसाइँ द्वार । दरसनके अभिलाष सों, तजिकै निज परिवार ।।

१०

संसारी ब्यौहार सब त्याग, कीन दिढ़ नेम। वृत्ति जीविकाको तजे, कीन्हों प्रभु पद प्रेम ।।
ताके नेमी लोक सब, करहि आइ नित सोर। ताहू पर आनै नहीं, कछु गलानि निज ओर ।।
सुनहिं गोसाइँ जबहिं तिन बरजनको परलाप। कहो विविधि विधि आपही, ते नहिं तजे कलापु ।।
कहि करि थके कुनीति सब, भए नित दुखकी रास। पै सोइ चात्रिक वृत्ति धरि, प्रीति चरन विस्वास ।।
पथिक विप्रको रूप धरि, तब तेहि पवन कुमार। कनक भार भरि जीविका, सौंप्यौ तासु अगार ।।
कह्यौ आइ फिरि लेउँगो, गयौ काल बहु बीति। तब तिन प्रभु सों आइ करि, कही पथिककी रीति ।।
नाउँ न ठाउँ बताइ कछु, सुधि नहिं लई बहोरि। ताको कहा रजाइ लखि, कहिय कृपाकी कोर ।।
तबै ध्यान धरि जान सब, पवन पूतके काज। मुदित ताहि आज्ञा दई, करी कृपा रघुराज ।
भई जीउका जन्म भरि, करौ भजन निरुपाधि। तासु प्रेम तुम आपु लखि, मेटी सकल उपाधि ।।

(गोसाइँ तुलसीदास कृत-दोहा)

"तुलसी' छल बल छाँड़ि कै, निश्चै भजिए राम। मनुष मजूरी देत हैं, क्यौं राखैगे राम ।।
'तुलसी' जो जस राम ते, तैसो ताको राम। पथिक पंथ मो मिलत जिमि, होत दाहिनो बाम" ।।

४८. अथ कवि गंग कवेश्वर प्रसंग

पद्धटिका छन्द

एक समै गोसाइँ जन दयाल। करैं जाप लिए कर तुलसी माल।
पढ़ि कवित आइ तिन भेंट कीन्ह। कवि गंग कवेस्वर गर्व लीन ।।
अपमान भजन कर करी गाथ। गज तुलसि माल कब धरी हाथ ।।

मरहटा छन्द

तब कह्यो गोसाइँ, सहज सुभाई, अस मत हमसे मति भानो।
हमको अवलंब अधार यही, वह हाथी जानै, तुम जानौ ।।

छप्पै

इमि गुरजन अपमान हस्तिनापुर सोइ गायौ। पातसाह सों भेंटि काव्य कीन्हीं कछु लायौ ।।
भाख्यौ कछुक अजोग्य पाटि राज्ञी उर आयौ। बेगम करि अति क्रोध तुरग गज तरे देवायौ ।।
अपमान संत जनको कर्यौ, निंद्या सुमिरन भजन किय।
श्रुति संत पाल नहिं सह्यो, जन बचन लागि फल बेगि दिय ।।

दोहा

संत मृदुल चित, सबहिं सम, सदा दयाल सुखेन। निज गुन दूसन ते जरैं अबुध साखि त्रयनैन

चौपाई श्रीमत गोसाइँ कृत

"उमा बचन जो समुझि न बोलहिं। सुधा होइ विष तेहि क्रम डोलहिं" ।।

४९. अथ पातसाह संवाद

चौपाई

ताहि समै दिल्ली सुलताना। माँगि जो लियौ हुतो बरदाना ।।
दरस हेत आयौ, सचु पायौ। अति भेंटा सादर सिरु नायौ ।।
दीन बचन मृदु बानी भाखी। बहु संपदा विहित तिन राखी ।।

दोहा

नगर बनारसको चहिय, लिखि कागद पर दाम। अंगिकार प्रभु कीजिए, आवै दासन काम ॥
कह्यौ कि मैं तुम पै प्रथम, कही हुती जो बात। सत्य सबै सोइ जानिये, यामें पाँच न सात ॥

(श्रीमत गोसाइँ कृत—दोहा)

"अर्व खर्व लौं द्रव्य है, उदै अस्त लौं राज। 'तुलसी' जो निज मरन है, तौ सब कौने काज" ॥

चौपाई

अंगीकार न जब कछु देखो। अरु निज जोग्य न आदर लेखो ॥
मन अनुमान पूछि तब बाता। सूरदास प्रभाव किमि ताता ॥
कह प्रभु सूर विदित जग जाना। परम भागवत ज्ञान निधाना ॥
तब कहि, मम पितु निकट नेवासी। चौदह रतन ज्ञान गुन रासी ॥
एक ते एक प्रवीन उजागर। सब पंडित गुनज्ञ गुन सागर ॥

दोहा

टोडरमल अरु बीरबल, खानखान गुन पूर। नरहरि अहमद आदि दैं, अरु गुनसागर सूर ॥

चौपाई

कह्यौ गोसाइँ सुनु नरनाहा। ए चौदह जो रतन सराहा ॥
रतन एक सूरहि कों जानो। और सबन कहँ सीप बखानो ॥
महिमा सुनो सूर को जबहीं। औसर पाइ कह्यौ पुनि तबहीं ॥
ते तौ तिनहिं अनुग्रह करते। हम ग्रह आइ चरन नित धरते ॥
यहि मिसु जनु निज हेत जनायौ। सो हौं इहाँ न आदर पायौ ॥

दोहा

कह्यौ गोसाईं सुनहु तुम, जात जो तव ग्रह सूर। ताते ते नहिं घटि गए, नैनन नहिं बिधु दूर ॥

चौपाई

याको भेद सुनहु तुम साँई। यामें पच्छपात नहिं कोई ॥
सोम बंस के सूर उपासक। ताते ते निज द्रिष्टि प्रकासक ॥
जोरे दिष्टि चंद्र सों जोई। जोति वृद्धि पर ताकी होई ॥
सबै ठौर चितवै चितु लावै। जहाँ जाइ तहँ द्रिष्टि देखावै ॥
हम तो भानु बंस के चेरे। और न सूझै तिन तन हेरे ॥
तेज रासि पुनि चितवै जोई। फिरि न द्रिष्टि तर आवत कोई ॥

दोहा

ताही ते मोहिं दिष्टि तर, नहिं आवत कोउ आन। और कछू देखत नहीं, जो देखे तो भान ॥

छन्द तोमर

इमि सुन्यौ साह प्रवीन। सिर नाइ बिनती कीन।
अबिनै बिनै सो छमाइ। पुनि पुनि पलोटत पाइ ॥
यहि मिसि अमित गुन गाइ। प्रभु दरस लखत अघाइ ॥

छन्द नाराच

पाइकै सरीर धर्म बर्न एक भो कराल। भेषजो करै न तासु, दुःख सो सहैं बिसाल ।।
दिष्टि साह के परचौ जो, हाथ जोरिके विनीत। नाथ हौं बिनै करौं, सो मानि लीजिए सुनीत ।।
बैद एक एक ते, बड़े गुनी फिरंगि आदि। नाथ जो निदेस होइ, आइकै हरैं बियाधि ।।
व्याधि है न रोग है, कही गोसाइँ ब्रह्म घाइ। हौं गुलाम, राम के विमुख भए, लहौं सजाइ ।।

(श्रीमत् गोसाईं कृत) – कवित्त

"असन बसन हीन, विषम विषाद लीन, देखि दिन दूबरौ, करौं न हाइ हाइ को ।।
'तुलसी' अनाथ ते सनाथ कीन्हौं रघुनाथ, दीनो पद दीनबंधु आपने सुभाइ को ।।
हौं तौ नीच यहि बीच पति पाई भरुहाइ, भजन बिहाइ तन वच मन काइ को ।।
ताते तन पेखियत घोर बर-तोर मिस, फूटि फूटि निकसत लोन रामराइ को" ।।

सोरठा

सुनिकै साह सुजान, बहु बिधान वैराग लहि। करत राम गुन गान, चलो बिदा ह्वै निज सदन ।।
यहि विधि आवत नित्त, दरस पाइ सानंद ह्वै। अतिही प्रमुदित चित्त, जात कहत गुन गाथ सुभ ।।

छप्पै

एक दिन काहू कह्यौ कि श्री अकबर सुलताना। अति बड़ि बुद्धि सुजान पिता इनको जग जाना ।।
सहित समाज प्रवीन कोऊ नहिँ अबुध हीन मति। सबै दच्छ गुनवंत सकल पंडित अति सुश्रुति ।।
तहाँ विचच्छन बुधि उदार मति, सब विधान विद्या प्रबल।
अति बुद्धि बिसाल कृपाल चित, गुननिधि गुनमय बीरबल ।।

सोरठा

कह प्रभु, सो सब तथ्य, बड़ो बुद्धि विद्या प्रवल। पै सब कीन्हों वृथ्य, असि मति पाइ न हरि भज्यौ ।।
इक मायाके संग, ऐसो ज्ञान गँवाइया। यह देही छन भंग, इंद्रिन ही के रँग रँगे ।।

(श्रीमत् गोसाइँ कृत) कवित्त (सवैया)

'कामसे रूप, प्रताप दिनेससे, सोमसे सील, गनेससे माने।
हरिचंदसे सत्य, बड़े विधि सो, मघवा सो महीप, विषै सुख साने ।।
सुकसे मुनि, सारदसे बकता, चिरजीवहु लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन राम न जाने ।।"
तुम सब लायक हो, बड़े बिठ बायक हौ, बच बरदायक हौ, प्राणप्यारी बस हौ ।।
नायक अति नागर हौ, रूपके उजागर हौ, गुननके आगर हौ, रसीले सुरस हौ ।।
बढ़े जगराज अरु लाजके जहाज, सुघराईमें सुघर हौ, सो पूरे दिसा दस हौ ।।
सुन्दर हौ, सूर बहु, सपूत सुचिवंत सदा, राम नहिं जाने, तौ सयाने कहा, पस हौ ।।

दोहा

चौदह चारि अठारहौं, नव षट पढ़ि कै तोल। 'तुलसी' प्रभु चीन्हे बिना, ज्यौं पच्छी चँडोल।

५०. अथ (हठी) तसकर प्रसंग

चौपाई

तसकर एक महा अन्याई। मूसो एक धनी ग्रह जाई ।।
वस्तु चोरि लै चलो अपारा। विधि बस रोक्यौ चौकीदारा ।।

करि ताड़ना अगित दुख दीन्हो। लै हाकिमके आगै कीन्हो ॥
आज्ञा भई बेगि लै मारो। प्रजापालको दुःख मिटारो ॥
बाहेर नगर चले तेहि मारन। लाग लोग सब देखन कारन ॥

दोहा

निकसे मंदिर द्वार जब, देखि गोसाइँ भीर। बोलि लियो निज निकट प्रभु, हरन दीनकी पीर ॥
नरनायक सों कहि तबै, लीन्हों ताहि छड़ाइ। ह्वै दयाल लखि दीन गति, बहुधन दीन मँगाइ ॥
करेउ और व्यौहार अब, तजिय कर्म हित हानि। चलो नाइ पद माथ मन, ततछिन छूटि परान ॥
कछु दिन बीते खाइ धन, कियो आचरन सोइ। फिरि तेहि विधि पकरयो गयो, पहिचान्यो सब कोइ ॥
पुनि दिढ़ करि अज्ञा भई, यहि छिन मारो जाइ। करत ताड़ना तीव्र अति, पुनि तहँ निकसो आइ ॥
पुनि दयाल निज पठै जन, बहु बिधि बिनै कराइ। अज्ञा भंग सो होइ किमि, दीन्हों ताहि छँड़ाइ ॥

सोरठा

कीन्हिसि सप्थ करार, नाथ भई अब दिष्टि मोहि। लहौं जन्म जग पार, अब कछु धन मोहिं दीजिए ॥

छप्पै

सो धन लैं अब करौं और उद्यम व्यौहारा। छाड़ौं महा कुकर्म हानि जेहि सकल प्रकारा ॥
पुनि बहु धन लै गयो, कछुक दिन खाइ गँवायो। फिरि एक साहूकार ग्रेह डाका लै धायो ॥
तिन बहु अंसा करि माल लै, और चोर तेहि पथ लयो।
धाय धारि गोहारि बहु, फिरि आपहि तहँ रहि गयो ॥
पुनि चीन्हो सोइ चोर, अमित विधि त्रास देखायो। तिहूँ बारको बैर मनहुँ यहि बारहिं पायो।
पुनि इमि अज्ञा भई कि अब याही छिन मारो। तब बाहेर लै जाइ टांगियो करि मुख कारो ॥
लै ताही छिन तेहि तहँ, पुनि टाँग्यो बाहेर नगर। इमि सब ठाइँ गइ फैलि, सो समाचार घर-घर बगर ॥
सुन्यो गोसाइँ, बहुरि करन चोरी सो आयो। बधो गयो अरु जाइ नगर बाहेर टँगवायो।
सुनत सजल भये नयन, पुलक तन चले तहाँई। दियो दरस तेहि जाइ, हुतो टाँगो जेहि ठाइँ ॥
करि परिकरमा अस्तुति करि, धन्य धन्य तव जस रुचिर।
जेहि मारग पग दिढ़ धर्‍यो, ताहि निबाहो साथ सिर ॥

कुंडल्या

दीन्हों जन्म निबाहि भरि, करी न काहू कानि। सब कहिबेको लालची, मरिबो निज हित हानि ॥
मरिबो निज हित हानि, गयो नहिं किंचित ताही। जापै कीन्हीं प्रीति सो जियके साथ निबाही ॥
'दास' तासु बलिहारी, जो अस मन संमत लीन्हों। जापर लाग्यो प्रेम, ताहि पर तन मन दीन्हों ॥

५१. अथ सिद्ध संवाद प्रसंग

छंद चंचला

प्रभु-जस-दिनेशको प्रकाश, देस देस छायो। सुनि सिद्धको समाज एक, दरस हेत आयो ॥
मिलि सप्रेम, परस खेम करि अनंद पायो। सुनि सुज्ञान ब्रह्म-निरुपनादि सुख समायो ॥

दोहा

प्रभु प्रताप जस विदित है, लखि हम भये सनाथ। कछु प्रभाव नैनन्ह लखहिं, कह्यो जोरि जुग हाथ ॥

हरिगीतिका छन्द

यह विधि कह्यौ जग जोगि-जन, सुनि तासु प्रति उत्तर दियौ।
हम यह नहीं कछु जान, प्रभु आश्रित सदा चाहत जियौ॥
नहिं ज्ञान जोग समाधि जप तप, नेम संजमहू नहीं।
सब भाँति सबको सार, एक प्रभु नामहींको जानहीं॥
तुम जोग जोगेश्वर तपेस्वर, भाँति भाँतिन तप कियौ।
करि कृपा निज परभाव, जो देखराइये चाहत हियौ॥

छंद तोमर

तब कह्यौ सिध वर बात। तुम सों दुराव न तात॥
हरि कृपा सों हम नाथ। लहि सिद्धि भये सनाथ॥
अनिमादि महिमा सिद्धि। अरु सकल रिधि नव निद्धि॥
गुन जो कहिय सिधि माहँ। सो सब हमारे पाहं॥
जो वस्तु दुर्गम बास। पल मधि मँगावैं तास॥

दोहा

तब प्रभु कह सब सत्य है, तपके सब आधीन। तपही से सिव अज भये, मुनिवर परम प्रवीन॥

तोमर

तिन कह प्रभाव जनाइ। अज्ञा करहु सुख पाइ॥
जो वस्तु दुर्गम होइ। निमिषहि मँगावैं सोइ॥
प्रभु कह्यो जो मन मान। सोइ कीजिये परमान॥

चंचरी छंद

नेकु तब शीघ्रही मँगाइ चारि आगरे सो साहुकार। कासिहुमें कोठी जासु, हौ धनी अती उदार॥
भे अधीर कंपमान, देखि सो ग्रसो सरीर। भै मिटाइ, धीर दै, प्रबोध कै हरी जु पीर॥
आगरेसे कौन ह्याँ, हमैं लिआयौ, कौन देस। कौन काज, कौन हेत, क्यौं इहाँ कियौ प्रवेस॥

त्रोटक छंद

तिन कहौ मँगायो है हमहीं। तेहि सहजहि जानौ काज नहीं॥
अबहीं तुमको पठवाइ तहाँ। पहुँचौगे तुरत निकेत जहाँ॥
सुनिके सब धीरज पाइ कह्यो। निज सुकृत ही प्रभु दरस लह्यौ॥
हम आढ़ति कासिहु माहँ धरैं। धन जो चहिए सोइ भेंट करैं॥

दोहा

दरस गोसाइँको लह्यो, पायो अति आनन्द। बिदा करायो तबहिं तिन, करुनाकर सुखकंद।
बहुरि अवस्था आपनी, कहि प्रभु तिनहिं जनाइ। निज मतको एक कबित तब, तिन प्रति कह्यो सुनाइ॥
और कछू जानत न हम, विद्या वेद उपाय। रहे राम रघुनाथके दासन हाथ बिकाय।

(श्रीमत गोसाइँ कृत) कवित्त (सवैया)

'आगम वेद पुरान बखानत, कोटिक मारग जाहिं न जाने।
धर्म सबै कलि काल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने॥

जे गुनी ते पुनि आपुहि आपुको, ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥
को करि सोच मरै 'तुलसी', हम जानकीनाथके हाथ बिकाने ॥

दोहा

भोग लगावनको समय, पहुँचो जब तेहि काल। उठे हरषि प्रमुदित चरन, बिबिधि सँवारन थाल ॥
राज रसोई छ रसकी, सोभा बरनि न जाइ। बिजन भाँति अनेकके, को कवि सके गनाइ ॥

त्रोटक छंद

छप्पन प्रकारके भोग बने। मिष्ठान आदिके साज घने ॥
इमि नित ठाकुरको भोग लगै। जेहि देखतही दुख दोष भगै ॥
एक पायस आयो सिद्धिनको। अभिलाष लखै नव निद्धिनको ॥

छंद चौपैया

अस भोजन कीन्हौ, अति सुख लीन्हौ, कहा स्वाद जेहि चीन्हौ ॥
सब जन्म तपायौ, कबहुँ न पायौ, तबै बिनै बहु कीन्हौ ॥
अब सुनिये स्वामी, हम अस कामी, सो कहुँ नाज सो पावैं ॥
सोउ करि अतरायनि, सहज सुभायनि, डरतहिं भोग लगावैं ॥
अति दारुन कामा, सब विधि बामा, ताहू पर जो सतावै ।
यहि भोजन पर बुधि, कामहिकी निधि, हमहि आचरज आवै ॥

दोहा

बुद्धि होत है कामकी, जैसो करिए भोग। जोगी जती तपीनको, यहै सबनको रोग ॥

सोरठा

तुम्हैं न व्यापत काम, अति कराल, कारन कवन। कहिय तात सुखधाम, जोग प्रभाव कि भक्ति बल ॥

(हरिगीतिका) छन्द

कहियौ कि नीति प्रतीत मैं यह जगत विदित सुनिश्चयं। सो प्रीति बैर परस्परं सुमिरत निगम सु बदत अयं ॥
करै जो न प्रीति सु जाहि सो लहिए सु प्रीतम गुन धनं ।
लहियै जो बैरी बैरको जो जेहि हनं सो तेहि हनं ॥

चौपाई

तुम जोगी तेहि जानि अनीतो। सोऊ तुम ते काज अनीतो ॥
हम राखत नहिं बैर न प्रीती। सोउ राखत हम सों रस रीती ॥
हम निज प्रभुकी जूठनि खाहीं। भोग भक्ति कछु जानत नाहीं ॥
जो स्वामीको लागत भोगो। सो अनुगामिन प्रापति जोगो ॥
तहँ विकार करि पावै नासा। कहाँ तिमिर जहँ भानु प्रकासा ॥
सो जाको ताके हम दासा। नट विद्या जिमि नट जन पासा ॥

दोहा

यहि मिसि सुनि संवाद मन, रहे अमित सुख पाइ। विदा भये तव जोगि जन, हरि दासन गुन गाइ ॥

५२ अथ ब्राह्मण हरिदरस अभिलाष प्रसंग

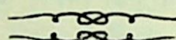
छप्पै

विप्र एक हठ परो मोहिं हरि दरस करावौ। जा विधि हरि सों मिलौं बेगि सोइ जोग बतावौ ॥

बहु उपासना रीति कही प्रभु, नेकु न मानो। कही आजुही लहौं दरस सोइ जुगति बखानो॥
जब प्रतिउत्तर बहुतै कियौ, तब रिसाइ प्रभु इमि कह्यौ।
त्रयसूल भाल करि वृच्छ चढ़ि, गिरि जो तुरत चाहत लह्यौ॥
जैसोई प्रन कीन गाड़ि सु त्रिसूल चढ़ो तरु। तापर चाह्यौ गिरन, तबै तेहि डर व्यापो उर॥
लोभ जीवको कियौ, बहुरि उतरो तरिवर ते। चढ़ि पुनि करि अनुमान, टरौं नहिं अब गिरिवर ते॥
द्वै तीन वार यहि विधि कियौ, चढ़ि भय बस नहिं गिरि सकौ।
मनसूर नाउँ नावै जो कहुँ, जात हुतो कौतुक तकौ॥
समाचार लहि लोग द्रव्यकी लालच दीन्हों। विदा कियो सो विप्र मोल लै सुकृत प्रवीनो॥
चढ़ो गोसाइहिं सुमिरि हिये रघुबरको धार्यो। गिरो सो तरु ते तुरत नाम रघुनाथ उचार्यो॥
तब तिहिं करुनाकर बीचहीं, पावन करि लियौ लाइ हिय।
अपनाइ दास करि हिये भरि, राम रूप ह्वै दरस दिय॥

सोरठा

प्रेम पन्थ अति दूर, ऊँचो सातौ स्वर्ग ते। चढ़ो एक मनसूर, सूरी सीढ़ी लाइके॥
ह्वै हरिरस भरपूर, दरस गोसाईंको लह्यौ। धन्य धन्य मनसुर, नाम सत्य अपनो कियौ॥
करि आदर सनमान, कीन्ह प्रसंसा विविधि विधि। बहु प्रकारको ज्ञान, दै सिक्ष्या निज करि लियौ॥



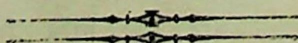
उपसंहार

दोहा

लोहे को न लोहार की, गति नहिं जात विचार। जो सिर धारै सीख कै, ताही की तरवार॥
ऊँच नीच कोऊ नहीं, हरि रस प्रेम पियूष। तुलसी काम मयूष ते, लागै कौनउ रूख॥
जेहि सरीर रति राम सों, तेहि आदरहिं सुजान। रुद्र देह तजि, नेह बस, बानर भे हनुमान॥

कवित्त

जेई परपंची तेई पंच करि मानियत। जेई नर खोटो तिन अटो लीजियतु है॥
जेई हैं चुगुल तेई सुगुल कहावत हैं। जेई महा पापी ते प्रतापी कीजियतु॥
चोरन बोलाइ सिरोपाउ देत राजा राउ। साहन पकरि बंदीखाने दीजियतु है॥
ऐसे हाल देखि कलिकाल के कराल ज्वाल। रामजी तिहारो नाम लै लै जीजियतु है॥
संत सर सरद बसंत सुर साखिन को। कंतर निरंतर अनंत ज्ञान पथ को॥
भानु कुल मुकुट सु माल मुनि मानिन को। पाप खल काल प्रतिपालक सुपथ को॥
जातु धान तम भानु देव धान मघवान। सुकवि तरन थान जान मनमथ को॥
मीन मन फंद, जग लोचन चकोर चंद। पुन्य तरु कंद नाम राम दसरथ को॥



१

श्री जानकीवल्लभो विजयते

मूल गोसाईं-चरित

सोरठा

संतन कहेउ बुझाय, मूलचरित पुनि भाषिये । अति संक्षेप सोहाय, कहौं सुनिय नित पाठ हित ।।१।।
चरित गोसाईं उदार, बरनि सकैं नहिं सहसफनि । हौ मतिमंद गँवार, किमि बरनौं तुलसी सुजस ।।२।।

त्रोटक

ऋषि आदि कबीश्वर ज्ञान निधि, अवतरित भये जनु आप विधी ।
सत कोटि बखानेउ रामकथा, तिहुँ लोकमें बाँटेउ संभु जथा ।।
दस स्यंदन वेद दसांगमयं, श्रुति त्रैविधि तीनिउ रानि जयं ।
श्री राम प्रनव श्रुति तत्त्व परं, निज अंसनि जुत नरदेह धर ।।
इमि कीन्ह प्रबन्ध मुनीस जथा, हरि कीन्ह चरित्र पवित्र तथा ।
हनुमंत प्रनव प्रिय प्रान रसै, परतत्त्व रमै तिसु सीस लसै ।।
यहि भाँति परात्पर भाव लिये, सुचि राम परत्व बखान किये ।
मुनिराज लखे अद्भुत रचना, कपिराज सों कीन्ह इहै जँचना ।।
यह गुप्त रहस्य है गोइ धरैं, विनती हमरी न प्रकास करैं ।
तब अंजनि-नंदन साप दियौ, हँसि कै मुनि धारन सीस कियौ ।।

दोहा

सहनसीलता मुनि निरखि, पवन कुमार सुजान । बहु विधि मुनिहि प्रसंसि पुनि, दिये अभय बरदान ।१।

कलिकाल मैं लैहहु जन्म जबै, कलि ते तव त्रान सदा करिबै ।
तेहि साप के कारन आदि कबी, तम पुंज निवारन हेतु रबी ।।
उदये हुलसी उर घाटिहि ते । सुर संत सरोरुह से बिकसे ।
सरवार सुदेस के विप्र बड़े, सुचि गोत परासर टेक कड़े ।।
सुभ थान पतेजि रहे पुरखे, तेहि ते कुल नाम पढ़ो झुरखे ।
जमुना तट दूबन को पुरवा, बसते सब जातिन कौ कुरबा ।।
सुकृती सतपात्र सुधी मखिया, रजियापुर राजगुरू मुखिया ।
तिनके घर द्वादस मास परे, जब कर्क के जीव हिमांसु चरे ।।
कुच सप्तम अट्ठम भानु तनै, अभिहित सुठि सुन्दर सांझ समै ।

दोहा

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर। स्रावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर ॥२॥

सुत जन्म बधाव लग्यो बजने, सजने छजने रजने गजने ॥
एक दासि कढ़ी तेहि औसर में, कहि देव बुलाहट है घर में ॥
सिसु जन्मत रंचक रोओ नहीं, सो तो बोलेउ राम गिरेउ ज्यौं महीं।
अब देखिय दंत बतीसी जमी, नहिं खोल्हड़ पांति मैं नेक कमी ॥
जस बालक पाँच को देखिय जू, तस जन्मतुआ निज लेखिय जू।
अब वृद्धि भई, भरि जन्म नहीं, सिसु ऐसो मैं देखिउं तात कहीं ॥
महरी कहती सुनि संख धुनी, जबहीं सो समय सिसु नार छुनी।
जो लोगाइ हतीं कपतीं बकतीं, कोउ राकस जामेउ कहि भखतीं ॥
महाराज चलिय अब बेगि घरे, समुझाइ प्रसूति को ताप हरे।

दोहा

उठे तुरत भृगुवंस मुनि, सुनत चेरि के बैन। ठाढ़ प्रसूती द्वार भे पूरित जल सो नैन ॥३॥

छंद

पूरित सलिल दृग निरखि सिसु परिताप जुत मानस भये।
मन महँ पुराकृत पाप को परिनाम गुनि बाहिर गये ॥
तब जुरैं सब हित भित्त बांधव गनक आदि प्रसिद्ध जे।
लागे बिचारन का करिय नवजात सिसु कहँ कहहिं ते ॥ १ ॥

दोहा

पंचन वह निरनय किये, तीन दिवस पस्चात। जियत रहै सिसु तब करिअ, लौकिक बैदिक बात ॥४॥

दसमी पर लागेउ ग्यारस ज्यौं, घरि आइक राति गई जब त्यों।
हुलसी प्रिय दासि सों लागि कहै, सखि प्रान पखेरू उड़ान चहै ॥
अबहीं सिसु लै गवनहु हरिपुर, बसते जहँ तोरिउ सास ससुर।
तहँ जोइबि पालबि मोर लला, हरिजू करिहैं सखि तोर भला ॥
नहि तो ध्रुव जानहु मोरे मुये, सिसु फेंकि पवारहिंगे भकुये।
सखि जान न पावै कोऊ बतियाँ, चलि जायहु मग रतियाँ रतियां ॥
तेहि गोद दियो सिसु ढारस दै, निज भूषन दै, दियो ताहि पठै।
चुपचाप चली सो गई सिसु लै, हुलसी उर सूनु बियोग फवै ॥
गोहराइ रमेस महेस बिधी, बिनती करि राखेबि मोर निधि ॥

दोहा

ब्रह्ममुहूर्त्त एकादसी, हुलसी तजेउ सरीर। होत प्रात अन्त्येष्टि हेत, लैगे जमुना तीर ॥ ५ ॥

घरि पांचइ बार चढ़ै मुनिआ, निज सासके पायँ गही चुनिआ।
सब हाल हवाल बताय चली, सुनि सास कही बहु कीन्ह भली ॥
घर माहिं कलोरको दूध पिला, बिनु मायको है सिसु, लेसि जिआ।
तहँ पालन सो लगि नेह भरै, जेहि ते सिसु रीझइ सोइ करै ॥
यहि भाँति सौं पैंसठ मास गये, सिसु बोलन डोलन जोग भये।

चुनिआ सुरलोक सिधार गई, डस्यो पन्नग ज्यों सो कोरार गई ॥
तब राजगुरूको कहाव गयो, सुनि कै तिनहूँ दुख मानि कह्यो।
हमका करिबै अस बालक लै, जेहि पालै जो तासु, करै सोइ छै ॥
जनमेउ सुत मोर अभागै महीं, सो जिये वा मरै मोहिं सोच नहीं ॥

दोहा

बेनी पूरब जनम कर, करम विपाक प्रचंड। बिना भोगाये टरत नहिं, यह सिद्धान्त अखंड ॥ ६ ॥

छंद

सिद्धांत अटल अखंड भरि ब्रह्मंड व्यापित सत जथा। जहँ मुनिवरनकी यह दसा, तहँ पामरनकी का कथा।
निज छति बिचारि न राख कोऊ दया हग पाछे दियो। डोलत सो बालक द्वार द्वार बिलोकि तेहि बिहरत हियो २

सोरठा

बालक दसा निहारि, गौरा माई जगजननि। द्विज तिय रूप सँवारि, नितहिं पवा जावहिं असन ॥३॥

दुइ वत्सर बीतेउ याहि रसे, पुर लोगन कौतुक देखि कसे।
जिन जोह जासूस पै आय जकै, परिचै द्विज नारि न पाइ थकै ॥
जर नारि हती तहँ सो परखी, जब माय खवाय लला टरखी।
परि पायँ, करो हठ जा न दे, जगदंब अहस्य भई तब ते ॥
सिव जानि प्रिया व्रत हेतु हियो, जन लौकिक सुलभ उपाय कियो।
प्रिय सिष्य अनंतानंद हते, नरहर्य्यानंद सुनाम छते ॥
बसे राम सु सैल कुटी करिके, तल्लीन दसा अति प्रिय हरि के।
तिन कहँ भव दरसन आपु दिये, उपदेसहु दै कृतकृत्य किये ॥
प्रिय मानस रामचरित्र कहे, पठये तहँ जहँ द्विजपुत्र रहे ॥

दोहा

लै बालक गवनहु अवध, विधिवत मंत्र सुनाय। मम भाषित रघुपति कथा, ताहि प्रबोधहु जाय ॥ ७ ॥
जब उधरहिं अंतर हगनि, तब सो कहिहि बनाय। लरिकाइँको पैरिबो, आगे होत सहाय ॥ ८ ॥

सोरठा

संभु वचन गंभीर, सुनि मुनि अति पुलकित भये। सुमिरि राम रघुबीर, तुरत चले हरिपुर तके ॥ ४ ॥

पुर हेरिके बालक गोद लिये, द्विजपुत्र अनाथ सनाथ किये।
कह्यो रामबोला जनि सोच करै, पलिहैं पोसिहैं सब भाँति हरै ॥
सो तो जानेउ दीनदयाल हरी, मम हेतु सु संतको रूप धरी।
पुर लोगन केर रजाय लिये, सह बालक संत पयान किये ॥
पहुँचे जब औधपुरी नगरे, बिचरे पुर बीथिन मां सगरे।
पन्द्रह सै इकसठ माघ सुदी, तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी ॥
सरजू तट विप्रन जग्य किये, द्विजबालक कहं उपबीत दिये।
सिखये बिनु आपुइ सो बरुआ, द्विजमंत्र सवित्रि सु उचरुआ ॥
विस्मयजुत पंडित लोग भये, कहे देखत बालक बिग्य ठये।

दोहा

नरहरि स्वामी तब किये, संस्कार विधि पांच। राममंत्र दिय जेहि छुटै चौरासी को नांच ॥९॥

दस मास रहे मुनिराज तहां, हनुमान सु टीला विराज जहां ।
निज सिष्यहिं विद्या पढ़ाय रहे, अरु पानिनि सूत्र घोखाय रहे ।।
लघु बालक धारनशक्ति जगी, अनुरक्ति सभक्ति दिखान लगी ।
हरषे गुनग्राम बिचार हिये, पद चापत आसिष भूरि दिये ।।
जब ते जनमेउ तब ते अबलौं, निज दीन दसा कहि गो गुरुसों ।
ठक से रहि गे सुनि बाल कथा, करुना उर में उपजाइ व्यथा ।।
मुनि धीर भरे दृग नीर रहे, गुरु सिष्य दसा कबि कौन कहे ।
समुझाय बुझाय लगाय हिये, कहि भावि भलाइ प्रसांत किये ।।
हरि प्रिय रिपु लाग हेमंत जबै, सिष सग लै कीन्ह पयान तबै ।

दोहा

कहत कथा इतिहास बहु, आये सूकरखेत । संगम सरजू घाघरा, संत जनन सुख देत ।।१०।।

तहवां पुनि पांचइ वर्ष बसे, तप में जप में सब भांति रसे ।
जब सिष्य सुबोध भयो पढ़ि कै, मति जुक्ति प्रबीन भई गढि कै ।।
सुधि आइ महेस सिखावन की, परतत्त्व प्रबंध सुनावन की ।
तब मानस रामचरित कहे, सुनि कै मुनि बालक तत्त्व गहे ।।
पुनि पुनि मुनि ताहि सुनावत भे, अति गुढ कथा समुझावत भे ।
यहि भांति प्रबोध मुनीस भले, वसुपर्व लगे सह सिष्य चले, ।।
बिस्राम अनेक किये मग में, जल अन्न को खेल मच्यौ जग में ।
कतहूँ सुकृतिन उपदेश करैं, कतहूँ दुखिया दुख दाप हरैं ।।

दोहा

बिचरत बिहरत मुदित मन, पहुँचे कासी धाम । परम गुरू सुस्थान पर, जाय कीन्ह बिस्राम ।।११।।

सुठि घाट मनोहर पंच गंगा, गँगिया कर कौतुक केलि भगा ।
पुनि सिद्ध सुपृष्ठ प्रतिष्ठित सो, बहुकाल जतीद्र रहे जु नमो ।।
तहवां हते सेष सनातन जू, बपु वृद्ध वरंच जुवा मन जू ।
निगमागम पारग ज्योति फबै, मुनि सिद्ध तपोधन जान सबै ।।
तिन रीझि गये बटु पै जबही, गुरु स्वामी सों सुन्दर बात कही ।
निज सिष्यहि देइय मोहिं मुनी, तिसु वृत्ति दुनी नहिं ध्यान धुनी ।।
हौं ताहि पढ़ाउब वेद चहूँ, अरु आगम दरसन पात छहूँ ।
इतिहास पुरान रु काव्यकला, अनुभूत अलभ्य प्रतीक फला ।।
विद्वान महान बनाउब जू, सुनि आपु महा सुख पाउब जू ।

दोहा

आचारज बिनती सुनत, पुलकित भे मुनि धीर । बटु बुलाय सौंपत भये, पावन गंगा तीर ।।१२।।
कछु दिन रहिगे जति प्रवर, पढ़न लगो बटु भास । चित्रकूट कहँ तब गये, लखि सब भाँति सुपास ।।१३।।

बटु पंद्रह वर्ष तहाँ रहिकै, पढ़ि सास्त्र सबै महिकै गहिकै ।
करिकै गुरु-सेवा सदय तन तै, गत देह क्रिया करि सो मन तै ।।
चले जन्मथली को विषाद भरे, पहुँचे रजियापुर के बगरे ।

निज भौन बिलोकेउ ढूह ढहा, कोउ जीवन जोग न लोग रहा ॥
इक भाट बखानेउ ग्राम-कथा, द्विजबंसका नास भयो जु जथा ।
कह्यो जा दिन नाइ से राज-गुरू, तब त्याग की बोलेउ बात करू ॥
तहँ बैठ रह्यो तप तेज धनी, तिन साप दियो गहि नागफनी ।
षट मास के भीतर राजगुरू, दस वर्ष के भीतर वंस मरू ॥
सुनिकै तुलसी मन सोक छये, करि स्राद्ध जथाविधि पिंड दये ॥

दोहा

पुरलोगन अनुरोध ते, दियो भवन बनवाय । रहन लगे अरु कहत भे, रघुपति-कथा सुहाय ॥१४॥

यमुना पर तीर मों तारिपतो, भरद्वाज सुगोतको बिप्र हतो ।
कतिकी दुतिया कर न्हान लगे, सकुटुम्ब सो आयउ संग सगे ॥
करि मज्जन दान गये तहवाँ, हुलसी-सुत बांच कथा जहवां ।
छबि व्यास बिलोकि प्रसन्न भये, सब लोगन बूझि स्वठाम गये ॥
पुनि माघव मासमें आय रहे, कर जोरिके सुन्दर बात कहे ।
महराति जबै नगिचाय रही, सपने जगदंब चेताय रही ॥
सुभ राउर नांव बताय रही, सब ठाँव ठिकान जताय रही ।
हौं हेरत हेरत आयो इतै, मोहि राखिय हौं अब जाब कितै ॥

दोहा

सुनत बिनय सोचन लगे, पुनि बोले सकुचाय । व्याह बरेखी ना चहौं, अनत पधारिय पाय १५ ॥

द्विज मानै नहीं धरना धरिकै, नहिं खाय पियै ससना करिकै ।
दुसरे दिन जब स्वीकार कियो, तब बिप्र हठी जल अन्न लियो ॥
घर जाय सोधायके लग्न धरो, उपरोहित भेजि प्रसस्त कियो ।
इतते पुरलोगन जोग दिये, सब साज समाज बरात किये ॥
पंद्रह सै पार तिरासि बिषै, सुभ जेठ सुदी गुरु तेरस पै ।
अधिराति लगे जु फिरी भँवरी, दुलहा दुलहीको परी पँवरी ॥
ललना मिलि कोहबर माँहि रसीं, बरनायक पंडित सों बिहँसी ।
तिसरे दिन मांडवचार भयो, सुचि भगति सो दान दहेज दयो ॥

दोहा

बिदा करा दुलही चले, पंडितराज महान । आये निज पुर अरु किये, लोकाचार विघान १६ ॥

पुर नारि जुरीं गुरु भौन गईं, दुलही मुख देखि निहाल भई ।
हुलसी सुत देखेउ नारि छटा, मुख इंदु ते घूंघट कोर हटा ॥
मन प्रान प्रिया पर वार दिये, जस कौसिक मेनका देखि भये ।
दिन रात सदा रँग-राते रहैं, सुख पाते रहैं ललचाते रहैं ॥
सर वर्ष पुरस्मर चाव चये, पल ज्यों रसकेलिमें बीत गये ।
नहिं जाने दें, आपु न जायं कहीं, पल एक प्रिया बिनु, चैन नहीं ॥
दुखिया जननी मुख देखनको, पितु ग्राम सुआसिनि पेखनको ।
सह बंधु गई चुपके सो सती, बरषासन ग्राम हते जु पती ॥

जब साँझ समै निज गेह गये, घर सून निहारि ससोच भये।
तब दासि जनायउ सौं करिकै, निज बंधुके संग गई मैकै॥
सुनतै उठिकै ससुरारि चले, अति प्रेम प्रगाढ़ विसेष पले।
कौनिउ बिधि ते सरि पार किये, पहुँचे सब सोवत द्वार दिये॥

छन्द

दै द्वार सोवहिं लोग नींद तुराइ गोहरावन लगे।
स्वर चीन्हि द्वार कपाट खोली झमकि भामिनि सगबगै।
बोली बिहँसि बानी बिमल उपदेस सानी कामिनी।
कस बस चले प्रेमांध ज्यों, नहि सुधि अँधेरी जामिनी ३॥

दोहा

हाड़ मांसको देह मम, तापर जितनी प्रीति। तिसु आधो जो राम प्रति, अवसि मिटिहि भव भीति १७॥

सोरठा

लाग वचन जिमि बान, तुरत फिरे बिरमें न छिन।
सोचेउ निज कल्यान, तब चित चढ़ेउ जो गुरु कहेउ ५॥

दोहा

'नरहरि' कंचन कामिनी, रहिये इनते दूर। जौ चाहिय कल्यान निज, राम दरस भरपूर १८॥

उठि दौरि मनावन सार गयो, पिछुआये रह्यौ जब भोर भयो।
नहिं फेरे फिरे फिरि आयो घरे, भगिनी निज मूर्छित देख्यो परे॥
मुर्छा जो हटी उठि बोलि सती, पियको उपदेसन आइ हती।
पिय मोर पयान कियो बनको, हौं प्रान पठाउं तजौं तनुको॥
कहिकै अस जो निज देह तजी, सुरलोक गई पतिधर्मध्वजी।
सत पंद्रह जुक्त नवासि सरे, सु असाढ़ बदो दसमीहुँ परे॥
बुध बासर धन्य सो धन्य घरी, उपदेसि सती तनु त्याग करी।
भयो भोर कहैं कोउ सिद्ध मुनी, परमारथ बिन्दक तत्त्व गुनी॥
द्विज गेह में सारद देह धरी, रति रंग रमा रस राग हरी।

दोहा

कोउ कह तियकी मुखनि ते, बोलेउ श्री भगवान। मोह निवारेउ भगत कर, साहिब सीलनिधान॥१९॥

हुलसी-सुत तीरथ राज गये, अरु मंजि त्रिवेनि कृतार्थ भये।
गृहि वेष बिसर्जन कीन्ह तहाँ, मुनि वेष सँवारि चले फफहां॥
गढ़ हेलि रु धेनुमती तमसा, पहुँचे रघुबोरपुरी सहसा।
तहवाँ चौमासक लौं बसिकै, प्रिय संत अनंत बिभू रसिकै॥
चले वेगि पुरी कहँ धाम महा, बिस्राम पचीसक बीच रहा।
तिनमां दुइ ठाम प्रधान गुनो, बरदान रु सापकी बात सुनो॥
घरि चारि दुबौलिमें बास किये, हरिराम कुमारहिं साप दिये।
सो प्रसिद्ध सुप्रेत भयो तेहिते, हरि दरसन आपु लख्यो जेहिते॥
पुनि चारु कुँवरि बरदान दियो, जिन संत सुसेवा लियो रु कियो।

दोहा

जगन्नाथ सुखधाममें, कछुक दिना करि बास । लिखे वाल्मीकी स्वकर, जब तब लहि अवकास ।। २० ।।

रामेश्वर कहँ कीन्ह पयाना, तहँ ते द्वारावति जग जाना ।
बहुरि तहाँ ते चलि हरषाई, बदरी धामहिं पहुँचे जाई ।।
नारायन रिषि व्यास सोहाये, दरस दिये मानस गुन गाये ।
तहँ ते अति दुर्गम पथ लयऊ, मानसरोवर कहँ चलि गयऊ ।।
जियको लोभ तजै जो कोई, सो तहँ जाइ कृतारथ होई ।
तहँ करि दिव्य संत सत्संगा, जाते होवै भव-रस भंगा ।।
दिव्य सहाय पाय मुनिराई, जात रुपाचल देखे जाई ।
नीलाचल कर दरसन कीन्हे, परम सुजान भुसुंडिहि चीन्हे ।।
लौटि सरोवर पैं पुनि आये, गिरि कैलास प्रदच्छिन लाये ।

दोहा

इमि करि तीर्थाटन सफल, निवसे भव बन जाय । चौदह बरिस रु मास दस, सतरह दिवस बिताय २१

टिकिके तहँ चातुरमास किये, नित रामकथा कहि हर्ष हिये ।
बनवासि सुसंत सुनै नित सो, सुनि होंहि अनंदित ते चित सो ।।
बन मां इक पिप्पल रूख हतो, तिसु ऊपर प्रेत निवास छतो ।
जल शौच गिरावहिं तासु तरे, सोइ पानिय प्रेत पियास हरे ।।
जब जानेउ सो कि अहैं मुनि ये, जिन बालपने मोहिं साप दिये ।
तब एक दिना सो प्रतच्छ कह्यो, कहिये सो करों जस भाव अह्यो ।।
हुलसी-सुत बोलेउ मोरे मना, रघुनंदन दरसनको चहना ।
सुनि प्रेत कह्यौ जु कथा सुनिबै, नित आवत अंजनिपूत अजै ।।
सबते प्रथमै सो तो आवहिं जू, सब लोगन पाछे सो जावहिं जू ।

सोरठा

वेष अमंगल धारि, कुष्ठीको तनु जानयहि । अवसर नीक विचारि, चरन गहिय हठ ठानियहि ।। ६ ।।

छन्द

हठ ठानि तेहि पहिचानि मुनिवर बिनय बहु विधि भाषेऊ ।
पद गहि न छाड़ेउ पवनसुत कह कहहु जो अभिलाषेऊ ।।
रघुबीर दरसन मोहिं कराइय मुनि कहेहु गदगद बचन ।
तुम जाइ सेवहु चित्रकूट तहां दरस पैहहु चखन ।। ४ ।।

दोहा

श्रोहनुमंत प्रसंग यह, बिमल चरित विस्तार । लहेउ गोसाइँ दरस रस, बिदित सकल संसार ।। २२ ।।

चित चेति चले चितकूट चितय, मन माहिं मनोरथको उपचय ।
जब सोचहिं आपन मंद कृति, पग पाछ पड़ै जु रहै न धृती ।।
सुधि आवत राम स्वभाव जबै, तब धावत मारग आतुर ह्वै ।
यहि भांति गोसाइँ तहां पहुँचे, किय आसन राम सु घाटहि पै ।।

इक बार प्रदच्छिन देन गये, तहँ देखत रूप अनूप भये।
जुग राजकुमार सु अस्व चढ़े, मृगया बन खेलत जात कढ़े॥
छबि सो लखि कै मन मोहेउ पैं, असको तनुधारि न जानि सकै।
हनुमंत बतायउ भेद सबै, पछिताइ रहे ललचाइल ह्वै॥
तब धीरज दीन्हेउ बायुतनय, पुनि होइहि दरसन प्रात समय।

दोहा

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात। जा बैठे तिसु घाट पैं, बिरही होतहि प्रात॥ २३॥

सोरठा

प्रगटे राम सुजान, कहेउ देहु बाबा मलय। सुक बपु धरि हनुमान, पढ़ेउ चेतावनि दोहरा॥ ७॥

दोहा

चित्रकूटके घाट पैं, भइ संतनकी भीर। तुलसिदास चंदन घिसैं, तिलक देत रघुबीर॥ २४॥

छंद

रघुबीर छबि निरखन लगे बिसरी सबै सुधि देहकी। को घिसै चंदन दृगन तैं बहि चली सरित सनेहकी।
प्रभु कहेउ पुनि सो नाहिं चेतेउ स्वकर चंदन लै लिये। दै तिलक रुचिर ललाट पै निज रूप अंतरहित किये ५

दोहा

बिरह व्यथा तलफत पड़े, मगन ध्यान इकतार। रैन जगाये वायुसुत, दीन्हें दसा सुधार॥ २५॥

सुक पाठ पढ़ावत नारि नरा, करतल पर लै सुकको पिंजरा।
हुलसीसुत भक्ति महा महिमा, ततकालहिं छाय रही महि मां॥
दिन एक प्रदच्छिन कामद दै, पहुँचे सौमित्र पहाड़िहिं पै।
तहँ स्वेतक सर्प पड़यो मगमें, सित गात मनोहर या जगमें॥
तिसु ओर बिलोकि गोसाइँ कहै, चंद्रोपम सुन्दर नाग अहै।
हरि सृष्टि बिचित्र कहे न बनै, निगमागम सारद सेष भनै॥
रिषि दृष्टि पड़ै तिसु पाप गयो, तब पन्नग ग्यानि ललात भयो।
मोहि छूइ कै तारिय नाथ अबै, छुअतेहि गयो सो भुजंग अथै॥
योगश्रि मुनी तहँ छीत भये, निज पूर्व कथा कहि बास लये।

दोहा

यह प्रभाव मुनिनाथ कर, सुनि गुनि संत सुजान। आवन लागे दरस हित, भीर भयो रिषि थान॥२६॥

बड़ि भीर निहारि गुफामें ढुके, बहिरंतर हानि बिचारि लुके।
मुनि आवहिं जोगि तपी रु जती, बिनु दरसन जाहिं निरास अती॥
दरियानंद स्वामिहूँ आय रहे, निज आसन टेकि जमाय रहे।
लघुसंकाके हेतु गोसाइँ कढ़े, कर जोरि सो स्वामि भये जु ठढ़े॥
कहे नाथ है होत अनीति बड़ी, छमिये कहिबो मम बात कड़ी।
लघुसंका लगे बहिरात हैं जू, सुनि साधु गिरा छिपि जात हैं जू॥
दुख पावत सज्जन हैं तेहि ते, बिनती हौं करौं सुनिये यहि ते।
हौं देत मचान बँधाय अबै, तेहि ऊपर आसन नाथ फबै॥
करि दरसन होब निहाल सबै, सुठि सन्त समागम होइ जगै।

दोहा

बिनती दरियानंद की, मानि सजाय मचान। बैठत दिन भर लहत सुख, साधक सिद्ध सुजान २७ ॥

नित नव सत्संग उत्साह बढ़ै, सुचि सन्त हृदय रसरंग चढ़ै।
नित नित्य बिहारहूँ देखत हैं, मृगया कर कौतुक पेखत हैं।
वृन्दावन ते हरिवंस हितू, प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू ॥
पठये तिन आइ जोहार किये, गुरुदत्त सु पोथि सप्रेम दिये ॥
जमुनाष्टक राधासुधानिधि जू, अरु राधिकातंत्र महा विधि जू।
अरु पाति दई हित हाथ लिखी, सोरस सै नव जन्माष्टमिकी ॥
तेहि माहि लिखी बिनती बहुरी, सोइ बात मुखागर सो कहु री।
रजनी महरासकी आवत जू, चित मोर सदय ललचावत जू ॥
रसिकै रस मों तनुत्याग चहौं, मोहि आसिष देइय कुंज लहौं।

सोरठा

सुनि बिनति मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाषेऊ। तनु तजि भये सनाथ, नित्य निकुंज प्रवेस करि ॥ ८ ॥

दोहा

संडीला ते आय कै, बसु स्वामी नंदलाल। पढ़े रामरच्छा विवृति, जो भक्तनको ढाल ॥ २८ ॥

षट मास रहे सतसंग लहे, चलती बिरियां कछु चिह्न चहे।
दियो सालग्रामकी मूर्ति भली, निज हस्त लिखित कवच औ कमली ॥
इमि जादव माधव बेनि उभय, चितसुख करुनेस अनंद सदय।
तपसी सु मुरारि उधार जती, बिरही भगवंत सभागवती ॥
बिभवानंद देव दिनेस मिले, अरु दच्छिन देसके स्वामि पिले।
सब रङ्ग रँगे सतसंग पगे, अहमादि कुनींद सुषुप्त जगे ॥
कहे धन्य गोसाइँ जू जन्म लये, लहि दरसन हौं कृतकृत्य भये।
दृग नीर ढरै नहिं बोल सरै, सब जाहिं सप्रेम प्रमोद भरै ॥
वसु संवत साधु समागम मों, कटिगो नहिं जानि परचो किमि घौं।

दोहा

सोरह सै सोरह लगे, कामद गिरि ढिग बास। सुचि एकान्त प्रदेश महँ, आये सूर सुदास २९ ॥
पठये गोकुलनाथ जी, कृष्ण संग में बोरि। दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाइँ छोरि ३० ॥

कबि सूर दिखायउ सागरको, सुचि प्रेम कथा नट नागर को।
पद द्वय पुनि गाय सुनाय रहे, पदपंकज पै सिर नाय कहे ॥
अस आसिष देइय स्याम ढरैं, यहि कीरति मोरि दिगन्त चरैं।
सुनि कोमल बैन सु दादि दिये, पद पोथि उठाय लगाये हिये ॥
कहै स्याम सदा रस चाखत हैं, रुचि सेवक की हरि राखत हैं।
तनिको नहिं संसय है यहि मां, स्रुति सेष बखानत हैं महिमा ॥
दिन सात रहे सतसंग पगे, पदकंज गहे जब जान लगे।
गहि बाँह गोसाइँ प्रबोध किये, पुनि गोकुलनाथको पत्र दिये ॥
लै पाति गये जब सूर कबी, उरमें पधरायके स्याम छबी।

दोहा

तब आयो मेवाड़ ते, बिप्र नाम सुखपाल । मीरा बाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल ३१ ॥
पढ़ि पाती उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय । सब तजि हरि भजिबो भलो, कहि दिय विप्र पठाय ३२ ॥

तड़के इक बालक आन लग्यो, सुठि सुन्दर कंठ सो गान लग्यो ।
तिसु गान पै रीझि गोसाइँ गये, लिखि दीन्ह तबै पद चारि नये ॥
करि कंठ सुनायउ दूजे दिना, अड़ि जाय सो नूतन गान बिना ।
मिसु याहि बनावन गीत लगे, उर भीतर सुन्दर भाव जगे ॥
जब सोरह सै बसु बीस चढ़्यो, पद जोरि सबै सुचि गंथ गढ़्यो ।
तेहि रामगीतावलि नाम धरचो, अरु कृष्णगीतावलि राँचि सरचो ॥
दोउ ग्रन्थ सुधारि लिखै रुचि सों, हनुमन्तहिं दीन्ह सुनाय जिसों ।
तब मारुति ह्वै कै प्रसन्न कह्यो, करि प्यान अवधपुर जाइ रह्यो ॥
इमि इष्टको आयसु पाइ चले, बिरमे सुठि तीरथराज थले ।

दोहा

तेहि अवसर उत्तम परब, लागो मकर नहान । जोगी तपी जती सती, जुरै सयान अजान ३३ ॥

तेहि पर्व ते पाछे गये दिन छै, बट छांह तरे जु लख्यो मुनि द्वै ।
तपपुंज दोऊ मुख कांति तपै, छबि छाम छपाकर छन्द छपै ॥
करि दंड-प्रनाम सु दूरहिं ते, कर जोरि कै ठाढ़ भये तहि ते ।
मुनि सैन सों एक हँकारि लियो, अपने ढिग आसन चारु दियो ॥
तेहि टारि कै भूमि में बैठि गये, परिचय निज दै परिचाय लये ।
सोइ राम कथा तहँ होत रह्यो, गुरु सूकरखेतमें जौन कह्यो ॥
बिसमयजुत बूझेउ गुप्त मता, कहि जागबलिक मुनि दीन्ह बता ।
हर रंचि भवानिहि दीन्ह सोई, पुनि दीन्ह भुसुण्डिहिं तत्त गोई ॥
हौं जाइ भुसुण्डि ते ताहि लहेउँ, भरद्वाज मुनी प्रति आइ कहेउँ ।

दोहा

यहि बिधि मुनि परितोष लहि, पद गहि पाय प्रसाद । सुने जुगल मुनिवर्ज कर, तहाँ विमल संवाद ३४ ॥

तेहि ठांव गये सब दूजे दिना, थल सून निहारु मुनीस बिना ।
बट छाँह न सो नहि पर्न कुटी, मन बिसमय बाढ़ेउ मर्म पुटी ।
उर राखि उभय मुनि सील चले, हरि प्रेरित कासिकी ओर ढले ।
कछु दूरि गये सुधि आइ जबै, मन सोचतका करिये जु अबै ॥
जो भयो सो भयो अब याहि सधै, हर दरसन कै चलिहौं अवधै ।
मन ठीक किये मग आगु बढ़े, चलि कै पुनि सुरसरि तीर कढ़े ॥
तब तीरहि तीर चले चित दै, भइ सांझ जहां सो तहां टिकि गै ।
दिग वारि पुरा बिच सीतामढ़ी, तहँ आसन डारत वृत्ति चढ़ी ॥
नहिं भूख न नींद बिछिप्त दसा, उर पूरब जन्म प्रसंग वसा ।

दोहा

सीताबट तर तीन दिन, बसि सु कबित्त बनाय । बंदि छोड़ावत बिध तृप, पहुँचे कासी जाय ॥ ३५ ॥
भगत सिरोमनि घाट पै, बिप्रगेह करि बास । राम बिमल जस कहि चले, उपज्यो हृदय हुलास ॥३६॥

दिन मां जितनी रचना रचते, निसि मांहि सुसंचित ना बचते।
यह लोप क्रिया प्रति द्यौस सरै, करिये सो कहा नहि बूझि परै॥
अठवें दिन संभु दिये सपना, निज बोलिमें काव्य करो अपना।
उचटी निंदिया उठि बैठु मुनी, उर गूँजि रह्यो सपनेकी धुनी॥
प्रगटे सिव संग भवानि लिये, मुनि आठहु अंग प्रणाम किये।
सिव भाखेउ भाषामें काव्य रचो, सुरबानिके पीछे न तात पचो॥
सब कर हित होइ सोई करिये, अरु पूर्व प्रथा मत आचरिये।
तुम जाइ अवधपुर बास करो, तहँईं निज काव्य प्रकास करो॥
मम पुन्य प्रसाद सों काव्यकला, होइहै सम साम रिचा सफला।

सोरठा

कहि अस संभु भवानि, अंतरधान भये तुरत, आपन भाग्य बखानि, चले गोसाईं अवधपुर॥ ९॥

दोहा

जेहि दिन साहि सभानमें, उदय लह्यो सनमान। तेहि दिन पहुँचे अवधमें, श्रीगोसाईं भगवान॥ ३७॥

सरजू करि मज्जन गव दिनमें, बिचरे पुलि नारन बीथिनमें।
एक संत मिले कहने सो लगे, थल रम्य लखैं महबीरी लगे॥
लै संग सो ठाम दिखायो भले, बटकी बिटपावलि पुन्य थले।
तिन माँ बट एक बिसाल यहो, तिसु मूलमें बेदिका सोहि रहि॥
तिसु ऊपर बैठु सिधासनसे, एक सिद्ध प्रसिद्ध हुतासनसे।
थल देखि लोभायो गोसाइँ मना, बसिये यहि ठाँव कुटीर बना॥
जब सिद्धके सन्निधि मों गुदरे, तजि आसन सो जय जय उचरे।
सो कह्यो गुरु मोर निदेस दियो, तेहि कारन हौं बास लियो॥
गुरु मोर बतायउ मरम सबै, सो ता देखत हौं परतच्छ अबै।

कुण्डलियाँ

मम गुरु कहेउ कि करहि किन सिद्ध पृष्ठ थल बास। कछु दिन बीते कहहिंगे हरि-जस तुलसीदास।
हरि-जस तुलसीदास कहहिंगे यहि थल आई। आदि कबी अवतार वायुनंदन बल पाई॥
राजराज बट रोपि दियो मरजाद समुत्तम। बसि यहँ ठाहर ठादु मानि अति हित सासन मम॥ १॥

सोरठा

जब ऐहैं यहि ठाम, हुलसीसुत तिसु हेतु हित। सौंपि कुटी आराम, तन तजि ऐहहु मम निकट॥१०॥

उपदेस गुरु मोहि नीक लग्यो, बहु जनम पुरातन पुन्य जग्यो।
बसिकै रसिकै तपिकै चोरी, हौं जोहत बाट रहेउँ रौरी॥
अब राजिय गाजिय नाथ यहाँ, हौं जाब बसे गुरु मोर जहाँ।
कहिके अस बेदिका ते उतरचो, सिर नाइ सिधारेउ दूरि परचो॥
तहँ आसन मारिकै ध्यान धरचो, तिसु जोग हुतासन गात जरचो।
यह कौतुक देखि गोसाइं कहै, धनुधारि! तेरी बलिहारि अहै॥
निबसे तहँ सौख्य सुपास लहे, दृढ़ संजम जो मम जोग गहे।
पय पान करैं सोउ एक समय, रघुबीर भरोस न काहुक भय॥
जुग बत्सर बीत न वृत्ति डगो, इकतीसको संबत आइ लगो।

दोहा

रामजनम तिथि बार सब, जस त्रेता महँ भास। तस इकतीसा महँ जुरो, जोग लग्न ग्रह रास ॥३८॥
नवमी मंगलवार सुभ, प्रात समय हनुमान। प्रगटि प्रथम अभिषेक किय, करन जगत कल्यान ॥३९॥
हर, गौरी, गनपति, गिरा, नारद, सेष सुजान। मंगलमय आसिष दिये, रबि, कवि, गुरु गिरबान ॥४०॥

सोरठा

यहि बिधि भा आरंभ, रामचरितमानस बिमल। सुनत मिटत मद दंभ कामादिक संसय सकल ॥

दुइ बत्सर सातेक मास परे, दिन छब्बिस मांझ सो पूर करे।
तैंतीस को संबत औ मगसर, सुभ द्यौस सु राम बिबाहहि पर ॥
सुठि सप्त जहाज तयार भयो, भवसागर पार उतारन को।
पाखंड प्रपंच बहावन को, सुचि सात्त्विक धर्म चलावन को ॥
कलि पाप कलाप नसावन को, हरि भगति छटा दरसावन को।
मत बाद बिबाद मिटावन को, अरु प्रेम को पाठ पढ़ावन को ॥
संतन चित चाव चढ़ावन को, सज्जन उर मोद बढ़ावन को।
हरिरस हर बस समुझावन को, स्रुति संमत मार्ग सुझावन को ॥
जुत सप्त सोपान समाप्त भयो, सदग्रन्थ बन्यो सुप्रबन्ध नयो।

दोहा

महिसुत बासर मध्य दिन, सुभ मिति तत्सत कूल। सुर समूह जय जय किये, हरषित बरसे फल ॥
जेहि छिन यह आरम्भ भो, तेहि छिन पूरेउ पूर। निरबल मानव लेखनी, खींचि लियो अति दूर ॥४२॥
पाँच पात गनपति लिखे, दिव्य लेखनी चाल। सत, सिव, नाग रु द्यू, दिसप, लोक गये ततकाल ॥४३॥
सबके मानस में बसेउ, मानस रामचरित्र। बंदन रिषि कबि पद कमल, मन क्रम बचन पवित्र ॥४४॥
बंदौं तुलसी के चरन, जिन कीन्हों जग काज। कलि समुद्र बूड़त लख्यो, प्रगटेउ सप्त जहाज ॥४५॥
परम मधुर पावन करनि, चार पदारथ दानि। तुलसीकृत रघुपति कथा, कै सुरसरि रसखानि ॥४६॥

सोरठा

प्रगटे श्री हनुमान, अथ सों इति लौं सब सुने। दिये सुभग बरदान, कीरति त्रिभुवन बसकरी ॥१२॥

मिथिला के सुसंत सुजान हते, मिथिलाधिप भाव पगे रहते।
सुचि नाम रुपारुन स्वामि जुतो, तेहि अवसर औध में आयो हुतो ॥
प्रथमै यह मानस तेई सुने, तिनहीं अधिकारी गोसाइँ गुने।
स्वामि नंद सु लाल को सिष्य पुनी, तिसु नाम दयाल सु दास गुनी ॥
लिखि कै सोइ पोथि स्वठाम गयो, गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो।
जमुना तट पै त्रय बत्सर लों, रसखानहिं जाइ सुनावत भो ॥
तब ते वहु संख्यक पात लिखै, कछु लोगन औ निज हाथ रिषै।
मुकुतामनि दास जु आयो हतो, हरि सयन को गीत सुनायो हतो ॥
तिसु भावहि पै मुनि रीझि गयो, पल मों पल भाँजत सिद्धि दयो।

दोहा

तब हरि अनुसासन लहे, पहुँचे कासी जाय। बिस्वनाथ जगदंब प्रति, पोथी दियो सुनाय ॥७४॥

छन्द

पोथी पाठ समाप्त कैके धरे सिवलिंग ढिग रात में।
मूरख पण्डित सिद्ध तापस जुरे, जब पट खुलेउ प्रात में॥
देखिन तिरषित दृष्टि ते सबं जने, कीन्ही सही संकरं।
दिव्याखर सों लिख्यो पढ़े धुनि सुने, सत्यं सिवं सुन्दरं॥ ६॥
सिव की नगरी रस रंग भरी, यह लीला जु पाटि गई सगरी।
हरषे नरनारि जोहारि किये, जय जय धुनि बोलि बलैयाँ लिये॥
पै पण्डित लोगन सोच भयो, सब मान महातम जीव गयो।
पढ़िहैं यह पोथि प्रसादमई, तब पूछिहैं कौन हमैं मनई॥
दल बाँधि ते निंदत बागत भे, सुर-बानि सराहत पागत भे।
कोउ ग्रन्थ चोरावन हेतु रचे, फरफन्द अनेक प्रपंच पचे॥
निधुआ सिखुआ जुग चोर गये, रखवार बिलोकि निहाल भये।
तेहि पूछे गोसाइँ ते कौन धु ही, जुग स्यामल गौर धरे धुनही॥
सुनि बैन भरे जल नैन कहे, तुम धन्य हते हरि दरस लहे।

दोहा

तजि कुकरम तसकर तरे, दिय सब वस्तु लुटाय। जाइ धरे टोडर सदन, पोथी जतन कराय॥४८॥

पुनि दूसर पात लिख्यो रुचि सों, तेहिते लिपि पै लिपि होन लगो।
दिन दून प्रचार बढ़ेव लखिकै, सब पंडित हारे हिया झखि कै॥
तब मिस्र बटेसर तांत्रिक ही, दुख दाह सुधोगन रोय कही।
तिन मारन केर प्रयोग कियो, हठि भैरव प्रेरि पठाय दियो॥
हनुमन्तसे रच्छक देखि डरे, उलटे सु बटेसर प्रान हरे।
तब हारि चले दल को सजि कै, मधुसूदन सरस्वतिके मठ पै॥
कहे कीन्ह प्रमान महेस सही, किसु कोटिको है सो न बात कही।
स्रुति सास्त्र पुरान इतिहास इये, केहिके समकच्छ तिसै कहिये॥
जतिराज कहे मँगवाउब जू, तब पोथि बिलोकि बताउब जू।

दोहा

जति मँगाय पोथी पढ़े, उपज्यो परमानन्द। फेरि दिये लिखि श्लोक यह, जयति सच्चिदानन्द॥ ४९॥

श्लोक

आनन्द कानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः। कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥ १॥

जब पंडित आये कहे तिन ते, किन पूछिय बात सदासिवसे।
निगमागम सास्त्र पुरान सबै, क्रम ते धरि मानस नीचे फबै॥
जब होत बिहान खुलेउ पट तो, सब टूटि परे तेहि देखनको।
लखि बेदके ऊपर मानसही, सब पंडित लाज गरे तितही॥
चरनों पै पड़े चरनोदक लै, अपराध कराइ छमा घर गै।
नदियाको सुपंडित दत्त रवी, सब सास्त्र बिसारद आसु कबी॥

मुनि ते हठि बाद बिबाद कियो, अरु हारि बिषाद बढ़ायो हियो।
जब न्हाय गोसाइँ गये मठ ते, तब मारन हेतु गयो लठ ले।।
हनुमन्त सुरच्छक देखि भज्यो, अपनी करनी पर आपु लज्यो।
पुनि जाइ गोसाइँ रिझाय लियो, बर हेतु सुधी हठ भूरि कियो।।

छन्द

माँगेउ सो बर तजियै पुरी मुनि बिवस भे बरके दिये।
'कासिनाथ कहि निबरत हौं' कबित्त बनाय दृढ़ निस्चय किये।।
सो लिखि धरे हर मंदिरहिं प्रस्थान दच्छिन दिसि किये।
सिव दै दरस समुझाइ फेरे छुभित मन धीरज दिये।। ७।।

दोहा

सुनि प्रस्थान मुदित भयो, गयो दरस हित धीर। बंद भयो पट घुनि भई, कोपसहित गंभीर।। ५०।।

सोरठा

जाइ गोसाइँ मनाउ, पग परि बहु बिधि बिनय करि। पुरि महँ लाइ बसाउ, ना तो होइहि नास तव १३

सुनि टोडर आय कियो बिनती, मुनि मानिय सेवककी मिनती।
प्रिय घाट असी पर भौन नयो, बनिकै सह घाट तयार भयो।।
बसिकै सुख सों सुख देइय जू, पदकंज सदा हम सेइय जू।
सुख मानि गये तेहि ठाम बसे, रघुबीर गुनावलि माहिं रसे।।
कलि आयउ राति कृपान लिये, मुनि कहँ बहु भाँति सों त्रास दिये।
सो कहेउ जल बोरहु पोथि निजै, न तो दाढ़िहौं ताड़िहौं चेतु अबै।।
कहिके अस सो जु सिधारो जबै, मुनि ध्यान धरेउ हरि हेत तबै।
हनुमंत कह्यो कलि ना मनिहै, मोहि बरजत बैर महा ठनिहै।।
लिखिकै बिनयावलि देहु मोही, तब दंड दियाउब तात ओही।।

दोहा

बिदित राम बिनयावली, मुनि तब निरमित कीन्ह।
सुनि तेहि साखी जुत प्रभू, मुनिहिं अभय कर दीन्ह।। ५१।।

मिथिलापुर हेतु पयान किये, सुकृती जन को सुख सांति दिये।
भृगु आस्रम में दिन चारि रहे, कर हीन बुआ कर पाप दहे।।
दिन एक बसे मुनि हंसपुरा, परसी को सुहाग दिये बहुरा।
गउघाट में राउ गँभीर घरे, दुइ बासर लों तहवाँ ठहरे।।
ब्रह्मेस सुदरसन कैके चले, पुनि कांत ब्रह्मपुर माँ निकले।
संवरू सुत माँगरु ग्वाल हतो, दुहि दूध दियो सुर साधु रतो।।
बर दीन्ह तजे चोरहाई सहूँ, निरबंस न होवहुगे कबहूँ।
तब बेला पतार में आय रहे, तहँ दास धनी निज कष्ट कहे।।

छंद

कहे कष्ट आपन काल्हि जाइहि प्रान मम पातक बयों।
मूसहिं खवायो भोग कहिं कहि खात हरि सोहैं कियो

रघुनाथसिंह जानेउ दगा करि कोप सो बोलेउ मुने।
नहिं खाहिं ठाकुर सामुहे मम तोपि बध निस्चय गुने ८॥

सोरठा

मुनिबर धीरज दीन्ह, कियो रसोई साधु तब। सन्मुख भोजन कीन्ह, ठाकुर लखि रिषि इमि कहेउ १४॥

दोहा

तुलसी झूठे भगतकी, पति राखत भगवान। जिमि मूरख उपरोहितहिं, देत दान जजलान ५२॥

निज गेह पवित्र करावनको, लै गो मुनिको बर नायक सो।
तहँ भक्त सु गोबिंद मिस्र मिले, जिसु दृष्टि ते लोह घना पिघिले॥
मुनि गाँवके नाँवमें फेर करे, रघुनाथपूरा तिसु नाम धरे।
तँह ते चलिकै बिचरे बिचरे, रिषि हरिहर खेतमें जा पधरे॥
पुनि संगम मंजि चले सपदी, नियराये बिदेहपुरी छपदी।
धरि बालिका रूप बिदेह लली, बहराय कै खीर खवाय चली॥
जब जानेउ मरम कहा कहिये, मन ही मन सोचि कृपा रहिये।
द्विज लोगन हालाके घेरि रहे, अरु आपन घोर विपत्ति कहे॥
छत सूबा नवाब बड़ो रगरी, सो तो बारहो गाँव की बृत्ति हरी।

दोहा

दया लागि कर्त्तव्य गुनि, सुमिरे वायुकुमार। दंडित करि बहुरायउ, सुखजुत द्वित परिवार ५३॥
मिथिला ते कासी गये, चालिस संबत लाग। दोहावलि संग्रह किये, सहित विमल अनुराग ५४॥
लिखे बालमीकी बहुरि, इकतालिसके माँहि। मगसर सुदि सतिमी रबौ, पाठ करन हित ताहि ५५॥
माधव सित सिय जनम तिथि, ब्यालिस संबत बीच। सतसैया बरनै लगे, प्रेम बारि ते सींच॥५६॥

सोरठा

उतरु सनीचरि मीन, मरी परी कासीपुरी। लोगन ह्वै अति दीन, जाइ पुकारे रिषि निकट॥१५॥

छंद

लागिय नाथ गोहार अपरबल कछु न बिसाता। राखैं हरि के दास कि सिरजनहार बिधाता॥८॥

दोहा

करुनामय मुनि सुनि बिथा, तंत्र कवित्त बनाय। करुनानिधि सों विनय करि, दीन्हीं मरी भगाय॥५७॥

कबि केसवदास बड़े रसिया, घनस्याम सुकुल नभ के बसिया।
कबि जानि के दरसन हेतु गये, रहि बाहिर सूचन भेजि दिये॥
सुनिकै जु गोसाईं कहै इतनो, कवि प्राकृत केसव आवन दो।
फिरि गे झट केसव सो सुनिकै, निज तुच्छता आपुइ ते गुनिकै॥
जब सेवक टेरेउ गे कहिकै, हौं भेंटिहौं कालिह बिनय गहिकै।
घनस्याम रहे, घासिराम रहे, बलभद्र रहे बिस्राम लहे॥
रचि राम सुचन्द्रिका रातिहि में, जुरे केसव जू असि घाटिहि में।
सतसंग जमी रस रंग मची, दोउ प्राकृत दिव्य बिभूति खची॥
मिटि केसव को संकोच गयो, उर भीतर प्रीति की रीति रयो।

दोहा

आदिलसाही राज के, भाजक दान बनेत। दत्तात्रेय सु बिप्रवर, आये रिषय निकेत ।।५८।।
करि पूजा आसिष लहे, माँगे पुन्य प्रसाद। लिखित बलमीकी स्वकर, दिये सहित अहलाद ।।५९।।
अमरनाथ जोगी तिया, हरि बैरागी लीन। ताते कोपि तिनहिं रहित, कंठी माला कीन ।।६०।।
मच्यो कोलाहल साधु सब, आये मुनिवर पास। फेरि मिल्यो सो आसननि, रिषय कृपा अनयास ।।६१।
आयो सिद्ध अघोरिया, अलख जगावत द्वार। छिन महँ सिद्धाई हरी, उपदेसेउ स्रुति सार ।।६२।।

निमिसारको बिप्र सुधर्मरता, बनखंडि सुनाम बिमोह गता।
सउ तीरथ लुप्तहिं चाहु थपैं, तिसु हेतु सदासिव मंत्र जपैं ।।
इक प्रेत घना डिग ठाढ़ भयो, बहु द्रव्य गड़ो सो दिखाइ दयो।
सो कह्यो धन लै सुभ काज सरो, यहि जोनि ते मोर उबार करो ।।
मन हरषित विप्र कह्यो मोहिकाँ, चौधाम घुमाय सुतीरथ माँ।
तब कासि गुसाइंके तीर चलो, तिस दरसन होय तुम्हारो भलो ।।
सुख मानि कै तैसोइ प्रेत कियो, नभ माँहिं असी पर छेक छियो।
जन सोर मच्यो बहु लोग जुरै, सब कौतुक देखहिं अंग फुरे ।।
निज अश्रम ते कढ़ि आयो मुनी, नभ ते भयो जयजयकार धुनी ।।

दोहा

दिव्य रूप धरि जान चढ़ि, प्रेत गयो हरिधाम। तुलसी दरस प्रताप ते, सोभ भयो बिधि बाम ।।६३।।
बनखंडी महि पर गिरेउ, पग छुइ कियो प्रनाम। मुनि सन सब ब्यवरा कह्यो, बतेउ रसेउ तेहि ठाम ६४
तासु बिनय बस मुनि चले, तीरथ थापन काज। पहुँचे अवधहिं पाँच दिन, तहाँ टिके रिषिराज ।।६५।।

दै रामगीताव्रलि गायकको, जे गावहिं जस रघुनायकको।
मनबोध तिवारिहिं औघ छटा, सब कंचन मय वन भूमि अटा ।।
देखराके चले रौनाही टिके, पुनि सूकरखेतमें जाय थिके।
सियवार सुगाँवमें बास लिये, तहँ सीता सुकूपको पाथ पिये ।।
पहुँचे लखनैपुर मोद भरे, अरु धेनुमती तट पै उतरे।
कहुँ दीननको प्रतिपाल करैं, कहुँ साधुनके मन मोद भरैं ।।
कहुँ लखनलालको चरित बचैं, कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचैं।
कहुँ रामायन कल गान सचैं, उत्साह कोलाहल भूरि मचैं ।।
कहु आरत जनको ताप हरैं, कहुँ अग्यानिन उर ग्यान धरैं ।।

दोहा

निरधन भाट दमोदरहिं, आसिख दै कबि कीन। लहेउ बिपुल धन मान बहु, भा कबि कला प्रबीन ६६
तहँ ते मलिहाबादमें, आय संत सिरताज। रामायन निज कृत दिये, ब्रजबल्लभ भटराज ।।६७।।
पुनि अनन्य माधव मिले, कोटरा ग्रामहिं जाय। माता प्रति सिच्छा सुने, भगति दिये बतलाय ।।६८।।

पुनि जाय बिठूरमैं रैनि बसे, सरि मज्जत पाँकमें जाइ धँसे।
गहि बाँह निकारेउ जन्हुसुता, तन तायो जरा न रही जु बुता ।।
तहँ ते चलि जाय सँडीले परे, गौरीसंकर गृह माथ धरे।
कहे या घरमें लिहै जनम पखा, मनसुखा स्वयं श्रीकृष्ण सखा ।।

कुछ काल गये सोइ जन्म धरचो, बंसीधर ताकर नाम परचो।
कबि भो मुनिवर उपदेस कियो, पद रास सुने तनु त्याग दियो ।।
तेहि ब्योम बिमान पै जात लख्यो, हलवाई प्रसिद्ध प्रबीन मख्यो।
सतसंगिन देखि निहाल भये, उपदेस सनातन पूर लये ।।

दोहा

संडीले ते मुनि चले, मग ठाकुर छितिपाल। नमन कियो नहिं मद मतो, तुरत भयो कंगाल ।।६९।।

सोरठा

बिप्रन किय अपमान, ताते ते निरधन भये। कैथन किय सनमान, सुखी भये धन बस लहि ।।१६।।

दोहा

जुरे जुलाहे भेंट धरि, लहै बिपुल धन धान्य। पहुँचे नैमिख बन मुनी, सर्व तंत्र सनमान्य ।।७०।।
सोधि सकल तीरथ थपे, किय त्रय मास निवास। मिले पिहानीके सुकुल, संबत लगु उनचास ।।७१।।

खैराबाद को सिद्ध प्रबीन धरे, मुनि आपुइ जोग ते जाइ परे।
करि ताहि निहाल चले मिसरिख, सँग में बनखंडि दु चारिक सिख ।।
पुनि नाव चढ़े सुख सों बिचरे, पुर राम सुने तुरतै उतरे।
नृप सेवक टंटा बेसाहि रहे, सब माल मता तजि राह गहे ।।
सिंहराम सुनो पग दौरि गह्यो, करिके सु बिनयपद टेकि रह्यो।
तब लौटि परे तिसु धाम बसे, हनुमंतहिं थापि तहाँ बिलसे ।।
बंसीबन-नाम धरचो बटरय, मगसर सुदि पंचमी रास रचय।
वृन्दाबन में तहँ ते जु गये, सुठि राम सु घाट पै बास लये ।।
बड़ धूम मचो सुचि संत घुरे, मुनि दरसन को नर नारि जुरे।

दोहा

स्वामी नाभा ढिग गये, ते किय बहु सनमान। उच्चासन पधराइ मुनि, पूजे सहित बिधान ।।७२।।
बिप्र संत नाभा सहित, हरि दरसन के हेत। गये गोसाइँ मुदित मन, मोहन मदन निकेत ।।७३।।
राम उपासक जानि प्रभु, तुरत धरे धनुबान। दरसन दिये सनाथ किय, भगतबछल भगवान ।।७४।।

बरसाने में लीला सो ब्यापि गई, मुनि आसन पै बड़ि भीर भई।
कछु कृष्न उपासक द्वेष भरे, धनुबान धरे पर मोह सरे ।।
तिनको समुझाये सु तत्त्व महा, जन को प्रन राम न राख्यो कहाँ।
सुभ दच्छिन देस ते जात हतो, हरि मूरति अवधहिं थापन को ।।
बिस्राम भयो जमुनातट पै, लखि मूरति मोहे बिप्र उदय।
सो चहो हरि बिग्रह ह्वाई थपै, बिनती किय जाइ गोसाईंहि पै ।।
न उठाये उठे जब सो प्रतिमा, तब थापित कीन्ह तहैं जिमिमाँ।
तिसु नाम कौसल्यानंदन जू, मुनिराज धरे जग बंदन जू ।।
नँददास कनौजिया प्रेम मढ़े, जिन सेष सनातन तीर पढ़े।
सिच्छा गुरु बंधु भये तेहिते, अति प्रेम सों आय मिले यहि ते ।।

दोहा

हित सुत गोपीनाथ प्रति, महिमा अवध बखानि । जेहि नहिं ठाँव ठिकान कहुँ, तिनहिं बसावत आनि ।।७५।।
फेरि अमनिया दिये पुनि, सखरा ताहि बताय । हलवाई बनिकन सदन, बालकृष्न दिखराय ।।७६।।

सोरठा

इमि लीला दरसाय, भगतन उर आनन्द भरि । चित्रकूट महँ जाय, किये कछुक दिन बास तहँ ।।१७।।

सतकाम सुबिप्र गोसाइँ लगे, दीच्छाहित आयो सुवृत्ति जगे ।
लखि काम बिकार न सिष्य किये, टिकि गो तहँ सो हठ ठानि हिये ।।
जब राति में रानि कदंबलता, आइ तासु बिलोकन सुंदरता ।
तिन दीपक बाति बढ़ाइ लियो, लखिकै मुनि सुंदर सीख दियो ।।
सो बिप्र लजाइ कै पाँय परयो, करिकै मुनि छोह बिकार हरयो ।
पुनि बिप्र दरिद्र, महा जलपा, मंदाकिनि डूबत हेतु चला ।।
तिसु प्रान बचावन हेतु रिषय, सुठि दारिद मोच सिला प्रगटय ।
पुनि साहि खवास पठायउ जू, मुनिराजहिं दिल्ली बुलायउ जू ।।

दोहा

चले जमुन तट नृप तिलक, साधु कियो सरनाम । राधाबल्लभ भगति दिय, रीझे स्यामा स्याम ।।७७।।

सोरठा

उड़छै केसवदास, प्रेत हतौ घेरेउ मुनिहिं । उधरे बिनहि प्रयास, चढ़ि बिमान स्वरगहि गयो ।।१८।।

चरखारि के ठाकुर की दुहिता, जिसु सुन्दरता पै जग मुहिता ।
इक नारिहिं ते तिसु ब्याह भयो, जब जानेउ दारुन दाह भयो ।।
बर की जननी जनमावत ही, सो प्रसिद्ध कियो तेहि पुत्र कही ।
अनुकूलहिं साज समान कियो, जे जानत भे तिहि पूजि दियो ।।
यहि कारन धोखा भयो बहुतै, अब रोवत मींजत हाथ सबै ।
तिन घेरे दया लगि संत हियें, तिसु हेतु नवाह्णिक पाठ किये ।।
बिस्राम लगायो सो जानिय जू, तिसु सब्द प्रथम यह आनियजू ।
हिय, सत, अरु कीन्हरु स्याम लगा, औ राम सैल पुनि हारि परा ।।
कह मारुतसुत, जहँ तहँ पुन्यं, इति पाठ नवाह्निक ठाम अयं ।

दोहा

नारी ते नर होइ गयो, करतहिं पाठ बिराम । पुलकित जय तुलसी कहैं, जय जय सीताराम ।।७८।।
तहँ ते पँचयें दिन मुनी, पहुँचे दिल्ली जाय । खबरि पाय तुरतहि नृपति, लिय दरबार बुलाय ।।७९।।
दिल्लीपति बिनती करी, दिखरावहु करमात । मुकरि गये बन्दी किये, कीन्हे कपि उतपात ।।८०।।
बेगम को पट फारेऊ, नगन भई सब बाम । हाहाकार मच्यो महल, पटको नृपहिं धड़ाम ।।८१।।
मुनिहिं मुकुत ततछन किये, छमाऽपराध कराय । बिदा कीन्ह सनमान जुत, पीनस पै पधराय ।।८२।।

चलि दिल्ली ते आये महाबनमें, निसि बास किये जु अहीरनमें ।
इक ग्वार भागीरथ पै ढुरि गे, तेहि सिद्ध सुसंत बनावत भे ।।
दसयें दिन ओधहिं आय रहे, भारि पाख तहाँ सुसताय रहे ।
हरिदास सुभक्त सुगीत रयो, तेहि माँ कछु सब्द असुद्ध भयो ।।

सुधराये मुनी पैं न बोध भयो, तिसु कीर्त्तनमें अवरोध भयो।
सपने मुनि ते रघुबीर कह्यो, नहिं सुद्ध असुद्ध सुभाव गह्यो॥
तब जाइ मुनि तिसु भाव भरो, जस गावत हौ तस गाया करो।
सुनि बालचरित्र अनन्दित ह्वै, मुनि तुष्ट किये सुपटम्बर दै॥

दोहा

देव मुरारी भेंट मिलि, सहित मलूकदास। पहुँचे कासीसे रिषय, किये अखंड निवास॥८३॥

सुचि माघमें गंग नहाय हते, सरि भीतर मंत्र महा जपते।
तन वृद्ध सो काँपत रोम अड़े, गनिका रहि देखत तीर खड़े॥
कढ़िकै मुनि सींचेउ वस्त्र धरे, दुइ बुंद सोई गनिका पै परे।
बेस्या मनमें निरबेद जगो, बहु हृस्य निरय दिखरान लगो॥
सब पाप प्रपंच ते दूर भगी, उपदेस ले हरिगुन गान लगी।
हरिदत्त सु बिप्र दरिद्र महा, तिसु गंगके पारमें बास रहा॥
मुनिके ढिग आय बिपत्ति कही, जस दीन दसा घर केर रही।
रिषि अस्तुति गंग बनाय करो, सुरसरि दै भूमि बिपत्ति हरी॥

दोहा

निंदक मुनि अरु भगगि पथ, भुलई साहु कलार। निधन भयउ टिकठी धरे, लैगै फूंकनहार॥८४॥
तास तिया रोवत चली, मुनि ढिग नायउ सीस। सदा सोहागिन रहहु तुम, मुनिवर दीन्ह असीस ८५॥
बिलखि कही सो निज दसा, सब मुनि लिये मँगाय। चरनामृत मुख देइकै, तुरतै दिये जियाय॥८६॥

तेहि बासर ते मुनि नेम लिये, अरु बाहिर बैठब त्यागि दिये।
रहे तीन कुमार बड़े सुकृती, मुनि चरननमें तिनकी भगति॥
रिषिकेस रह्यो मनिकर्निका पै, बिसुनाथके मन्दिर सांतिपदै।
अनपुरनामें दातादीन रहै, रहनो गहनी सम साम गहै॥
मुनि दर्सनको नित आवत जू, चरनोदक लै घर जावत जू।
पहिचानि सुप्रीति मुनी तिनकी, सुचि टेक विवेक समीचिनकी॥
तिनके हित हो बहिरायँ मुनी, दैके दरसन भितरायँ पुनी।
सब दर्सक बृंद चबाव करैं, मुनि पै पच्छपातको दोष धरैं॥
दिन एक परीच्छा लीन मुनी, बहिराये नहीं सोइ भाव गुनी।
तन तीनउ ता छिन त्यागि किये, चरनोदक जीवन दान दिये॥

दोहा

सोरह सै उनहत्तरो, माधव सित तिथि धीर। पूरन आयू पाइकै, टोडर तजे सरीर॥८७॥
मीत बिरह में तीन दिन, दुखित भये मुनि धोर। समुझि समुझि गुन मीत के, भरयो बिलोचन नीर ८८
पाँच मास बीते परे, तेरस सुदी कुआर। जुग सुत टोडर बीच मुनि, बाँटि दिये घर बार॥८९॥
नख-सिख कर्ता आसु कबि, भोषनसिंह कनगोय। आयो मुनि दरसन कियो, त्यागेउ तन हरि जोय ९०
गंग कहेउ हाथी कवन, माला जपेउ सुजान। कठमलिया वंचक भगत, कहि सो गयो रिसान॥९१॥
छमा किये नहिं स्राप दिय, रँगे सांति रस रंग। मारग में हाथी कियो, झपटि गंग तन भंग॥९२॥
कबि रहीम बरवै रचै, पठये मुनिवर पास। लखि तेइ सुन्दर छंद में, रचना कियो प्रकास ९३॥

मिथिला में रचना किये, महछू मंगल दोय। मुनि प्रांचे मंत्रित किये, सुख पावें सब कोय ॥६४॥
बाहु पीर ब्याकुल भये, बाहुक रचे सुधीर। पुनि बिराग संदीपनी, रामाज्ञा सकुनीर ॥६५॥
पूर्व रचित लघु ग्रन्थननि, दोहराये मुनि धीर। लिखवाये सब आन ते, भो अति छीन सरीर ॥६६॥
जहाँगीर आयो तहाँ, सत्तर संबत बीत। धन धरती दीबो चहै, गहे न गुनि बिपरीत ॥६७॥
बिरबल की चर्चा भई, जो पटु बागबिलास। बुद्धि पाइ नहिं हरि भजे, मुनि किय खेद प्रकास ॥६८॥
अवधपुरी को चोहड़ा, अवधबासि प्रिय जानि। हृदय लगाये प्रेमबस, रामरूप तेहि मानि ॥६६॥
सिद्ध वृंद गिरिनार के, नभ ते उतरे आय। करि दरसन पुलकित भये, प्रस्न किये सति भाय ॥१००॥

सोरठा

तुमहिं न व्यापै काम, अति कराल कारन कवन। कहिय तात सुखधाम, जोग प्रभाव कि भगति बल १६

दोहा

जोग न भगति न ग्यान बल, केवल नाम अधार। मुनि उत्तर सुनि मुदित मन, सिद्ध गये गिरिनार१०१
बैठि रहे सुनि घाट पर, जुरे लोग बहुताय। आयो भाट सु चंद्रमनि, बिनय कियो परि पाय ॥१०२॥

सवैया

पन दोइक भोग विषै अरुझा, अब जो रह्यो सो न खसाइय जू।
अब लौं सब इंद्रिन लोग हँस्यो, अब तो जनि नाथ हँसाइय जू ॥
मद मोह महा खल काम अनी, मम मानस ते निकसाइय जू।
रघुनंदन के पद के सदके, तुलसी मोहि कासि बसाइय जू ॥ १ ॥

दोहा

बिनय सुनत पुलकित भये, कहि रिषिराज महान। बसहु सुखेन इतै सदा, करहु राम गुन गान ॥१०३॥
हत्यारा ढिग आयऊ, बिप्र चंद तिसु नाम। दूर ठाढ़ बोलत भयो, राम राम पुनि राम ॥१०४॥
इष्ट नाम सुनि मगन भे, तुरत लिये उर लाय। आदर जुत भोजन दिये, हरषि कहे रिषिराय ॥१०५॥
तुलसी जाके मुखनि ते, धोखेहु निकसे राम। ताके पग की पैंतरी, मोरे तन को चाम ॥१०६॥
समाचार ब्यापो तुरत, बीथिन बीथिन माँझ। ग्यानी ध्यानी बिप्र भट, सुधी जुरे भइ साँझ ॥१०७॥
कैसे घातक सुद्ध भो, कहिये संत महान। कहे जु नाम प्रताप ते, बाँचहु बेद पुरान ॥१०८॥
कह्यो लिख्यो तो है सही, होत न पै बिस्वास। मन माने जाते, कहिय, सोइ कर्त्तव्य प्रकास ॥१०६॥
कहे जो सिवको नादिया, गहै तास कर ग्रास। तब तो निस्चय उपजही, सबके मन बिस्वास ॥११०॥
मुनि प्रसाद ऐसहि भयो, चहुँदिसि जयजयकार। निंदक माँगे छमा सब, पग परि बारंबार ॥१११॥
राम नाम दिन भर रटै, लोभ बिबस मुनि थान। साँझ समय तेहि बिप्र कहँ, द्रव्य देत हनुमान ॥११२॥
राम दरस हित कमलभव, हठेउ कहेउ मुनिराय। तरु ते कूदि त्रिसूल पै, दरस लेहु किन जाय ॥११३॥
गाड़ि सूल अरु बिटप चढ़ि हिम्मत हारेउ पात। लखेउ पछाहीं बीर इक, अस्व चढ़े मग जात ॥११४॥
पूछेउ मर्म कहेउ कथा, सो चढ़ि बिटप तुरंत। कूदेउ उर बिस्वास धरि, दीन दरस भगवंत ॥११५॥
अंत समय हनुमत दिये, तत्व ग्यानको बोध। राम नाम ही बीज है, सृष्टि वृच्छ न्यग्रोध ॥११६॥
पर प्रस्थानकी सुभ घड़ी, आयो निकट बिचारि। कहेउ प्रचारि मुनीस तब, आसन दसा निहारी।११७।
रामचंद्र जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन। तुलसीके मुख दीजिये अब ही तुलसी सोन ॥११८॥
संवत सोरह सै असी, असी गँगके तीर। सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्य सरी ॥११६॥
मूल गोसाइँ चरित नित, पाठ करै जो कोय। गौरी सिव हनुमत कृपा, राम परायन होय ॥१२०॥
सोरह सै सत्तासि सित, नवमी कातिक मास। बिरच्यो यहि निज पाठ हित, बेनोमाधवदास ॥१२१॥

३

गोसाईं चरित और भक्तमालकी प्रियदासी टीका

गोसाइँ चरितके कर्ता भवानीदासने कहा है कि नाभादास (वस्तुतः प्रियदास) ने भक्तमाल (वस्तुतः भक्तमालकी प्रियादास कृत कवित्तबंध टीका) में गोसाइँजीका जैसा जीवन चरित लिखा है, मेरा गोसाइँ चरित उससे बहुत कुछ भिन्न है—

श्रीनाभा जू जो रच्चो, भक्तन चरित जहाज। कुछ प्रसंग तामे विदित, गावत संत समाज ।।

छप्पै

ताहू ते यह राम कथा अद्‌भुत सुखदाई। कहौं जथामति गाइ पाइ हरि संत सहाई ।।

भक्तमालमें गोसाइँजीके संबंधमें जो छप्पय (छप्पय १२९) दिया गया है, उसमें किसी प्रसंगका उल्लेख नहीं है, केवल उनकी प्रशस्ति है। हाँ प्रियादासने इस छप्पयको जो टीका (कवित्त ५०८-१८) लिखी है, उसमें गोसाईंजीके जीवनके सात प्रसंगोंका उल्लेख हुआ है।

१. पत्नी प्रसंग

तिया सों सनेह, बिनु पूछे पिता गेह गई, भूलि सुधि देह, भजे वाही ठौर आए हैं
वधू अति लाज भइ, रिसि सी निकासी गई प्रीति राम नई, तन हाड़ चाम छाए हैं
सुनी जब बात, मानो होइ गयो प्रात, वह पाछे पछितात, तजी, काशी पुर धाए हैं
कियो तहाँ वास प्रभु सेवा लै प्रकाश कीनो, लीनो दृढ़ भाव नैन रूपके तिसाए हैं ५०८

यह प्रसंग गोसाइं चरितमें नहीं है, मूल गोसाइँ चरितमें पृष्ठ ९ पर है।

२. प्रेत प्रसंग और हनुमान तथा राम दर्शन

सौच जल सेस पाय, भूतहू विसेस कोऊ। बोल्यो सुख मानि, हनुमान जू बताए हैं ।।
रामायन कथा सो रसायन है काननिको, आवत प्रथम, पाछे जात, घृना छाए हैं ।।
जाय पहिचानि, संग चले उर आनि आए, वन मधि जानि धाय पायँ लपटाए हैं ।।
करैं तिरस्कार, कही, 'सकौगे न टारि, मैं तो जाने रस-सार' रूप धरचो जैसे गाए हैं।।५०९।।
''माँगि लीजै वर'' कही, 'दीजै राम भूप रूप, अति ही अनूप, नित नैन अभिलाखियै'' ।
कियो लै संकेत, वाही दिन ही सों लाग्यो हेत, 'आई सोई समै चेत, 'कब छवि चाखियै'' ।।
आए रघुनाथ साथ लछिमन चढ़े घोरे, पट रङ्ग बोरे हरे, कैसे मन राखियै।
पाछे हनुमान आय बोले, 'देखे प्रान प्यारे ?' 'नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखिये' ।।५१०।।

इस कथाके अत्यन्त प्रसिद्ध होनेके कारण गोसाइँ चरितमें इसका संकेत मात्र इस दोहेमें कर दिया गया है—

श्री हनुमंत प्रसङ्ग सुभ, प्रथम चरित बिस्तार । लह्यौ गोसाइँ दरस रस, विदित सकल संसार ।।

हनुमानके आदेशसे गोसाईंजी काशीसे चित्रकूट आए । यहाँ उन्हें रामके दो बार दर्शन हुए—एक बार शिकारी रूपमें, दूसरी बार राजा रूपमें । दूसरे दर्शनके संबंधमें चन्दन रगड़ने और तिलक देनेवाली घटना प्रसिद्ध है । भक्तमालकी टीकामें केवल प्रथम दर्शनका विवरण है, द्वितीय दर्शनका नहीं । गोसाईं चरितमें दोनों दर्शनोंका विवरण विस्तारसे है (प्रसङ्ग २४) । मूल गोसाईं चरितमें प्रेत, हनुमान, राम शिकारी एवं राम राजा सभी प्रसङ्ग है । (पृष्ट ११-१२) ।

३. विप्र हत्या मोचन

हत्या करि विप्र एक तीरथ करन आयौ, कहै मुख 'राम' भिक्षा डारियै हत्यारे कौं' ।
सुनि अभिराम नाम धाम मैं बुलाय लियौ, दियौ लै प्रसाद कियौ सुद्ध गायो प्यारे कौं ।।
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठाए आप 'कैसे गयो पाप, सङ्ग लैके जेंए न्यारे कौ"
'पोथी तुम बाँचौ, हिये सार सहीं साँचौ, अजू ताते मन काँचौ, दूर करै न अँध्यारे कौं' ५११
देखी पोथी बाँच, नाम महिमाहू कही साँच 'ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजियै ?'
'आवै जो प्रतीति कहै, कही याके हाथ जेंवै शिवजूको बैल, तब पंगतिमें लीजियै
थारमें प्रसाद दियौ, चले जहाँ पन कियौ, बोले, आप नामके प्रताप मति भीजियै
जैसी तुम जानो, तैसी कैसे कै बखानौ, अहो" सुनिकै प्रसन्न पायो 'जै जै' धुनि रीझियै ५१२

यह प्रसङ्ग गोसाईं चरित (प्रसङ्ग ४५) एवं मूल गोसाईं चरित (पृष्ठ ३५) दोनों ग्रंथोंमें है । मूल गोसाईं चरितमें भी इसका पर्याप्त विस्तार है, 'अति संक्षेप' नहीं । 'मूल' में हत्यारेका नाम 'विप्र चन्द' दिया हुआ है ।

४. चोर प्रसंग

आए निसि चोर चोरी करन हरन धन, देखे श्याम घन, हाथ चाप सर लिए हैं
जब जब आवैं, बान साधि डरपावैं, वे तौ अति मँड़रावैं, ए पै बली दूरि किए हैं
भोर आय पूछैं 'अजू, साँवरो किशोर कौन ?' सुनि करि मौन रहे, आँसू डारि दिए हैं
दै सबै लुटाय, जानी चौकी रामराय दई, लई उन्हौं दिच्छा सिच्छा, सुद्ध भए हिये हैं ५१३

गोसाईं चरितमें यह दसवाँ प्रसंग है । मूल गोसाईं चरितमें भी यह कथा पृष्ठ २१ पर है । 'मूल' से कुछ अधिक सूचनाएँ मिलती हैं । एक तो चोरोंका नाम निधुआ सिधुआ ज्ञात होता है, दूसरे चोरीका कारण ज्ञात होता है । ये चोर काशीके पंडितोंकी ओरसे भाषामें लिखित रामचरित मानसकी चोरीके लिए भेजे गए हैं, न कि धन दौलतकी ।

५. सती प्रसङ्ग

कियौ तन विप्र त्याग, तिया चली संग लागि दूर ही तें देखि कियो चरण प्रनाम है
बोले यों 'सुहागवती' 'मरचौ पति होऊँ सती, अब तौ निकसि गई, ज्याऊ, सेवौ राम है'
बोलि कै कुटुंब कही, 'जो पै भक्ति करौ सही,' गही तब बात, जीव दियो अभिराम है ।
भए सब साधु व्याधि मेटी लै विमुखताकी, जाकी बास रहै तौ न सूझै श्याम धाम है ५१४

यह प्रसंग भी गोसाईं चरित (प्रसंग १४) और मूल गोसाईं चरित (पृष्ठ ३२) दोनोंमें है । 'मूल' के अनुसार मरकर जीनेवाला व्यक्ति ब्राह्मण न होकर भुलई साहु नामक कलवार था ।

६. दिल्लीपति करामात प्रसङ्ग

दिल्लीपति पातसाह ग्रहदी पठाए लैन ताको सो सुनायो सूबै विप्र ज्यायो जानियै
देखिबेको चाहै, नीके सुख सों निबाहै, ग्राय कही बहु बिनै, गही, चले मन ग्रानियै
पहुँचे नृपति पाए, ग्रादर प्रकास कियौ दियौ उच्च ग्रासन लै, बोल्यौ मृदु बानियै
'दीजै करामात, जग ख्यात, सब मात किए' कही, 'झूठ बात एक राम पहिचानियै' ॥५१५॥
'देखैं राम कैसौ कहि' कैद किए किए हिये 'हूजिए कृपाल हनुमान जू दयाल हो'
ताही समै फैलि गए, कोटि कोटि कपि नए, लोचैं तन, खोचैं चीर, भयो यों विहाल हौ
फोरैं कोट, मारैं चोट, किए डारैं लोट पोट, लीजै कौन ग्रोट जाय मान्यौ प्रलै काल हो
भई तब ग्राँखैं, दुख सागरकों चाखैं, ग्रब वेई हमैं राखैं, भाखैं बारो धन माल हो ॥५१६॥
ग्राय पाप लिए, 'तुम दिए हम प्रान पावैं' ग्राप समझावैं, 'करामात नैकु लीजियै'
लाज दबि गयो नृप, तब राखि लयो, कह्यौ, भयो घर राम जू को बेगि छोड़ि दीजियै'
सुनि तजि दयो ग्रौर कह्यौ लैकै कोट नयौ ग्रबहूँ न रहे कोऊ वामै, तन छीजियै

यह प्रसङ्ग भी गोसाइं चरित (प्रसङ्ग २६) ग्रौर मूल गोसाईं चरित (पृष्ठ ३०–३१) दोनोंमें है।

७. वृन्दावन प्रकरण

काशी जाय, वृंदावन ग्राय, मिले नाभा जू सों सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजियै ॥५१७॥
मदनगोपाल जू को दरिसन करि कही 'सही राम इष्ट मेरे दृष्टि भाव पागी है'
वैसही सरूप कियौ, दियौ लै दिखाई रूप, मन ग्रनुरूप छवि देखि नीकी लागी है
काहू कही, 'कृष्ण ग्रवतारी जू प्रसंग महा, राम ग्रंस, 'सुनि बोले मति ग्रनुरागी है
दसरथ सुत जानौं, सुन्दर ग्रनूप मानौं, ईसता बताई रति बीस गुनी जागी है ५१८

ऊपर उद्धृत वृन्दावन प्रकरणमें तीन प्रसङ्ग है—(१) नाभासे भेंट, (२) कृष्ण मूर्तिका राम मूर्तिमें बदलना, (३) कृष्णका पूर्ण ग्रवतार होना एवं रामका ग्रंशावतार होना। इनमेंसे तीनों प्रसंगोंका वर्णन गोसाईं चरितमें क्रमशः २, ३, २८ पर है। मूल गोसाईं चरितमें प्रथम दो प्रसंग पृष्ठ २९ पर हैं, तीसरा नहीं है।

भवानीदासने गोसाईं चरितको भक्त मार्गसे कुछ भिन्न कहा है। ऊपरके तुलनात्मक ग्रध्ययनसे इस भिन्नताका यह ग्रर्थ हुग्रा—

(१) भक्तमालमें वर्णित पत्नी प्रसङ्ग एवं प्रेत तृप्ति तथा हनुमान दर्शन प्रसङ्गोंको भवानीदासने ग्रपने ग्रन्थमें स्थान नहीं दिया है, शेष सभी प्रसङ्ग स्वीकृत किए हैं।

(२) गोसाईं चरितमें भक्तमाल प्रसंगोंके ग्रतिरिक्त ग्रन्य ग्रनेक प्रसंग ग्रौर भी हैं।

४

श्री तुलसी प्रकाश

श्री कबिबर अबिनाशराय ब्रह्मभट्ट

[गो० श्रीतुलसीदासजीकी ननसाल तारीग्रामके निवासी एवं सत्संगी]

(रचनाकाल–सं० १६७७ वि०)

श्रीमते रामानुजायनमः ।। अथ तुलसी प्रकास लिष्यते ।।

।। रूपघनाच्छरी ।।

जासु भ्रू बिलास होत, जगत बिकास नास। जगत निवास जासु आदि हू न है बिराम ।।
आनन अनन्त नैन बाहु पाद रूप जासु। जो है बिनु रूप हीन गुन हूँ गुनन ग्राम ।।
जो है जग कारन को कारन करन धार। तारन भो सागर अधार जग को ललाम ।।
प्रनमत अबिनास दास ताही औधबासि। दसरथ सुषरासि कौसिलासुबन[1] राम ।।१।।

तोमर छन्द

श्री राम करुना धाम, तुम भक्त पूरन काम। तुम हो अनादि अनन्त, ध्यावहिं तुमहिं सुर सन्त ।।
जब जब बढ़त भू भार, तब तब धरत अबतार। हरि दुष्ट दानव भार, करि देत धर्म पसार ।।
प्रभु सर्बभूत निबास, प्रनमत तुमहिं अबिनास ।।२।।

छन्द

बालमीकि आदि कवि तव चरित संस्कृत माहिं। निरमयो समुभत सुपंडित औरु समुभत नाहिं ।।
जामनी पढ़िबे लगे जन देववानी त्यागि। निज धर्म हूँ बहु तजि रहे बिषय भोगनु पागि ।।
वालमीकी दूसरो भुई एकु तुलसीदास। नर भाष रामायन बिरचि कीन्ह धर्म प्रकास ।।
करि कृपा निज दास तुलसी तुम दियो प्रगटाय। लिषत हों कछु तासु परिचै देषि सुनि मन लाय।३।

दोहा

गँगा दच्छिन कूल इक, तारी गाम सुथान। सोलकी हरिसिंह जहँ, भूमिपाल मतिमान ।। ४ ।।

तोमर छन्द

प्राची उमापति थान, उत्तर ललित उद्यान। पच्छिम दिसा हरि धाम, बाराह क्षेत्र ललाम ।।
तहँ एकु सुरसरि सोत, दच्छिन प्रबाहित होत। तहँ बसत भूभुज भूरि, कछु लसत भूसुर सूरि ।।

१. ललन

कछु दास जन सुषकारि, लघु गाम पैं मनहारि। रन बाँकुरे बहु बीर, रथ बाजि बारन भीर ।।
जन भूमि मेरी जेइ, आनँद सुरग सम देइ। सिबराइजू कबिराइ, मेरे जनक सुष दाइ ।।५।।

कबित्त

नीर अरु छीर की बिबेक नीति धारन हार, हंस वंस हू सों बिसेष नीति धारी है।
बिस्व जन मौलि मनि कीरति कलाप केकि, कबिजन[1] जनक सो काब्य कलाकारी है ।।
महामति महीपनि सभा कौ सिंगार सार, गुनि जन हिय हार हीय तमहारी है।
तुच्छ अबिनास भयौ ताही ब्रह्मभट्ट वंस, जासु सीस हाथ धर्‍यो बीन कर बारी है ।। ६ ।।

दोहा

कौडिनि मुनि गोती दुबे, तहाँ बिप्र सिर मौरु। बसत अजुध्यानाथ बुध, एहि सम गनक न और ।।७।।

मदिरा छन्द

पूत न कोउ जियो उनको दुहिता हुलसी बहु जत्न भई।
ब्याहन जोग भई जबही ढूँढ़न में चित बृत्ति दई ।।
सूकरषेत समीप तबै बर रामपुर हि मधि देषि लयौ।
आतमराम सुकुल्लहि के करमें हुलसी कर दान दयौ ।। ८ ।।

सोरठा

आत्माराम बर हाथ, मातु हीन हुलसी सुता। दई अजुध्या नाथ, लोक बेद कुल रीति करि ।।९।।
जामातहि बुलबाइ, बरष गयें कछु ब्याह सों। निज सरबस्स गहाय, तारी तजि सुरपुर गये ।१०।
ऊरध देह बिधान, सकल कराये बेद बिधि। तेहि निमित्त बहु दान, दये साँति परलोक हित ।११।
रही सरसुती गेह जरठ तासु बिधबा भागिनि। पोषी सहज सनेह, जिन हुलसी अति जतन करि ।।१२।।

दोहा

तालो महँ बसि बरस इक, पंडित आत्माराम। जाइ बसे हुलसी सहित, सुषद रामपुर गाम ।।१३।।

अहिना छंद

बाँछ रूप भल दानि जहाँ तप धाम है। तहँ सुरसरिता तीर रामपुर गाम है ।।
जासु धर्‍यौ नंददास स्यामपुर नाम है। कर्‍यौ स्याम सर तहाँ नैन अभिराम है ।।
तरुबर बिबिध लगाय तहाँ उपबन कर्‍यौ। थापि स्याम बलराम सदन जग जस भर्‍यौ ।।
सुकुल बनाबढ बिप्र बंस को बास तँह। सुकुल सच्चितानन्द भये यहि बंस महँ ।।
पंडित अति बुधिबन्त महाग्यानी रहे। आत्माराम अरु जीबराम सुत द्वै लहे ।।
तेउ भये मतिमान महाबिद्या धनी। छाइ रही चहुँ ओर कीर्ति घर घर घनी ।।१४।।

सोरठा

सुकुल सच्चितानन्द, जीबाराम बिबाह करि। भोगि सकल आनन्द, जाइ बसे सुरपुर सदन ।।१५।।

दोहा

पंडित जीबाराम की, चम्पा चपला नारि। लरिकाई बस सासु सों, करी एक दिन रारि ।।१६।।
परुष बचन तेहि सासु सुनि, सपथ करी तब एक। अब न बसोंगी रामपुर, राम रषाबै टेक ।।१७।।
सून पर्‍यौ राजौरिया, मातु पिता कौ धाम। अबहि जाइ सोरम बसों, करहुँ न छिन बिसराम ।।१८।।
मातु सत्य प्रन जानि मन, बोले आत्माराम। जहाँ रहौ सुष सों जननि, तुरत चलौ तेहि धाम ।।१९।।

१. कविन्दन

अहिदा छन्द

सूकरखेत पुनीत अछय सुष कारि है। सोहति सुरसरि जहाँ भक्त भय हारि है ॥
जहँ बराह प्रभु दरस सुमंगल हेतु है। न्हान दान जप जहाँ अमित फल देतु है ॥
भोग मोच्छ सुष षानि भूमि पुन्यस्थली। सूकरषेतहिं सेइ तरत पापिहु छली ॥
सोरम दूजो नाम षेत को ब्यात है। पतितवनु पाबन करत तीर्थ अबदात है ॥
मांडव हारित देव आय तप चित दयौ। चुलुक गंगजल पियत भूप चौलुक भयो ॥
अज हूँ चुलुका भूमि तासु सुधि देति है। सोलंकी चौलुक्क चित्त हरि लेति है ॥
जहँ नृप चौलुक बैन दुरग थापित करयौ। सोलंकी नृप सोन जहाँ जस बिसतरयो ॥
सोरम सों अनि देस जाति चौलुक गई। सोरम की पद पाय जगत परसिध भई ॥
जहीं सुरसरी तीर बघेला गामु है। सोरंकिनु बसि लह्यौ बघेला नामु है ॥२०॥

चामर छन्द

जाहि धाम जोगमार्ग आत्माराम जू रहे। वृद्ध मात भारजा सुदास संग में लहे ॥
सो पुरान बेद पाठ बृत्ति आपनी करें। धर्मधी गृही धनी इन्हें सदा समादरें ॥
इष्ट देव राम की सदा समर्चना करें ॥२१॥

सोरठा

कृषि वृष गो हय यान, सेबत दुज आचार धरि। आतमराम सुजान, परम विवेकी धरम रत ॥२२॥

दोहा

कछुक दिवस बीतें भई, हुलसिहि संतति आज। आत्मराम पंडित जननि, पायौ हीय हुलास ॥२३॥
जोग तीत्थ बासी सुजन, मन फूले न समात। कहैं परसपर होय सुत, धरैं आस उमगात ॥२४॥
राम राम सागर मही, सक सित सावन मास। रबि तिथि भृगु दिन दुतिय पद, नषत बिसाखा बास॥२५॥
गरभ द्यौस पूरन भये, हुलसी प्रगट्यौ बाल। गोरौ तन मुख मार छबि, सुनयन बाहु बिसाल ॥२६॥

छन्द

जन वृद्ध सम्बन्धी सखा निज अनुज जीवाराम। हंकारि कुलगुरु भीमसंकर बेद बिद्या धाम ॥
निज पौरि इक ठौरे करे उच्छव भयौ अभिराम। जाचक जुरे बहु आय ते सब कीन्ह पूरन काम ॥
बाजहिं बजनिया बाजने गावहिं बधाई नारि। चिर चिर जियैं बालक असीसहिं जन पुकारि पुकारि ॥
कुल लोक वेद प्रमान कीनौ जन्म हर्ष बिधान। सनमान पाय तबै गये सब लोग निज निज थान ॥२७॥

दोहा

उदर आतमारामके, उठ्यौ सूल अति घोर। दई बिबिध भेषज तऊ, आमय भयौ न थोर ॥२८॥
बिकल रहत त्रय दिन भये, दुखी सकल परिवार। हारे जीवाराम करि, नानाबिध उपचार ॥२९॥
मुरछित मरनासन्न लखि, जननि गिरि हहराय। हुलसी निजपति दुख निरखि, खिलपति अति अकुलाय॥३०॥
आतमाराम सपने लखे, निसि गत लछिमन राम। भोर होत भे बिगत गद, हरष छयौ गृह गाम ॥३१॥
कहैं गाम गृह नारि नर, भागिवन्त भो बाल। आवत आवत जगत निज, टारयौ निज पितु काल ॥३२॥
दयौ बधैया सुभ दिबस, ताली गाम पठाइ। जरठ सरसुती कहँ दई, जनम बधाई जाइ ॥३३॥
हुलसी-सुत जनम्यौ सुनत, फूली मन न समाइ। ताहि पारितोसक दयौ, सरसुति मन हरषाइ ॥३४॥

निसि पालिका छन्द

सोधि सुभ द्यौस गुरु नाम तुलसी धर्‌यो । मातु पितु मातु पितु हीय सुखसों भर्‌यो ।।
पाख सित द्वन्दु सम बाल बढ़िवे लग्यो । मास दस वैस सिसु सब्द गढ़िवे पग्यो ।।३५।।

दोहा

नित तुलसिहि सेबति रही, हुलसी हरिके हेत । तासों तुलसीदास ही, किय सुत नाम सँकेत ।।३६।।

छन्द

इत गाम ताली सों सरसुती चलि गई सुरधाम । सुनि तहँ गए सुत नारि जुत तब बिग्य आत्माराम ।।
करि तेहि सराध बिधान पूरन बिप्र बृन्द जिमाइ । तब गेह कहँ परबन्ध कीनो गौन गृह मन लाइ ।।
हुलसिहि अचानक भई बिसूची काल कछु दुख पाय । करि त्याग पति सिसु सासु देवर सुरग बैठी जाय ।।
करि तासु अन्तिम सब क्रिया संस्कार बेद बिधान । तुलसी सुतहि लै दुखित मन आये सो सोरम थान ।।
तिय सोक आत्माराम हूँ जुर घोर घेर्‌यो आइ । निज नारि अनुगामी भये दुख मास अर्ध बिताई ।।३७।।

दोहा

सुकुल आत्माराम धनि, तुम जग कियो प्रकास । तब घर नरबर मौलि मनि प्रगटे तुलसीदास ।।३८।।

कवित्त

तार्‌यो तैं दुबिन बंस तार्‌यो तै सुकुल बंस । सासु ससुर तारे तैं तारी महतारी है ।
कहें अबिनासराय आपु तरी तार्‌यो बापु । तार्‌यो पति रामपुर तैं तारी हु तारी है ।।
अजौं हुलसात लें हुलसी जन तेरो नामु । तुलसी सौं जायी पूत धर्म अबतारी है ।।
धन्य मात हुलसी तैं मोच्छ द्वार तारे की । मुमुच्छुन हाथ दई तुलसी रूप तारी है ।। ३९ ।।

प्रभ्फटिका छन्द

तेहि माता बिलपै हुई अधीर । बहै ताके द्दग सों सुखद नीर ।।
लघु भ्राता बरनें चरित रोय । कहे मो कहँ तुमसो जग न कोय ।।
तिय चम्पा हिरदै अधिक दाह । पछितावै अति ही भयो काह ।। ४० ।।

दोहा

करम पारलौकिक सकल करि दुज जीवाराम । रोय कही निज मातु सों चलउ रामपुर गाम ।। ४१ ।।
चम्पा हू मांगी छमा बिलपि नयन भरि बारि । जननि कहो बिलखाइ पुनि प्रन न सकौंगी टारि ।।४२।।
जाहि भूमि हों तनु धरचो जाही भूमि समाउँ । तीरथ सूकरखेत तजि अब कहुँ अनत न जाउँ ।।४३।।
लेत रहौ नित आय सुधि, मेरो बच चित माढ़ि । जानति मोहू सों तनुज, तोहि तुलसी प्रिय बाढ़ि ।।४४।।

तोमर छन्द

नित आय जीबाराम, पुतबत जननि मन काम । तुलसीहिं अंक लगाय, लालत अनेक उपाय ।।
गे वर्ष त्रय षट मास, चम्पा जने नंददास । तव सुकुल जीबाराम, सुत कौ धरामो नाम ।।
तुलसिहि गनेस मनाय, पाटी दइ पुजबाय । पुनि वर्ष द्वै दस मास, पाछैं भये चंदहास ।।
पुनि सुकुल जीबाराम, रोगी भये मति धाम । भइ नष्ट अन धन आय, दारिद्र गयो गृह छाय ।।
छय रोग सों दुखपाय, गे स्वर्ग वर्षं बिताय ।। ४५ ।।

दोहा

जननो जाया भ्रात सुत, तेहि सुत भयो अनाथ । सेस सनातन बंस की, रही पुरातन गाथ ।। ४६ ।।

तोमर छन्द

कृषि कर्म गृह धन धान, सबको भयो अवसान। बूझत न कोऊ बात, तेहि दुखन बरनो जात।
काका गये सुरलोक, तुलसी बढ्यो मन सोक। दादी कह्यो समुझाय, सुत होंय राम सहाय॥
कुलदेव तेरे सोय, दी हैं सबै दुख खोय। तू राम भजि अविराम, पूजें सकल मन काम।
बहु राम गाथ सुनाय, धीरज दयो मन लाय। तुलसी बसे मन राम, अविराम टेरत राम॥
तब राम बोला नाम, कहि लोग टेरत गाम। बहु बिधि सुभोजन खात, अध पेट सो रहि जात।
धारत पुरातन चीर, तेहि कोउ धरत न धीर। जात्री जनन सौं लाइ, जाचन लगे सकुचाइ॥
निज गाम जन गृह धाय, जाचत कबहु दुख पाय। कोउ देत कोउ न देत, पछिताय मन चलि देत॥४७॥

दोहा

पावत जिनके द्वार नित, आइ अतिथि सनमान। तेहि सुत औरनि अतिथि बनि, राखत आपन प्रान ४८

छंद

तह बिप्रमनि इक बसत गुरुबर श्री नृसिंह बुधाग्रनी। बहु ग्राम अधिपति राम हनुमत भक्त बर बिद्याधनी।
स्मृति सास्त्र धर्म पुरान सिच्छा देत नित बटुकन रहें। निज पाठसाला बैठि सो नित रैनि राम कथा कहें४९

दोहा

धरा उदधि सागर मही, बरस सुमंगल मूल। सुभ असाढ़ बुध पूनिमा, तुलसिहि भइ अनुकूल॥५०॥
याहि दिवस नरसिंह गुरु, सौरम गंगा तीर। दान करत एक बनिक तहँ, तुलसी लखे अधीर॥५१॥
पायो तुलसी नाहिं कछु, ठाड़े दुखित उदास। गुरुबर बूझी बाल तू, कौन तनय कहँ बास॥५२॥
सुकल आतमाराम सुत, कह्यो जाहि पुर बास। मात पिता सुर पुर गये, एक राम की आस॥५३॥
समुझि सुकुल कुल बाल मन, दुखित भए गुरुराय। करुना करि कर गहि गए, आपन सदन लिवाय॥५४॥
तुलसिहि गुरु धीरज दयो, कही पढ़ो नित आय। अब जनि जाचन जाउ कहुँ, ह्वै हैं राम सहाय॥५५॥

छन्द

अवलंब गुरु कहँ पाय तुलसीदास मन प्रमुदित भए। नरसिंह गुरु पद परसि सुमिरत राम कहँ निज गृह गए।
आपनि पितामहि सौं कही जो बारता गुरु सौं भई। सुनि कही राम कृपा करी नित जाउ पढ़ि अनुमति दई५६

दोहा

असन बसन तेहि भूमि को, दिय परबन्ध कराय। दइ इक सुरगृह आयहू, वृत्ति हेय गुरुराय॥५७॥
गुरु सेवा तुलसी करत, पढ़त सबिधि नित जाय। पढ्यो प्रथम व्याकरन पुनि, कोस काव्य मन लाय।५८
नन्ददास हू तेहि अनुज, पढ़न लगे पुनि आय। दोउ भ्रात गुरु भगति रत, बरमति सील सुभाय॥५९॥
उपनयनादि बिधान सब, कुल गुरु सौं करवाय। बेद पढायो सुत सहित, संध्या सबिधि सिखाय॥६०॥
पिंगल रामायन गनित, दरसन सास्त्र पुरान। अनुज सहित तुलसी पढे, पंडित भये महान॥६१॥
स्वामि हरीहर बसत इक, मन्दिर सीताराम। गान बाद्य परबीन अति, गावत पद हरिनाम॥६२॥
तुलसीदास नँददास तहँ, कछुक समय नित जाय। गान बाद्य सिच्छा लहत, राग रागिनि गाय॥६३॥
तुलसीदास नँददास को, बढयो चहूँ दिसि मान। दोउ करावत कृषि करम, बांचत कथा पुरान॥६४॥
तारापति पितु भूपसिंह, इक दिन बहु गुनखानि। हरखे अति तुलसिहि निरखि, हुलसी सुत जिय जानि ६५
सनमानित करि लै गए, आपनि तालीगाम। बालमीकि सुनि तासु मुख, मुदित भये बलधाम॥६६॥
तुलसिहि दीने बहु बसन, धन भाजन गो अन्न। मातामह-गृह लखि चले, तुलसीदास प्रसन्न॥६७॥
आवत जात रहैं सदा, तुलसी तारी गाम। तिनहिं आदरत सब तहाँ, बुध छत्रिय गुन धाम॥६८॥

रोला छन्द

तुलसी संपति भगति सुजस दिन दिन अधिकानौ। पौत्र सुस्नुषा पाइ पितामहि मन सुष मानौ ॥
गंगा पच्छिम तीर बदरिका गाम निवासी। मुनि बसिष्ठ कुल दीनबंधु पाठक गुन रासी ॥
द्वादस बरसी सुता जोग बर देखन धाए। श्री नृसिंह गुरु सदन लखे तुलसी मन भाए ॥
भरद्वाज मुनि गोत सुकुल बर सुघर निहारी। विद्या बिनय बिवेक जासु मूरति मन हारी ॥
रतनाबलि सम बरहि पाय सम्बन्ध जुरायौ। बेद बान बारीस इन्दु सक बरष सुहायौं ॥
कातिक सुदि गुरु बार इकादसि हरि परबोधनि। निसि निसीथ परकाल उत्तरा नखत सुखद धनि ॥
तुलसी साजि बरात जाय पाठक दुज द्वारे। रतनावलि कर गह्यो बेद उचारे ॥
पूरयो सबिधि विवाह हरख बदरी महि जाये। निरखि निरखि बर बधू सबै जन मन हरषाये ॥
दीन बन्धु दायाद दयौ जामात तोषकर। अरची सकल बरात समुद अरचे श्री गुरुवर ॥
तुलसि जमाता पाय दयावति सासु सिहानी। तनुजा दई पनारि सुमिरि मन सम्भु भवानी ॥६९॥

नाराच छन्द

गयौ महा अनन्द छाइ आत्माराम देहली। पितामही प्रसन्न देखि पौत्रकी बधू भली ॥
लई लाकय हीय सौं सप्रेम पौंरि सो लई। बधू नबायो सीस त्यौं असीस सासुहू दई ॥७०॥

दोहा

बरस पाँचईं व्याह सौं, दुरागमत मो तासु। तिरागमन पुनि तेहि भयो, लखि सिहाति ददसासु ॥७१॥

सवैया

रतनाबलि सी भलि पाय बधू तुलसी पितु मातु महा सुख पायौ।
नित पांय पलोटति धोबति सीस न्हबाबति ताहि सनेह बढायौ ॥
रुचि होय पचावति ब्यंजन सोइ करै नित सोइ जो ताहि सुहायौ ॥
अबिनास रमा सम गेह रमी तुलसी गृह स्वर्ग समान बनायौ ॥ ७२ ॥
रतनावलि पीय सनेह सनी अति चाब करै पतिकी सिवकाई ॥
पति कौं निज प्रान परेस समान निहारि सुखो जियमें सुखलाई ॥
अवलोकि उदास उदास रहै तन द्वै इक प्रान प्रमान लखाई ॥
तुलसी बड़ भाग गृही अबिनास सती रतनावलि सो तिय पाई ॥ ७३ ॥
नित राम सती सिव पूजति सो बर मागति एकुहि नाथ भलाई ॥
निसि रामकथा अविनास सुनें कबहूँ सोई आपु पढै मन लाई ॥
नित काब्य पुरानन कानन में बिहरै पति संग करै कबिताई ॥
मन तोष लहैं पति जा विधि सो रतनावलि सोइ करै हरखाई ॥७४॥

कवित

अनसूया अरुन्धति सी सावित्री सुकन्या सी सीतासी सतीसी सती सबितासी भासमान ॥
रूपवती सीलवनी सत्यवती सूकृती सो सुरसरिसी पावनी सरसुती मूर्ति मान ॥
माधुर रस सानी कोकिल सम बानी जासु धरनी सी धीर धनि गंभीर सिन्धु समान ॥
रत्नावलि तुलसीकी गृहनी गुननि खानि हारयौ अबिनास ही करत कीरति बखान ॥७५॥

दोहा

इक दिन रतनावलि सहित, निसिमहँ तुलसीदास । सेवत पितु जननी चरन धरि हिय अमित हुलास ।७६।
पितु जननी बोली तबै, पूजइँ तै सब आस । चहहुँ अवध दरसन करन, कछु दिन कासी वास ।।७७।।
बेगिहि दरसन राम को, करिहो कासी वास । कीन्ह सयन कहि जाय पुनि, पद छुइ तुलसीदास ।।७८।।
सोधि महूरत सुभ दिवस, तुलसीदास नंददास । रतनावलि पितु जननि जुत, चले छांड़ि चँदहास ।।७९।।
चले और हू नारि नर, मन धरि राम पुरारि । दृग रस उदधि मही बरस, लाग्यो मग सुखकारि ।।८०।।

बरुआ छन्द

चैत मास सित नवमी सरजू न्हाय । कीन्ह रामसिय दरसन अवधहि जाय ।।
करि परिकरमा देखे सब ही धाम । तहां कछूक दिन बसिके ध्याए राम ।।
अवध पुरी सौं पुनि सब चले प्रयाग । बिधि जुत न्हाय त्रिबेनी धरि अनुराग ।।
बिरमि कछुक दिन धाए कासी धाम । बिस्वनाथ हर अरचे लह्यो बिराम ।।
पितामहीकी पुजई मन आस । नित सिब राम समचहिं सहित हुलास ।।
गाम बघेला बासी हरिसिंह देव । बसत समुद सो कासी धरि सिब सेब ।।
पायों तुलसी परिचै कीन्ह सुमान । कही सुनाबहु मोकहँ संभु पुरान ।।
अस्वमेध दस सुभ थल सहित विधान । भूभुज पूजित तुलसी कहहिं पुरान ।।
बढन लगी निज स्रोता जन गन भीर । कथा सुनन कहँ उतसुक रहहिं अधीर ।।
भई सिब कथा पूरन साबन मास । बहु धन बस्तुनि अरचे तुलसीदास ।। ८१ ।।

दोहा

कासी बासी अग्र कुल, धनिक बनिक मनिराम । पर उपकारी धरम रत, राम भगत गुन ग्राम ।।८२।।
मन गुनि तुलसी ग्यान गुन, बुधि विद्या बिस्तार । कथा कथन मधु बचन अति, पावन करम बिचार ।।८३।।
चरन बन्दि सबिनय कही, लागत भादब मास । बालमीकि मो गृह कहो, पुजबहु मो मन आस ।।८४।।
ताहि बचन दै तिन कही, रामायन इक मास । पूजे बहुबिधि बनिकगन, बुधवर तुलसीदास ।।८५।।

चंचला छंद

नन्ददास देखि एक संग द्वारिकाहि जात । हौंहुँ जाउँ जे बिचार धारिगे समीप भ्रात ।।
भाव हीय को कह्यो सुभ्रात उच्चरो न जाय । दूसरो न आपनो सो तोर होयको सहाय ।।
नन्ददास हाथ जोरि नौरि नौरि माथ नाय । जान दैं कहैं मिल्यो सुभाग सौं सँजोग आय ।।
जानि हठ्ठ तासु आसु भ्रातहू कह्यो जु जाउ । हों रहों सु पंच मास तू सबेग लौटि आउ ।।
नाइ सीस सो सबै असीस लै चले सिहाय । बाहुरे न नन्ददास औधि द्योस हू बिताय ।।८६।।

दोहा

करि आसौज सराध विधि, सारदीय ब्रत पूरि । कातिक न्हान ब्रतादि किय, हिय सरधा भरि भूरि ।८७।
तुलसी रतनावलि सहित, आतमराम सुमातु । सोचत मिलि न नन्द सुधि, अगहन बीत्यो जातु ।।८८।।
तुलसी जात्रिन बूझियत, नन्ददास कुसलात । कोउ न ताहि बताइयसु, नित-नित मन पछितात ।।८९।।
पुनि इक ब्रजबासी कही, श्री बिट्ठल प्रभु धाम । दीच्छालहि गोकुल भजत, नन्ददास हरिनाम । ९०।।
तुलसी लिखि पाती दई, नन्ददासके जोग । तुरत आउ हम सब दुखित, पाइ तिहार बियोग ।।९१।।
देखत बाट ब्रितीत भो, सबहि पूसको मास । नन्ददास पाती मिली, माघ चले, निज बास ।।९२।।

सुन्दरी छंद

आइ गये गृह फागुनमें सब। करयौ हवन दुज भोज सविधि तब॥
फागुन सित तेरसि भृगु सुभ दिन। देह पितामहि त्याग कियौ छिन॥
खेदित ज्यों तुलसी गत सरबस। अन्त क्रिया करि बेद कही जस॥
नन्द बिना इत होत दुखी जन। ताहि सुमिरि पछितात सबै मन॥
बीत चल्यौ इमि फागुन मासहु। गोकुल भेजि दयौ चँदहासहु॥९३॥

पद्धरी छन्द

नँददास लखे चँदहास जाय। पुलकित तन मन निज माथ नाय।
पुनि कह्यौ पितामहि सुरगबास। सुनि भए दुखित मन नन्ददास॥
श्री बिट्ठल प्रभु आदेश पाय लघु भ्राता सँग तुर तुर सिधाय॥
आए सूकरखेत हिं दुख्यात। पद गहि बन्दे निज भ्रात मात॥
श्री रतनावलि पद परसि पानि। सब गाथा आपनि कही बखानि॥
हिय हरषित भई कमला निहारि। पति पद रज लइ निज सीस धारि॥
सब दसम इकादस द्वादसाह। कीन्ह त्रयोदस बिधि सह उछाह॥९४॥

दोहा

विगत सोक निज निज सदन, तुलसी नन्द सचंद। बँधे परस्पर प्रेम रज, बसत सतिय सानंद॥९५॥
रामरूप तुलसी भजत, कृष्णरूप-हरि नन्द। निज निज रुचि अनुसार दोउ, भजत सच्चिदानंद॥९६॥
तुलसी बरनत राम जस, नन्द कृष्ण गुनग्राम। छन्द रचत नव नव सरस, गान करत अभिराम॥९७॥
दोउ धारत षटकरम, बांचत कथा पुरान। दोउ करावत समुद कृषि, गहत चहूँ दिसि मान॥९८॥
बेद शास्त्र सागर धरनि, सक सित कातिक मास। दसमी तिथि बुधवार सुभ, पूर्वाभाद्र प्रकास॥९९॥
रतनावलि जनम्यौ तनय, तुलसी सदन प्रकास। बाजे बहु बिध बाजने, छायौ अमित हुलास॥१००॥
तारापति तेहि नाम कहि, टेरत सबैं सिहात। बुद्धिबन्त दुतिबन्त अति, हँस मुख गोरौ गात॥१०१॥
तीन बरस दुई मास कौं, सुरपुर गयौ सिधारि। गृह जन कीन बिलाप बहु, भरि भरि दृग दुखबारि १०२
नारि नेह पिंजरा परे, तुलसिदास सुकरूप। आत्मरूप बिस्मृति भई, जानत छांह न धूप॥१०३॥

कवित्त

सारस कपोत चक्रबाक सम तुलसी भे रत्नावलि बियोग एकु छन हूँ ना सुहात॥
सुनत रसीले बैन दीरघ लजीले नैन मंद मुसकान जासु देखि देखि ना अघात॥
आकृति अनूप रूप गोरौ तन प्रेम नैम गेह काज साज देखि मन फूले ना समात॥
तीय अनुराग भोइ भूले सुधि सिय पी को बिसरौ अपान तिन्हैं सांझ प्रात ना जनात।१०४॥
निद्धि रस सिंधु इन्दु बत्सर सित साबन आयौ अबिनास संभु अनुजाहि लीबे साथ॥
तुलसी मत पाय रतनावलि लिवाय संग। बदरी पयान करयौ बंदि पाद संभुनाथ॥
दूजे दिन तुलसी हू आन गाम भक्त गेह। बैठि गये स्यंदन सो बांचन श्री रामगाथ॥
ग्यारहीं साँझ आए बाढ़ी तिय देखन चाह। चाव भरे आधी राति चलि दीने बदरीपाथ॥१०५॥
भादों अँधियारी घटा कारी कजरारी घिरीं। परत फुहार तऊ तुलसी न मानी हार॥
नारि नेह मोहे जनु काहू मदक भोए से। चलै अबिनासराय पग धरैं ना पिछार॥

राम उरधारि जिमि वायुसूनु लाघ्यौ सिन्धु । त्यौं ही उर धारि तिय गंगा लंघि गए पार ।।
तुलसी हरषात सो जात चले भीजे गात । खोलिया किबार जाइ बोले ससुरार द्वारा ।।१०६।।
तुलसी सुर जानि रतनाबलि भ्रात उठे । तुरतै कपाट खोलि बोलि घर लाए जाइ ।।
बूझी कुसलात उन बात करी आदर दै । सूखे पहराय पट सेज पै सुवाए लाइ ।।
जानि कै इकंत कंत रतनावलि आई पास । कहैं अबिनासराय बैठी ढिग सोस नाइ ।।
बोली कस आधी राति आए तुम प्राननाथ । गंगा कस तरे पार होइ दुख पायो आइ ।।१०७।।
तुलसी सुनि बोले हों राम कथा पूरी करि । आजु साँझ आयौ तुम बिनु घर भयौ भार ।।
जीय अकुलायौ अबिनास ना सुहायौ कछु । देखन तोहि आयौ हों लखि मोद भौ अपार ।।
तुम बिनु एकु छन जुग जैसो बीतै मोहि । बियोग में तिहारे घर लागतु है असार ।।
बिनु ही प्रयास री प्रान तिहारे प्रेम । पोत के सहारे करि आयौ सुरसिंधु पार ।।१०८।।

सवैया

मो तन प्रेम करी सरि पार करें हरि प्रेम तरें भव प्रानी ।।
प्रेम प्रताप महा महिमा लघु धी अबिनास न जाय बखानी ।।
नाथ भई बड़भागिनि हों तुम प्रेम पयोनिधि पाय सिहानी ।।
नैनन आनन्द नीर भरें पुलकाय कही रतनावलि बानी ।।१०६।।
बैन सुने तियके तुलसी हरि प्रेम कथा मनमाहिं समानी ।।
सूखत राम सनेह को खेत दयौ रतनाबलि मानहु पानी ।।
राम बिसारि असार बिचारन वैस चली अबिनास न जानी ।।
सोचत भे तुलसी धरि मौन सती तिय नैनन नींद प्रमानी ।।११०।।
नाथहिं नींद लगी जिय जानि पलोटति पायंनु बन्दि सयानी ।।
पीय अगाध सनेह हि पाय गई रतनावलि हीय सिहानी ।।
सोइ रही विधि बाम लिखा अविनास मिटी न ललाट निसानी ।।
रातिहि में तुलसी गृहत्यागि गए कित औचक काहु न जानी ।।१११।।
भोरहि होत उठो रतनाबलि मोद भरी पिय देखन धाई ।।
दीखि परे न कहूँ चहुं ओर सबै बदरी नर नारि मझाई ।।
हीय सनाको भयौ रतनावलि नैनन नीर नदी घहराई ।।
जात कहे बिनु नाहिं कबौ अविनास कहा मन आजु समाई ।।११२।।

कवित्त

रामपुर सूकरखेत घाट बाट हाट गे । देखत अथाई लोग चहूँ दिसि धाए हैं ।।
पंथी नर नारि बहु बूझे बहु देखे गाम । दूरि दूरि दूत लोग खोजिबे पठाए है ।।
कहैं अबिनासराय कहूँ ना सनास लगी । खोजि खोजि हारे सब लौटि लौटि आए हैं ।।
श्यौनाथ संकर सम्भु रतनावलि भ्रात सबै । बैठे मन निरास ह्वै तुलसी न पाए हैं ।।११३।।
तुलसी पयान जानि नंददास चन्दहास । गहरे उसास लेत आए भ्रात जाया पास ।।
अंसुअन तन धोए से रोए सब खोए से । भाग निज बिगोए सुमिरत तुलसिदास ।।
धीर धरि धाए दिसि दिसि लगाए खोज । विविध जन पठाए बिताए हैं कितेक मास ।।
कितहूँ न पाए पछिताए अबिनासराय । ह्वै कै मन निरास लौटि आए जन उदास ।।११४।।

निसि दिन बिललाति छलछलात जासु नैन। हीय छटपटात गात कुम्हिलानो है ॥
दीरघ उसास लेति कबहूँ न साँस लेति। बेसुधि ह्वै जाति मनो प्रान हूँ अथायो है ॥
कबी अबिनास कहै नाथ नाथ आओ नाथ। टेरत ही टेरत सुकंठ भरि आयो है ॥
रतदावलि सुलसी के बियोग भइ बौरी सी। जानि परै कबहूँ त्रिदोष जुर आयो है ॥११५॥

दोहा

पति बियोग तपसिनि भई, रतनावलि गुनग्राम। सेवति हरि पति पादुका, कीरत लही ललाम ॥११६॥
बास करयो रतनावली, बदरी भ्राता गेह। कबहु रही नँददास गृह, सादर सहित सनेह ॥११७॥
नव रिषि भुवन सुतीज तिथि, सित माधव भृगुनंद। जोग तीत्थ रतनावली, बसी सदेवर चन्द ॥११८॥
नारि सिखावन दोहरा, नाना बिध पद छन्द। निज अनुभव सिरजति रही, रतनावलि तिय चन्द ॥११९॥
मही उदधि रस नव बरस, भाद्र तीज भृगुबारि। निसायाम चौथे चले, तुलसि बिरागहि धारि ॥१२०॥

कवित्त

त्याग्यो परिवार ससुरारि घर द्वार धन। मनहिं पछार मारि नारि नेह तोरयो है ॥
धारयो पै नारि बैन भौनिधि सों तारन हार। सरबस बिसारि हरि सौं नेह जोरयो है ॥
मनही मन टेरैं तुलसी अविराम राम। कहत तोहि भूलि राम हौं कुल बोरयो है ॥
जैसो हों तैसो हों तिहारोही अविनासराय। मोहि अपनाय हों जग सों मुख मोरयो है ॥१२१॥
हीय धरि राम बिचरत पुर गाम बन। धाए हैं तुलसीदास पावन अवध धाम ॥
दूरहि तें औध देखि नैन भरि लाए नीर। पुलकित सरीर है ह्वै मनावत सीयराम ॥
सरजू अन्हाय धाय राम धाम धूरि धारि। राम के सदन जाय कीन्ह दंड ज्यों प्रनाम ॥
बोले अबिनास जू सरनागत तिहारौं हों। भक्ति वर देउ निज पूजउ मो मनो काम ॥१२२॥
जहाँ जहाँ राम पद अंकित सुनि पाई भू। तहाँ तहाँ जाय जाय तुलसी मनाए राम ॥
लोटि लोटि जात हुइ जात पुलकित गात। स्रबत जात जासु नैन बैन धारें बिराम ॥
कहैं अबिनास पुनि बोलैं गदगद बानि। जोरि पानि कहैं मोरि लेउ सुधि दया धाम ॥
मोहि ना बिसारौ सहारौ अब तिहारौ नाथ। दया करि निहारौ ही बैठौ प्रभु आठोयाम ।१२३।
करि कै द्वै मास औधबास श्री तुलसीदास। धाए अबिनास जू अधनासि तीरथराज।
राम विश्राम भूमि जानि पानि जोरत जात। पुलकित गात गात आश्रम श्री भरद्वाज ॥
न्हाए त्रिवेनी पाप छेदन हित छैनी छोनि। सुरग निसेनी दैनी दैनी सी सुगति साज ॥
तहाँ भजि राम चित्रकूट बास कीनो पुनि। संकर मनाए जाइ कासी राम भक्ति काज ॥१२४॥
देखे पुनि तीरथ राम तीरथ सबै धाय। नाना गिरि कानन हूँ बैठि भजे सीय राम।
विविध व्रत विधान जप तप महान ध्यान। साधि अविनास सही बरषा सीत घाम ॥
सून्य बसु वेद चंद चैत सित पांचै गुरु। आए श्री तुलसिदास फेरि श्री अवध धाम ॥
सात मास बास करि धाए फिरि सेस तीत्थ। बानु बसु बेद भूमि धाए पुनि कासी धाम ॥१२५॥

दोहा

तुलसिदास कासी पुरी, बसे सुरसरी तीर। सतसँग हित लागी रहै, भगत सन्त जन भीर ।१२६।
बरन करम बरनत कबौ, तुलसि धरम आचार। ईस भगति महिमा कबौ, बेद पुरान अधार ।१२७।
बरनत कबहू सिव कथा, राम कथा निज बास। भगति ग्यान रस संचरत, नित नव तुलसीदास ।१२८।

१५

बारानसि बसि कीन्ह नित, बहुविध छन्द अधार। इामचरित कृति अति सरस, तुलसी बिबिध प्रकार१२६
चित्रकूट चलि जात सो, कबहूँ अबध प्रयाग। बसहिं अधिक सो सिबपुरी, धरें राम अनुराग।१३०।

कवित्त

कह्यौ एक पन्थी नन्ददास हू बिराग लह्यौ। सतत बसें ब्रज बहु दिन सों गेह त्यागि॥
पुलके सुनि तुलसी बोले धनि नन्ददास। ईस अनुराग पाय तासु गये प्रेम पागि॥
कही उमगाय जाय अबिनास देखों कबौ। छूटि भव बन्धन सों सोऊ भयौं भूरि भागि॥
जेठ मास पाख सित सूर तिथि जीब बार। राम नन्द बेद चन्द वत्सर जवै गो लागि।१३१।

दोहा

धारें अमित उछाह उर, सुमिरि राम अबधेस। रित हिमन्त तुलसी चले, नन्द मिलन ब्रज देस १३२
गुन नव वेद धरा बरस, सुकुल माघ कुजबार। तुलसिदास पंचमि सुतिथि, धँसे मधुपुरी द्वार।१३३।
सानन्द देखौ मधुपुरी, परासोलि पुनि जाय। नन्ददास लखि मुदित भे, राम भरत जिमि पाय।१३४।
पुलकि नन्द तेहि पद गहे, कहि सब निज गृह गाथ। दरस करायौ सूर को, तुलसि नबायौ माथ।१३५।
तुलसि हि संग लै नन्द गे, नाथ गोवर्धन धाम। तुलसि बंसिधर रूप महँ, लखे धनुष घर राम।१३६।
कछु दिन करि बिसराम पुनि, तुलसि अनुज निज संग। कृष्ण सुजस बरनत चले, गोकुल सहित उमंग।१३७
तुलसी श्री बिट्ठल दरस, लहि अभिबादन कीन्ह। कहि गोसाई प्रिय बचन, बहुविधि आदर दीन्ह।१३८।
लखे जानकी सहित तहँ, बिट्ठल सुत रघुनाथ। इष्ट नाम मम रूप कहँ, सनुद नबायौ माथ।१३९।
नन्द दिखाए सकल ब्रज, श्री हरि लीला धाम। तुलसिदास हरषित भए, देखि धाम अभिराम।१४०।
तुलसी कृष्ण पदाबली, सृजन कियौ आरम्भ। अनुज भेंटि कासी चले, भगति भवन के थंभ।१४१।
ब्रज संगिन संग संग चले, तुलसी कासी धाम। विस्वनाथ के दरस करि, लियौ बास बिसराम।१४२।
भक्त करत निसि आय नित, श्री तुलसी सत सँग। बने धरम पथ पथिक बहु, रँगे राम रस रंग।१४३।
सर नव उदधि मही बरष, मकर प्रयाग अन्हात। तुलसी औधपुरी चले, सुमिरत राम सिहात।१४४।
रितु नव वेद धरा अबद, राम नबमि मधुमास। आर बार मानस ललित, किय क्रमबद्ध प्रकास।१४५।
गगन व्योम सरचन्द सक, असित जेठ सुभ मास। रामचरित भृगु तीज दिन, पूरयौ तुलसीदास।१४६।

छंद

श्री हरि भजन लेखन करत ब्रत सतत नित तुलसी धरयो।
कछु औध बसि बारानसी पुनि औध रहि पूरन करयौ॥
तेहि सुफल रामचरित्र मानस बरस पचई पक्कि फल्यौ।
श्री राम भक्ति पियूष रस मय तासु सोता बहि चल्यौ॥१४७॥
अगनित विनय पद चरित राम उमा सुमंगल पद करे।
तुलसी अबध कासी पिराग सुवास करि आनन्द भरे॥
चलि जात कबहू चित्रकूट नित्त राम कथा पढ़ें।
जहँ जहँ रहें तुलसी तहाँ तहँ भक्त श्रोता गन बढ़ें॥१४८॥

दोहा

जेठ नन्द नभ बान महि, सक श्री तुलसीदास। नित नित राम कथा कहत, चित्रकूट करिबास।१४९।
तब तहँ आयौ साधु इक, राजा नाम सुभक्त। सदा साधु सेवा निरत, राम नाम अनुरक्त॥१५०॥

जेहि अहीर बर कुल भए, नन्दबबा बड़भाग। राजबीर तेहि कुल भयो, करयो गाम गृहत्याग ॥१५१॥
अबगासी बासी भगत, सुकबि सन्त सुखदाय। राजबीर आभीर सोह, राजा साधु कहाइ ॥१५२॥

सवैया

ऊधर पुंड बिसाल सुभाल जटा सुठि स्याम महा छवि छाजै।
कंठ लसैं तुलसी बर माल सदा कटिबास कोपीन सुसाजै॥
सामल देह सनेह को गेह धरै जनु देह बिदेह बिराजै।
संतनि हाथ बिक्यो अबिनास सो राजा धरयो तनु संतन काजै ॥१५३॥

दोहा

सुनि सुनि तुलसी मुख सरस, गाथा राम ललाम। तुलसी ज्ञान बिराग लषि, भगति लह्यौ बिसराम १५४
सबिनय तुलसी पद परसि, इकदिन राजा भोर। बोल्यौ मोर कुटी चलौ पुजवहु आसा मोर ॥१५५॥
तुलसी सुनि सबिनय गिरा, कीन्ह गोन स्वीकार। भगत साधु दुइ संग चले, सुमिरत जगदाधार ॥१५६॥

कवित्त

पैसुनी जसस्विनी कलिन्दिनी जुरी हैं जहाँ तासु जाम्य कूल मूल फूल बाटिका सुहात।
कदली मधूक अंब निबु जंबु सोहैं तरु सिसिपा बदरि तिंदु तुलसी छुप लखात॥
ललित लता वितान पटी तहाँ पर्न कुटी प्रगटी अमित आभ मुनिन मन लुभात।
तहाँ अविनासराय पुन्य रासि राजा साधु करै वास सन्तन पद सेवा करि सिहात ॥१५७॥
आवै जासु पर्नकुटी सो न दुख पावै कबौं आपनी कुटी समान सन्त पावते सुवास।
भिच्छा गहि लावै जदि साधु आइ जावे कोउ नेह सौं जिमावै भलें आपु धारत उपास॥
रोगी होइ साधु कोउ तासु उपचार करै बूझि बूझि बैदन घोटि प्यावै अनेक घास।
कबहू रिसाय न अनखाय अविनासराय सरल सुभाय पाय होत हिय हुलास ॥१५८॥

दोहा

जमुना तीर अरन्य महँ, राजाकुटी सुहाय। सनि दिन रवि तिथि जेठ सित, तुलसि बिराजे जाय १५९
लखि पावन एकान्त थल, तुलसी मन गो भाय। भजत राम सिय बसि तहाँ, जमुना नीर अन्हाय १६०
राजा सेबत निसि दिबस, हरि तुलसिहि मन लाय। सीय राम गाथा सुनत, तुलसी मुख हरषाय ।१६१।
तुलसिदास को वास सुनि, आवत भक्त अनन्त। गृही जती नृप रंक बुध, धनी नारि नर सन्त ॥१६२॥

कवित्त

सुन्दर सुजान मतिमाल आजान बाहु भक्त जन पधान तेहि गले माल मानिये।
गान परवीन हरिध्यान लवलीन कवि बिसय विकार हीन छीन सिख जानिये॥
मुंडित सीस मुच्छ तो सेत सेत केस वेस पीन देइ सूत्र कटि गौर त्यों बखानिये।
कहैं अबिनास भाल तिलक तुलसीदास सेत कटि अधोबास तासु पहचानिये ॥१६३॥
श्री श्री तुलसिदास दर्सन पदपर्सन सों होत अति अकर्सन मन धर्म ओर जाय।
छूटत कुबिचार त्यों टूटत बिसय बिकार फूटत पहार पाप ताप अबिनासराय॥
नाना बिध जासु मुष सुनत श्री राम गाथ होत श्रवन पावन मन भक्ति उमगाय।
होत बड़भाग धन्य जासु सतसंग पाय जासू चरित पावन मन सकै कौन गाय ॥ १६४ ॥
सारद सुपुत्रसे कि बालमीकि नारदसे वसिष्ठसे वसिष्ठ कहौं कि व्याससे महान।
कहौं सुकदेवसे कि सूतसे प्रभूत मति बकता प्रबीन अति बैन हूँ सुधा समान॥

आगम पुरान सबं बेद भेद तत्व ग्यान महा तप निधान सो धर्म जनु मूर्तिमान ॥
धन्य श्री तुलसिदास नासन जगतत्रास प्रगटे अबिनास सो करन धरम त्रान ॥१६५॥

विजय छन्द

राजत राजकुटी जबसौं तुलसी चरचा चहुँ ओर बढ़ी है ।
कालिंद कूलकुटी कल कीरति जाय सुमेरु सिसानि चढ़ी है ॥
आबत जात सिहात सुहात अनेकन भक्तनु छाई मढ़ो है ।
श्री तुलसी कलि जीतन हेतु मनौ सिरजी अबिनास गढ़ी ॥१६६॥

कबित्त

नाना विध राम भोग भक्त लोग लाय जहां देत जोग सरधाके सोत बहिबौ करैं ॥
जासु पर्न भौन नौन साक दारि च्योरा चून सत्तू गुर घीउ तेल पुंज रहिबौ करैं ॥
देखौ अबिनास श्री तुलसीदास रिद्धि सिद्धि कोटि अन्नपूर्ना जहां लाज लहिबौ करैं ॥
राजा सो साधु साधु सेवक सुभक्त जासु देखि जासु सेवा साधु कीरति करिबौ करैं ॥१६७॥
जंगलमें सुमंगल कीनौं श्री तुलसिदास जासु परताप पाप—पुंज जरिबौ करैं ॥
सोहति पयस्विनी रविनन्दिनी तापहारि नई नई भक्तकुटी जहां परिबौ करैं ॥
थाप्यौ रामदूत धाम भक्त मन पूजैं काम भक्त जहां राम नाम जाप करिबौ करैं ॥
तुलसी ज्यौं व्यास सूनु राजाजू परीछित ज्यौं देखे अबिनास हीय भक्ति करिबौ करैं ॥१६८॥
राजापुर बसाय राजा हू कृतारथ कीन सेबा फल दीन पीन कीन कीरति प्रकास ॥
भक्त जन भीर जहाँ रहैका उछीर कबौं जमुनाके तीर करयौ दूजे नैमिषनिवास ॥
राम गान ग्यान ध्यान जग्य जप साधैं लोग बेद और पुराननको छहरायौ तहँ उजास ॥
भाखै अबिनास देखि देखि ना अघाए नैन बर्नत थकाए बैन ऐसे श्री तुलसीदास ॥१६९॥

दोहा

रिसि भू सर महि सक बरस, असित माघ रविवार । पंचमि तिथि अविनास हौं, गयौ तुलसि दरबार१७०

कवित्त

धातु धरा तत्व भूमि बर्स सित फागुनको दौज तिथि सुक्रबार भयौ दुख दाइ आइ ॥
अंजनी सूनुके सदन रामध्यान मगन बैठे जब राजा साधु मोर आसन लगाइ ॥
रटत राम राम सो चले रामधाम गए देखि देखि आचरज करयौ साधु समुदाय ॥
देखे श्री तुलसीदास अकुलाए भे उदास । धन्य धन्य राजा साधु कह्यौ अबिनासराय ॥१७१॥
प्रथमहिं चित्रकूट देखे हौं तुलसिदास देखे पुनि राजकुटी राजसिंह संग जाय ॥
परचै मो लीनौ निज दीनौ बहु बूझै मोहि आदर बहु कीनौं सो लीनौं हिय लगाय ॥
देखि अनुराग्यौ मोर हीय प्रेम पाग्यौ पुनि राजासाधु रामधाम जात समै देखे धाय ॥
नन्द चन्द तत्व सोम कातिक अछय नौमि सोम फेरि कीन संग मास अबिनासराय ॥१७२॥

दोहा

पन्द्रह सौ बाईस सक, पावन सावन मास । अमा सोम दिन पुनि गयौ, तुलसी सतसंग आस ॥१७३॥
मास अढ़ाई संग लह्यौ, राजा कुटी सुबास । ताहि बरस कासी गए, कातिक तुलसीदास ॥१७४॥
फेरि नाहिं हौं लहि सक्यौ, तुलसी दरसन लाहु । तदपि रह्यौ मो मन सदा, दरसन करन उछाहु ।१७५।
राजा साधु सुनाम सौं, राजापुर निरमाइ । तुलसी निज मरजाद करि, कासी गए सिधाइ ॥१७६॥

आवत जात सुभक्त तहं, बसत करत बिसराम। जोग जाग जप व्रत धरत, भजत विविध विध राम।१७७
तुलसी पदरज पावनी, राजाभूमि ललाम। राम भगति बरदाइनी, तपोभूमि अभिराम ॥१७८॥
हौंहूँ तुलसि सतसंग लहि, धनि धनि भौ बड़भाग। मन व्रत तीरथ रुचि बढ़ी, बढ़यौ राम अनुराग १७९।
बसु दृग सर भू बरष सनि, पुरम भादव मास। तीरथ दरसन हित चल्यौ, त्यागि सिंहुडा बास।१८०।

रूपमालिका छन्द

सिंहुड़ा जन हिंस छत्रिय सर्बजीत पमार। तासु पावन चरित सुन्दर राजसिंह कुमार॥
धीर बिजयी बीर बरमति सत्यप्रन गुनधाम। सुर महीसुर भक्त कबिगन गुनिन पूरन काम॥
पावत सबै सन्तोस जनगन जाइ जासु दुआर। धर्म कर्म प्रबीन पालकदीन परमोदार॥
अबिनास गुनगन हंसनि बोलनि जासु सील सुभाय। सुमिरतु कबौ मन मोर चाहतु जाउँ पंख लगाय १८१

दोहा

भरत खंड पच्छिम दखिन, उत्तर हिम गिरि जाय। कीन बास तीरथ दरस, सुर हरि पद मन लाय १८२
बेद अनल सर महि बरस, पूरन कातिक मास। सितदल गुरु ताली सदन, आबौं हौं अबिनास ॥१८३॥
पानी लग्यौ पहार कौं, भयौ उदर रुज मोइ। बरस अड़ाई दुख लह्यौ, दियौ राम पुनि खोइ ॥१८४॥
सर गुन बान धरा बरस, सातैं माधव मास। असित पच्छ सनिवार किय, हरसिंह सुरपुर बास।१८५।
सासत इहं हरसिंह सुत, करनसिंह गुन ग्राम। बल विवेक विद्या विनय, धरम धाम अभिराम ॥१८६॥
तिन बहु धन धरती दई, राख्यौ करि सनमान। ताली तजि जाउ न कहीं, रहौ भजौ भगवान ॥१८७
तारी अनुज तनूज गृह, भजौं कौसिलानन्द। जुग जुग जीवहिं करनसिंह, सुतन सहित सानन्द।१८८।
धनि धनि तालो ग्राम इह, जहँ जन चारु चरित्र। भए जासु सुत करन से, तुलसी से दौहित्र।१८९।
हुलसी सी दुहिता जहां, भगत प्रसबिनी धन्य। वीर जननि दुर्गा भई, करन मात तिय गन्य।१९०।
धनि धनि श्री हुलसी भई, धन श्री तुलसीदास। जिन जगती तल बिसरायौ, कीरति कलित प्रकास१९१
नन्ददास चन्दहास सुत, कृष्णदास ब्रजचन्द। गए बुलाबन बार बहु, श्री तुलसीहि नँद नँद।१९२।
तजत न अब बारानसी, बहु विधि कीन्ह उपाइ। लखत बाट सुरेपुर गइ, रतनावलि पति ध्याइ।१९३।
भयी धन्य भारत मही, तुलसीदासहि पाय। भगति ग्यान मंदाकिनी, जिन जग दई बहाइ।१९४।

छंद

होत न जो तुलसी जग में हिंदुआन की कानिहि को धरतौ।
बेद पुरानन को चरचा अरचा अबिनास कौ आचरतौ॥
मोह मयी मदिरा मद मत्त अचेतन चेतन को करतौ।
मानस रामपियूष पिआइ सो जीवन जीवन को धरतौ ॥१९५॥

छंद

तुलसी सम धर्म धुरीन सुधी। जन होयं सुभक्त गुनी गुरु ग्यानी।
रतनावलि सी कुल लाजवन्ती। तिय होय सुसील सती गुनखानी॥
हुलसी सम पूत जनें जननी। बिंदुआन बिनोत जसी हरि ध्यानी॥
अबिनासी अकब्बर से अवनीस। रहै जिनकी जग कीर्ति कहानी ॥१९६॥
धनि धन्य भए तुलसी जग में। कल कीरति जासु रहै चिरथाई॥
नृप पालहिं राम समान प्रजा। मिटि जायं दसानन से दुखदाई॥

सब ही घर होयं भरत से भ्रात । बिमात सुमित्रा समान सुहाई ।।
अबिनास सु केसव से कबि भानु । प्रकाश करें नृप धाम लुनाई ।। १९७।।

कवित्त

बीती तरुनाई बीर मंडित बुन्देलखंड । कालिंजर निबास करि सिंहुड़ा कीनो बास ।।
पाए बहु बीर धीर मानो बड़दानी जहां । साधु औ गुनग्य जे कविनन्दजन पूजें आस ।।
देखे बहु राजद्वार जाय अविनास राय । पायो बहु दान मान कहुँ प्रेम को प्रकास ।।
पै न ओरछेस सो गुनग्य कवि केशव सो । राजा सो उदार साधु देख्यो न भक्तदास ।।१९८।।
राजा महाराज श्री जहाँगीर भूपतिराज । तारीपति कर्नसिंह सोरंकी सुभगवास ।।
पन्द्रह सो बयालीस वर्ष सक शुक्रबार । दौज तिथि पाख बर्यौ अब पूस मास ।।
गुरुजन जस भाख्यो देखिराख्यो जैसो होहुँ । जीय अभिलाख्यो लिख्यो चरित तुलसिदास ।।
छहरै छबीलो छिति छेत्रमें छपाकर सो । नासै तम रासि अविनास तुलसी प्रकास ।।१९९।।

दोहा

लिख्यो अतिहि संक्षेप बिधि, तुलसी तत्व प्रकास । पढ़ैं सुनें अबिनास जे, पावें भगति बिलास ।२००।
धन्य राम पद जुग जलज, अलि श्री तुलसीदास । जासु रुचिर पावन चरित, भनि धनिमो अविनास२०१

उल्लाला छंद

अग जग साई जानकी रमन दुरित दारित हरन । करो सदा अविनास हिय बास आस पूरन करन २०२

इति कवि अविनासराय कृत तुलसी प्रकास सम्पूर्णम् ।
संवत् १८८९ भाद्रपद शुक्ला ऋषि पंचमी ५ गुरु वासरे ।
लिखितम् मुंशी रामदीन चित्रकूट मद्धे वैष्णव गंगादास निमित्तम् ।



५

गौतम चन्द्रिका

में

(गोस्वामीजीका जीवन चरित्र)

अथ मधि इति नहिं जासु अकथ निरंजन एकरस । सब जग ईसा बासु जयतु देव निर्गुन सगुन ।।
भक्ति भक्त गुरु श्री भगवंता मंगलकरन अमंगलहंता ।।
जगहितहेतु संत अवतरहीं । रुचि सुचि हरिहरजस बिस्तरहीं ।।
कलि कोपित गोपित अनसूया । बढ़ि खल कुबलय निसा असूया ।।
हरिबल्लभ सरोज मुष मूँदे । जहँ तहँ कुकबि तमीचर कूदे ।।
सुर नर बर बानी बिथकानी । राजा भोज न मीराँ रानी ।।
अरिमर्दन जयमल्ल हेराने । भट सिरमौर चितौर समाने ।।
अथए सूर पद न पथ सूझत । मदनअंध नरनारि अरूझत ।।
त्यागि समाधि संभु तब जागे । कासी जोति जगावन लागे ।।
रचि तुलसी बनमाल सकेली । बिहँसि बिंदुमाधव उर मेली ।।
कातिक धवल एकादसि आवै । तुलसी कृष्नबिबाह रचावै ।।
चतुर्दसी हरिहर छबि जोहै । तुलसी विश्वनाथ सिर सोहै ।।
पूनो अन्नपूर्ना पूजै । गीत पंचगंगाजस कूजै ।।
श्रीपति तुलसी कृष्न उमासिव । नाम जपत मंगल दिन रातिव ।।
स्रबन सुनी सो कथा उरेषी । लिषौं अपर पर निज दृग देषी ।।
पूर्बापरसंगति रहित सब्द करत मति आन ।
स्रवन बदन दृग जोरि मति सोधु सब्द अनुमान ।।
कम क्रिया कर्ता न रहाहीं । अबिचल कीर्ति चलति जग माहीं ।।
पर असुया कृतघ्नता से ही । इतिकरतबिता खलजन के ही ।।
सुजन सदा पर सुकृत प्रकासहिं । धर्मसुमन की कली बिकासहिं ।।
धर्माचार श्रेष्ठ आचरहीं । अपर सुजन तेहि पथ अनुसरहीं ।।
दुर्जन जग सुषसंपति हरहीं । दीनदयालु दीन उद्धरहीं ।।
बिदित राम रावन रामायन । पंचनि बरेहु न्याय सुभायन ।।
निज पीड़ा तुम कहँ प्रिय नाहीं । जथा तथा सब कहँ जग माहीं ।।

नींद भूष भय मैथुन जूरे। पसु नर सहँ समसील अँकूरे॥
धर्म बिबेक न दम नहिं दाना। ते नर पसु बिन पुच्छ बिषाना॥
महि सहि सकइ न इन कर मारा। जब तब प्रकृति करै संघारा॥
अजा अनादि अनंत सरूपा। अलष अनिर्बचनीय अनूपा॥
जासु चरित पावन बिधि नाना। मार्कडेय पुरान बषाना॥
... ...

कासी असी भूमि अधिकारी। सुकृती धीर धर्मव्रतधारी॥
चतुर्धरी पदवी श्रुतिमंडन। अति बलबीर सत्रुमदषंडन॥
तज्ञ कृतज्ञ गुनज्ञ महाना। नम्र सुसील रहित अभिमाना॥
सरनागतरच्छक नयनागर। तोडर राउत नाम उजागर॥
मारुतसुत सेवक बिदित महाबीर बलऐन। जासु गरुअ मुद्गर गदा कोउ भट भाजि सकै न॥
भीम रूप नहिं भीम गति मल्लयुद्ध बिरुझान। मल्लमान हरिहर भजत तोडर मल्ल अमान॥
भूसुर सुरभी संत हित षंडन कलिपाषंड। मित महि महा महीप चित खल दल दलन प्रचंड॥
नंदेस्वर बरुना मढ़ी चढ़ी जवानी धारि। बोलि बरैनी भट तुरत धाएउ जोरि गुहारि॥
गाजे सजि जमकातरी कासीवार लठैत। किये व्यर्थ बाना पटा भागे जवन लुटैत॥
सनमाने तोडर सबहिं बाजे बिजय निसान। को नाषै तेहि जगत में जेहि राषै भगवान॥
... ...

तोडर अरु मम जनक कुल महँ घनिष्ट संबंध। धर्ममूल आनंदबन फलित मोर व्रतबंध॥
ब्रह्मचर्यव्रतरत महत दच्छिनो द्विजकुलदीव। नामानँदकानन लसत सिवकेदार समीप॥
सुद्ध बेद बेदांगके पारंगत श्रीमान। ब्रह्मसूत्रज्ञाता परम मानतसबहिं समान॥
दीन दुषी जनकी करत सेवा सहित सहाय। साधनहीन अनाथ तेहि अपुनै सेवहिं जाय॥
बहुतक सिष्य ब्रह्मचारीके। सुमति सुसील सकल सुठि नीके।
पूर्व मध्य उत्तर मीमांसा। सूत्रन्हि सरुझावहिं गुरुपासा॥
पाइ बिपुल बिद्या फल दानहिं। गुरु आनंदकाननहिं मानहिं॥
हमहूँ गुरुआस्रम करि बासा। बिधिवत करहुँ बेद अभ्यासा॥
हमतें गुरु सेवा भलि पावहिं। सामबेद सरहस्य पढ़ावहिं॥
एक बार बरषा ऋतु माहीं। पुरुष एक आवा गुरु पाहीं॥
तव जन तुलसी कहि अतुराई। गुरुपदपदुम परेउ सो जाई॥
तेहि उठाय गुरु हृदय लगाई। पूंछे कसल निकट बैठाई॥
कहु केइँ गृही वेष सँवराए। नरहरि कहाँ इहाँ कहुँ आए॥
षेदषिन्न मन तोर लषाई। बोलु नृसिंह स्वामि कुसलाई॥
तुलसी दृगन्हि छुटी जलधारा। तेहि कछु मनदुषदाह निवारा॥
बोले तबहिं जोरि जुग पानी। कहि न जाय कछु अकथ कहानी॥
आपु अवध तें कासीं आए। कुटी नर्मदा तट गुरु छाए॥
हमहुँ आदिकबिबन मति आँचे। जमुनातट जमुनागृह राँचे॥
विषय सृंगारि सरूप बिगारे। रतिपति बिहँसि सुमनसर मारे॥

बष पचसर गीता गाई। जमुनासिष सरऊसुधि आई॥
हेरेउँ गुरुपद षोजि न पाएउँ। तकि तब चरन सरन मैं आएउँ॥
अब एहि छन कछु बाति न चालहु। अपुश्रौ गुरु हम कहँ प्रतिपालहु॥
सुनि मुनिदेय नदीं नहवाए। साधु जोग सुचि पट पहिराए॥
गृही सिष्य भोजन लै आए। तुलसी सरुचि पेट भरि षाए॥
ज्ञानषानि मुनिआश्रम पाई। राम राम कहि राति बिताई॥

दिन दुइ रहि करि प्रार्थना मुनि अनुसासन पाइ। तीर्थाटन करि दिन असन पुनि निसि निबसहिं आइ॥

साधु अनेक एक निसि आए। तुलसी नवल बिष्णुवद्व गाए॥
भागा ज्ञान भगति ठहरानी। राति बीति गइ काहु न जानी॥
किहेउँ सजग सेवा सब आगे। हम लषि तुलसी पूछत लागे॥
कुलपतिआस्रम सेवाचालक। तुम केहि कुलपालकके बालक॥
हम कर जोरे सीस नवाए। नाउँ गीत कुल गाउँ बताए॥
सूषी सहिदानी बानी सुनि। तुलसी व्याकुल बोलि उठे पुनि॥
हा कुलदेवि गौतमी माता। तोहि ग्रसि काल ग्रसेउ कुलनाता॥
पितु सपना सुषुप्ति मह माई। श्रुति परि बात सिमृति बनि आई॥
तव पितु धन्य धन्य तव माता। तव गुरु धन्य धन्य तैं ताता॥
दीन मलीन मातुपितुहीना। मोहिं गहि बाँह पालि गुरु लीन्हा॥
गुर सुर अतिथि मातु पितु पूछा। एहि समान सुत धर्म न दूजा॥
ए महिं अर्थवाद कछु नाहीं। मतबादिन्ह तें बाद बृथाहीं॥
अस कहि ते नितनेम सिधारे। हमहुँ निबरि आए गुरुद्वारे॥
... ...

गावत समुझावत लिषत जागत बहुत बिहान। सुचिताई करि होइ सुचि सुरसरि करहिं नहान॥
संध्याबंदन सुचितमन उचित रीति करि लेहिं। जलभागिन्ह जलदान दै सूर्य अरघ पुनि देहिं॥
श्रीफलदान बिस्वेस्वरहिं अरपन करहिं सनेम। बिंदुमाधवहिं तुलसिदल चरचहिं संचित प्रेम॥
पुनि हनुमानगुफा पयठि फल हनुमंतहिं देहिं। रामायन अधिआत्मको पूर्न पाठ करि लेहिं॥
असन मधुकरी कपिस पट सिषासूत्र संधान। उरसि तुलसिका माल सुचि रुचि लेषनीप्रधान॥
... ...

तुलसी देवमंदिरन्हि जाई। बिनती करहिं बिष्नुपद गाई॥
सो नइ गीति सुनहिं मन लाई। गावहिं जहँ तहँ लोग लोगाई॥
घाट बाट घर गली अथाई। कासीं रहेउ बिष्णुपद छाई॥
रुठि गे मतबादी अभिमानी। नगर गोसाइँ जे बकध्यानी॥
ते सब करि कुमंत्र छल साधा। तुलसीपथ सधि जीवनबाधा॥
तासु निवारन जंत्र बनाए। पुनि मम गुरु तोडरहि बुलाए॥
ते सब समाचार सुनि कोपे। असो घाट पर तुलसिहिं रोपे॥
रुचिकर तुलसीथल निरमाने। तोडर केहु कै बाति न माने॥
धर्म हठिहिं तुलसिउ न भुलाने। समय परे कहि मीत प्रमाने॥

निजदल बिकल निरषि कलि कोपा । कासी महि दुकाल प्रन रोपा ॥
कलि कुचालि लषि मन अति कोपी । उठी अन्नपूर्ना प्रन रोपा ॥
संकर जटाजूट कर धारी । सकरुन सुरसरि ओर निहारी ॥
हर हरषे गंगा बढ़ी सावन भादों संग । तटबासी नर नारि घर बाढेउ त्रास तरंग ॥
आनंदकानन मंत्रबल तुलसीव्रतफल पाय । पुरजन पूजनबस भई सुषदा गंगा माय ॥
तुलसीव्रत पारन किये तोडर सहित सहाय । घनानंदकानन निकट कही सवैया जाय ॥

सवैया

रूठि उठी बढ़ि गंग तरंगन्हि पातक दावहिं बोरि बहाई ।
आनंदकानन को महिमा तुलसी पति मोरि गई फिरि आई ॥
कीरति सेन बजाय चलि सुनि दौरि दुरी षलता कटकाई ।
रामकृपाबल तोडर ते डरि भाजि गई कलिराजरजाई ॥
सुनि आनन्दकाननहु भाषे । नंदन बन जेहि पद अभिलाषे ॥

श्लोक

आनंदकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः । कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ।
हरिपदपदुम कबितसर फूलै । हरिजनमनमधुकर अनुकूलै ॥
हरिपद महिमा बरनि मुनि तुलसी कहँ अगुआय । पुरजन सहित समाज पुनि सुरसरि पूजि पुजाय ॥
पंचकोस फेरी फिरे बिजयनिसान वजाइ । सुबस बसी कासी असी सुषमा नित अधिकाइ ॥
लखत आदिकेसब मनभावन । पंचानन सरपंच नसाबन ॥
अन्नपूर्ना रिधि सिधि साजै । चिंतामनि गनराज बिराजै ॥
लोलअर्क सिर छत्र सजाए । पंचदेव मंडली बनाए ॥
पंचकोस न्यावहिं निपटावहिं । बिपुल संत तुलसीथल आवहिं ॥
ढोल मृदंग डिमडिमी बाजै । बीन सितार मजीरा साजै ॥
अटत उर्जेनीदासहुँ आए । सुपद सूर मीरां कृत गाए ॥
सुनि तुलसी बानी अनुरागी । सुषद कृष्नपद गाबन लागी ॥

पद

गहि गहि गगन दुंदुभी बाजी ।
बरषि सुमन सुरगन गावत जसु हरष गगन मन सुजन समाजी ॥
सकुनि करन सायुज दुरयोधन भये मुष मलिन षाइ षल षाजी ॥
लाज गाज उनवनि कुचालि कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी ॥
प्रीति प्रतीति द्रुपदतनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी ॥
कहि पारथ सारथिहिं सराहत गईबहोर गरीबनेवाजी ॥
सिथिल सनेहु मुदित मनही मन बसन बीचि बिच बधू बिराजी ॥
सभासिंधु जदुपति जय मय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी ॥
जुग जुग जग साके केसव के समन कलेस कुसाज सुसाजी ॥
तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्न कृपालु भगति पथ राजी ॥
पारथ रथ भ्राजत श्रीकंता । धुज ऊपर गाजत हनुमंता ॥

कृष्नकीर्तिध्वज सजि फहराई। तुलसिदास बजि भए गोसाईं॥
कलि कोबिद भट जहँ तहँ धाए। ढँढ़रच धर्मकेतु फहराए॥
जोरि पंचमंडली बनाए। तुलसिहिं पतिन कुजाति बताए॥
तुलसी स्रवन परी सो बाता। बोले हुलसित पुलकित गाता॥
धनि धनि पंच अनुग्रह कीन्हे। पंचकीस अघ निज सिर लीन्हे॥
पतितसिरोमनि मोहि जौं पावहिं। राम पतितपावन कहवावहिं॥
बाना ऊँच पतितपावन को। राय नाम कलिमलदावन को॥
राम स्वामि हम रघुपतिचेरे। इहई अमिट रेष सिर मेरे॥
जाति कुजातिन्ह ते झगरै को। पतित हमहिं हरि बिनु उधरै को॥
... ...

लागत मार्गसीर्ष मनभावन। कथित कृष्नगीता अति पावन॥
रामबिबाह महोत्सव जानो। तुलसी हियें भक्ति हुलसानी॥
गुरु सन कहि मोहि संग लिवाई। सिय मड़के स्तुति रमा लषाई॥
सिय गिरिजा पूजन विधि साजो। राम बिबाह बधाई बाजी॥
अवध संतमंडली निहारी। गावहिं नारि मैथिली गारी।
विद्यापति ठाकुर बिष्याता। बंवज तासु कबितरसज्ञाता॥
रमाबंधु ठाकुर चलि आए। तुलसी पहँ कछु ब्यंग सुनाए॥
कुलसी करि प्रनाम सनमानो। हाथ जोरि बोले मृदु बानी॥
धनि मातुल सेम तौ सिसु राउर। मिथिला देश मोर ननिग्राउर॥
रघुपति भक्ति साध्य सुष पूंजी। साधन रामभक्ति नहिं दूजी॥
सुनि ठाकुर तब तुलसिहिं चीन्हें। प्रीति रीति पीतांबर दीन्हें॥
बकसर बापी गौतमी तुलसी मुदित नहाइ। मुक्तिजन्म महिमामढ़ी कासीं निबसे आइ॥
... ...

पण्डित कासीनाथ महामति। समरसिंह रजपूत ग्रामपति॥
गंगाराम परम सतसंगी। कबि कैलास कबित्तउमंगी॥
उज्जेनी संगीतप्रबीना। भजन गोप हरिबंस कुलीना॥
नगरसेठ जैराम उजागर। तांबूली सियराम गुनागर॥
नाथू नापित केवट रामू। अरु रैदास षेलावन नामू॥
बोधी गोड़ हरी हरवाहू। धाढ़ी मीर जसन जोलहाहू॥
कहाँ कहाँ लगि नाम गनाई। कासी बिस्वनाथ प्रभुताई॥
तुलसी सतसंगी बहुतेरे। सुकृती सकल रामके चेरे॥
ब्राह्मन कासीवार जो मम पितु तनु भगवान। तोडर सदन समान सो तुलसी बाग बितान॥
... ...

तप तनु कसत बसत इमि कासी। बारानसी सुमंगल रासी॥
वेद पुरान जासु जसु गावहिं। सम गति पतंगहु पावहिं॥
अघ सिर छेदनि गंग असी भल। साधुसंग तुलसी अपने थल॥

रामगीत अवली चितामनि । करत प्रकास हरत भवनिसि घनि ।।
... ...

सरऊ अपर घाघरी दोऊ । संगम तीर्थराज सम सोऊ ।।
धवलि जेठि एकादसि माहीं । तहाँ बिपुल नरनारि नहाहीं ।।
बहुरि बराहषेत मोथा सँचि । पूजहिं बटु बराह बेदी रचि ।।
तहँवा सकल लोक बिष्याता । सुषदा भक्तिसूत्रनिर्माता ।।
साँडिल रिषिआस्रम थल पासा । जहँ तहँ सरुवारिन्ह कर बासा ।।
रामप्रदत्त भूमि अधिकारी । खल दल दलन धर्म धनुधारी ।।
सांडिल गोत्रज नरहरि स्वामी । ज्ञाननिधान भक्तिपथगामी ।।
रमि नर्मदाकुटीं अगराए । रामेस्वरहिं पूजि पुनि आए ।।
चउथपनास्रम धर्म बिसर्जन । चाहे करन भक्तिफल अर्जन ।।
अघगजगंजन नरहरी सूकरषेत बिहाइ । आरन्यक सुषमा भरी कासी पहुँचे आइ ।।
रमि रमाय आनन्दबन गए महा सिबलोक । गुरुपद उत्तरकृत्य करि तुलसी भए असोक ।।
मन गुरु माधव कृष्न लहि भए ब्रह्मपदलीन । तिन्ह पदकी आराधना तुलसिहु बिधिवत कीन ।।
... ...

तुलसी बय अठबीस बतांई । मम बय दस अरु आठ गनाई ।।
द्वितियास्रम आस्रित हम भए । तुलसी तीर्थाटन पथ गए ।।
पंडित कासी कबि कैलासू । मेधा भगत उजेनीदासू ।।
साधु वृद्ध अरु जुवा अनेका । तुलसी संग लगे गहि टेका ।।
टिकत ग्राम पुर सरि बन माहीं । तीर्थन्हि हरिगुन गावत जाहीं ।।
करत रामजसगानप्रचारा । हरदुआर कीन्हे पैठारा ।।
जुरे तहाँ बहुतक सन्यासी । वैषानस बटु गृही सुपासी ।।
स्रुति पुरान इतिहास प्रसंगा । निर्गुनसिंधु सगुनगति गंगा ।।
हरदुआर थल संगम रूपा । करत निरूपन संत अनूपा ।।
उमगावन स्रद्धा बिस्वासू । पूरि उमा सिब ज्ञानबिलासू ।।
कूजति बिबिध देसकी बानी । कल्पित मतबादिन्ह अरुझानी ।।
तुलसी निज समाज सँग लीन्हे । नर नारायन दरसन कीन्हे ।।
सिव केदार पूजि बर लीन्हे । गंगोत्तरीं निमज्जन कीन्हे ।।
जमुनोत्तरीं नहाइ सुभाए । बिकट पंचतर भस्म बहाए ।।
गिरि कैलास निरषि सुष छाए । गौरिगनेस गिरीस मनाए ।।
मानस सरबर सलिल नहाए । निज मानस आनन्द पुराए ।।
संभु प्रसाद तीस फल पाए । एकतिस फलत अबधपुर आए ।।
रामजन्म निज नौमी तोषे । रामचरितमानस रस पोषे ।
रघुपतिभक्ति व्यंजना राजति । भरतभक्ति भारती विराजति ।।
मनु नृपभक्ति देवधुनिधारा । मिली सुकीर्ति सरउ कबिद्वारा
अर्थ सिंधु संगम भगवंता । सेब्य राम सेवक सुचि संता ।।
जथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा कीरति बिधि नाना ।।

स्रुति पुरान सुर भारती सुरपुर बास बिहाइ। सुरसरि जमुना सरि सहित भरतषंड रहिं आइ॥
तेहि निदरत कलि के भगत कहि कहनी उपषान। सहि न सकी नर भारती सो अघभार महान॥
बिकल गही तुलसीपदहिं मुनि गुनि जगकल्यान। रामचरित्र चितेरि तेहि किय धरि सियपद ध्यान॥
नरबानी पावनि भई तुलसीमनहिं प्रबोध। बरन अमंत्र न एकहूँ दुर्लभ साधक सोध॥
स्रुतिरससागर आदिकबि तुलसी सुधाविलास। कृष्णचंद्र जसचंद्रिका बानी राधा रास॥
रामचन्द्र संकल्प को कृष्नचन्द्र किय पूर। स्रुति गोपी गति जानहीं सुक मुनि बल्लभ सूर॥
हरिहर नटवर बस बिसद कबिता नटी बिकास। रामचरितमानस लषे धनि कवि तुलसीदास॥
दर्सन पूजन भजन करि हरिकीरति चैतन्य। तुलसी गवने अवध ते गए नैमिषारन्य॥
रामभक्ति रस पय भरी सरि गोमती नहाइ। ज्ञानषानि अघहानिकर कासीं निबसे आइ॥

तीर्थराज भरि मकर नहाँहीं। फागुन चित्रकूट चलि जाहीं॥
अवधनिवास करहिं मधुमासा। आइ करहिं पुनि कासी बासा॥
कासी माँगि मधुकरी लेहीं। पूस मूँग तिल विप्रन्हि देहीं॥
असन बसन भिच्छुक बहुतेरे। पावहिं सब तुलसी के डेरे॥
कबहुँ कि दुख सबकर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके॥
सोयराममय सब जग जानी। करहिं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

दान मान संमानप्रद सब कहँ आपु अमान। तुलसी सम तुलसी लसत तुलसी सम नहिं आन।

साधु समाज प्रयाग त्रिवेनी। दर्सन महाकाल उज्जेनी॥
हरदुवार पुनि पंचबटी बन। गोदावरी पुनीत निमज्जन॥
चारि चढ़ाव बेद फल पाए। तुलसी संत प्रसाद पुराए॥
जप तप मख ब्रत पूरत कासी। पूजन बिश्वनाथ अबिनासी॥
अन्नपूर्ना पूरति झोरी। मंगल भरति मंगला गौरी॥
दान दया दम साथ निबाहत। रामचरितमानस अवगाहत॥

गंगासागर स्नान करि जगदीसहिं अपनाइ। गंगाजल रामेश्वरहिं सबिध चढ़ाए जाइ॥
पुनि कन्यासुकुमारि पद दरसि सेतु हरषाइ। गए रुचिर द्वारावती तुलसी हरिगुन गाइ॥
हरिजसपूर्न प्रभास लखि गए सुदामाधाम। तीर्थ स्यमंतक रमि किए कुरुच्छेत्र बिश्राम॥
तहाँ महाभारत गहन पाठ पूरि डगराय। ब्रह्मा पूजन सबिध किय पुष्करछेत्रहिं आय॥

तहँ ते चलि वृन्दाबन आए। तुलसी रति जमुना उमगाए॥
छबि सिंगार घन दामिनि सोभा। निरखत वृन्दाबन मन लोभा॥
नाचत मत्त मोर चहुँ ओरा। श्री राधा हरि झुलत हिंडोरा॥
राधाकृष्णरासरस तोषे। बल्लभभक्ति भागवत पोषे॥
सादर ब्रजरस सीम चढ़ाई। चले नर्मदातट पर आई॥
गुरुपदरज बेदी करि बंदन। गए गया तीरथ बिधिमंडन॥
तहाँ देव ऋषि पितर जुटाए। ऋन भरि सब कर कासी आए॥
भोर नहाइ देवसरित्वारी। हर्षे जिमि सिसु लहि महतारी॥
बनआनन्द कास बन फूले। धवल पच्छ प्रतिपद अनुकूले॥
बसु निसि अन्नपूर्ना बंदे। पूजि उमापति अति आनंदे॥

नवमी नवदुर्गा पूजन करि। बिजयादसमी सभी सीस धरि ॥
श्रवन किए षट कांड सुहावन। बाल्मीकिरामायन पावन ॥
एकादसि व्रत द्वादसि पारन। तेरसि हरिप्रसाद करि धारन ॥
चौदसि रघुपतिराज प्रसंगा। तुलसी सुनत त्रिलोकत गंगा ॥
चिंतत भरतभारती निरनय। मन दृग देखत हनुमत अभिनय ॥
श्रीरामायन ब्यास कहँ धाल्मीकि प्रतिअच्छ। जानि मानि पूजन किए विधिवत तुलसी स्वच्छ।
पूजि कबीस कपीस पुजारी। रामराजलीला बिस्तारी ॥
छत्र सरद पूनो ससि साजे। महिसिंहासन राम बिराजे ॥
बामभाग सीता महरानी। दाहिन लषन चँवर बर पानी ॥
जगदाधार अनंत अहीसा। रामरजाय धरे महि सीसा ॥
सदा रामआयसु अनुसारी। बिस्वभरन पोषन अधिकारी ॥
भरत उदार बने जुवराजा। श्री सत्रुहन सजत सब काजा ॥
अंतःपुररच्छक जनत्राता। सूर सुसील लषन लघु भ्राता ॥
सेनप हनुमत मंगलदाता। सजि आरती उतारहिं माता ॥
कौसल्या जननी रघुबर की। जयति जयति जय जय श्रीधर की ॥
राजा राम जानकी रानी। रही भुवन भरि जय जय बानी ॥
असी घाट सुरसरी समीपक। संभु दिगंबर अंबर दीपक ॥
जासु प्रकास प्रकासित कासी। दायिनि भुक्ति मुक्ति सुखरासी ॥
तुलसीथल नभदीप प्रकासी। लहे रामदर्सन मनि रासी।
कातिक कार्तिकेय आराधे। बिंदुमाधवहिं तुलसी साधे ॥
श्री फलदल संकरहि चढ़ाए। फल समर्पि हनुमत मन भाए ॥
दीपावलि सजि तुलसी गावत। कृष्णदत्त दुंदुभी बजावत ॥

पद

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आज बनो। ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनो ॥
फटिक भीति सिखरन्हि पर राजति कंचनदीप अनी। जनु अहिनाथ मिलन आए मनिसोभित सहस फनी ॥
प्रति मंदिरकलसन्हि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी। मानहु प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिए अवनी ॥
घर घर मंगलाचार एक रस हरषित रंक गनी। तुलसिदास कल कीरति गावत जो कलिमल समनी ॥

दोहा

पुरुब दखिन पच्छिउँ उतर मनिया गनि गनवाय। संतसभाँ नाभा रहे भगतमाल गुनवाय ॥
रामचरित सौरभ उड्यो फिरि आयो चौफेरु। मलयमाल नाभा भए तुलसी भए सुमेरु ॥
कमछा के मेघा भगत करि सुरधुनि नहान। तुलसीचरन पखारि गृह भजत राम धनुबान ॥
घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाँय। तुलसी जे तब राम बिनु ते अब रामसहाय ॥
साधु असाधु सुजाति कुजाती। तुलसी रस बहुतक मति माती ॥
भोजन बसन हेतु जे आवहिं। ते तुलसीथल सादर पावहिं ॥
सुत बित नारि भगत जे जाहीं। तहँ बड़ भूपहुँ कै गम नाहीं ॥
देस देस के भूपति आवहिं। तुलसिहिं संपतिलोभ देखावहिं ॥

तुलसी बिनय करहिं तिन्ह पाहीं। राउरि कृपा जोगु हम नाहीं॥
नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने। तुलसीचरन सकल रति माने॥
मंत्र लेन विद्यापढ़नहेतु जे सुज्जन जाहिं। तिन्हइँ बतावइँ बाति असि गुरुमतिह मकहूँ नाहिं॥
मंत्र न जंत्र न तंत्रबल विद्या रामअधार। तुलसी चेरो जगतगुरु संकर के दरबार॥
सीयराममय जानि जग सब कहँ करहिं प्रनाम। तुलसी मनमंदिर लसत लछिमन सीताराम॥

... ...

तोडर रोपि रामअमराई। अकसर भजन करहिं तहँ जाई॥
बटमरुवे धरि वेष गोसाई। सधि सुधि ते लाठी भरि लाई॥
तोडर बूढ़ गरजि बिरुझाई। नरकेहरी बीरगति पाई॥
गरजनि अकनि सु नाहरु धाए। मुदाँ अकेल सिंह मृत पाए॥
भइ बहुमुखी बाति छन मांही। जहँ नहँ नगर लोग बिलखाहीं॥
सुधरम न्यायभारनिरबाहक। उठि गा आजु दीनजनगांहक॥
मीत निधन सुनि तुलसी सोचत। बोलि न सकत नयन जल मोचत॥
तनु अडोल मन सोकहिं डोले। हाहा कहि पुनि दोहा बोले॥
तुलसी राम सनेह को सिर पर भारी भारु। तोडर काँधा ना दिएउ सब कहि रहे उतारु॥
राउत चारिक गाउँ को मन को महामहीप। तुलसी एहि कलि तभी महँ अथए तोडर दीप॥
तुलसीउर थाला बिमल तोडर गुनगन बाग। इन्ह नयनन्हि जल सीचिहौं समुझि-समुझि अनुराग॥
रामधाम तोडर गए मोचन तुलसी सोच। जियबो मीत पुनीत बिनु यह जिय करत संकोच॥
तोडर साथेहिं गइ रउताई। मम पितुसंग प्रबंधभलाई॥
सोरह सौ अठसठि गति बीती। आगिलि दसा चली बिपरीती॥
तुलसी बाहुँ चढ़ी तनु पीरा। ताहि निवारे हनुमत बीरा॥
माघ असाढ़ पोर भई जोई। साँवन माझ निबरि गइ सोई॥
लागु कुवारु पितर जलदाता। बिलसत पारिजात जलजाता॥
लोगु श्राद्ध पकवान जुटावहिं। सो गो स्वान काकहूँ पावहिं॥
नाम अनंदराम तोडरसुत। कन्हई रामभद्रसुर संजुत॥
गोत नात हित मीत बोलाए। सकिलि सकल तुलसीथल आए॥
कीन्ह प्रनाम धरनिं धरि माथा। सिव कहि तुलसी जोरेनि हाथा॥
सबहिं कुसासन पर बैठाए। कुसल प्रस्न कीन्हे मनभाए॥
अहो पंच परमेस्वर देवा। आयसु होइ करउँ सो सेवा॥
टेकि अनंदराम महि माथा। पुनि उठि बोलेनि जोरेइ हाथा॥
मम ग्रह कलह खबरि सुनि पाए। पंच गाँव बिलगावन आए॥
सुनि तुलसीपथ सत्य सुझाए। बहुरि नगरकाजीहिं बोलाए॥
जो नय निर्नय नायक नामी। दानी कबि रहीम अनुगामी॥
तेहि निजु धर्मतत्व समुझाए। तुरत कोर कागद संवराए॥
आपु लिखे काजिहुँते लिखाए। पंचनि ते साखी अँकराए॥
तुलसी धर्म सत्य रुचि राखी। सीस सिखा की दे सित साखी॥

तौ लगि सब परमारथी जौ लगि स्वारथ दाउँ। पासा परे चिन्हात है को दाहिन को बाउँ ॥
होनी अनहोनी उभय उलट पलट करि देत। समरथ प्रभु सेवक सुखद हरिहर कृपानिकेत ॥
पाछिल पग आगे परै अगहुड़ साछिल होय। एहि जग आवन गवन मग सरित सिंधु सरि कोय ॥

गई रुद्र बीसी विधि ओरी। भइ सनि मीन बसंतक होरी ॥
उझकि महामारी झुमि नाँची। जेहि लखि भइ प्रौढ़ा मति काँची ॥
बैद जोतिषिउ भेद न जाने। का करतब्य मूढ़ बिचलाने ॥
मइया बप्पा पूत पतोहू। एकहिं एक सम्हारि न वोहू ॥
नहिं घर चोर बजारि न साहू। परि बस्तु किछु हानि न लाहू ॥
मंदिर घंट मजीत अजाना। निज पर सब्दभेद बहिराना ॥
सकल कबित रस गए पराई। भय सुनाइ बीभत्स देखाई ॥
घोर सोर खर स्वान सिआरू। काक उलूक लूक जम धारू ॥
नचत कपाली भैरव काली। घाट कुचालि न बाट सुचाली ॥
नायक ऊन नायिका ऊनी। दूती दूत बाटिका सूनी ॥
आन्हर लूल अपाहिज जेते। तुलसी के नेवतहरी भे ते ॥
असन बसन ओषध उपचारू। पावहिं सब समता व्यवहारू ॥
सीता रामचंद्र जय गाजत। बिजयडंक तुलसीथल बाजत ॥
महामसान जोगिनी जागी। तबहिं महामारी डरि भागी ॥
उबरे किछु बहुरे जे भागे। सून्यक चित्रगुप्तकर लागे ॥
चतुरानन नव अंक जुटाए। बाकी पूँजी हरि प्रिय: पाए ॥

नाम राम को अंक निधि बाकी साधन सून। अंकरहित सब सून है अंकसहित दस गून ॥
जो चेतन कहँ जड़ करै जड़हिं करै चेतन्य। प्रभु सोऽहं तहँ भाव अस सेवक सेव्य अनन्य ॥
कीटभृंगवत् न्याय गुनी कृष्नहिं गनिय न दोय। तद्गुन भूषित सब्द जिमि अर्थ अतद्गुन होय ॥
पाहुन भूत भविष्य को वर्तमान छनमान। कालचक्रधर को नहिन आदि मध्य अवसान ॥
सर्वभूत रबि ससि भ्रमत माया यंत्रारूढ़। राम महामायापतिहिं जो न भजै सो मूढ़ ॥
जस अपजस सरि बीजगंत तुलसी कीन्ह बिचार। छनगत रूप अनित्य पर नित्य नाम अधिकार ॥
लव मिमेष परमानु जुग वर्ष कल्प सर चंड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड ॥

राम श्याम सावन घन छाए। सीता दुति दामिनि दमकाए ॥
हरित भूमि गंगा उमगाई। हर हर करत सिंधु रुख धाई ॥
परहित निरत बचन मन काया। दूरि भगावत कलिजुग माया ॥
तब बल पुंज सुकृत सेनानी। अनघ अमोघ दच्छ बिज्ञानी ॥
गर्जत धर्म धुरंधर बाँका। हाथ गहे हनुमंत पताका ॥
हरिहरजस साका बिस्तारत। अमित भयो चिंतामनि भारत ॥
श्रम हरनी दूती तेहि काला। लीन्हे पानि सुजस जयमाला ॥
तुलसी निकट बुढ़ाई आई। रामधाम कै खबरि जनाई ॥
जग अनित्य महँ नित्य बिलासा। कीजिय बिस्ववासपुर वासा ॥
तनुबल ऊन दून मानसबल। हरिहिं समरपे सकल सुकृतफल ॥

अहंकार मन मति चित अंसी। जीवनमुक्त भक्ति अवतंसी॥
अकल सकल गुन दोष बिहाई। अचल सनेहसमाधि लगाई॥

सोरह अनु गुन असी बय तुलसी सहित हुलास। राम राम कहि बिदाह्वै असी गंग किय बास॥
रामकृपा हुलसीजनित तुलसी बिरवा सोइ। लै हलरावति सुरधुनी जलअंचल महँ गोइ॥
जब लगि लहरति देवसरि जब लगि महि अहिसीस। तुलसी बाग बिसेबिहहिं उमा रमा बागीस॥
तुलसी दल अरु गंगजल ते त्रय ताप नसाउ। सबिता वृंदा कृष्न कबि तुलसीकबिता गाउ॥

रामगीतअवली सुरसरिता। पदअवली बानी धुनिभरिता॥
कृष्नगीतअवली जमुनोई। श्रुति गुनकांड त्रिबेनी सोई॥
चिन्मय गगन राम घन छाए। सिय छबि दामिनि दुति दमकाए॥
रामचरितमानस रस बरसै। भवदुख दव झरसै सुख सरसै॥
तुलसी मति सीपीकी मोती। कृत बरवै सृंगार मनि मोती॥
दोहावली सुगुन गन माला। कबितावलि कबिकुल गुरुसाला॥
सदन सोहिलो मंगल जाके। सिसुबर दुलहिनि संपति ताके॥
यह अष्टांग जोग तुलसीको। साधै सो लहु श्रुतिफल नीको॥

जहँ श्रद्धाबिस्वास वहँ उमासंभु सिद्धांत। रामचरितमानस कमल विलसत कमलाकांत॥
सुद्ध सच्चिदानदघन राम जानकी रूप। लोकवत्तु लीला करत नामी नाम अनूप॥
सो तैं है श्रुति सब्दमें हेतुबाद भ्रम त्यागु। रमे राम सब जगतमें तत्सद्गुरु पद लागु॥
है अतर्क्य खलु भाव जो तहँ न तर्कसंधानु। मन बुधि पर बानी सुधर राम नाम जिय जानु॥
सदानंदकानन चरन चिंतामनि उर धारु। सब्द ब्रह्ममय नित्य सो गुरुपद अर्थ बिचारु॥
नाते सीतारामके तैं सबकर सब तोर। बिस्वरूप हरिनाम मनि सम अँजोर सब ओर॥
कर्म उपासन ज्ञानमय तीनि कांड श्रुतिनीति। काज अकाज बिचारि करु सास्त्रप्रमान सुरीति॥
सास्त्रबिधान बिहाइ जो करत काज मनमान। सो न सिद्धि सुख सांति लह कह इतिहास पुरान॥
अनुकूलहि प्रिय कहत हैं प्रिय नहिं तेहि प्रतिकूल। नाम सबहिं प्रिय लोक तिहुँ रामनाम सुखमूल॥
रामचरितमानस भरे तुलसी नाम सुबारि। बिधि निषेध पर सुलभसर सुचि करु मनहिं पखारि॥
लोक वेद संमत सदा पुन्यपुंज सुभ नाम। गौरी संकर कृष्न जय तुलसी सीताराम॥

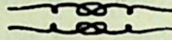
पुन्यसिलोक लोक सुचि कीन्हें। कछु इसिबृत्ति हमहु लिखि दीन्हें॥
चलहिं धरम पथ पढ़ि सुनि गुनिहीं। उरिन देव रिषि पित रिन करिहीं॥
पितु भगवान पार्वती माता। गौतम कासिबार बिष्याता॥
गंगातीर गढ़ौली गाऊँ। साभग कृष्नदत्त मम नाऊँ॥
नीति पुनीत नाम श्रीधर सो। मुखिया ग्राम बरैनी बर सो॥
उदासीन अरि मीत मिलाबै। नीरक्षीर न्यावहिं बिलगावै॥
निज पर ताग निसारि तहाँ ते। जोरै सबहि रामके नाते॥
तोडर घर ते पुस्तक पाई। रामचरितमानस अपनाई॥
पूजन पाठ करै नित नेमा। श्रीपतिभक्ति जोग सोइ क्षेमा॥
तुलसी कीर्ति लता लखि फूली। मतिअलिनी बियोगदुख भूली॥

संबत सोरह सो एकासी। तुलसी बरषी असी प्रकासी ॥
सावन कृष्न तीजि तीथि पाई। यहु गौतमचंद्रिका पुराई ॥

कृष्न जगदरति जोर पूरि कबित सरि आवनी। पसरावति चहुँ ओर मंगलायतन रामजस ॥
पूर्न सिंधु महँ जाय मिलति पूर्नसरिता उमगि। तथा कबितगति भाइ पूर्न राम पूरन जगत ॥
इत उत पूर्न अभेद जलधि जलद जल नद नदी। नेति नेति कह बेद भजिय महामायापतिहि ॥
एहि भवनिसि मन दृगहिं नहिं अपनउं रूप लखाइ। तहँ पर ज्ञान कराव श्रुति सब्दरु अर्थ जनाइ ॥
भानु रूप दुरि जात जब जलद पटल घहरात। तमी मगन जग छनप्रभा अनहत नाद सुनात ॥
नयन नींद झंपित पलक सुनि पुकार खुलि जात। जग दृग मूंदत प्रलय पट सब्द धमक उघरात ॥
रूप ज्योतिमय जग तदपि दीपकतरे अँधार। नाम चारुमनि जगमगत उपरि तरहुँ उँजियार ॥
नित्य सब्दमय रामको नाम अनादि अनन्त। सारद नारद सेष बिधि बेद पुरान अनंत ॥

कासी भुक्ति मुक्ति सुखदाई। अबिरल भक्ति पिरल जन पाई ॥
भक्तिहिं सानुकूल सब देवा। तन मन बचन प्रेम दृढ़ सेवा ॥

भृंगिहुँ जेहि कीटहिं गहै तेहि भृंगी करि देत। भृंगीस्वर जय कृष्न प्रभु कृष्न करहु वा स्वेत ॥



६

रत्नावली चरित

कवि मुरलीधर चतुर्वेदी कृत

॥ वन्दे गणपतिमीशम् ॥

सकल देव पूजित महि हारं मनुज तनुं करि वदनम् ।
मङ्गल मूलं गिरिजा तनुजं महोदरं सुख सदनम् ॥ वन्दे० ॥
विविध भूत गण सेवित पाद चाष्ट सिद्धि दातारम् ।
ऋद्धि बुद्धि नव निधि प्रदायकं बिपुल गुणगणागारम् ॥ वन्दे० ॥
त्रिनयनमेकदन्तमति दिव्यं विकटं विघ्न विनाशम् ।
परशु कमल धर माखुवाहनं सिन्दूराभ विकाशम् ॥ वन्दे० ॥
ओङ्काराक्षर रूपमुत्तमं भक्त भद्र कर्त्तारम् ।
सरकपित्थ जम्बूफल मोदक भक्षण मेक मुदारम् ॥ बन्दे० ॥
मौलि मिलित वद्धाञ्जलि नाऽहम् गायम्संस्तव पद्यम् ।
अधिपाचे मुरलीधर विप्रो मति वैभव मन वद्यम् ॥ वन्दे० ॥

॥ श्रीगणपतये नमः ॥ सरस्वत्यै नमः ॥

हरि हर गुरु भक्तः कर्म धर्मानुरक्त स्त्रिभुवन गत कीर्तिः कान्ति कन्दर्प मूर्तिः ।
रघुवर गुण गाथा गान-शीलो महात्मा सजयति सुकुलात्मा राम सूनुः कवीन्द्रः ॥ १ ॥
रत्नावली वदन चन्द्र चकोर रूपः श्रीरामचन्द्र पद पंकज चञ्चरीकः ।
श्री शुक्ल वंश तिलकस्तुलसी द्विजेन्द्रो वन्द्यो वुधो जयति शोकर तीर्थ तीर्थः ॥ २ ॥

॥ अथ रत्नावली चरित लिष्यते ॥

वन्दों विकट वराह ईस वन्दों सनकादिक मुनीस । सती सारदहि सीस नाइ सावित्री सिय गुनन गाइ ॥
अरुन्धती दमयन्ति नारि । अनुसूया पुनि गन्धारि ॥
सती भईं जे जगत धाम । तिनहिं सवनु कहँ करि प्रनाम ॥
रत्नावलि की लिषहुँ गाथ । तिहि चरनन महँ नाइ माथ ॥
जासु चरित है अति गंभीर । तदपि लिषहुँ कछु धारि धीर ॥
विदित वेद अघ हरन हारि । पतितनु पावन करन हारि ॥

सुर सरिता के दछिन कूल। धन्य धरनि मांगल्य मूल ॥
निज सुभाव वस जगत नाह। हरि प्रगट्यो जहँ वपु वराह ॥ ६ ॥
तासो जे वाराह षेतु। भई भूमि भबतरन सेतु ॥
तीरथ सूकर षेत नाम। भयो विदित जन मुकति धाम ॥
वहु तीरथ जहँ रहे राजि। सेवत अघगन जात भाजि ॥
पाई मुनि जन जहाँ शान्ति। मेंटी निज भव भीति भ्रान्ति ॥
आदि तीर्थ जे जगत माहिं। सव तीर्थनु फल है जहाहिं ॥
सुरसरि पुनि वाराह षेत। मधुर ऊष पुनि फलहु देत ॥
जहँ बराह प्रभु सदन एक। सोहत सुर सदनहु अनेक ॥
जवननु डारे बहुत तोरि। पुनि कछु पुनि भगतन लये जोरि ॥
जहँ सुरसरि की वहति धारि। जनु वराह पद रहि पषार ॥
विपुल विप्र जहँ करत वास। रहे बेद धरमहिं प्रकास ॥ १९ ॥

बाँचत नित चित सों पुरान। प्रभु की कीरति करत गान ॥
जहँ जोगी जन मठ समाधि। वनी दरस सों हरति व्याधि ॥
सोरंकी नृप सोम दत्त। भयो जहाँ श्रुति धरम मत्त ॥
तासु दुर्ग अवसेस नाहिं। कछुक चिन्ह ताके लषाहिं ॥
सोरंकी नृप के सुनाम। भयो क्षेत्र सोरंक गाम ॥
ताके पच्छिम दिशि कछार। वहति पुरातन गंगधार ॥
तासु प्रतीची तीर धाम। कबहुँ रह्यो नयनाभिराम ॥
नाम बदरिका वन प्रसिद्ध। होत मृगादि न जहाँ विद्ध ॥
विविध गुल्म तरु लता जाल। वर पाकर पीपर रसाल ॥
कदम निंव जंबू षजूरि। सिंसप वदरित रह्यो पूरि ॥
कूजत तहँ बहु विध विहंग। सुषि स्वतन्त्र विरहत चुरंग ॥
रह्यो शान्ति को थल विसाल। वदरी वन भुइँ अन्तराल ॥ ३१ ॥

जहाँ राजतीं मुनि कुटीर। वही ज्ञान की जहँ समीर ॥
जहाँ वसे ऋषि मुनि विरक्त। सिद्ध साधु जोगी सुभक्त ॥
सोइ काल बस मुनिन धाम। वन्यो गृहस्थुन वास गाम ॥
जाहि बदरिका गाम धाइ। विविध जाति जन बसे आइ ॥
वसतु तहाँ वर विप्र एकु। धारतु निगमागम विवेकु ॥
दीनवन्धु पाठक सुनाम। ईश भक्त बहु गुनन ग्राम ॥
उपाध्याय की धरत वृत्ति। निरत कर्म षट सुकृत कृत्ति ॥
तासु दयावति नाम वाम। पतिवरता गुन शील धाम।
दोउन प्रगटे पुत्र तीन। शिव शंकर शंभू प्रवीन ॥
तनया रत्नावलि कनीन। पति पितु कुल जिन पूत कीन ॥४१॥
जासु रूप अति मनो हारि। जनु विरंचि विरची सम्हारि ॥
जनक जननिकी अति दुलारि। परिजन पुरजन सवै प्यारि ॥

बोलति सबसों मधुर बैन। जेहि लषिपावत दुषित चैन ॥
जासु हसनि चितवनि अनूप। शान्ति शील सुष नेह रूप ॥
निर्मोही लषि मोहि जात। फिर नेहिनकी कौन बात ॥
गूढ़ ज्ञानकी कहति बात। बड़ी बात लघु मुष लषात ॥
बालक पन सों गेह काज। सीषि गई सब पाक साज ॥
निज भ्रातनु सो पढ़त देषि। आपहु आंषर पढत लेषि ॥
पखर बुद्धि तिहि जनक जानि। पाटी बुदिका दयो लानि ॥
कछुक दिननु महं भई जोग। कहहिं सरसुती ताहि लोग ॥
पुनि व्याकरनहुँ पितु पढ़ाइ। दीनो कोशहु तेहि घुकाइ ॥
बालमीकि पुनि पढ़न लागि। गई भरती तासु जागि ॥
पिंगलके कछु अंग जानि। काव्य करनकी परी बानि ॥५४॥
शिव गौरीको धरति ध्यान। पूजति बहु बिधि सहित मान ॥
पितु तनया लषि ब्याह जोग। सोचहिं किन घर जासु भोग ॥
ढूंढि फिरे सों बहुरि गाम। भई न पूरी मनोकाम ॥
भये दूषित अति चित्त माहिं। सुता जोग वर मिलत नाहिं ॥
तबहि मीत इक दई आस। गुरु नृसिहके जाउ पास ॥
स्मारत वैष्णव सो पुनीत। सकल वेद आगम अधीत ॥
चक्र तीर्थ ढिंग पाठशाल। तहीं पढावत विपुल बाल ॥
तहां रामपुरके सनाढ्य। सुकुल वंशधर द्वै गुनाढ्य ॥
तुलसिदास अरु नन्ददास। पढत करत विद्या विलास ॥
एक पिता महं पौत्र दोउ। चंद्रहास लघु अपर सोउ ॥
तुलसी आत्माराम पूत। उदर हुलासोके प्रसूत ॥
गये दोउ ते अमर लोक। दादी पोतहि करि सशोक ॥६६॥
बसत जोग मारग समीप। विप्रवंश कर दिव्य दीप ॥६७॥
कहत रह्यो सो राम राम। रामोला हू तासु नाम ॥
गौर वरन विद्या निधान। विधि शास्त्र पंडित महान ॥
काव्य कला महं सो प्रवीन। सकल दुर्गुनन सों विहीन ॥
सब बिधि रत्नावलि जोग। अति सुशील तनु रहित रोग ॥
सुनि एती प्रिय मीत बात। गे नृसिह गुरु ढिग सिहात ॥
पाठक तिन कहं करि प्रनाम। देष्यो तुलसी मुष ललाम ॥
गुरु मुष परिचय तासु पाय। गोत गाम कुल विधि मिलाय ॥
करि दीनो पुनि वाग दान। मुदित भये मन महं महान ॥
पीत पत्रिका लगन रीति। करी सबहि जस वंश नीति ॥७६॥
शुभ दिन पुनि आई बरात। दोऊ पच्छ न फूले समात ॥
कीन जथाविधि विधि विवाह। दीनबन्धु भरि उर उछाह ॥७७॥
तुलसी करमें सह विधान। रत्नावलिको दयो दान ॥
रत्नावलि गइ तुलसि गेह। तासु वढ्यो सति पदनु नेह ॥

रत्नावलि सी नारि पाइ। तुलसी घर सुष गयो छाइ ।।
पितामह बहु दुष उठाइ। पोषे तुलसी उर लगाइ ।।
दंपति सेवा सों सिहाइ। सुरग गई कछु दिन बिताइ ।।
नन्ददास अरु चन्द हास। रहहि रामपुर मातु पास ।।
दंपति वसि वाराह धाम। लहत मोद आठोहु याम ।।
कवहु करत विद्या विनोद। लहत शब्द चातुरि प्रमोद ।।
संध्यावंदन आदि कर्म। धरत सकल नित गृह धर्म ।।
रषत राम मूरति स्वगेह। उभय संधि पूजत सनेह ।।८८।।
बात बात श्रीराम राम। तुलसी मुख लागहि ललाम ।।८९।।
भक्तनु घर वांचहिं पुरान। तुलसी लहहिं धन और मान ।।
रत्नावलि' तेहि चष चकोरि। मधुर बचन बोलति निहोरि ।।
कबहु न अप्रिय कहति बात। कबहु न सो पति सों रिसात ।।
मीजति नित पति पांय पीठि। नितहि न्हवावति प्रेम दीठि ।।
पति बियोग नहिं छिन सुहात। जात कहूँ मुख उतरि जात ।।
करति सोइ जो पतिहि चाह। पति सेवन मन अति उछाह ।।
कबहु जातु जो पति खिझाइ। पायंनु परि लेवइ मनाइ ।।
जौलौं पति भोजन न पाइ। तौलौं आपुहु कछु न खाइ ।।
जो मन सोई बचन कर्म। पतिहि लुकावत कछु न मर्म ।।
तारापति नामक सुपूत। भयो तासु बुधि बल अकूत ।।९९।।
गयो दैव गति स्वर्ग धाम। विलपति रत्नावली वाम ।।१००।।
भयो पुत्रको अधिक सोक। धरी धीर पति मुष बिलोक ।।
तुलसी हू बहु करत प्यार। रत्नावलि भइ हृदय हार ।।
ताहि न चाहत आंषि ओट। ओट होति हिय लगति चोट ।।
सिथिल परी प्रभु भजन रीति। बाढ़ी तिय मंह अधिक प्रीति ।।
ब्याह भयें दस पच वर्ष। इक दुख तजि बीते सहर्ष ।।
राषी बांधन एक बार। भ्राता संग हिय हरष धार ।।
पति आयसु गहि सीस नाइ। गई माइके सदन धाय ।।
इत तुलसी करिवे नवाह। गये सुमिरि उर अवध नाह ।।
तुलसी ग्यारह दिन बिताइ। आये तिनहि न घर सुहाइ ।।
रत्नावलि मन लषन चाह। चले ससुर घर भरि उमाह ।।
होनहार बलवान होत। जस भवितव तस ज्ञान होत ।।
नारि प्रेम मद गये भोइ। चले समयको ज्ञान षोइ ।।
बीति गई तब अरध राति। नभ घन चपला चमकि जाति ।।
बहति जोर सुरधुनि धार। ताहि पैरि करि गये पार ।।
दीनबन्धुकी पौरि जाय। टेरि दये घरके जगाय ।।
द्वारहि आये ततहि काल। तुलसिहि लषि भे चकित श्याल ।।

करि प्रनाम कहि कुशल तात। हां कहि तुलसी मन लजात ॥
करि आदर समयानुसार। पौंढाये करि बहु दुलारि ॥
रत्नावलि एकान्त पाइ। पति दर्शन हित गई धाइ ॥
पति पद परसे करि प्रणाम। चरण दबावन लागि थाम ॥
बूझी किमि आए अबेरि। गरजत घन गाढ़ो अंधेरि ॥
कैसे उतरे गंगाधार। मेरे जिय अचरज अपार ॥
इमि सुनि बोले तुलसिदास। तुमहिं मिलन अति उर उलास ॥
तुम बिन परत न मोहि चैन। भई शान्ति तब लषत नैन ॥१२४॥
तब सुप्रेम महं गंग धार। सुभुषि सहज ही भयो पार ॥१२५॥
कहि रत्नावली प्राननाथ। धन्य आपको मिल्यो साथ ॥
मेरे हित बहु दुष उठाइ। दरस दयो तुम नाथ आइ ॥
मो समको बड़ भागि नारि। मोसमको तिय पतिहि प्यारि ॥
सीम प्रेम तुम करी पार। नाथ प्रेमके तुम अधार ॥
मम सुप्रेम निज हिये धार। उतरे प्रिय सुर सरित पार ॥
जग अधार पद प्रेम धार। जातु मनुज भव उदधि पार ॥
प्रेम हीन जीवन असार। नाथ प्रेम महिमा अपार ॥
सुनि रत्नावलि भव्य वानि। भव विषयनु सों भई ग्लानि ॥
भये चित्र सम तुलसिदास। कछु जनु सोचत भे उदास ॥
रत्नावलि पति नींद जानि। गई परसि पद जोरि पानि ॥
दैव मिलनको करयो अन्त। कहूँ नारि अब कहूँ कन्त ॥१३६॥
जहां योग तह है वियोग। धरत भोग सो लहत सोग ॥१३७॥
काल कर्म गति है विचित्र। बनत शत्रु जो रहे मित्र ॥
आजु करत नर कछु विचार। कालि होत कछु होनहार ॥
राम लैन कहं यौबराज। बन गे तजि सो राज साज ॥
जो तुलसिहि प्रानन पियारि। सो रत्नावलि दइ विसारि ॥
गृह जन सोवत करि प्रमान। अचक कियो तुलसी प्रयान ॥
रैनि गई उदयो प्रभात। तुलसी काहु न कहुँ लषात ॥
बूझि फिरे सब ग्राम माहिं। सबनु कही हम लषे नाहिं ॥
जहं जहं तुलसी मिलन आस। मिले न तहुँ सब भे उदास ॥
पति बिनु रत्नावली दीन। विलपति जल बिनु जथामीन ॥
बहु दिन त्यागो षान पान। दरुन करयो धरि नाथ ध्यान ॥
बीते बहु दिन पाष मास। भई न तुलसी मिलन आस ॥
तजि दीने सब ही सिंगार। करति एक बारहि अहार ॥१४९॥
उत्तम भोजन वसन त्यागि। सुलगति प्रिय पति विरह आग ॥
तुलसि पादुका उर लगाइ। सोवति तृन आसन बिछाय ॥१५०॥
कबहु रामपुर बसति जाइ। कबहु बदरिका रहित आइ ॥
तिन चांद्रायन बरत धार। पूरन कीने विपुल बार ॥

धारे औरहु व्रत अपार। सती धरम निवह्यो सम्हार ।।
मन बच करमन रही पूत। करयो भजन प्रभु तिन अकूत ।।
जासु पतिव्रत दृढ़ निहारि। भई अनेकन सतीं नारि ।।
देती नारिन सीष नीक। रही दिषावति धरम लीक ।।
पति वियोग महं साधि जोग। त्यागि दये सब जगत भोग ।।
चरन सदन रज जासु कोइ। धरत देह रुज रहित होइ ।।
भू शर रस भू वरस पूरि। स्वर्ग गई लहि सुजस भूरि ।।
धनि रत्नावलि मात धन्य। जेहि सम अब कहं जगत अन्य ।।
नवकर वसु भू विक्रमीय। शूकर तीरथ वंदनीय ।।
साध्वी रत्नावलि कहानि। वृद्धन मुष जस पर जानि
द्विज मुरलीधर चतुरवेद। लिषि प्रगटी जगहित सभेद ।। १६३ ।।

इति श्री रत्नावली चरितं सम्पूर्णम् शुभम्। संवत १८२९ श्रावण शुक्ला १ प्रतिपदायाम् शुक्र बासरे लिषितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सींरों क्षेत्रे। शुभंभवतु ।।

छप्पै

एक पितामह सदन दोउ जनमें बुधि रासी। दोऊ एकहि गुरु नृसिंह बुध अन्ते वासी।
तुलसिदास नददास मते द्वै मुरली धारे। एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ।।
एक वसे सो रामपुर एक श्यामपुर महं रहे। एक राम गाथा लिषी एक भागवत पद कहे ।।१।।
एक पिताके पूत दाउ बलराम मुरारी। मुरलि चक्र इक धरयो एक हल मूशल धारी ।।
नीलांवर तनु एक एक पीतांवर धारी। दोउन चरित उदार रह्यो मत न्यारी न्यारी ।।
इमि कर्तव रुचि मत प्रकृति जन जन कौन समान जग।
जनमि एक हू गृह गहैं निज स्वभाव अनुरूप मग ।। २ ।।]
जय जय आदि वराह क्षेत्र तप भूमि सुहावनि।
वहति जहाँ सुर सरित दरिद दुरितादि वहावनि।
लसत विविध सुर सदन भक्त जन जीय जुरावन।
सकल अमंगल हरन करन मंगल मुनि भावन।
विप्र वृन्द जोगी जती वरनत वेद पुरान जहं।
मुरलीधर अस पाइयत दूजो जग महं धाम कहं ।।३।।१।।
उभय संधि महं देव आरती भक्त उतारत।
घंटा दुन्दुभि शंष झांज धुनि मोद पसारत।
भक्त भक्ति मद मत्त तहां प्रभु को जस गावत।
मृदंग मंजु मंजीर तार झनकार सुहावत।
जय गंगा वाराह की पावन धुनि कान परत।
भीर हरिपदी तीर द्विज मुरलीधर संध्या करत ।।४।।२।।
विपुल सिद्ध मुनि वृद्ध सन्त जन वृन्द वसत जहं।
श्री हरि पदनु प्रसूत हरिपदी लाल लसत जहं।

तासु कूल सोपान सेनि नयनाभिराम जहं ।
भक्ति ज्ञान वैराग पुंज वाराह धाम तहँ ।
वहु पुन्यन सों पाइयत दरस क्षेत्र वाराह महि ।
केतिक पुन्यनु फल लह्यो द्विज मुरली जधं जनम गहि ॥ ५ ॥

सुष दुष बीते असी लगे मुरली इक्यासी । वसत सोकरव आस कटैं बंधन चौरासी ।
दीठि भई अव मंद ढुरत सिर कंपत कछुक कर । तदपि न मानत लिषन कहत मन कविता सुन्दर ॥६॥

सो अव कस वामक वनहि मन वहलावन करि रहे ।
जिमि जन विन दसनन चनक पीसि पीसि मुष भरि रहे ॥६॥

॥ कृष्णदास कृत वंशावली ॥

षेत वराह समीप शुचि गाम रामपुर एक । तहं पंडित मडित वसत सुकुल वंश सविवेक ॥१॥
पण्डित नारायण सुकुल तासु पुरुष परधान । धारचो सत्य सनाढ्यपद ह्वै तप वेद निधान ॥२॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रोण समान । ब्रह्म रन्ध्र निज भेदि जिन पायो पद निर्वान ॥३॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि । पंडित श्रीधर शेषधर सनक सनातन चारि ॥४॥
भये सनातन देव सुत पण्डित परमानन्द । व्यास सरिस वक्ता तनय जासु सच्चिदानन्द ॥५॥
तेहि सुत आतमाराम दुष निगमागम परवीन । लघु सुत जीवाराम भे पंडित धरम धुरीन ॥६॥
पुत्र आत्माराम के पण्डित तुलसीदास । तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चंदहास ॥७॥
मथि मथि वेद पुरान सव काव्य शास्त्र इतिहास । रामचरित मानस रच्यो पण्डित तुलसीदास ॥८॥
वल्लभ कुल वल्लभ भये तासु अनुज नंददास । धरि वल्लभ आचार जिन रच्यो भागवत रास ॥९॥
नन्ददास सुत हों भयो कृष्णदास मतिमन्द । चंदहास वुध सुत अहै चिरजीवी व्रजचन्द्र ॥१०॥

॥ इति कृष्णदास वंशावली ॥

७

गोसाईं तुलसीदास : जीवन चरित

डा० किशोरीलाल गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
(प्राचार्य हिन्दू डिग्री कालेज, जमानियाँ, गाजीपुर)

गोसाइँ तुलसीदासका जीवन चरित्र बहुत उलझा हुआ है। इसके सुलझानेमें निम्नांकित समस्याओंका समाधान आवश्यक है—

जन्म-काल निर्णय, जन्म स्थान-निर्णय, कुल-निर्णय, परिवार-निर्णय, गुरु-निर्णय, तुलसी-नंददासका भ्रातृत्व-निर्णय, वंदी-निर्णय, रामचरित मानसका रचनाकालावधि-निर्णय। इसमें सबमें सबसे विकट प्रश्न जन्म-स्थान-निर्णयका है। इस निबन्धमें इन सभी समस्याओंपर विचार करनेका प्रयत्न किया गया है। चमत्कारोंपर विश्वास किया जाय या नहीं, इसपर भी थोड़ा विचार करना पड़ा है। भिन्न-भिन्न मान्यताएँ कहाँसे प्रारम्भ होती हैं, इस ओर बराबर दृष्टि रक्खी गई है। समस्यामूलक बातोंपर कुछ विस्तारसे तथा निर्णीत एवं स्पष्ट बातोंपर संक्षेपमें ही कहा गया है। यह निबन्ध गोसाइँजीके जीवन चरित तक ही सीमित है। इस विषयमें जितना भी साहित्य उपलब्ध है, उसीके आधारपर इसमें विचार किया गया है।

१ जन्म-संवत्

(क) सं० १५५४ : गोस्वामी तुलसीदासकी शिष्य-परम्पराकी चौथी पीढ़ीके काशी-वासी पं० शिवलाल पाठकने १८७५ वि० में रामचरित मानसकी 'मानस मयंक' नामक टीका लिखी थी, जिसमें उन्होंने तुलसीदासका जन्म-संवत् सूचक यह दोहा दिया है—

४ ५ ५ १
मन ऊपर सर जानिए, सर पर दीन्हें एक, तुलसी प्रगटे रामवत, राम-जन्म की टेक ॥

१९०० ई० (१९५७ वि०) के आस-पास बेनीमाधव दासके नामपर विरचित 'मूल गोसाईं-चरित्र' में भी यही संवत् स्वीकृत है—

जब कर्कमें जीव हिमाशु चरे। कुज सप्तम अष्टम भानु-तनै ॥
अभिजित सुठि सुन्दर सांझ समै···

पन्द्रह सै चौवन विषै, कालिन्दीके तीर। स्रावन शुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर।

यह संवत न तो भवानीदासके प्राप्त 'गोसाइँ चरित' में है, न बाबा रघुबरदासके 'तुलसी चरित' में ही।

(ख) सं० १५८३ शिवसिंह सेंगरने अपने 'शिवसिंह सरोज' में गोसाइँ तुलसीदासजीका जन्मकाल १५८३ के करीब माना है—

१ श्री गोस्वामी तुलसीदासजी १६०१

ये महाराज सरजूपारी ब्राह्मण राजापुर जिले परागके रहनेवाले प्रायः संवत् १५८३ के करीब उत्पन्न हुए थे और संवत् १६८० में स्वर्गवास हुआ।" 'करीब' से स्पष्ट है कि शिवसिंहने संवत् १५८३ को गोसाइँजीका जन्म-संवत् अनुमान किया है (यह संवत् मान्य नहीं हुआ)।

(ग) सं० १५८९ साहिब वंशके प्रवर्तक तुलसी साहब (सं० १८१७-९९ वि०) की एक प्रसिद्ध कृति 'घट रामायन' है। इसमें इन्होंने अपनेको गोसाइँ तुलसीदासका अवतार कहा है और अपने पूर्व जन्मका विचित्र विवरण भी दिया है। डा० बड़थ्वाल इस सारे पूर्व जन्म प्रकरणको क्षेपक मानते हैं। जो हो, इस प्रकरणमें गोसाइँ तुलसीदासजीका जन्म संवत् १५८९ दिया गया है—

राजापुर जमुनाके तीरा। जहँ तुलसीको भया सरीरा।
विधि बुंदेलखंड वोहि देसा। चित्तरकोट बीच दस कोसा।
संवत पन्द्रा सै नावासी। भादों सुदि मंगल एकादसी।
भया जनम सोइ कहौं बुझाई। बाल बुद्धि सुधि बुधि दरसाई।

मीरजापुरके प्रसिद्ध रामायणी पं० राम गुलाम द्विवेदी (निधनकाल सं० १८८८) भी १५८९ को ही गोसाइँजीका जन्म संवत् मानते थे। डा० ग्रियर्सन भी इसी संवत्को स्वीकार करते थे। अधिकांश विद्वान् इस संवत्को स्वीकार करते हैं, पर घट रामायन में दी गई जन्म-तिथि भादो सुदी ११ जो किसीने स्वीकार नहीं किया है, यद्यपि गणनासे यह तिथि शुद्ध उतरती है। स्व० डा० माता प्रसाद गुप्तने गणनासे इस तिथि शुद्ध पाया था।

(घ) सं० १६०० गौतम चंद्रिका (सं० १६८१ वि०) के अनुसार गोसाइँ तुलसीदास २८ वर्ष की वयमें अपने मित्रोंके सहित उत्तराखंडकी तीर्थ यात्राके लिए निकले। तीन वर्ष तक घूमते रहनेके अनन्तर वे अवधपुर आए, जहाँ उन्होंने अपने इकतीसवें वर्षके वयमें रामचरित मानसको रचनाका श्रीगणेश किया—

संभु प्रसाद तीस फल पाए। एकतिस फलत अवधपुर लाए॥
राम जन्म निज नौमी तोषे। रामचरित मानस उस पोषे॥

राम चरित मानसका रचनाकाल स्वयं गोसाइँजीने दे दिया है—

संवत् सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि-पद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इन दोनों कथनोंकी तालमेल बैठानेसे गोसाइँजीका जन्म संवत् (१६३१-३१)=१६०० सिद्ध होता है।

विलसनने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रेलिजन सेक्ट्स आफ हिंदूज'में लिखा है कि सोसाइँजीने अपने रामायणकी रचना सं० १६३१ में, जब वह ३१ वर्षके थे, प्रारम्भ की थी—

ही कमेन्स्ड हिज़ हिन्दो वर्शन ऑफ़ दि रामायण इन दि ईअर ऑफ़ संवत् १६३१ ह्वेन ही वास थर्टीवन ईअर्स ऑफ़ एज।

यह उद्धरण जे० एफ० ब्लूमहर्ट एम० ए० ने 'कैटलाग ऑफ़ दि हिन्दी पंजाबी ऐण्ड हिन्दुस्तानी मैनुस्क्रिप्टस इन दि लाइब्रेरी ऑफ दी ब्रिटिश म्यूजियमके पृष्ठ ३९ पर, हस्तलेख ५८ के विवरण में दिया है।

ब्लूमहर्टने वहीं मातादीन मिश्रके कवि रत्नाकरका हवाला देते हुए लिखा है—मातादीन मिश्र, दि औथर, ऑफ दि कवित्त रत्नाकर (लखनऊ १८७६) हैज दि फौलोइंग स्लाइटली डिफरेंट रीडिंग ऑफ दिस कपलेट, दि वर्ड असी मीनिंग ८०।

संवत् सोरह सै असी, असी वयसके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजै शरीर॥

एकौर्डिङ्ग टु दिस औथर, दि कपलेट वाज़ कंपोज्ड बाइ तुलसीदास, इन प्रेडिक्शन औफ् हिज़् डेथ ह्विच टुक प्लेस औन दि सेल्फ़्-सेम डे।

मैंने भी उक्त कवित्त रत्नाकरके लखनऊ वाले १८७६ ई०के संस्करणको देखा है। इसकी एक प्रति काशीमें कारमाइकेल पुस्तकालयमें है। उसमें उक्त दोहे में 'वयस' पाठ नहीं है, 'बरुन्' पाठ है। सम्बन्धित अंशयों है।

"मरण समयसे पहिले तुलसीदासजीको यह ज्ञात हो गया था कि मैं अमुक दिन इस संसारसे पधारूंगा तब यह दोहा लिखकर अपने मित्रोंको दिया।

सम्बत् सोरह सै असी असी-बरुनके तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजै शरीर॥

उनके लेखानुसार ही उनका देहान्त हुआ।"

तुलसी साहब के घट रामायनमें मृत्यु-काल सूचना दोहा भी है—

'सम्बत् सोलह सै असी, नदी बरुनके तीर। सावन सुकला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥'

यहाँ 'असी वरुण'के स्थानपर 'नदी वरुन' पाठ है। सामान्य स्वीकृत पाठ है 'असी गंग'।

अस्तु, मातादीन मिश्रके कवित्त रत्नाकरसे अस्सी वर्षकी वय वाली बात सिद्ध नहीं होती।

विलसनके आधारपर तासीने भी संवत् १६०० को ही गोसाईजीका जन्म संवत् स्वीकार किया है।

१५५४, १५८३, १५८९, १६०० इन चार संवतोंमेंसे कुछ ही अति विश्वासी लोग १५५४ को ठीक मानते हैं। १५८३ को स्वयं शिवसिंह ही अनुमान मानते हैं। १५८९ पर अधिकांश लोगों-की श्रद्धा है। नवीन शोधसे सं० १६०० गोसाइँजीका जन्म संवत् सिद्ध होता है। यह मान्य हो सकता है। रेवरेंड एडविन ग्रीव्सने तो तुलसी ग्रंथावली तृतीय भागमें संकलित गोसाई तुलसीदासका जीवन चरित नामक अपने लेखमें गोसाइँजीका जन्मकाल सं० १६००एवं १६१० के बीचका होनेका अनुमान किया है। यह प्रश्न करके कि केवल ३१ वर्षकी वयमें गोसाईजीने रामचरित मानस जैसा महाग्रंथ कैसे रच दिया होगा, इस संवत्की उपेक्षा नहीं की जा सकती। शंकराचार्यने इतनी ही अल्प आयु पाई और इसी वयमें उन्होंने हिन्दू कर्मके लिए जो कर दिखाया, वह चमत्कारमें कम नहीं हैं। वह इसी अल्पआयुमें जगद्गुरु हो गये। फिर तुलसी जैसे प्रतिभाशील व्यक्तिने इकतीस वर्षकी वयमें रामचरित मानस जैसे ग्रन्थकी रचना प्रारंभ कर दी तो क्या आश्चर्य। जबतक विद्वान् सं० १६०० पर विचार विमर्श करते रहें, और किसी निश्चित निष्कर्षपर न पहुंचे, तबतक हमें केवल १५८९ को मान्यता देनी चाहिए, १५५४ को नहीं।

२ जन्म-स्थान

गो० तुलसीदासके जन्म-स्थान होनेके दावेदार कई स्थान हुए हैं। १९१६ ई० में जब बाबू शिवनन्दन सहायने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक अपना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा, तब तुलसीकी जन्मभूमि होनेके दावेदार चार थे—

१—हस्तिनापुर—ग्रियर्सन।

२—चित्रकूट निकटस्थ हाजीपुर—विलसन, तासी, ग्रियर्सन।

३—राजापुर

४—राजापुर निकटस्थ तारी—ग्रियर्सन, रूपकला, शिवनन्दन सहाय।

हस्तिनापुर और हाजीपुरके दावे शायद बहुत कमजोर थे, इसलिए उनका केवल उल्लेख करके वे रह गए हैं, विस्तारमें बिलकुल नहीं गए। तुलसीके जन्म-स्थानकी चर्चा करते समय तो आज इनका कोई नाम भी नहीं लेता। ग्रियर्सनके अनुसार भक्त सिंधु और बृहद् रामायण महात्म्यके अनुसार तुलसी हस्तिनापुरमें पैदा हुए थे और दूसरे प्रमाणोंके अनुसार चित्रकूटके निकट हाजीपुरमें। यह उल्लेख उन्होंने माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तानमें किया है। पर वहाँ भी बल उन्होंने राजापुरपर ही दिया है। विलसनने और उन्हींके आधारपर तासीने भी चित्रकूटके निकट स्थित हाजीपुरको तुलसीकी जन्मभूमि माना है।

शिवनन्दन सहायने तारीको गोसाईंजीकी जन्मभूमि स्वीकार किया है। भक्तमालके प्रसिद्ध टीकाकार सीताराम शरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' ने भी तारीको ही गोसाईंजीकी जन्मभूमि होनेका गौरव दिया है। सहायजीके अनुसार 'ग्रियर्सन साहबने तारीका दावा जबरदस्त समझा है। परन्तु इसका कोई कारण नहीं बताया है।' ग्रियर्सनने कहाँ तारीका दावा स्वीकार किया है, मेरे देखनेमें नहीं आया। तारी बांदा जिला मऊ तहसीलसे तीन मील दूर, राजापुरसे १५ मील पूर्व यमुनाके दाहिने किनारे स्थित एक छोटा सा गाँव है। शिवनन्दनजीका कहना है कि 'हम राजापुरको गोस्वामीजीका निवास स्थान मानते हैं, जनम स्थान माननेको तैयार नहीं क्योंकि 'दन्तकथाके अनुसार राजापुर गोस्वामीजीका बसाया हुआ है (जन्मभूमि नहीं है)।

(क) राजापुरका दावा

१—संत तुलसी साहब (सं० १८१७–१८९९ वि०) ने अपनेको रामचरित मानसके रचयिता तुलसीदासका अवतार कहा है और घट रामायणमें अपने पूर्व जन्मकी कथा तीन पृष्ठोंमें दी है—(देखिए घट रामायण भाग २, पृष्ठ १८५–८८, बेलबेडियर प्रिंटिंग प्रेस इलाहाबाद)। इसमें उन्होंने अपना जन्म-स्थान राजापुर कहा है—

राजापुर जमुनाके तीरा। जहँ तुलसीका भया सरीरा॥
विधि बुदेलखंड वोहि देसा। चित्रकोट बीच दस कोसा॥

यदि घट रामायणकी रचना पचास वर्षकी वयमें हुई हो तो यह माना जा सकता है कि सं० १८७० के आसपास ऐसी एक मान्यता थी कि तुलसीदासका जन्म राजापुरमें हुआ था।

२—मीरजापुरके प्रसिद्ध रामायणी श्री रामगुलाम द्विवेदी (निधनकाल सं० १८८८ माघ शुक्ल ९ राजापुरको तुलसीदासका जन्म स्थान मानते थे। उनका आधार क्या था कुछ पता नहीं।

३—महेश दत्त शुक्लने भाषा-काव्य संग्रह (सं० १९३० वि०) में तुलसीदासका परिचय देते हुए लिखा है—

'ये सरयूपारीण अर्थात् सरवारिया ब्राह्मण चित्रकूटके इलाकेमें राजापुरके रहनेवाले थे'।

यह वही महेशदत्त शुक्ल हैं, जिन्हौंने भवानीदासके गोसाई चरितको बेनीमाधवदासका रचा बताया और बेनीमाधवदासका एक कल्पित जीवन चरित भी उक्त भाषा काव्य संग्रहमें लगा दिया बेनीमाधवदासका जन्म इसी भाषा काव्य संग्रहको बदौलत हुआ।

४—मातादीन मिश्रने 'कवित्त रत्नाकर' (सं० १९३०, प्रकाशन काल सं० १९३२) में गोसाईंजीको राजायुरका रहनेवाला कहा है—

'ये सरयूपारीण ब्राह्मण राजापुर नामक ग्राम यमुनाजीके दक्षिणी तट प्रयागराजसे १५ कोस पश्चिमके रहनेवाले थे।'

५—महाराज रघुराज सिंहने राम रसिकावली भक्तमाला (सं० १९३१ वि०) में तुलसीके राजापुरमें बसनेका उल्लेख किया है—

राजापुर जमुनाके तीरा तुलसी तहाँ बसै मतिधीरा।

'बसै' से 'भये' का अर्थ नहीं लिया जा सकता।

६—श्री शिवसिंह सेंगरने शिवसिंह सरोज (१९३४ वि०) में बेनीमाधवदासके गोसाइँ चरितका उल्लेख किया है, उससे एक छंद भी दिया है। उन्हें गोसाइँ चरितका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था। उन्होंने यह उल्लेख, विववरण एवं उद्धरण महेशके भाषा काव्य संग्रहके आधारपर किया है। महेशदत्त द्वारा उद्धृत सात छंदोंमेंसे पहला छंद उन्होंने सरोजमें उतार लिया है। महेशदत्तके आधारपर ही वे गोसाईंजीका जन्मस्थान राजापुर मानते हैं।

ये महाराज सरवरिया ब्राह्मण राजापुर जिले परागके रहनेवाले प्रायः संवत् १५८३ के करीब उत्पन्न हुए थे।

७—सर जार्ज ग्रियर्सन राजापुरको ही तुलसीका जन्म स्थान मानते हैं—

(क) भक्त सिंधु और वृहद् रामायण माहात्म्यके अनुसार इनके पिताका नाम आत्माराम और माताका हुलसी था तथा वे हस्तिनापुरमें पैदा हुए थे। लेकिन दूसरे प्रमाणोंके अनुसार वे चित्रकूटके निकट हाजीपुरमें उत्पन्न हुए थे। जो हो, सामान्य परम्परा तो यह है कि यमुना तट स्थित, बांदा जिलेके राजापुरको उनकी जन्मभूमि होनेका गौरव प्राप्त है।

—हिन्दी साहित्यका प्रथम इतिहास, (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ १३८।

(ख) "संयुक्त प्रांतके बांदा जिलेके राजापुर नामक ग्राममें इनका सन् १५३२ ई० में जन्म हुआ था।"

—तुलसी ग्रंथावली, भाग ३, निबंधावली, पृष्ठ ३६

('इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ एथिक्स ऐण्ड रिजन' वाले लेखका अनुवाद)।

८—(सं० १९५७ के आसपास विरचित) मूल गोसाइँ चरितमें राजापुरको गोसाइँजीका जन्म स्थान माना गया है।

यमुना तट दूबनको पुरवा। बसते सब जातिन को कुरवा॥
सुकृती सतपात्र सुधी मुखिया। रजियापुर राजगुरु मुखिया॥

तिनके घर द्वादस मास परे। जब कर्कके जीव हिमांसु चरै ।।
कुज सप्तम अष्टम भानु तनै। अभिहित सुठि सुंदर सांझ समै ।।
पंद्रह सै चौवन विसै, कालिंदी के तीर। स्रावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर ।। २ ।।

इसके पश्चात् तो हिन्दीके जो भी बड़े-बड़े महारथी—जैसे मिश्रबंधु (मिश्रबंधु विनोद भाग १, पृष्ठ २६८ और हिन्दी नवरत्न पंचम संस्करण पृष्ठ ४८), पं० रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्यका इतिहास छठां संस्करण पृ० १३२ और तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय भाग, प्रस्तावना पृष्ठ १९), बाबू श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल (गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ २०-२१)—हुए, सबने राजापुरको तुलसीदासका जन्म स्थान स्वीकार किया।

(ख) राजापुर तुलसीकी जन्मभूमि नहीं

दो विद्वानोंकी इच्छा नहीं होती कि वे राजापुरको तुलसीका जन्मस्थान मानें, पर वे जैसे लाचार होकर इसको यह गौरव प्रदान करते हैं। उनकी यह लाचारी राजापुरको तुलसीका जन्मस्थान नहीं सिद्ध कर सकती।

(१) तुलसी साहित्य रत्नाकर (सं० १९८६) के रचयिता पं० रामचन्द्र द्विवेदी—"अभी तक जितनी खोज हुई है, उसमें राजापुरकी ओर ही अधिक सम्मति पाई जाती है। पं० बेनीमाधवदास, पंडित रामगुलाम द्विवेदी, बाबू शिवसिंह सेंगर, महात्मा रघुबरदासजी एवं बाबू श्यामसुंदरदासजी राजापुर जन्मभूमि बतलाते हैं। कहा जाता है कि राजापुरमें गोसाईंजीकी कुटी अबतक विद्यमान है और कई विशाल मन्दिर भी उनके बनवाए अद्यावधि स्थित हैं। मेरे मनमें केवल खटका इस बातका है कि यदि राजापुर ही तुलसीदासजीका जन्म स्थान होता तो इतने विरक्त और माता पितासे परित्यक्त होते हुए भी अपनी जन्म भूमिपर जाकर ही कुटिया न बनाते। संभव है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का स्मरण हो आया हो।'

—तुलसी साहित्य रत्नाकर पृष्ठ १५

(२) "तुलसीदास" के प्रणेता डा० माताप्रसाद गुप्त—

(क) "राजापुर और सोरोंके पक्षमें अलग-अलग जो प्रमाण दिए गए हैं, उनका निरीक्षण नीचे किया जाएगा। किन्तु जैसा हम देखेंगे, इनमें भी किसीके पक्षमें इस प्रकारके साक्ष्य नहीं प्राप्त हैं जो सर्वथा निर्णात्मक हों। यह अवश्य है कि प्राप्त साक्ष्योंके अनुसार अन्य समस्त स्थानोंकी अपेक्षा राजापुरके पक्षमें संभावना अधिक ज्ञात होती है।" —तुलसीदास पृष्ठ १४५

(ख) राजापुरमें तुलसीदासका कोई स्थान था और वही स्थान उनका जन्म स्थान भी था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।" —वही पृष्ठ १५४

(ग) बीस वर्ष पूर्व तक तो राजापुर (जिला बांदा) ही उनका जन्म स्थान समझा जाता था, किन्तु कुछ नव प्राप्त आधारों पर सोरों (जिला एटा) को कुछ लोग उनका जन्म स्थान प्रमाणित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ये तथाकथित नव प्राप्त आधार बहुत संदिग्ध हैं। स्थिति यह है कि जन्म स्थानका निर्णय करनेके लिए प्राप्त साक्ष्य न तो यथेष्ट रूपसे विश्वसनीय हैं और न पर्याप्त ही। उपर्युक्त संत तुलसी साहबने तुलसीदासके रूपमें राजापुरमें अपना पूर्वजन्म अवश्य बताया है और तुलसी साहब हाथरसके रहनेवाले थे। अतः इतना अवश्य निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अबसे सवा सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले भी राजापुर ही तुलसीदासके जन्म स्थानके रूपमें प्रसिद्ध था।"

—हिन्दी साहित्य कोश, भाग २ (१९६३ ई०) पृष्ठ २१८।

आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तो जन्म स्थानका गौरव न राजापुरको देते हैं, न सोरोंको। इस सम्बन्धमें वे कोई मत नहीं व्यक्त करते—

इनके जन्म स्थानके सम्बन्धमें भी विवाद है। कोई राजापुर (बाँदा) को और कोई सोरों (एटा) को इनका जन्म स्थान बताते हैं। ये दोनों इनके जन्म स्थान नहीं प्रतीत होते।"

—गोसाइँ तुलसीदास (सं० २०२२ वि०) पृष्ठ २०९

स्पष्ट है कि पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्रका झुकाव किसी ओर नहीं है। राजापुरकी मान्यता को सोरों वालोंने जितना नहीं झकझोरा, उससे अधिक झकझोरा आचार्य चंद्रबली पांड़े ने। आचार्य पांड़ेका मत है कि गोसाइँजीका जन्म अवधमें हुआ। इनका समर्थक अभी तक कोई दिखाई नहीं पड़ा। पर इनका मत उपेक्षणीय नहीं है।

राजापुर निवासी पं० रामबहोरी शुक्लने वीणामें प्रकाशित अपने एक लेखमें राजापुरको तुलसीकी जन्मभूमि सिद्ध करनेके लिए पांच प्रमाण दिए है। पांचोंका खंडन डा० माताप्रसाद जी गुप्तने कर दिया है, फिर भी उन्होंने राजापुरको लाचार होकर जन्म स्थानकी मान्यता दे दी है।

(१) 'ठाकुर शिवसिंह सेंगर, पण्डित रामगुलाम द्विवेदी और मानसके अनेक प्राचीन टीकाकारोंने इसी स्थानको गोस्वामीजीकी जन्मभूमि माना है।'

इन लोगोंकी मान्यताका कोई ठोस आधार नहीं है, केवल जनश्रुति है। जनश्रुति तो तारी, हाजीपुर, हस्तिनापुरके लिए भी थी, पर अब कोई इनका नाम लेता नहीं है। अतः इस तर्कमें कोई ठोस बल नहीं है।

(२) 'सन्त तुलसी साहिब (सं० १८२०-१९००) ने अपनेको मानसके रचयिताका अवतार मानते (बताते) हुए अपनी घट रामायणमें अपना पहला (पूर्ववर्ती) बोला राजापुरमें ही उत्पन्न हुआ लिखा है।'

सन्त तुलसी साहिब सोरोंके निकट हाथरसके रहनेवाले थे। वे सोरोंको गोसाइँ तुलसीदासका जन्म स्थान नहीं मानते। यदि उनके समयमें सोरोंके सम्बन्धमें तुलसीके जन्मस्थान होनेकी प्रसिद्धि होती, तो वे सोरोंको छोड़कर इतनी दूर राजापुरकी दौड़ न लगाते। तुलसी साहिबके कथनसे इतना ही स्पष्ट होता है कि उनके समयमें राजापुरको तुलसीदासजीका जन्म स्थान माना जाता था।

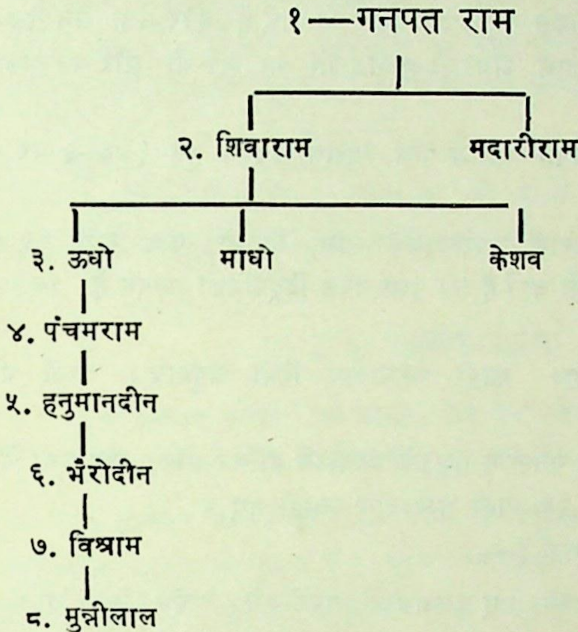
(३) राजापुरका उपाध्याय वंश—गोस्वामी तुलसीदासकी शिष्य परम्परामें है।

राजापुरमें सरयूपारीण उपाध्याय ब्राह्मणका एक वंश है। ये लोग अपनेको गोस्वामी तुलसीदासजीके शिष्य गनपति उपाध्यायका वंशज कहते हैं। ये वंशज साझीदार कहलाते हैं और राजापुरके यमुना घाटकी उतराईकी मदमें इन्हे कुल ६८४) सालाना चार किश्तोंमें मिलता है। यह रकम पहले सरकारी खजानेसे मिलती थी, अब जिला परिषदसे मिलती है। इस परिवारको राजापुर गांव में ९६ बीघा जमीन मुआफीमें मिली है। माल लदी पूर्व-गामिनी नावोंपर इन्हें प्रयागतक जानेवाली प्रत्येक नावपर आठ आना और प्रयागसे आगे जानेवाली हर नावपर एक रुपया माफीदारी मिलती है। वंशज लोग यह मुआफी अकबरसे प्राप्त बताते हैं।

यह विवरण राजापुर निवासी पंडित राम बहोरी शुक्लने, वीणा वैशाख १९९६ वि० में प्रकाशित, अपने एक लेखमें दिया है। इसी परिवारके पास मानस अयोध्याकांडकी वह सुप्रसिद्ध प्रति है, जो तुलसीदासके हाथकी लिखी कही जाती है।

गनपतरामसे मुन्नीलाल तक कुल आठ पीढ़ियाँ होती हैं।

चंद्रबली पांडेने 'तुलसीकी जीवन भूमि'में यह वंश-वृक्ष दिया है। उन्होंने यह बंशवृक्ष श्री तुलसी स्मारक संस्कृत पाठशाला राजापुरके प्रधानाध्यापक महादेव पांडेयके 'तुलसी-चरित'से दिया है।



पंडित राम बहोरीजी शुक्लने इस परिवारसे प्राप्त दो सनदोंकी प्रतिलिपि भी अपने वीणा वाले लेखमें दी है—

(ग) पन्ना नरेश हिन्दूपतिकी उपाध्याय सीवारामको फागुन सुदी ३ सं० १८१३ को दी हुई सनद, जिसमें उन्हें पहलेसे राजापुरमें राह रकम हाट फेटमें पाए हुए वसूली आदिके अधिकारोंको बहाल किया गया है। सनद परना (पन्ना)से जारी हुई है और हिंदीमें है।

(२) यह सनद फारसी लिपिमें है। बीच-बीचमें कई जगह कट फट गई है। अतः पूरा-पूरा पढ़ा नहीं जा सका है। इसके तीन स्थान विचारणीय हैं—

(क) ······आगे पं० मदारीलाल······(गो) साइँ तुलसीदास जीके······(बं) स मै का महसूल साइर वा तिहावा तिहावा······

(ख) ता० २१ सावन (?) सन् १२

(ग) सन् १७१६ बमुकान बांदा।

इन तीनोंके संबंधमें आचार्य चंद्रबली पांडेका कथन है—

(क) मदारी लाल और शिवराम गनपतके पुत्र हैं। मदारीलाल निःसन्तान मरे। उनके निधनपर उनका अंश उनके तीनों भतीजों, शिवारामके तीनों पुत्रों—ऊधो, माधो और केशवको तिहावा तिहावा मिला। शुक्ल जीने (बं) के द्वारा जो पूर्ति की है, पांडे जीके अनुसार उसे (अं) होना चाहिए 'बंशमें का नहीं 'अंशमें का'।

(ख) ता० २१ सावन (?) नहीं। यह हिजरी वर्षका 'शाबान' महीना है। सन् १२ ईस्वी सन् १७१२ नहीं है, यह जलूसी सन् है। तत्कालीन बादशाह अकबर द्वितीयके गद्दीपर बैठनेके बारहवें वर्षमें यह सनद लिखी गई। अकबर द्वितीयका शासनकाल १८०६–३७ ई० है।

(ग) सन् १७१६ ई० से बांदामें अंगरेजी हुकुमत नहीं आई थी। यहाँ फारसी अंक सात (<) और आठ (∧) को ठीकसे न पढ़नेकी भूल की गई है और उक्त सन् १७१६ न होकर १८१६ ई० है। १८१६ ई०में बांदामें अंगरेजी हुकूमत भी आ गई थी और यह अकबर द्वितीयके शासनकालमें भी पड़ता है।

डा० माताप्रसाद गुप्तने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तुलसीदास'-में पृष्ठ १४८–६ पर दो फरमान दिये हैं—

१—अमान सिंहका सीवराम उपाध्यायके नाम, हिंदीमें, पौष सुदी १५ सं० १८१३ मुकाम लुढ़वारो। इसमें भी ठीक वही बातें हैं जो पन्ना नरेश हिंदूपतिकी सनदमें हैं, जिसकी प्रतिलिपि शुक्लजी एवं चंद्रबलीजीने दी है।

२—फारसीमें लिखित एक शाही फरमानका हिंदी अनुवाद। इसमें भी दो बातें बिचारणीय हैं।

(क) इस वक्त ऊधो वल्द गनपतने हजूरके दरबारमें हाजिर होकर इस्तगासा दिया।

(ख) सही फरमान ता० २५ माहा आवाबान इलाही सन् ३

इस संबंधमें चंद्रबलीजीका तर्क है—

(क) इलाही सन् अकबरने सन् १५८४ के नवरोजसे प्रारंभ किया था। तीन इलाही सन् हुआ १५८७ ई० १५४४ वि०। पर ऊधो वल्द गनपतका दरबारमें जाना आलमगीरके समय (१६५८—१७०७ ई० = १७१५–६४ वि०) में कहा गया है। मुहरपर आलमगीरके आगे दो लिखा हुआ है और नकलकी मुहरपर छाप है 'शाह आलम' की। इस आलमगीर दूसरेका समय है १७५४—५६ ई० (१८११—१६ वि०) और शाह आलमका समय है १७६१—१८०६ ई० (१८१८—६३ वि०) (पांडेजीका ख्याल है कि ऊधो आलमगीर दूसरेके दरबारमें फरियादी हुए थे और सन् ३ इलाही न होकर संभवतः जलूसी है। ऐसी स्थितिमें वे १८१४ वि० में फरियादी हुए। अतः ऊपर उल्लिखित चारों फरमान संवत १८१३—१४ वि० के हैं।

(ख) ऊधो वल्द गनपत अशुद्ध है। ऊधोके पिताका नाम सीवाराम और पितामहका नाम गनपत है, जो पृष्ठ १४५ पर उद्धृत वंश-वृक्षसे स्पष्ट है। इन चारों सनदोंसे स्पष्ट है कि सीवारामका समय १८१३ वि० है। ऐसी स्थिथिमें इनके बाप गनपतका समय सं० १७५० के पहले नहीं ले जाया जा सकता और इन्हें रामचरित मानसके रचयिता महाकवि तुलसीदासका शिष्य एवं समकालीन नहीं सिद्ध किया जा सकता। तब यह गनपत किस तुलसीदासके शिष्य थे। पांडेजीका खयाल है कि इसी समयके लगभग गोसाइयोंने बुन्देलखण्डके इस क्षेत्रमें स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहा था। इनका पहला राजा इंद्रगिरि था। इसने सं० १८०२ में मोठ परगनेपर अधिकारकर लिया। बादमें अवधके शुजाउद्दौलाका प्रिय सरदार हुआ। इंद्रगिरिका देहावसान १८०६ वि० में हुआ। उसके पश्चात् उसका चेला अनूप गिरि अवधके नवाबके यहाँ सेनाका सरदार हुआ। यही अनूपगिरि हिम्मत बहादुरके नामसे हिन्दी साहित्यके इतिहासमें पद्माकरकी बदौलत प्रसिद्ध हुआ। पद्माकरने इसीके नामपर 'हिम्मत बहादुर विरदावली' नामक अपना वीर रसका प्रसिद्ध ग्रन्थ रचा था। इस

गोसाईंने झांसी, ग्वालियर और अवध तक दौड़ लगाई और कालपीसे इलाहाबाद तककी जागीर पाई। संवत् १८६० में इसने अँगरेजोंसे संधिकी थी। पांडेजीका अभिमत है कि इसी गिरि गोसाइँ वंशसे गनपत उपाध्याय एवं उनके वंशजोंका संबंध था। इन्हींसे उन्हें माफी मिली। इसी वंशमें कोई गोसाइँ तुलसीदास हुआ। जिसके शिष्य गनपत उपाध्याय थे। वे रामचरित मानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासके शिष्य नहीं थे। तुलसीदासके नामपर राजापुरमें जो कुछ विचित्र प्रथाएँ प्रचलित हैं—कुम्हारका न बसने पाना, वेश्याओंका न बसने पाना, देवालय छोड़ कोई पक्का मकान न बनाने पाना—वे किसी महात्माके कारण नहीं प्रचलित है, किसी शासकके आदेशसे प्रचलित हैं।

यदि पांडेजीकी बात न भी मानी जाय, तो कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मान लिया गनपत उपाध्याय प्रसिद्ध गोसाइँ तुलसीदासके ही शिष्य थे, तो इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि राजापुर तुलसीदासजीको जन्मभूमि थी। हां राजापुरसे उनका लगाव था, यह लगाव चाहे जिस तरहका हो।

(४) 'तापस-प्रसंग'

तेहि अवसर तापस एक आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा।
कवि अलखित गति वेष विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥

यमुना पार होनेपर वन-प्रवेश करते समय ग्रामवासियोंकी बात आती है। बीचमें ही अप्रासंगिक तौरपर यह तापस कूद पड़ता है। शुक्लजोका कथन है कि यह तापस प्रसंग साभिप्राय है। तुलसी ही वह तापस है। अपनी जन्भूमिमें अपने इष्टदेवको प्रवेश करते देखके भावविह्वल हो जाते हैं। प्रायः सभी लोग इस तापसको तुलसी मानते हैं। पर इससे राजापुर तो उनकी जन्मभूमि नहीं सिद्ध होता। यह तापसकी तपोभूमि भले ही सिद्ध हो जाय।

५—यमुना पार होते हो गोसाईंजी भावावेशमें आ जाते हैं। वे जन्मभूमिमें अनुरागसे ही ग्रामवासी स्त्री-पुरुषोंकी मार्मिक योजना करते हैं।

मेरी समझसे यह कोई स्वतंत्र तर्क नहीं है और तापस प्रसंगका ही एक अंग है।

इन बातोंके अतिरिक्त शिवनंदन सहायजीका यह कथन विचारणीय है—

"दंतकथाके अनुसार राजापुर गोस्वामीजीका बसाया हुआ है (जन्मभूमि नहीं है)।"

तुलसी साहित्य रत्नाकरके रचयिता रामचंद्र द्विवेदीका 'खटका' भी ध्यान देने योग्य है। यही दलील पं० रामनरेश त्रिपाठीकी भी है। यदि राजापुर ही तुलसीदासजीका जन्म स्थान होता तो वे कदापि यहाँ विरक्त होकर कुटी बनाकर न रहते। तुलसी ही ने तो कहा है—

तुलसी तहाँ न जाइए, जहाँ जनम कर ठांव। गुन ऐगुन जानैं नहीं, धरैं पुरानो नांव॥

प्रश्न होता है फिर राजापुरसे तुलसीका क्या सम्बन्ध है? क्या यह इनकी साधना-भूमि है? इस सम्बन्धमैं अयोध्याप्रसाद पांडेयने 'जनभारती' भाग १ (१९४६) पृष्ठ ४५ पर एक प्रश्न उठाया है—

"विरक्त होकर तुलसीदासको राजापुर ही आनेका क्या विशेष आकर्षण था? राजापुर कोई तीर्थस्थान न था और न तपोभूमि ही थी। हां, चित्रकूट तोर्थस्थान अवश्य है, और उस समय भी

एक पवित्र तीर्थस्थान था। तुलसीदासजी वहाँ अवश्य गए थे, परन्तु वहाँ तपोभूमि न बनाकर यमुना तटवर्ती राजापुरमें ही उनके रम जानेकी बात समझमें नहीं आती है।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास–पृष्ठ–१६३

इस शंकाका समाधान बांदा गजेटियर करता है। डा० माताप्रसाद गुप्त अपने तुलसीदासमें उक्त गजेटियरके तुलसी सम्बन्धी अंशका अनुवाद पृष्ठ १६२-६३ पर दिया है। यहाँ प्रसंग प्राप्त अंश दिया जा रहा है।

"स्थानीय जनश्रुति कहती है कि तुलसीदासका परिचय राजापुरसे उस महेबा गाँवके एक ब्राह्मण घरमें विवाहके कारण हुआ जो तहसील सिराथू जिला इलाहबाद में है।"

तो राजापुर तुलसीकी न तो जन्मभूनि है, न तपोमूमि है। यह उनकी राग-भूमि है। विरागी तुलसी यहीं आकर अनुरागी हुए और यहींसे फिर विरागी होकर निकले। इस महाभिनिष्क्रमणने ही उन्हें इस योग्य बनाया कि हम आज कृतज्ञ होकर उनको स्मरण कर रहे हैं।

सोरोंका दावा

'तुलसी-जन्मभूमि सुकरखेत (सोरों)' के रचयिता श्री भद्रदत्त शास्त्री वैद्य भूषण कासगंज उक्त पुस्तिकाके 'समर्पण'में लिखते हैं कि आज (सं० २०१५) से ५६ वर्ष पूर्व अर्थात् २०१५-५६-५७ = १९०२ ई० में मैं सोरोंकी सज्जनानंदिनी पाठशालामें पढ़ता था। तब एक दिन मैंने अपने अध्यापक-गुरु श्री पं० दशरथ द्विवेदी शास्त्रीके मुखसे सुना कि गोस्वामीजीकी जन्मभूमि एवं गुरुस्थान सूकरखेत (सोरों) ही है। उक्त वचन-बीज श्री भद्रदत्त जी एवं इनके सहपाठी श्री गोविंदवल्लभ भट्ट शास्त्री काव्यतीर्थके मनरूपी थालेमें अंकुरित हुआ। श्री गोविन्द वल्लभ भट्टको उधर गुरुसे प्रेरणा मिली, इधर इनकी विदुषी माँने भी बताया कि गोस्वामीजीका जन्म स्थान सोरों था। इन्होंने भट्टजीको इस दिशामें अन्वेषणके लिए प्रेरित भी किया। फलस्वरूप सोरोंको तुलसीका जन्म स्थान एवं गुरु स्थान सिद्ध करनेके लिए लोगबाग अन्वेषण रत हो गए। इन लोगोंको बांदा जिलेके गजेटियरसे भी प्रेरणा लेनी चाहिए थी जहाँ लिखा है कि 'तुलसीदास नामक एक सन्त जो सोरों तहसील कासगंज जिला एटाका निवासी था, यमुना तटके उस जंगलमें हुआ जहाँ इस समथ राजापुर आबाद है। 'उक्त बांदा गजेटियर सं० १९३९ (१८७४ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा संस्करण ३५ वर्ष बाद १९०९ ई० में हुआ था। अस्तु। शोधसे इन लोगोंको एकके बाद दूसरी सामग्रियाँ प्राप्त होने लगीं। अबतक इन्हें निम्नांकित सामग्रियां प्राप्त हो चुकी हैं—

(क) रामाज्ञा भारद्वाज द्वारा 'तुलसीदासका घर बार'में संकलित सामाग्री (सं० २००६ वि० १९४९ ई०)।

१. मुरलीधर चतुर्वेदी कृत—रत्नावली चरित-रचनाकाल सं० १८२९ वि०।
२. नन्ददास पुत्र कृष्णदास-कृत—वंशावली।
३. दोहा-रत्नावली—२०१ दोहे—प्रतिलिपिकाल सं० १८२९ वि०।
४. रत्नावली कृत एक पद।
५. अविनाशराम कृत तुलसीप्रकाश—रचनाकाल सं० १६७७ वि।
६. रामचरित मानसका खंडित बालकांड—दोहा २३ से अन्त तक।
७. राम चरित मानसका अरण्यकांड—दोहा ४ से अन्त तक।

(ख) 'सोरों सामग्री'—प्रकाशक पं० गोविन्द वल्लभ भट्टके पुत्र श्री पं० रामवल्लभ शास्त्री, बम्बई, सं२०१५ (१९५८ वि०)। इनमें निम्नांकित सामग्री है—

१—सूकर क्षेत्र माहात्म्य—कवि कृष्णदास (नन्ददासके पुत्र) कृत।

२—दोहा रत्नावली }
३—रत्नावलीके पद } रत्नावली कृत

४—अष्ट सखामृत

५—तुलसी प्रकाश

'तुलसीका घरबार'के अन्तमें प्रायः ५४ लेखोंकी सूची की गई है जिनमें सोरोंके पक्ष विपक्षमें विचार मन्थन हुआ है। सोरों पक्षकी सामग्री नीचे दी जा रही है—

१—महाकवि गोस्वामी तुलसीदास—गौरीशंकर द्विवेदी—माधुरी आषाढ़ १९८६ वि० (१९२९ ई०)।

२—गोस्वामीजीका जन्म-स्थान राजापुर अथवा सूकर क्षेत्र (सोरों)। (गोविन्द वल्लभ भट्ट, माधुरी आश्विन १९८६ वि० (१९२९ ई०)

३—गोस्वामी तुलसीदासकी धर्मपत्नी रत्नावली (जीवनी और रचना)—पं० रामदत्त भारद्वाज, विशाल भारत, फरवरी १९३९ ई०।

४—महाकवि नन्ददास—रामदत्त भारद्वाज, विशाल भारत जून १९३९ ई०।

५—सनाढ्य जीवनका तुलसी स्मृति अङ्क–सितंबर १९३१ ई०।

सं० गोविन्द वल्लभ भट्ट, पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० प्रभुदयालु शर्मा।,

इसमें भद्रदत्त शर्मा, गौरीशंकर द्विवेदी, दीनदयालु गुप्त, होरीलाल शर्मा, रामवल्लभ मिश्र, वेदव्रत शास्त्रीके सोरोंपक्षीय लेख हैं।

६—दोहा रत्नावली—संपादक प्रकाशक—प्रभुदयाल शर्मा इटावा १९३९।

७—तुलसीदास और नन्ददासके जीवनपर नया प्रकाश—दीनदयालु गुप्त, हिन्दुस्तानी, अक्टूबर, १९३९।

८—गुसाइँ तुलसीदासकी धर्म पत्नी रत्नावली—दीनदयाल गुप्त, हिन्दुस्तानी जनवरी १९४०।

९—तुलसी सम्बन्धी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज—पं० भद्रदत्त शास्त्री, हिन्दुस्तानी, जनवरी १९४०।

१०—नन्ददास—शंभुप्रसाद बहुगुणा–नागरीप्रचारिणी पत्रिका माघ १९९६ वि०।

११—मूल गोसाइँ चरितकी अप्रामाणिकता–रामदत्त भारद्वाज, सुधा, अप्रैल, १९४०।

१२—कुछ प्राचीन वस्तुएँ—रामदत्त भारद्वाज, माधुरी, १९४०।

१३—गोस्वामीजीके चित्र और प्रतिमाएँ—पं० रामदत्त भारद्वाज, सुधा मई १९४०।

१४—गोस्वामी तुलसीदासजीका जन्म स्थान—रामकिशोर शर्मा—विशालभारत मई १९४०।

१५—वर्ष तन्त्र और वर्ष फल—(नन्ददासके पुत्र कृष्णदास कृत) पं० रामदत्त भारद्वाज, माधुरी अगस्त १९४०।

१६—गोस्वामी तुलसीदास--पं० रामदत्त भारद्वाज, हिन्दुस्तान टाइम्स, १६, अगस्त, १६४०। (अंग्रेजीमें प्रचार अभियान)।

१७—सोरोंमें प्राप्त गोस्वामी तुलसीदासके जीवन वृत्तसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीकी बहिरङ्ग परीक्षा—माता प्रसाद गुप्त, सम्मेलन पत्रिका, अगस्त-सितम्बर १६४० ई०।

१८—रत्नावली-तुलसीदास—रामदत्त भारद्वाज-इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस लाहौर अधिवेशन दिसम्बर १६४०। (अंग्रेजीमें प्रचार अभियान)।

१६—तुलसीका जन्म-स्थान—श्यामलालगुप्त, विशालभारत, दिसम्बर १६४०।

२०—तुलसी चरितकी अप्रामाणिकता—रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत १८ दिसम्बर १६४०।

२१—तुलसीदास और रत्नावली (लेख संख्या १८ का हिन्दी अनुवाद) नवीन भारत तुलसी अंक जनवरी, १६४१)।

२२—वास्तविक शूकरक्षेत्र सोरों (एटा)—भद्रदत्त, नवीन भारत तुलसी अङ्क, जनवरी १६४१।

२३—तुलसी और सोरों—श्री पं० रामचन्द्र शुक्लके मतकी समीक्षा—पं० रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत, ८ जनवरी, १६४१।

२४—मुरलीधर चतुर्वेदी कृत श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीकी धर्मपत्नी रत्नावली चरित (गद्यनुवाद) रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत १५ जनवरी, १६४१।

२५ सोरोंमें प्राप्त गोस्वामी तुलसीदासके जीवन वृत्तसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीकी बहिरङ्गी परीक्षा-प्रेमकृष्ण तिवारी, नवीन भारत, १५ जनवरी, १६४१, (डा० माताप्रसाद गुप्त, के लेख सं० १७ का जवाब)।

२६—महाकवि नन्ददासका जीवन चरित्र—दीनदयालु गुप्त हिन्दुस्तानी जनवरी, १६४१।

२७—मूल गोसाइँ चरित्रकी अप्रामाणिकता (लेख ११ का परिवर्द्धित रूप)—पं० रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत तुलसी अङ्क फरवरी, १६४१।

२८—तुलसी चरितकी अप्रामाणिकता---रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत तुलसी अङ्क, मार्च १६४१ (लेख २० का परिवर्द्धन)।

२६—मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रत्नावली चरित--दो उपलब्ध प्रतियोंके सहारे संपादन—रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत, तुलसी अङ्क मार्च १६५१।

३०—दोहा रत्नावली—चार उपलब्ध प्रतियोंके सहारे संपादन—पं० रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत, तुलसी अङ्क मार्च १६४१।

३१ सोरोंमें प्राप्त गोस्वामी तुलसीदासके जीवनवृत्तसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीकी अन्तरंग परीक्षा---डा० माताप्रसाद गुप्त, सम्मेलन पत्रिका फाल्गुन चैत्र सं० १६६७ वि० (१६४१ ई०)।

३२—घट रामायनकी अप्रामाणिकता—रामदत्त भारद्वाज, नवीन भारत, ३१ दिसम्बर १६४१ माधुरी फरवरी, १६४२।

३३—रत्नवाली-तुलसीदास—रामदत्त भारद्वाज, प्राचीन (? नवीन) भारत ज्येष्ठ १६६३ वि० (१६४१ ई०)।

३४—गोस्वामी तुलसीदास : द डेट आफ हिज् रिननेशन १६०४ विक्रम एरा ऐंड द बर्थ प्लेस आफ़ हिज् मदर हुलसी तारी इन द डिस्ट्रिक्ट आफ एटा।—रामदत्त भारद्वाज । इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस अलीगढ़ १९४३ (अंग्रेजीमें)।

३५ सूकरखेत—भगवतीप्रसाद सिंह, सरस्वती, जून १९४२।

३६ – सूकरखेतका वास्तविक स्थान–भद्रदत्त शर्मा, नवीन भारत ८ दिसम्बर १९४२।

३७—सोरोंकी सामग्री—पं० रामदत्त भारद्वाज, राजस्थान क्षितिज, १९४८ ई०, डा० माताप्रसाद गुप्तके आक्षेपका उत्तर।

३८—सोरोंकी सामग्री—पं० भद्रदत्त शर्मा, विशालभारत, १९४८ ई० (पं० चन्द्रबली पाण्डेय आक्षेपका उत्तर।

३९—तुलसी प्रकाश पर विचार—रामदत्त भारद्वाज, विशाल भारत १९४८ ई०।

४०—राजापुरका नामकरण—रामदत्त भारद्वाज विश्वभारत १९४८ ई०।

राजा नामक साधुके नाम पर गो० तुलसीदासने राजापुरकी स्थापना की।

इसलेख सूचीके आलोड़नसे पता चलेगा कि सोरों आन्दोलन १९३९,४० और ४१ इन तीन वर्षोंमें बड़े जोरोंसे चला। आन्दोलन प्रायः एकपक्षीय रहा, जिसको चलानेवाला तीन चार व्यक्तियोंका एक गिरोह था—

१—भद्रदत्त शर्मा, २—गोविंद वल्लभ, भट्ट, ३—रामदत्त भारद्वाज, ४—प्रभुदयालु शर्मा, इस गिरोहको डा० दीनदयालु गुप्त एवं० पं० रामनरेश त्रिपाठीका भी बल प्राप्त था। विरोध पक्षसे लिखनेवाले थे—डा० माताप्रसाद गुप्त, आचार्य चन्द्रबली पांड़े और भगवती प्रसाद सिंह। पर इनके लेखोंकी संख्या एक-एक दो-दो ही है। ऊपर जो विस्तृत लेख सूची दी गई है, उसका उद्देश इस आन्दोलनका रूप ही स्पष्ट करना था। इन चालीस लेखोंमें से २२ लेख अकेले रामदत्त भारद्वाजके हैं, जिन्होंने अंग्रेजीमें भी अपना प्रचार अभियान चलाया। इसीसें इनका इस आन्दोलनमें उत्साहपूर्ण योगदान समझा जा सकता है। इसी प्रकरणपर रामदत्तजीको डाक्टरकी भी उपाधि प्राप्त हुई है।

तुलसीको लेकर जितना आन्दोलन सोरों सामग्रीने किया, उतना किसीने नहीं। आखिर सोरों सामग्री चाहती क्या है। इसका भी संक्षिप्त विवेचन हो जाना नितान्त आवश्यक है।

१—तुलसीदासका जन्म भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल सनाढ्य ब्राह्मण वंशमें आत्माराम और हुलसीके औरससे सूकरक्षेत्र जिला एटामें हुआ। हुलसीका जन्मस्थान तारी जिला एटा था।

२—गोस्वामीजीका विवाह रत्नावली सं० १५८९ में हुआ। उनके तारापति नामक एक पुत्र हुआ, जो जन्म होनेके कुछ वर्ष पश्चात् ही परलोक सिधार गया एवं गोस्वामीजीने अपनी पत्नीके आकस्मिक ज्ञानोपदेशसे सं० १६०४ में संसारका माया मोह छोड़ दिया।

३—रत्नावली बदरी निवासी पं० दोनबन्धु पाठक की पुत्री थीं। इनका जन्म संवत् १५७७ ई० में हुआ था। और उसी अभद्रक संवत् १६०४ में, जब तुलसीदास घरबार त्यागकर चले गए, रत्नावलीकी माता दयावतीका देहान्त भी हुआ।

४—रत्नावलीने २०१ उत्तम स्त्री शिक्षा दोहोंकी रचना की, जो अनेक स्थानोंमें उपलब्ध हैं। यह तपस्विनी पतिपरायणा देवी सं० १६५१ में परलोकवासिनी हुई।

५—बदरी ग्रामको सं० १६५७ में गंगाजीने बहाकर नष्ट कर दिया। इसके बाद यह दुबारा बसाया गया।

६—व्रजभाषाके प्रसिद्ध कवि नंददास और उनके पुत्र कृष्णदास तुलसीदासके क्रमशः चचेरे भाई और भतीजे थे।

७—बदरी सोरोंके बीच उन दिनों गंगाजी बहती थीं।

यह है सोरों सामग्रीका प्रतिपाद्य, जिसे श्री रामदत्त भारद्वाजने तुलसीका घर बारके उपक्रममें पृष्ठ १-२ पर सूत्र रूपमें रख दिया है। पर रामदत्त भारद्वाजके ही शब्दोंमें जिसपर हिन्दी पंडितोंकी "अहमन्यता, स्वार्थ, दंभ और पक्षपातने विशेष कुठाराघात किया है।" मैं भी समझता हूँ कि केवल तीन साल (१९३९-४१ ई०) के पौधेपर कुठाराघात शोभनीय नहीं। यह कुठाराघात १०० वर्ष बाद हो तो अच्छा, क्योंकि समय ही तत्वका सबसे बड़ा निर्णायक है।

(घ) सोरों तुलसीका जन्म स्थान नहीं

पं० भद्रदत्त शर्माने एक पुस्तिका प्रकाशित की है—'तुलसी-जन्मभूमि सूकरखेत (सोरों)।' इसके प्रथम ३४ पृष्ठोंमें ५४ प्रमाण यह सिद्ध करनेके लिए दिए गए हैं कि सोरों जिला एटा ही शूकरखेत है। एक-एक स्थानके लिए अनेक दावेदार हैं। सोरोंका शूकरखेत होनेका दावा भी अपनी जगह ठीक है, उससे किसीको क्या इनकार हो सकता है। पर यही सोरों तुलसीदासका भी शूकरखेत है, इससे बहुतसे लोगोंको इनकार हो सकता है और भद्रदत्त जीके ५४ प्रमाण यह कदापि नहीं सिद्ध करते कि यह वही सूकरखेत है, जहाँ गोसाइँ तुलसीदासने अपने गुरुसे रामकथा सुनी थी।

सोरों वालोंने जो जोर लगाया है वह वस्तुतः दो तीन बातोंपर ही है—तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे, इनका जन्म सोरोंमें हुआ, विवाह बदरीमें हुआ, नन्ददास इनके चचेरे भाई थे। और सारी बातें तो इन्होंने पुराना ही ली है। इनको एक जगहसे उखाड़ कर अपने यहाँ आरोपण मात्र कर लिया है। यह इनका कौशल है। यहाँ भी तुलसी है, तारी गाँव है, दीनबन्धु पाठक हैं। रत्नावली हैं, तारक (किंचित संशोधित रूपमें तारापति) है, जो अल्पवयमें ही दिवंगत हो जाता है। अस्तु।

इन सारी सामग्रीकी सम्यक छानबीन डा० माताप्रसाद गुप्तने की थी। (देखिए तुलसीदास—अध्ययनके आधार सोरोंकी सामग्री पृष्ठ ९३-१३०)। उनका निष्कर्ष है—

"सोरोंसे तुलसीदासका कोई निकटका सम्बन्ध प्राप्त साक्ष्योंके आधारपर प्रमाणित नहीं होता है।" —तुलसीदास, पृष्ठ १६४

सोरों सामग्रीपर आचार्य पं० चन्द्रबली पांड़ेका अभिमत है—"इधर कुछ दिनोंसे 'सोरों सामग्री' की कृपासे कुछ लोग सोरोंको तुलसीदासका जन्मस्थान मानने लगे हैं। सोरों सामग्री ऐसी नहीं कि उसको आँख मूँदकर मान लिया जाय। सच तो यह है कि 'मूल गोसाइँ चरित' और 'सोरों सामग्री' एक ही चट्टे बट्टेकी सूझ हैं। अन्तर उनमें केवल इतना है कि 'मूल गोसाइँ चरित' एक पोथीके रूपमें है और 'सोरों सामग्री' अनेक पोथियोंके पत्रों में। सोरों सामग्रीके बारेमें बहुतोंने बहुत कुछ लिखा है, पक्षमें भी, विपक्षमें भी। परिणाम यह हुआ है कि धीरे-धीरे लोगोंका विश्वास इससे उठ चला है। इसमें "संदेह नहीं कि तुलसीके कुछ प्रेमियोंने तुलसीके लिए जब तब कुछ जाल भी कम नहीं रचा है।" —तुलसीदास, पृष्ठ ११,

१९६० ई० में दिल्ली विश्वविद्यालयने अखिल भारतीय हिन्दी परिषदके अधिवेशनके अवसर पर 'तुलसी विचार परिषद्' का इसलिए आयोजन किया था कि सोरों सामग्री भलीभाँति छानबीन

हो जाय। इस अवसरके लिए सोरोंसे संबंधित, अलीगढ़ विश्वविद्यालयके डा० गोवर्द्धननाथ शुक्लने 'सोरों' सामग्रीपर एक दृष्टि तथा गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्मभूमि नामसे एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसके सम्बन्धमें पं० सीतारामजी चतुर्वेदीका अभिमत है—

"इधर कुछ सज्जनोंने सोरों (जिला एटा उत्तर प्रदेश) में उनका जन्म स्थान सिद्ध करनेकी प्रबल चेष्टा की थी। किन्तु अलीगढ़के डा० गोवर्द्धननाथ शुक्लने अपनी पुस्तिका 'सोरों सामग्रीपर एक दृष्टि' में उसका सारी भंडाफोड़ कर दिया हैं।"

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी एक स्थान पर प्रसंगवश सोरों सामग्रीमें अन्तर्भूत रत्नावलीको दोहावलीपर यह मत प्रकट किया है—

"रत्नावलीकी दोहावलीकी डायरीकी भाँति संवतोंसे संकलित और श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं बाबूराव विष्णु पराड़कर द्वारा प्रमाणित शब्दोंसे जागृत पाकर किसीको जाल-जंजालकी झाँकी है।"

—गोसाइँ तुलसीदास, पृष्ठ ३०२

ऐसी स्थितिमें सोरोंके दाबेको अस्वीकार करनेमें ही तुलसीका भला है।

(ङ) तुलसीकी जन्मभूमि : कोशल देश

(१) घरमके सेतु, जग मंगलके हेतु,
भूमि भार हरिबेको अवतार लिया नर को।
नीति औ प्रतीति प्रीतिपाल चालि प्रभु,
मानलोक वेद राखिबेको पन रघुबर को।
बानर विभीषनकी ओरके कनावड़े हैं
सो प्रसंग सुन अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति अपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घर जायरु है घर को।

—कवितावली, उत्तर कांड, १२२

श्री चंद्रबली पांडेने इस कवित्तमें तुलसीका घर खोज निकाला है। वे बहुत सूक्ष्म पकड़वाले सुधी शोधी थे। रामने विभीषण और वानरोंका ऋण अपने ऊपर स्वीकार किया, उनके कृतज्ञ हुए। यह प्रसंग सुनकर अनुचर तुलसीका अंग-अंग जलने लगा। रामने वानरों एवं विभीषणपर यह कृपा की, मेरे ऊपर उन्होंने यह कृपा क्यों नहीं की ? पहले घरमें दिया जलाया जाता है, फिर मसजिद में। राम वेद-रीति और लोक-रीति दानोंका पालन करनेवाले हैं। वानरोंपर पहले कृपा करके रामने लोकरीतिका उल्लंघन किया है। इसी की और रामका ध्यान आकृष्ट करते हुए तुलसी कहते हैं—हे प्रभु, जो आपकी रीति हो वही करिए, मुझको क्या, मैं तो आपका घरजाया (गुलाम हूँ) ही नहीं हूँ, आपके घरका घरजाया हूँ। दूसरा घर महत्त्वपूर्ण है। यह संकेते करता है कि तुलसीका घर कहीं अयोध्यामें ही था। पांडेजीने यह विवेचन अपने 'तुलसीदास' नामक ग्रन्थमें किया था (पृष्ठ १६)।

डा० माता प्रसाद गुप्तने इसे स्वीकार नहीं किया और कबीरका ऐसा ही एक सबद उन्होंने उद्धृत किया—

कहत 'कबीर' गुलाम घरका, जिआइ भावै मारि।

—संत कबीर, पृष्ठ ७२

तुलसीका खंडन उन्होंने कबीरसे किया, क्योंकि कबीरका जन्मस्थान चाहे काशी हो या मगहर, निश्चय ही अवध नहीं था। पांडेजी की बात बहुत बारीक थी, उसे पकड़ पाना बहुत सहज नहीं था।

२—इस पर 'तुलसी' की जीवनभूमिमें पांडेजीने एक दूसरा प्रबल प्रमाण प्रस्तुत किया। जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह 'व्रजनिधि' (सं० १८११-१८६० वि०) का एक ग्रन्थ है 'हरिपद संग्रह'। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'व्रजनिधि-ग्रन्थावली' में उक्त 'हरि-पद संग्रह' संकलित है। इस 'हरिपद संग्रह' में किसी अनन्यका निम्नांकित पद संचित है—

जय जय तुलसी दास गुसाई। सिया राम दृग दाई बाई ॥
रघुबर की बर कीरति गाई। जै जनन्य तिनके मनभाई ॥८४॥

भाई अनन्य मनहिं सुकीरति, विमल रघुबर राम की।
अति विचित्र चरित्र बानी प्रकट कीनौ भाय की॥
कुटिल कलि के जीव तीन पै, अति अनुग्रह तुम करचो।
त्रिविध ताप सँताप हिय को, दया करि सबको हरचो॥ ८५॥

जै जै श्री तुलसी तरु जंगम राजई। आनँद वन के मांहि प्रगट छवि छाजई॥
कविता मंजरि सुन्दर साजै। राम भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै॥ ८६॥
रमि रहे रघुनाथ-अति ह्वै, सरस सोधों पाइके। अतिही अमित महिमा तिहारी, कहौं कैसे गाइकै॥
तुलसी सुवृन्दा सखी को, निज नाम तें वृन्दा सखी। दास तुलसी नाम की यह रहसि, मैं मन में लखी।८७।

कोसल देश उजागर कोनौ। सबहिन को अद्‌भुत रस दीनौ॥
छिन छिन उमगे प्रेम नवीनौ। उमड़ि घुमड़ि भर लाइ रँगीनौ॥८८॥
रंग की बरखा करी बहू, जीव सन्मुख करि लिये।
जनक नंदिनि-राम-छवि मैं भिजै दीने जन-हिये॥
बस निरंतर रहत जिनके, नाथ रघुबर जानकी।
वे दास तुलसी करहु मोपर, दया दंपति दान की॥८९॥
सुन्दर सियाराम की जोरी। वारौं तिहिं पर काम करोरी॥
दोउ मिलि रंगमहल में सोहैं। सब सखियन के मन को मोहैं॥९०॥
सकल सखियन में सिरोमनि, दास तुलसी तुम रहौ।
करौ सेवन रचित रुचि सों, सुजस की बानी कह्यौ॥
दास यह तुव 'अनन्य' तापर, रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्ह की, कृपा करि अपनी करी॥९१॥

व्रजनिधि ग्रन्थावलीमें यह रचना यद्यपि ८ पदोंके रूपमें (८४-९१) स्वीकृत है, पर यह वस्तुतः एक पद है, जिसमें कुल चार बंद हैं। एक-एक बंद दो-दो छंदोंके मेलसे बना है। प्रत्येक बंदके प्रथम चार चरण चौपाई हैं, अंतिम चार चरण हरिगीतिकाके। चौपाई और हरिगीतिकाका युगनद्धीकरण नागरीदासने भी किया है। अस्तु।

इस पदसे दो बातें ज्ञात होती हैं—

१—तुलसीने कौशल देशको उजागर किया।

२—तुलसीदासकी अंतरंग साधना रसिक भाव की—सखी भाव-की थी। उनका सखी नाम 'वृन्दा' था।

इस प्रकरणमें निम्नांकित चरण ही अभीष्ट है—

'कोसल देस उजागर कीनो'

पांडेजीने अनन्य पर भी विचार किया है। एक अनन्य तो तुलसीदासजीके समकालीन थे। इनका विवरण भवानीदासके 'गोसाईं चरित' में आया है। उक्त चरितके अनुसार यह कवि और भक्त थे और तुलसीदाससे इनकी भेंट भी हुई थी। इनका पूरा नाम 'अनन्य माधो' था। गोसाईं चरितमें इनका एक पद भी उद्धृत है—

'तब ते वहां पतित नर रह्यो'

पांड़ेजीने तुलसीकी जीवनभूमिमें इसे भी पूर्ण रूपसे उद्धृत कर दिया है। यह रसूलाबादके निकट कौटरा गांवके निवासी थे।

दूसरे अनन्य प्रसिद्ध अक्षर अनन्य हैं, जिनका समय सं० १७१०-९० वि० है, जो सेनुहड़ाके जागीरदार पृथ्वीचंद 'रसनिधि' के गुरु थे और जिनका संपर्क महाराज छत्रसालसे भी था।

मेरी समझसे प्रस्तुत पद तुलसीके मिलनेवाले अनन्य माधोका ही है, अक्षर अनन्यका नहीं। जो भी हो यह रचना सं० १८९० के पहले की है, बाद की नहीं।

३—भवानीदास कृत गोसाईं चरित्रमें गोसाईंजीको तिरहुत यात्राके प्रसंगमें मैथिल ब्राह्मणोंने गोसाईजीको अवधवासी जानकर उनसे दिल्लगी की है—

पुनि आगे कहूँ चलें जाइ पहुँचे इक ठाई। मैथिल ब्राह्मण को समाज एक लख्यो तहांई॥
तिनसे पूछ्यो पंथ, अवधवासी पहिचाने। दै गारी परिहास कियो, तिन नातो माने॥
तब कह्यो गोसाइं तुम हमहि, गारी बिन समुझे कहो।
श्री जानकीजीके दास हम, 'दास' बाल अन्तर नहीं॥

भवानीदासकी रचना सम्वत् १८२५ वि० के आसपासकी है। यह 'अवधवासो' आंख खोलनेके लिए पर्याप्त होना चाहिए।

पांड़ेजी तुलसी चौरा को ही तुलसीको जन्मभूमि होनेका अनुमान करते हैं। पर न तो 'मूल गोसाइं चरित', न मोहन साइंका तुलसो चौरावाला गीत हो, इसमें सहायक सिद्ध होता है। उलटे वे घोषित करते हैं कि तुलसी चौरा तुलसीकी जन्मभूमि नहीं है। वह सिद्ध-स्थल अवश्य है और उसकी सिद्धि 'रामचरित मानस' की रचनासे और भी जगमगा उठी। यदि तुलसी चौरा तुलसीकी जन्मभूमि होता, तो तुलसीको वहाँसे आनेवाले अन्त अथवा योगानिमें जल मरनेवाले उस सिद्ध-पीठके योगीराज अवश्य उनसे इस ओर कुछ संकेत कर जाते।

मेरी धारणा है कि तुलसीदासजोका जन्म अयोध्यामें नहीं, अयोध्याके आसपास संभवतः सरयू घाघराके संगम स्थल पसकाके पास किसी गाँवमें हुआ था। मेरी इस धारणाका पोषण ६ जुलाई १९६२ के 'आज'में प्रकाशित निम्नांकित समाचार करता है।

तुलसीदासजीका जन्मस्थान कहाँ

गोंडा, ५ जुलाई। नेपालके एक ग्रामसे उपलब्ध एक प्राचीन पुस्तकसे इस तथ्यकी पुष्टि हुई है कि गोस्वामी तुलसीदासका जन्मस्थान गोंडा जिलेके पसका क्षेत्रके राजापुर ग्राममें सरयू एवं घाघराके संगम स्थलपर स्थित सूकरक्षेत्र हैं।

तुलसी स्मारक समितिके अध्यक्ष डाक्टर अवध नारायण सिंहको उक्त प्राचीन पुस्तक नेपालके एक ग्रामसे प्राप्त हुई है। इस पुस्तकमें लिखा है कि तुलसीदासकी माता श्रीमती हुलसी श्री धनीर मिश्रकी पुत्री थीं और धनीर मिश्र पण्डित जगतनारायण मिश्र के पुत्र थे। उनका जन्म-स्थान दहड़ा ताल (दधिवाल) जिला बहराइचमें था। श्रीमती हुलसीके दो पुत्रियाँ कमला और विमला हुई जो सात-आठ वर्षकी अवस्थामें ही मर गईं। इसके उपरांत घाघरा सरयू संगमके निकट वाराहीदेवीमें उनके पति श्री आत्माराम, तुलसीदासके पिता, घोर तपस्या की, जिसके उपरांत गोस्वामी तुलसीदास का जन्म हुआ।

गोस्वामी तुलसीदासके पूर्वज बाँसडीह रियासत भदौली देवरियासे जबकि वहाँ सूखा पड़ा था, राजापुर पसका संगमके निकट आए थे और राजपुरोहित हो गए थे। ज्ञातव्य है कि घाघरा और सरयूके संगम पसकामें गोस्वामी तुलसीदासकी हस्तलिखित रामचरित मानसकी प्रति भी है।

—'आज' ६ जुलाई, १९७२ पृष्ठ १० कालम ३

३. नाम

बचपनमें तुलसीदासका एक नाम राम बोला था। यह इनके आत्म कथनोंसे ही प्रकट है—

१—रामको गुलाम, नाम रामबोला, राख्यो राम काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।

—विनय पत्रिका ७६

२—साहिब सुजान जिन स्वान हू को पक्ष कियो, रामबोला नाम हौं, गुलाम राम साहिको

—कवितावली, उत्तरकांड ९४

बादमें इनका नाम तुलसी हुआ और विरक्त होनेपर तुलसीदास—

१—नाम तुलसी, पै भोड़े भाग सों कहायो दास, किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाजको

—कवितावली, उत्तरकांड १३

२—नाम रामको कलपतरु, कलि कल्यान निवास जो सुमिरत भे भाँग तें, तुलसी तुलसीदास

—दोहावली, ११

४. गोसाईं

तुलसीदासको हमलोग 'गोसाईं तुलसीदास' कहते हैं, कभी-कभी 'गोस्वामी तुलसीदास' भी कहते हैं। यह गोस्वामी और गोसाईं क्रमशः तत्सम एवं तद्भव शब्द हैं और अर्थके दृष्टिसे एक दूसरेके पर्याय हैं। यह गोसाई शब्द तुलसीदासके जीवनकालमें ही इनके नामके साथ जुड़ गया था, जैसा कि वे हनुमान बाहुक (छंद ४०) में कहते हैं—

'तुलसी गोसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो, ताको फल पावत निदान परिपाक हौं'

जैसे महाकवि सूरदासको, साहित्य लहरीके एक पदके अनुसार चंद बरदाईका वंशज समझनेकी भूल कुछ लोग करते हैं, उसी प्रकार कुछ लोग तुलसीदासजीको गोसाई नामक जाति विशेषमें उत्पन्न माननेका भ्रम करते हैं। गोसाईं एक जाति है, जो पथ-भ्रष्ट योगियोंकी संतान हैं। यह गृहस्थ जीवन बिताती है और शिवोपासना करती है। इसे अतीथ भी कहते हैं। इस संप्रदायके लोगोंको न तो प्रणाम किया जाता है, न नमस्कार। 'नमो नारायण' कहकर इनका अभिवादन किया जाता है। बनारस-आजमगढ़ आदि जिलोंमें इस जातिके लोग प्रचुर संख्यामें बसे

हुए हैं। इनमेंसे कुछ लोग सारंगीपर गोपीचंद भरथरीके गीत गाते हुए भीख भी मांगते हैं। तुलसीदासजीका संबंध इस जातिसे नहीं था।

हमारे यहां (ज्ञानपुर जिला वाराणसीमें) गोसाइँ शब्दका प्रयोग इसी जातिके लिए होता है। हमारी तरफ एक शब्द 'साइँ' भी प्रचलित है। यह भी स्वामी ही है। पर इसका प्रयोग मुसलमान फकीरोंके लिए होता है। हमारे गाँवमें गोसाइँ शब्द एक ग्रौर भी ग्रर्थमें प्रयुक्त होता रहा है। गांवका पुरोहित वंश गोसाइँ कहा जाता था। यह प्रयोग ग्रब भी कुछ पुराने लोग कर देते हैं। मेरे लड़कपनमें तो इस शब्दका प्रयोग पूर्णरूपसे होता था। यह पुरोहित वंश सरयूपारीण दुबे ब्राह्मणोंका है—शैवयोगियों वाली गोसाइँ जातिका नहीं। यह पुरोहित-वंश परंपरासे दीक्षा देनेका भी काम करता ग्राया है—गुरु घराना है, इसीलिए इसे गोसाइँ कहते हैं। इसी ग्रर्थमें बिठ्ठलनाथ गोसाइँ हैं ग्रौर हित हरिवंशजी गोस्वामी। तुलसीदासजीने भी कुछ शिष्योंको दीक्षा दी थी ग्रौर इसी ग्रर्थमें वे भी गोसाइँ या गोस्वामी कहलाते थे।

गोसाइँ = दीक्षा-गुरु।

५. कुल

गोसाई तुलसीदासजी जातिसे ब्राह्मण थे। यह तथ्य सर्वमान्य हैं। इस संबंधमें निम्नांकित ग्रंतः साक्ष्य प्राप्त है—

१—भागीरथी जल पान करौं, ग्ररु नाम द्वै रामके लेत नितै हौं
मोको न लेनी न देनी कछू, कलि ! भूलि न रावरी ग्रोर चितैहौं
जाति कै जोर करौ परिनाम, तुम्हैं पछितैहौं पै मैं न मितैहौं
ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं, ज्यों ही तिहारे हिए न हितैहौं।—कवितावली उत्तरकांड १०२

२—भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहिकै—वही, उ० कांड, ३३।१

३—दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारिको—विनय पत्रिका, १३५।३

४—'जायो कुल मंगन, बधायो न सुनायो काहू, भयो परिताप पाप जननीजनकको

—कवितावली, ७३।१

पर वे कौनसे ब्राह्मण थे, इस संबंधमें मतभेद रहा है। कोई उन्हें सारस्वत, कोई कान्यकुब्ज, कोई सरयूपारीण, कोई सनाढ्य कहते हैं। ग्रधिकांश लोग इन्हें सरयूपारीण ही मानते हैं।

(क) सारस्वत:

फ्रांसि बूचननने 'ऐन ग्रकाउंट ग्राफ़ द डिस्ट्रिक्ट ग्रॉफ़ पूर्णिया इन १८०९-१०', लिखा था। वी० एच० वैकसनने इसे १९२८ ई० में संपादित किया था। इसके पृष्ठ १७३ पर तुलसीदासको काशीका सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है। सारस्वत ब्राह्मण तो पंजाबमें होते हैं। इनका नाम सरस्वती नदीके ग्राधार पर पड़ा है।

दि वर्क इन दि पोएटिकल हिन्दी लैंग्वेज दैट इज़ बाइ फ़ार इन ग्रेटेस्ट रिप्यूट हीग्रर इज़ दि रामायण ग्रॉफ़ तुलसीदास, हू इज़ सैंड् टु हैव बीन ए सारस्वत ब्राह्मण ग्रॉफ़ काशी।

'हिन्दी भाषामें सर्वाधिक प्रख्यात काव्य तुलसीदासका रामायण है। यह तुलसीदास काशीके सारस्वत ब्राह्मण कहे जाते हैं।' —तुलसीकी जीवन भूमि, पृष्ठ २७२।

फ्रांसिस बूचननके ग्रतिरिक्त ग्रौर किसीने तुलसीको सारस्वत ब्राह्मण नहीं कहा है।

(ख) कान्यकुब्ज:

१—तुलसी साहिबने घट रामायणमें गोसाईजीको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा है—

कान्हकुब्ज बाह्मन मोरी जाता ।—घट रामायण, भाग २, पृष्ठ १८२, पंक्ति ६

२—लाला तुलसीराम अगरवाल, मीरापुर, अंबाला निवासीने १६१३ वि०में भक्तमालाका उर्दू अनुवाद 'भक्तमाल प्रदीपन' नामसे किया था। इसमें भी तुलसीदासजीको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा गया है।

३—तुलसीरामके उक्त भक्तमाल प्रदीपनका हिन्दी अनुवाद पडरौना जिला देवरियाके राजा ईश्वरीप्रताप रायने 'भक्तकल्पद्रुम' नामसे संवत् १६२३ वि०में किया और उक्त लालजीके अनुसार इन्होंने भी गोस्वामीजोकी कान्यकुब्ज ब्राह्मण स्वीकार किया।

'गोस्वामी तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहे'

—भक्तमाल या भक्तकल्पद्रुम, बारहवां संस्करण १६५२ ई० पृष्ठ ११० पंक्ति २।

पहले मिश्र बंधुओंने भी भक्त कल्पद्रुमके आधारपर गोसाई जीको कान्यकुब्ज ब्राह्मण स्वीकार किया था, पर बादमें उन्होंने भी अन्य लोगोंके समान इन्हें सरवरिया स्वीकार कर लिया। देखिये—मिश्रबन्धु विनोद प्रथम भाग, पंचम संस्करण सं० २०१३ वि०, पृष्ठ २६८

'इनका जन्म संवत् १५८६में राजापुर जिला बांदामें सरयूपारिणी ब्राह्मण आत्माराम दुबेकी धर्मपत्नी हुलसीके गर्भसे हुआ।'

—हिन्दो नवरत्न, पंचम संस्करण, १६३८ ई०, पृष्ठ ६८।

'गोस्वामीजी सरयूपारीण द्विवेदी ब्राह्मण कहे जाते हैं। एक समय हमें इनके कान्यकुब्ज ब्राह्मण होनेका सन्देह राजा प्रताप सिंह कृत 'भक्त कल्पद्रुम'के आधारपर हो गया था, किन्तु अन्य प्रमाण इन्हें सरयूपारीय सिद्ध करते हैं और सरयूपारीण हैं कान्यकुब्ज ही।

अतएव उपर्युक्त दोनों आधारोंमें वास्तविक भेद भी नहीं रह जाता। इनके जन्म स्थान राजापुर जिला बांदामें जांच करनेसे भी यही बात निकलती है।''

शिवनंदन सहाय भी इसी द्विविधामें रहकर इन्हें 'सरयूपारी कान्यकुब्ज कहते हैं। उनका कहना है कि राजा रामके अश्वमेधके समय कुछ कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंने अयोध्यामें जाकर दान लिया था और वहीं बस गये थे, वे ही सरयूपारी भी हैं और कान्यकुब्ज भी। पर यह सब समझौतेको बातें हैं।

(ग) सरयूपारीण

१—एच० एच० विलसनने 'ए स्केच ऑफ़ दि रेलिजन्स ऑफ़ दि हिन्दूज' नामक ग्रंथ लिखा था। उसके तीसरे खंडमें पृष्ठ ६३-६४ पर उन्होंने तुलसीदासजीका विवरण दिया है। इसमें उन्होंने तुलसीदासको सरवरिया ब्राह्मण लिखा है—

तुलसी वाज़ ए ब्राह्मण ऑफ़ दी सरवरिया ब्रांच एंड ए नेविट ऑफ़ हाजीपुर नियर चित्रकूट। —तुलसीकी जीवनभूमि, पृष्ठ २७५

'तुलसीदास सरवरिया शाखाके ब्राह्मण और चित्रकूटके निकट हाजीपुरके निवासी थे।'

२—विलसनके ही आधारपर तासी (१८३९ ई०)ने गोसाईंजीको सरवरिया ब्राह्मण एवं हाजीपुरका निवासी स्वीकार किया है—

—देखिए हिंदुई साहित्यका इतिहास, पृष्ठ ९५ पंक्ति ७-८।

३—महेश दत्त शुक्ल (सं० १९३०) ४—मातादीन मिश्र (सं० १९३०), ५—शिव सिंह सेंगर (सं० १९३४ वि०) और ६—ग्रियर्सन (१८८८ ई०) ने गोसाईंजीको सरयूपारीण ही माना है। इधर ७—शिवनन्दन सहायने भी इन्हें सरयूपारीण ही स्वीकार किया है। ८ मिश्र-बन्धुओंने पहले इन्हें कान्यकुब्ज कहा था, पर अन्तमें वे भी इन्हें सरयूपारीण मानने लगे थे। ९—आचार्य शुक्ल, १०—बाबू श्यामसुंदर दास, ११—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि सभी विद्वान इन्हें सरवरिया ही मानते हैं।

डा० माताप्रसाद गुप्त कान्यकुब्ज और सरयूपारीणके झमेलेका निर्णय नहीं कर सके हैं और लिखते हैं—

'तुलसीदासकी जातिपांतिकी भी लगभग वही परिस्थिति है, जो उनके जन्मस्थानकी और इस सम्बन्धमें भी अंतिम निर्णय करना प्राप्त साक्ष्योंके आधारपर उपयुक्त न होगा।'

—तुलसीदास, पृष्ठ १६८

मूल गोसाईं चरितमें गोसइंजीकी जाति उपजातिका कुछ और भी विस्तृत विवरण है। इसके अनुसार गोसाइं जो सरवरिया ब्राह्मण थे, पराशर गोत्रीय थे, पतौजाके दुबे थे—

सरबार सुदेसके विप्र बड़े सुचि गोत परासर टेक कड़े
सुभ थान पतेजि रहे पुरखे तेहि ते कुल नाम पड़े झुरखे
यमुना तट दूबनको पुरवा बसते सब जातिनके कुरवा

—मूल गोसाइं चरित, दोहा २, ४, ५, ६

काशीके सुप्रसिद्ध काष्ठ जिह्वा स्वामी देवकी भी यही मान्यता है। इनका कथन है—

'तुलसी परासर गोत्र दूबे पतियौजाके'

प्रसिद्ध रामायणी राम गुलाम द्विवेदी भी यही स्वीकार करते थे।

(घ) सनाढ्य ब्राह्मण

१—'दो सौ बावन वैष्णवकी वार्ता,में वार्ता २५१ नन्ददासकी है। नन्ददासको शीर्षक ही में सनाढ्य ब्राह्मण कहा गया है।

'अब श्री गुसाइंजीके सेवक नन्ददास जी, सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुरमें रहते, जिनके पद अष्टछापमें गाइयत हैं तिनकी वार्ताके भाव कहत हैं।'

पुनः प्रसंग १के पहले ही तुलसीदास और नन्ददासको भाई-भाई एवं सनाढ्य कहा गया है—

'सो वे तुलसीदास जीके भाई सनोढ़िया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदास जी तो बड़े भाई और छोटे भाई नंददास जी हते।'

२—पं० गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'ने तुलसी संवत् ३०५ आषाढ़की माधुरीमें 'महाकवि गोस्वामी तुलसीदास' शीर्षक एक लेख छपवाया था। उसे उन्होंने 'सुकवि सरोज' द्वितीय भागमें संकलितकर दिया है। सुकवि सरोजमें सनाढ्य ब्राह्मण कवियोंके परिचय एवं उनकी कविताओं के उदाहरण हैं। यहां गो० तुलसीदास 'श्री पं० गोस्वामी तुलसीदासजी शुक्ल हो गये हैं। इसी

प्रकार 'नंददास' जी भी 'श्री पं० नंददास जी शुक्ल हो गये हैं। यह 'शुक्ल' तो तुलसीदास वाल 'भले कुल' वाला 'सुकुल' हैं, हठवादिताके कारण जिसकी यह अगति, कुगति और दुर्गति कर दी गई है।

३—डा० दीनदयालु गुप्तने भी अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृष्ठ २५६ पर में तुलसीदास और नंददासको भाई एवं सनाढ्य ब्राह्मण स्वीकार किया है।

तुलसीदास और नंददास सगे सहोदर थे। यह अब भी निश्चत होना बाकी है। नंददास सनाढ्य थे, इसमें सन्देह नहीं, पर तुलसी भी सनाढ्य थे, यह ठीक नहीं।

४—पं० रामनरेश त्रिपाठी सोरों समर्थक थे। वे भी तुलसीको सनाढ्य ब्राह्मण मानते थे। वे लिखते हैं—

'तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे—यदि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरिया ब्राह्मण होते तो (काशी) में उनके जाति बतानेमें कोई खटका नहीं था, क्योंकि इन नामोंसे काशीके लोग परिचित थे। वे थे सनाढ्य। पूर्वी प्रान्तोंमें सनाढ्योंकी बस्ती आज तक भी कम है। पहले तो बिलकुल न रही होगी। सनाढ्योंमें विद्वानोंकी संख्या अब भी बहुत कम है। इससे काशीके लोग विश्वास ही न करते रहे होंगे कि सनाढ्य भी कोई ब्राह्मण होते हैं।

डा० माताप्रसाद गुप्त इस तर्कके अत्यंत निर्बल मानते हैं। वे कहते हैं 'यदि तुलसीदास अपनी जाति पाँतिके सम्बन्धमें उठाये हुए आक्षेपोंका उत्तर जाति पाँति बतलाकर नहीं देते—या नहीं देना चाहते—तो इससे यह निष्कर्ष निकला कि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरयूपारीय नहीं थे, कदाचित् तर्क संगत नहीं है।'

वास्तविकता यह हैं कि गोसाइँजी जाति पाँतिसे ऊपर उठ चुके थे और खीझकर ही उन्होंने कहा है—

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।

जिस सनाढ्य जातिके लिये महाकवि केशव कहते हैं।

'सनाढ्य जाति गुणाढ्य'

उसके संबंधमें पं० रामनरेश त्रिपाठीके ऐसे विचार समीचीन नहीं।

६. परिवार

डा० सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सनने गोसाइँ तुलसीदासके माता पिताका नाम दिया है। ग्रियर्सनने द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ् हिंदुस्तान (१८८८ ई०)में सर्व प्रथम यह उल्लेख किया कि भक्त सिंधु और बृहद् रामायण महात्म्यमें तुलसीदासजीके पिताका नाम आत्माराम और माताका नाम हुलसी दिया है।

एकौर्डिंग टु दि भक्तसिन्धु ऐंड दि बृहद्रामायण माहात्म्य, हिज् फादर्स नेम वाज् आत्माराम, हिज् मदर्स नेम वाज् हुलसी।

पाँच वर्ष बाद ग्रियर्सनने इण्डियन ऐण्टिक्वैरी १८९३ ई०के पृष्ठ ५३ पर टिप्पणीमें निम्नांकित तीन दोहे दिये—

दूबे आत्माराम हैं, पिता नाम जग जान माता हुलसी कहत सब, तुलसीके सुन कान ॥१॥
प्रह्लाद उधारन नाम है, गुरुका सुनिये साध प्रगट नाम नहिं कहत, जो कहत होत अपराध ॥२॥

दीनबंधु पाठक कहत, ससुर नाम सब कोइ, रत्नावली नाम है, सुत तारक गत होइ ॥३॥

ग्रियर्सनने इन दोनोंका सूत्र नहीं दिया है कि उन्हें ये कहांसे मिले अथवा किस ग्रन्थसे उन्होंने इन्हें उद्धृत किया। इन दोनोंसे इनके पिताका नाम आत्माराम दूबे, माताका हुलसी, गुरुका प्रह्लाद उधारन अर्थात् नरसिंह, ससुरका दीनबंधु पाठक, पत्नीका रत्नावली और पुत्रका तारक ज्ञात होता है। पुत्र अल्प आयु हुआ, यह भी सूचना मिलती है।

मूल गोसाइं चरितमें इनकी माताका नाम हुलसी दिया हुआ है यथा—

उदये हुलसी उर धाटिहि ते सूर संत सरोरुहसे विकसे

यह नाम कई बार आया हे। पिताका नाम नहीं आया है। उन्हें राजगुरु ही कहा गया है।

हुलसी नाम वैसे भी प्रसिद्ध है—विशेषकर निम्नांकित दोहे और इसमें अंतर्निहित कथाके कारण—

सूर तिय, नर तिय- नाग तिय, अस चाहत सब कोय, गोद लिये हुलसी फिरैं तुलसीसो सुत होय।

रामचरितमानसमें प्रयुक्त हुलसीको भी लोग मातृ-नाम सूचक समझते हैं। पर यह क्रिया रूपमें प्रयुक्त है यथा—

शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, रामचरित मानस कवि तुलसी।

एकाध स्थलपर संज्ञा रूपमें भी है

रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी, तुलसिदास हिय हिय हुलसी सी।

७. तुलसीदास और नंददासका भ्रातृत्व

'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' की बदौलत तुलसीदास और नंददासके भ्रातृत्वकी समस्या उठ खड़ी हुई है। इस समस्यापर सम्यक् रूपसे अभी विचार नहीं हो पाया है। उक्त वार्ताका नवीनतम संस्करण शुद्धाद्वैत अकेडमी कांकरौली द्वारा तीन भागोंमें हुआ है। तृतीय भागमें नंददासकी वार्ता, वार्ता संख्या २४१ पर है। आगे भ्रातृत्ववाले अंश उद्धृत किए जा रहे हैं—

अब श्री गुसाईंजीके सेवक नंददासजी, सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुरमें रहते, जिनके पद अष्टछापमें गाइयत हैं, तिनकी वार्ताको भाव कहत हैं—

भाव प्रकाश···सो ये पूरबमें रामपुर ग्राममें जन्मे।

वार्ता प्रसंग १

सो वे तुलसीदासजीके भाई सनोढ़िया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नंददासजी हते। सो वे नंददासजी पढ़े बहुत हते।

तुलसीदासजी तो रामानंदीनके सेवक हते। सो नंददास हूको रामानंदीनको सेवक करवायो। उन नंददासको लौकिक विषयमें प्रीति बोहोत हती। जो कहूँ भवैया नांचे, तो तहां जायकै ठाढ़े रहें। सुनबे लगें। सो तुलसीदासजी नंददासको बहोत समुझावैं, जो जहां तहां तू मति बैठ्यो करै। सो वे नंददास मानते नाहीं।

सो कछुक दिनमें एक संग पूरबको चल्यो तहां ते, श्री रनछोड़जीके दरसको श्री द्वारकाजीको चल्यो, तब नंददासने मनमें बिचारी, जे बने तो मैं ऐसे संगमें श्रीरनछोड़जीके दरसन करि आऊं। तब नंददासने तुलसीदासजी सों कह्यो, जो तुम कहो तो मैं या संगमें श्रीरनछोड़जीके दरसन करि

२१

आऊं। तब तुलसीदासजीने नंददासको बहोत समझाये, जो कहूँ मति जाय, मारगमें दुःख बोहोत हैं। अनेक दुःसंग हैं। जो जायगो तो तू भ्रष्ट होय जायगो। तातें तू श्री रनछोरजी ताई न पहुँच सकेगो, बीच ही में रहेगो। तातें श्री रघुनाथजीको स्मरनकर और अपने घरमें बैठ्यो रहे। तब नंददासने तुलसीदासजी सों कह्यो, जो मेरे तो श्री रघुनाथजी हैं, परि मैं एक बार श्री रनछोरजीके दरसनको अवश्य करिकै जाऊंगो। तुम कोटि उपाय करो, परि मैं न रहूँगो। तब तुलसीदासजीने जान्यो, जो यह न रहेगो। तब संगमें जे मुखिया सिरदार हतो, ताके पास नंददास कौं लेके तुलसीदासजी गए। और मुखिया सों नंददासकी भलामन तुलसीदासजीने दीनी, जो यह नंददास तुम्हारे संग आवत है। तातें तुम मारगमें याकी खबरि राखियो। ऐसो करियो जो इहां फेरि नंददास आवे, काहु ग्राममें रहि न जाय। तबे वा मुखियाने कह्यो जो आछो, या बातकी चिंता मति करो। तो पाछे वह संग चल्यो, सो वाके संग नंददास हू चले। सो कछुक दिनमें वह संग मथुरा जीमें आय पहुँच्यो।

वार्ता प्रसंग ३

और एक समय श्री मथुरा जीको एक संग पूरबको चल्यो, गया श्राद्ध करिबे को। ता संगमें दस-पांच वैष्णवहू हते। तब तुलसीदासने सुन्यो जो संग आयो है। तब वह संगमें तुलसीदासजीने आइ कै पूछी, जो एक नंददास ब्राह्मन इहां तैं गयो है, सो मथुरा जीमें सुन्यो है। सो तुमने कहूँ देख्यो होय तो कहो। तब एक वैष्णवने कही जे तुलसीदास जी, एक नन्ददास तो श्री गुसाईं जीको सेवक भयो है। सो वह नन्ददास पहले तो अत्यन्त विषयी हतो, सो अब तो बड़ो ही कृपापात्र भगवदीय भयो है। तब तुलसीदास जी अपने मनमें बिचारे, जो ऐसों तो वही नन्ददास है, सो श्री गुसाईं जी कौ सेवक भयो है। जो अब तो उनको मेरी शिक्षा न लगेगी। तब तुलसीदास जीने उन वैष्णवन सों कह्यो जो मैं तुमको एक पत्र देऊं ताकौ जुवाब तुम मोकों मँगाय देउगे? तब उन वैष्णवनने तुलसीदासजी सों कही, जो काल्हि मेरो मनुष्य श्री गोकुलको चलेगा। जो तुमको पत्र देने होय तो लिख कै बेगि तैयार करियो। तब तुलसीदासजीने ताही समें पत्र लिखिकै तैयार कियो। तामें लिख्यो जो तू पतिव्रत धर्म छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो, सो आछौ नाहीं कियो। अब तू आवे तो फेरि तोकों पतिव्रत धर्म बताऊं। सो यह पत्र तुलसीदासजीने वा वैष्णवके हाथ दियो। सो वह पत्र अपने पत्रनमें धरिकै वा वैष्णवने कासिदके हाथ दियो। सो वह पत्र लै कै श्री गोकुल आयो। तब कासिदने दंडवत करिके वे पत्र श्री गुसाईंजीके आगे धरे। तब उन पत्रनमें नन्ददासके नामको जो पत्र हतो सो निकस्यो। तब श्री गुसाईंजीने वह पत्र बाँचिके नन्ददासको बुलायके दियो। तब नन्ददासने वह पत्र लै कै बांच्यौ। पाछें वा पत्रको प्रति उत्तर लिख्यो, जो मेरो तो प्रथम रामचन्द्रजी सौं विवाह भयो हतो। सौ बीचमें श्रीकृष्ण दौरि आइकै लूटि ले गए। सो रामचन्द्र जीमें जो बल हो तो मोकों श्रीकृष्ण कैसे ले जाते? और श्रीरामचंद्रजी तो एक पत्नीव्रत हैं। सो दूसरी पत्नीके कैसे सँभार सकेंगे? एक पत्नीहू बारबरि सँभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयौ। और श्रीकृष्ण ता अनन्त अबलानके स्वामी है और इनकी पत्नी भये, पाछें कोई प्रकारको भय रहे नाहीं है। एक कालावच्छिन्न अनन्त पत्नीनको सुख देत हैं। जासों मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं। सो जानोंगे। सो मैं तो अब तन मन धन यह लोक परलोक श्रीकृष्णको दीनी है। (और) अब तो मैं परवस होइ कै परयो हूँ। ऐसो नन्ददासने तुलसीदासजीको पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो यह—

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब तें श्रवन सुन्यो री आली, भूली री भवन, हौं तो बावरी भई री,
भरि भरि आवै नैन, चित न परत चैन, मुख हू न आवै बैन, तनकी दसा कछु और ही भई सी।
जेतेक नेम धरम व्रत कीने री मैं बहु विधि, अङ्ग अङ्ग भई हौं तो श्रवनभई री।
'नन्ददास' जाके श्रवन सुने यह गति, माधुरी मूरति कैंधों कैसी दई री।

यह कीर्तन नन्ददासने पत्रमें लिखिकै वह पत्र कासिदको दियो। सो वह कासिद कितेक दिननमें आयो। सो वे पत्र सब वैषणवको दिए। तब उन वैष्णवने वह नन्ददासको पत्र बाँचिके तुलसीदासको बुलायके दीनो। पाछें तुलसीदासने नन्ददास कौ पत्र बाँचि कै अपने मनमें जान्यो, जो अब नंददास इहाँ कबहू न आवेगो। ऐसो जानि कै तुलसीदासजी अपने घर आए।

वार्ता प्रसंग ४

और एक समैं तुलसीदासजीने विचार कियो जो नंददास श्री गोकुल में है, सो मैं जाइ कै लिवाय लाऊँ। यह बिचारिके तुलसीदास कासी तें चले, सो कितेक दिनमें श्री मथुराजीमें आइ पहोंचे। तब श्री मथुराजीमें पूछे जो इहाँ नन्ददास ब्राह्मन कासी तें आयो है, सो तुम जानत होउ तो बताओ, को वह कहाँ होयगो। तब काहूने कह्यो जो एक नन्ददास तो आइकै श्री गोसाईंजीको सेवक भयो हैं, सो तो गोकुल होयगोके गिरिराज होयगो। तब तुलसीदासजी प्रथम तो श्री गोकुल आए। सो श्री गोकुल की सोभा देखिकै तुलसीदास कौ मन बोहोत ही प्रसन्न भयो। पाछें तुलसीदासजी मनमें विचारे जे ऐसे स्थल छोड़िकैं नन्ददास कैसे चलेगो? ता तुलसीदासजीने तहाँ पूछयो जो एक नन्ददास ब्राह्मन है सो कहाँ होयगो? तब काहूने कही जो एक नन्ददास तो श्री गुसाईजीको सेवक भयो है। सो तो श्री गुसाईजी श्रीनाथजी द्वार गए हैं, सो उहाँही होयगो। तब तुलसीदासजी फेर मथुरामें आयकै श्री जमुनाजीके दरसन करै, पाछें तहाँ ते श्री गिरिराजजी गए। सो उहाँ परासोली में तुलसीदासजी नन्नदासजीको मिले। तब तुलसीदासजीने नन्ददास सों कही जो तुम हमारे संग चलो। सो गाम रुचे तो अयोध्यामें रहो, पुरी रुचे तो कासीमें रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूटमें रहो, वन रुचे तो दंडकारण्यमें रहो, ऐसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र करे हैं। तब नन्ददासने उत्तर देयबेको यह पद गायो। सो पद—

राग सारंग

जो गिरि रुचे तो बसो श्री गोवर्द्धन, गाम रुचे तो बसो नन्दगाम।
नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम॥
सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
'नंददास' कानन रुचे तो, बसो भूमि वृन्दावन धाम।

पाछें नन्ददास सूरदासजी सों मिलि कै श्रीनाथजीके दर्शन करबे को गए। तब तुलसीदासजी हू बनके पाछे पाछे गए। जब श्री गोवर्द्धननाथजीके दरसन करे तब तुलसीदासजीने माथे नवायो नाहीं। तब नन्दसास जानि गए जो ए श्री रामचन्द्रजी बिना और दूसरेको नहीं नमे हैं। तब नंददासने मनमें विचार कीनो जो यहाँ और श्रीगोकुलमें इनको श्रीरामचन्द्रजीके दरसन कराऊँ। तब ये श्रीकृष्णको प्रभाव जानेंगे। पाछें नन्ददासने श्रीगोवर्द्धन नाथजी सों विनती करी। सो दोहा—

कहा कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ। तुलसी मस्तक तब नमे, धनुष बान लेहु हाथ ।।

यह बात सुनि कै श्रीनाथजीको श्री गुसाईंजीकी कानि तें विचार भयो, जो श्री गुसाईंजीके सेवक कहे सो हमको मान्यो चाहिए। पाछें श्री गोवर्द्धन नाथजीने श्रीरामचन्द्रजीकौ रूप धरिके तुलसीदासजीको दरसन दिए। तब तुलसीदासने श्री गोवर्द्धन नाथजीको साष्टांग दंडवत करी। जब पाछें तुलसीदासजी दरसन करिके बाहर आए, तब नन्ददास श्री गोकुल चले। तब तुलसीदासजी हुँ संग संग आए। तब आयके नन्ददासने श्री गुसाइंजीके दरसन करि साष्टांग दंडवत करि और तुलसीदासजीने दंडवत करी नाहीं। पाछें नन्ददासको तुलसीदासने कही जो जैसे दरसन तुमने वहाँ कराए वैसे ही यहाँ करावो। तब नन्ददासने श्रीगुसाइंजी सों विनती करी, ये मेरे भाई तुलसीदास हैं, सो श्री रामचन्द्रजी बिना और को नहीं नमें हैं। तब श्री गुसाईंजीने कही, जो तुलसीदासजी बैठो। ता समैं श्री गुसाईंजीके पाँचवें पुत्र श्री रघुनाथजी वहाँ ठाढ़े हुते और उन दिननमें श्री रघुनाथजीको विवाह भयो हुतो। तब श्री घुसाइंजीने कही, जो श्रीरामचन्द्रजी, तुम्हारे सेवक आए हैं। इनको दरसन देहु। तब श्री रघुनाथलालजीने तथा श्री जानकी बहूजीने श्रीरामचन्द्रजीको तथा श्री जानकीजीको स्वरूप धरिकै दरसन दिए। तब तुलसीदासजीने साष्टांग दंडवत करी। पाछैं तुलसीदासजी दसरन करिकै बोहोत प्रसन्न भए। और यह पद गायो। सो पद—

राग सारंग

बननौ अवध श्री गोकुल गाम उत बिराजत जानकी वर, इतहि स्यामास्याम
जहाँ अरजू बहत अद्भुत, इहाँ जमुना बीर हरत कलि भलि दोउ मूरत, सकल जनकी पीर।।
मनि जटित सिर क्रीट राजत, संग लक्ष्मन बाल मोर मुकुट रु वेनु कर इहाँ, निकट हलधर ग्वाल।
उहाँ केवट सखा तारे, विसंसिके रघुनाथ इहाँ नृप जदुनाथ तारचो, कूप गहि निज हाथ ।।
उहाँ सिबरी स्वर्ग दीनो, सीतसागर राम इहाँ ल्याय चन्दन, किए पूरन काल।
भक्त हित श्रीराम कृष्ण, सु धरचो नर अवतार 'दास तुलसी' दोउ आसा, कोउ उबारो पार ।।

ता पाछें तुलसीदासजीके श्री गुसाईंजी सों दंडवत् करिकै कह्यो जो महाराज, नन्ददास तो पहले बड़ो विषयी हतो, सो अब तो याको बड़ी अनन्य भक्ति भई है, ताकौ कारन कहा है ? तब श्री गुसाइंजीने तुलसीदासजीको कह्यो जो नन्ददास उत्तम पात्र हुते, यातें पुष्टिमार्गमें आय कै प्रवृत्त भए। और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है। सो अब वे दृढ़ भए हैं। तब श्री गुसाइंजी श्रीमुखको वचन सुनिके तुलसीदासजी प्रसन्न होय श्री गुसाइंजीको दंडबत करिकै पाछैं आप विदा होय कासी आए। सो वे नन्ददास जी श्री गुसाइंजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते जिनके कहेतें श्रीगोवर्द्धन नाथजीको तथा श्री रघुनाथ लालजीको श्रीरामचन्द्रजीको स्वरूप धरि कै दरसन देने पड़े।

वार्ता प्रसंग ५

सो एक दिन नंददासके मनमें ऐसी आई जो जैसे तुलसीदासजीसे रामायण भाषा किये हैं तैसे हमहू श्रीमद्भागवत भाषा करें। पाछे नंददासने श्रीमद्भागवत दशम भाषा संपूरन कियो। तब मथुराके सब पंडित मिलिके श्री गुसाइंजी सों विनती कीनी जो महाराज, हम श्री भागवत्की कथा कहिके निरवाह करत हते। सो तुम्हारे सेवक नंददासजीने भाषामें श्रीभागवत कही है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो, तातें अब हमारे जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है।

तब श्री गुसाइँजीने नंददासको बुलायके कह्यो जो 'नंददास तुमने जो श्रीमद्भागवत भाषामें कीनों है, सो इन ब्राह्मनकी जीविकामें हानि होत है, तासों तुम ब्रजलीला तो पंचाध्याई ताईकी राखो और श्री जमुनाजीमें पधरायने श्री गुसाइँजीकी आज्ञा प्रमान मानिके ब्रजलीला ताई (भागवत) राखी, और सब श्री जमुनाजीमें पधार दीनो। सो वे नंददास जी श्रीगोसाइँजीके ऐसे आज्ञाकारी और कृपापात्र हते।

वार्तासे यह विस्तृत उद्धरण इसीलिये दिया गया है कि वार्ताके इन तुलसीजीकी पहचान भलीभांति हो सके। यह तुलसीदास काशीके हैं, काशीसे ही नंददास रणछोड़की यात्राके लिए चले हैं। काशीसे ही तुलसीदासने नंददासके पास पत्र भेजा। काशीसे ही वे नंददासको वापस लानेके लिये ब्रज गये। कृष्णमूर्तिके राममूर्तिमें बदलनेकी कथा तो प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदासके सम्बन्धमें परम प्रख्यात है। पंचवी वार्तामें स्पष्ट कर दिया गया है कि तुलसीदास रामायणके रचयिता हैं. और रामायणकी प्रतिस्पर्धामें ही नंददासने इसी दोहा चौपाई वाली शैलीमें श्रीमद्भागवतका भाषामें अनुवाद किया। स्पष्ट है कि वार्ताके तुलसीदास प्रसिद्ध रामचरित मानसके रचयिता गोसाइँ तुलसीदास ही हैं, कोई दूसरे तुलसीदास नहीं।

अब तुलसीदास और नंददासके भ्रातृत्वपर विचार करना चाहिए। वार्तामें कोई उल्लेख नहीं है कि तुलसीदास और नंददास दोनों किस प्रकारके भाई थे। सगे भाई थे, चचेरे भाई थे, ममेरे, फुफेरे, मौसेरे भाई थे। सगे और चचेरे भाई होनेपर दोनोंको एक ही गाँवका रहनेवाला एवं एक ही जाति उपजातिका होना आवश्यक है। ममेरे-फुफेरे और मौसेरे भाई होनेपर न तो एक ही गाँवका निवासी होना आवश्यक है, न एक ही उपजातिका, पर ब्राह्मणोंको विशाल सरयूपारीण, कान्यकुब्ज, सनाढ्य आदि जातियाँ नहीं बदलेंगी। दोनोंकी यह विशाल जाति एक ही रहेगी।

मेरा तो ऐसा खयाल है कि दोनोंका भ्रातृत्व काशीके नाते है। काशीमें एक साथ रहनेके कारण दोनों भाई हुए। वे न सगे हैं, न चचेरे, न मौसेरे, न ममेरे, फुफेरे, वे हैं गुरु भाई। एक ही गुरुके यहाँ शिक्षा पानेके कारण वे परस्पर भाई हैं। भवानीदास कृत गोसाइँ चरितमें इस प्रसंग का उपशीर्षक ही "अथ नंददास गुरुभाई प्रसंग" है। गुरुभाईका अर्थ है एक ही गुरुके शिष्य होनेके नाते भाई। 'मूल गोसाइँ चरित'में भी नंददासको तुलसीका गुरुभाई ही कहा गया है—

नंददास कनौजिया प्रेम पढ़े। जिनसे सनातन तीर पढ़े।
सिच्छा गुरु बंधु भए तेहिते। अति प्रेम सों आप मिले महि ते।।

गोसाइँ चरित एवं मूल गोसाइँ चरित दोनोंमें नंददासको कनौजिया कहा गया है, वार्तामें नंददासको सनोढिया कहा गया है। हमें यहाँ इससे मतलब नहीं। नंददास कनौजिया होंगे, तब भी सरयूपारीण तुलसीके गुरु भाई रहेंगे और सनोढिया रहेंगे तब भी। कनौजिया और सनोढिया दोनोंके गुरु-भ्रातृत्वमें भेद नहीं डाल सकेंगें।

'अष्ट छाप परिचय'में श्री प्रभुदयाल मीतलने नंददासजीका एक नवीनोपलब्ध पद दिया है—

श्रीमत्ततुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद वंदे सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे।
रामचरित जिन कीन, तापत्रय कलि-मल-हारी करि पोथीपर सही, आदरेउ आप पुरारी।
राखी जिनकी टेक, मदमोहन धनु धारी बालमीक अवतार कहत जेहि संत प्रचारी।
नंददासके हृदय नयनको खोलेउ सोई उज्ज्वल रस टपकाय दियो, जानत सब कोई।।

मीतलजीने गुरु भ्राताको ज्येष्ठ भ्राता माना है। पर यह है भवानीदास कृत गोसाइँ चरित एवं अज्ञानकर्ता मूलगोसाइँ चरितका गुरु भाई ही।

८. बाल्यावस्था और जीवन संघर्ष

गोसाइँजीकी बाल्यावस्था सुखद न थी। जन्मोपरांत ही यह माँ-बाप द्वारा परित्यक्त हो गये थे। क्यों?—इनका कारण ठीक-ठीक ज्ञात नहीं। कुछ लोग अभुक्तमूलकी बात करते हैं। 'मूल के आदिकी आठ घड़ी और ज्येष्ठाके अंतको तेरह घड़ी अभुक्तमूल है। इस अभुक्तमूलमें जो बालक हो, उसे माँ तो त्याग दे या आठ वर्ष तक उसका मुँह न देखे, क्योंकि ऐसा बालक पितृहंता होता है। ऐसा 'मुहूर्त-चिन्तामणि'का कथन है—

'अथोचुरन्ये प्रथमाष्ट घट्यो, मूलस्य सांक्रांतिम पञ्चमाढ्यः
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमानपश्येत्'।

पर शास्त्रोंमें इन सबका शांति विधान भी है। मूलगोसाइँ चरितके अनुसार तो जब यह उत्पन्न हुए तो पांच वर्षके बच्चेसे लगते थे, बत्तीसों दांत निकल आये थे और पैदा होते ही इन्होंने 'राम राम' कहा। राक्षस समझकर इनका परित्याग किया गया। हुलसीकी दासी चुनियाँ इन्हें लेकर अपने ससुराल चली गई। माँ तो थोड़े ही समयके उपरांत मर गई। जब यह पांच वर्षके हुए, तब इनकी पोषिका चुनिया भी मर गई। संभवतः अयोध्यामें यह किसी तरह साधु नरहरिके हाथमें पड़े। उस समय यह संभवतः हनुमान गढ़ी अयोध्यामें पोषित हो रहे थे। नरहरिजीने सूकरखेतमें इनका पालन पोषण किया। विद्यारंभ कराया और सात वर्षकी वयमें जनेऊ भी किया। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि बालकके जन्मके कुछ ही दिनों बाद माँ-बाप मर गये, पर यह संगत नहीं जान पड़ता। ऐसा होता तो तुलसीदास स्पष्ट उल्लेख कर देते। जो भी हो, तुलसीका प्रारंभिक जीवन परित्यक्तका था और अत्यंत संघर्षका था और रामकी कृपासे अंतिम जीवन महिमामय हो गया था। इस जीवनका उल्लेख उन्होंने बार-बार अपने ग्रन्थोंमें किया है। यथा—

(१) जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि, भयो परिताप पाप जननी जन को,
बारे तैं ललात बिललात द्वार द्वार दीन, जानत हो चारि फल चारि ही चनक को।
तुलसी सो साहिब समर्थको सुसेवक है, सुनत सिहात सोच विधि हू गनकको।
नाम राम रावरो, सयानो किधौं बावरो, जो कर गिरी तें गरु तिनते तनकको।

—कबितावली, उत्तरकांड ७३

(२) मातु पिता जग जाय तज्यो, विधि हू न लिखो कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर, कूकुर टूकन लागि ललाई।
राम सुभाव सुन्यो 'तुलसी', प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथको परमारथको, रघुनाथ सु साहब खोर न लाई॥

—कवितावली उत्तरकांड ५७

(३) जातिके, सुजातिके, कुजातिके पेटागि बस। खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो॥
मानस बचन काय, किये, पाप सत भाय। रामको कहाय, दास दगाबाज पुनी सो॥
राम नामको प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप। 'तुलसी' सो जग जानियत महा मुनी सो॥
अति ही अभाग अनुरागत न राम पद। मूढ़ ऐसो बड़ो आचरज देखि सुनी सो॥

—कवितावली उत्तरकांड ७२

(४) घर घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय। जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥
—दोहावली १०९

(५) हों तो सदा खरको असवार, तिहारेई नाम मयंद चढ़ायो। —क० उ० ६०

(६) 'तुलसी' बनी है राम रावरे बनाए, न तो। धोबी कैसो कूकर न घरको न घाटको ॥
—क० उ० ६६

(७) बालयने सूधे मन राम सनमुख भयो। राम नाम लेत माँगि खात टूक टाक हों ॥
—क० उ० ४०

(८) नाम राम राबरोई हित मेरे
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सो, भुज उठाइ कहौं टेरे।
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु, विधिहु सृज्यो अब डेरे।
मोहुँ सो कोउ कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे।
फिर्यो ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल, अब हौं बबुर बहेरे ॥
—विनय पत्रिका २२७

(९) द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिशा, दुख दोष दलन छम, कियो न संभाषन काहूँ।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।
काहेको रोस दोष काहि धौं मेरे ही अभाग, मोसों सकुचत छुइ छाहूँ।
दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पांवर पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर ओर निबाहूँ।
तुलसी तिहारो भए, भयो सुखी, प्रीति प्रतीति बिना हूँ ॥
नामकी महिमा, सील नाथको, मेरो भले विलोकि अब ते सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥
—विनय पत्रिका २७५

(१०) तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहुँ राम बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहूँ कोउन कहूँ हित मेरो ॥
अगुह अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथके साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ॥
—विनय पत्रिका ७२

९. 'कथा सो सूकरखेत' के सूकरखेतका अभिज्ञान

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत। समुझी नहिं तसि बालापन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

इस दोहेमें गोसाइंजीने बाल्यावस्थामें रामकथा सुननेका उल्लेख किया है। उसे अत्यंत अचेत होनेके कारण वे उस समय नहीं समझ पाये थे। यह कथा उन्होंने सूकरखेतमें सुनी थी। यह सूकरखेत है कहाँ ? भक्त-परंपराने किस स्थानको सूकरखेत होने की मान्यता दे रही है ? ये प्रश्न विचारणीय हैं।

(क) अयोध्या माहात्म्य : सं० १०१० वि० के लगभग। अयोध्या नरेश मानसिंह द्विवदेव' के अनुसार अयोध्या माहात्म्य सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु की रचना है। उमादत्त पंडितके अनुसार

यह स्कंधपुराण एवं पद्मपुराणका एक अंश है। जो भी हो, यह १००० वि०से बादकी रचना नहीं है। इस संस्कृत ग्रन्थका अंग्रेजी अनुवाद बरेली कालेजके रामनारायणजीने किया था। जो 'इंडियन ऐंटिक्वेरी'में १८७५ ई० (१९३२ वि०) में प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार सरयू घाघराके संगमपर ही वाराहतीर्थ है। श्री रामदत्त भारद्वाजने 'तुलसीका घर बार' (पृष्ठ २५६) में इस अनुवादका हवाला दिया है। और इस बाराहतीर्थमें पूसमें स्नानके निमित्त मेला लगनेका भी उल्लेख किया है।

(ख) भवानीदास कृत गोसाई चरित : सं० १८२५ वि० गोसाई तुलसीदासने अयोध्यामें बहुत कालतक निवास करनेके उपरांत समाजके सहित नीमसारके लिए प्रस्थान किया। इस यात्रामें उन्होंने पहला पड़ाव रुन्हाई नामक स्थानपर किया और द्वितीय पड़ाव सूकरखेतमें। सूकरखेत अयोध्यासे तीन योजन (१२ कोस, २४ मील) घाघरा और सरयूके संगमपर स्थित है। भवानीदास के ही शब्दोंमें—

दुतिय वास अवनास किय, पावन सूकरखेत त्रय जोजन जो अवध ते, दास दरस सुख हेत १
जहं श्री गुरु नरसिंह सन, सुनी कथा लहि ज्ञान। सो अनादि तीरथ विदित, सगुन देव अस्थान २
श्री नारायण जगत पति, जग हित जक्त अधार धारो वपु बाराह जब, आदि पुरुष औतार ३
एक घुरघुरा ते भयो, घाघर सरित प्रवाह देव जक्ष गंधर्व सब, अस्ति प्रलोबत ताह ४
भई विमानन भीर बहु, सत जोजनके फेर तब आज्ञा भइ सबन कह, करौ पुन्य थल हेर ५
चली विमानन भीर तब, श्री बाराह समेत सरजू संगम घुरघुरा, तहँ बन सूकरखेत ६
सत जोजनकी सभा भइ, वेद विदित उपचार देवनके कारज सकल, कीजे जगत उघार। ७
षट जोजन है अवध ते, पसका सो परमान वास कछुक दिन करि तहां, चरचा वेद पुरान ८

—गोसाईं चरित पृष्ठ २२२-२३

(ग) रामचरणदासकी टीका: सं० १८८० वि०—अयोध्यावासी सुप्रसिद्ध संत रामचरणदासजीने रामचरितमानसकी टीका की है, जो नवल किशोर प्रेस लखनऊसे प्रकाशित भी हो चुकी है। इसका द्वितीय संस्करण १८८८ ई० में हुआ था। अयोध्याकांडकी टीका १८८१ में, अरण्यकांडकी १८८० में, किष्किधा कांडकी १८८१ में, सुंदरकांडकी १८८१ में, लंकाकांडकी १८८३ में समाप्त हुई। बालकांडकी टीकाका रचनाकाल सूचक दोहा यह है—

संवत अष्टदस सुभग, सत्तर अर्द्ध सपाख रामचरण ऋतुराज तिथि, पंच शुक्ल वैसाख

अर्द्ध सपाखका अर्थ स्पष्ट नहीं है। १८७० तो स्पष्ट है। अर्द्ध सपाख इसमें और जुड़ना चाहिए। मोटे तौरपर इस टीकाकी रचना काल सं० १८८० समझा जा सकता है।

इस टीकामें उक्त दोहेका यह अर्थ किया गया है—

'सूकरखेत कहे वाराहक्षेत्र। श्री अयोध्याके पश्चिम तीनि योजन है,
सरयू तीर। तहां सुनेउ है। तब मेरी बाल अवस्था रहै,
अचेत दशा रहै। तेही दशामें जस कछु समुझि परेउ, सो ग्रहण भयो।'

—रामायण तुलसीदास कृत सटीक, पृष्ठ १०६

(घ) मानसकी संतमन उन्मनी टीका—१८८९ वि०—पं० रामबहोरीजी शुक्लने वीणा मई १९३८ ई० में प्रकाशित अपने लेखमें उक्त टीकाके संबंधमें यह पाद टिप्पणी दी है—

(मानसकी संतमन उन्मनी) टीका—जिसका उल्लेख आगे किया जायगा—में बालकांड पृष्ठ २०४ में लिखा है—

तत्पश्चात् नैमिष वनके वाराह क्षेत्र नाम स्थानको साथ ही लाए। तहां कुछ दिन रहे। वहां वाल्मीकि, अध्यात्म इत्यादि रामायण श्रवण किया। उनकी कृपा करि काल-शक्ति भई। (इति वृहद्रामायण माहात्म्य नैमिषारण्यके—वाराह क्षेत्रमें जो अयोध्याके पश्चिम ओर है) न १८८६ में बनी इस टीकासे भी हमारे विचारकी पुष्टि होती है।

—वीणा, मई १९३८, पृष्ठ ५४८

(ङ) ५—जानकीदासकी मानस परिचारिका टीका : सं० १९३२ वि०—जानकीदासजी भी अयोध्याके प्रसिद्ध रामायणी थे। इन्होंने सं० १९३२ में रामचरितमानसकी परिचारिका टीका लिखी थी। यह टीका भी नवल किशोर प्रेस लखनऊसे सं० १९४० वि० में प्रकाशित हुई थी। इस टीकामें भी उक्त दोहेका अर्थ यों किया गया है—

वही कथा जो शुभ कीन्ह, फेरि काकभुशुंडिहिं दीन, तिनसे
याज्ञवल्क्य पाये, ते भरद्वाज प्रति गाए, सो कथा कहूँऐ हमारे
गुरुजीको प्राप्ति भई, सो हम अपने गुरुजीसे सुना। कहां
सुना ?—सूकरखेत नाम वाराह क्षेत्र, जो श्री अयोध्याजीसे
पश्चिम भागमें श्री सरयू घाघराका संगम है तहां पर।"

—रामायण मानस प्रचारिका, पृष्ठ १२४

(च) मूलगोसाईं चरित : सं० १९५० वि० शिवसिंह सरोज (१९३४ वि०) एवं 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान' (१९४७ वि०) में बेनीमाधवदासके गोसाईं चरितकी चर्चा चली। उसीके उपरांत 'मूल गोसाईं चरित' की रचना सं० १९५० या उसके कुछ ही बाद हुई। यह इस अर्थमें अप्रामाणिक या जाली है कि इसे गोसाईं तुलसीदासके किसी शिष्य एवं समकालीन वेनीमाधवदासके नामपर रचा गया है, वस्तुतः यह किसी आधुनिक युगीन अज्ञात व्यक्ति की रचना है। रचना करनेवाला व्यक्ति तुलसीदासके संबंधमें परंपरासे प्राप्त सूचनाओंसे अभिज्ञ है, इसमें संदेह नहीं। इस ग्रन्थमें भी घाघरा सरयूके संगमको ही सूकरखेत माना गया है—

कहत कथा इतिहास बहु, आए सूकरखेत, संगम सरयू घाघरा, संत जनन सुख देत
तहवां पुनि पांचइ वर्ष बसे तपमें जपमें सब भांति रसे
जब सिष्य सुबोध भयो पढ़ि कै मति जुक्ति प्रवीन भई गढ़ि कै
तब मानस राम चरित्र कहे सुनि कै मुनि बालक तत्व गहे
पुनि पुनि मुनि ताहि सुनावत भे अति गूढ़ कथा समुझावत भे

—गोसाईं चरित, परिशिष्ट, पृष्ठ २७७

(छ) लाला सीताराम बी० ए० 'भूप' : सं० १९५९, सं० १९८९ वि०—रामदत्त भारद्वाज 'तुलसीका घरबार' में पृष्ठ २५६ पर ही, आगे पुनः लिखते हैं कि १८७६ ई० (१९३३ वि०) में श्री एफ० एस० ग्राउसने रामायणानुवादका कुछ नमूना 'जरनल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' में छपाया। इसमें उन्होंने सूकरखेतकी पहचान एटा जिलेके सोरोंसे की। किन्तु लाला सीतारामजीको ग्राउसका यह मत मान्य नहीं हुआ और उन्होंने १९०२ ई० (१९५९ वि०) में और पीछे भी लिखा कि रामायण वाला सूकरखेत संगमपर है।

भारद्वाजजीके 'और पीछे भी' की व्याख्या आवश्यक है। १६३२ ई० (१६८६ वि०) में लाला सीतारामजीने 'अयोध्याका इतिहास' लिखा। उक्त ग्रन्थके पृष्ठ १४-१५ पर लाला जी लिखते हैं—

"इस जिले (गोंडा) के सरयू और घाघराके संगमपर वाराह क्षेत्र है। लोग कहते हैं कि इसी स्थानपर विष्णुजीने वाराह अवतार धारण किया था। यद्यपि इस प्रतिष्ठाको प्राप्त करनेके लिये अन्य तीन स्थान भी दावा करते हैं तथापि इसमें संदेह नहीं है कि वही सूकरक्षेत्र है जहां श्री गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणकी कथा अपने गुरुसे सुनी थी।

इसके बीचमें पसका गांव है जहां एक मंदिर बना हुआ है और उसमें वाराह भगवान्की मूर्ति स्थापित है। इसीके निकट संगम है, जिसको त्रिमोहानी कहते हैं। यहाँ सरयू और घाघरा मिली है और पौष भर यहां कल्पवास होता है एवं पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। दूसरी त्रिमोहानी केराघाटपर है, जहां टेढ़ी और घाघराका संगम है। यहां यमद्वितीयाको भी स्नान होता है। इस जगह फलाहारी बाबाने मंदिर बनवाया है। उनका कथन है कि श्री हनुमानजीका जन्म स्थान यही है।"

(ज) विनायकराव : सं० १६७२ वि०

उक्त भारद्वाजजी 'तुलसीका घरबार' के उसी प्रकरणमें आगे पुनः उसी पृष्ठ २५६ पर लिखते हैं:—

विनायक रावजीने भी १६१५ ई० में अपनी रामायणकी टीकामें लालाजीका अनुसरण किया। ११७ पृष्ठ पर वे लिखते हैं—

'सूकरखेत (सूकर=वाराह+खेत=क्षेत्र) वाराहक्षेत्र जो अयोध्यापुरीसे १२ कोस पश्चिम की ओर सरयू नदीके किनारे है।

(झ) आचार्य पं० रामचंद शुक्ल : सं० १६८६ वि० शुक्लजी अपने सुप्रसिद्ध इतिहासमें लिखते हैं—

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथासे सूकरखेत'को लेकर कुछ लोग गोस्वामीजीका जन्मस्थान ढूंढ़ने एटा जिलेमें सोरों नामक स्थानतक सीधे पश्चिम दौड़े हैं। पहले पहल इस ओर इशारा स्व० लाला सीतारामने (राजापुरके) अयोध्याकांडके स्व-संपादित संस्करणकी भूमिकामें दिया था। उसके बहुत दिन पीछे उसी इशारेपर दौड़ लगी और अनेक प्रकारके कल्पित प्रमाण सोरोंको जन्मस्थान सिद्ध करनेके लिए तैयार किए गए। सारे उपद्रवकी जड़ है 'सूकरखेत' जो भ्रमसे सोरों समझ लिया गया। "सूकर क्षेत्र' गोंडेके जिलेमें' सरजूके किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आसपासके कई जिलोंके लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

—हिन्दीं साहित्यका इतिहास, सं० २००७ संस्करण, पृष्ठ १२६

(ञ) पं० रामबहोरी शुक्ल : (१६६५ वि०)

पं० रामबहोरी शुक्ल राजापुरके रहनेवाले हैं और तुलसीदासका आपका अच्छा अध्ययन है। आपने वीणा (मई १६२८)-में एक लेख लिखा था। इसमें आप भी पसकाको ही तुलसीका सूकरखेत मानते हैं—

"वास्तवमें सूकरखेत सरयू और घाघराके संगमपर है। उसे आजकल 'बसका' या 'पसका संगम' कहते हैं। वहाँ मनुष्यके आकारकी वाराहकी एक मूर्ति भी मंदिरमें स्थापित है। वहाँ न

जाने कितने दिनोंसे पौषके महीनेमें मेला लगता तथा स्नान और कल्पवास होता है। फैजाबाद, गोंडा, बहराइच आदि उत्तरी जिलोंके लाखों यात्री वहाँ आते हैं। अयोध्यावासी ही नहीं, अन्यत्रके भी रामानंदी वैष्णव साधु अधिक संख्यामें वहाँ पौषके महीने भर रहा करते हैं। रामानंद मतके अनुयायी अपने गुरुके साथ बाल्यावस्थामें उस मतके प्रधान तीर्थ अयोध्याजी अवश्य गए होंगे और इसी सूकरखेत या बाराह क्षेत्रमें उन्होंने कल्पवास कालमें या मेलेके दिनोंमें वहाँ रहनेपर श्रीराम-कथा सुनी होगी। —वीणा, मई १९३८, पृष्ठ ४४७-४८

(ट) भगवती प्रसाद सिंह : (सं० २००० वि०)

श्री भगवती प्रसाद सिंह (वर्तमान रीडर हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने रामचरितमानसके सूकरखेतपर एक लेख लिखा था, जो सरस्वती जून १९४३ में प्रकाशित हुआ था। इस लेखसे श्री सिंहको प्रचुर ख्याति मिली और मानस-पीयूष कारने अपने उक्त ग्रंथमें इसे उद्धृत किया। इस लेखका आवश्यक अंश निम्नांकित है—

श्री अयोध्याजीके निकटवर्ती भूभागमें 'सूकरखेत'के नामसे प्रसिद्ध प्राचीन सूकरक्षेत्र गोंडा जिलेमें अयोध्याजीसे लगभग तीन मीलकी दूरीपर उत्तर पश्चिम कोणपर स्थित है। अवध तिरहुत रेलवेकी कटिहारसे लखनऊ जानेवाली प्रधान लाइनपर कर्नैलगंज स्टेशनसे यह बारह मील लगता है और श्री अयोध्या, काशी, प्रयाग, चित्रकूट, नैमिषारण्य एवं हरिद्वार आदिसे साधुओंके अखाड़े भी पौष भर कल्पवास करनेके लिए आते हैं। यह क्षेत्र पसका राज्यके अंतर्गत है। मेला पसकासे एक फर्लाङ्गकी दूरीपर लगता है।

गोंडा जिलेका शूकरखेत आज भी 'सूकरखेत'के नामसे ही, जिस रूपमें उसका उल्लेख रामचरित मानसमें हुआ है, प्रसिद्ध है। यह बात बड़े मार्के की है। 'सोरों' 'सूकर'का अपभ्रंश हो सकता है और बाराहावतारका किसी कल्पमें स्थान भी, किन्तु उसे तुलसीका 'सूकरखेत' कहना एक बहुत बड़ी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक भूल है।

(ठ) आचार्य चंद्रबली पांडे : (सं० २०११)

आचार्य चंद्रबली पांडेने 'तुलसीकी जीवनभूमि' नामक एक ग्रंथ लिखा है। इसका प्रकाशन-काल सं० २०११ वि० है। प्रकाशन किया है नागरीप्रचारिणी सभा काशीने। इसका तीसरा अध्याय (पृष्ठ ५१-७६) है—'तुलसीका सूकरखेत'। इस अध्यायमें पांडेजीने अत्यन्त शोधपूर्ण ढंगसे सिद्ध किया है कि घाघरा और सरयूके संगमवाला सूकरखेत ही तुलसीका अभीष्ट सूकरखेत है, जहाँ उन्होंने अपने गुरुसे रामकथा सुनी थी।

ऊपर जो भी शोध सामग्री प्रस्तुत की गई है, मुख्यतया इसी अध्यायके आधारपर है, हाँ, विषय-स्थापनाका ढंग अपना है।

१०. गोसाई तुलसीदासकी गुरु परंपरा

'तुलसीदासजी रामानंद संप्रदायकी बैरागी परंपरामें नहीं जान पड़ते। उस संप्रदायके अंतर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती हैं, उनमें तुलसीदासका नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरामें सम्मिलित करनेके लिए उन्हें नरहरिदासका शिष्य बताकर जो परम्परा चलाई गई है, वह कल्पित प्रतीत होती है। वे रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।'

—आचार्य शुक्ल कृत हिंदी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ—१३२,

हरिग्रोष कलाभवन ग्राजमगढ़में एक दिन दिल्ली विश्वविद्यालयके प्राध्यापक ग्राजमगढ़ जनपद वासी डा० उदयभान सिंहने तुलसीदासपर व्याख्यान देते हुए कहा था कि लोग व्यर्थके लिए तुलसीको रामानन्दकी शिष्य परम्परामें गिनते हैं। रामानन्दकी शिष्य-परम्परामें उनके होनेका कोई भी लिखित प्रमाण नहीं है। यदि गोसाइँ तुलसीदास ऐसा कवि उक्त सम्प्रदायसे सम्बन्धित होता तो निश्चय ही इसका उल्लेख उस संप्रदायके ग्रन्थोंमें कहीं न कहीं ग्रवश्य ही हुग्रा होता।

बंदो गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि। महा मोह तम पुञ्ज, जासु वचन रविकर निकर।।

—रामचरितमानस, बालकांडका मंगलाचरण, छंद ५,

इस दोहेमें ग्राया 'नर-रूप हरि' भी तक गोसाइँजीके गुरु 'नरहरि' का स्रोत समझा जाता था। परन्तु—उक्त सोरठा जाबालि संहिताके निम्नांकित श्लोकका ग्रनुवाद है।

वन्दे गुरु-पदाब्जं यो नर रूपः स्वयं हरि। यद्वाक्यसूर्य्योदयतस्तयो नश्यति साम्प्रतम्।।

इस ग्रोर सबसे पहले श्री भूदेव विद्यालंकारने सम्मेलन पत्रिका फाल्गुन, चैत्र, वैशाख २००१-२००२ वि० के ग्रंकमें प्रकाशित ग्रपने लेख 'नरहरि निरूपण' में हिन्दी संसारका ध्यान ग्राकृष्ट किया था।

निश्चय ही तुलसीदासजीका यह सोरठा जाबालि संहिताके उक्त श्लोकका ग्रनुवाद है। इससे दो बातें स्थिर होती है :—

१—'नर रूप हरि' पाठ ठीक है, इसे 'नररूप हर' नहीं किया जा सकता।

२—केवल इस सोरठेके ग्राधारपर नरहरिको तुलसीदासका गुरु नहीं कहा जा सकता। इस तथ्यकी मान्यताके लिए ग्रौर भी प्रमाण ग्रपेक्षित हैं। यह प्रमाण लिखित ग्रौर मौखिक दोनों प्रकारका हो सकता है ग्रौर दोनों प्रमाण सुलभ हैं।

इसी 'नर रूप हरि' के ग्राधारपर गोसाइँजीके गुरुका नाम 'नरहरि' माना जाता रहा है। ग्राचार्य चन्द्रबली पांडे 'नर रूप हरि' का 'नर रूप हर' करके गोसाईजीके गुरुको 'हर' शिव मानते हैं ग्रौर हनुमानको भी 'हर' मानते हैं[1]। (हनुमान रुद्रके ग्रवतार हैं ही)। इस प्रकार पांडेयजी नरहरिको एकदम उड़ा देना चाहते हैं—परम्पराके विश्वासको मसल देना चाहते हैं।

'मूल गोसाई चरित' की ग्रप्रमाणिकता पर विचार करते हुए ग्राचार्य शुक्लजीने भी ग्रपने सुप्रसिद्ध इतिहासमें नरहरि पर विचार किया है—

'रामानंदजीकी शिष्य परम्पराके ग्रनुसार देखें तो भी तुलसीदासके गुरुका नाम नरहर्यानंद ग्रौर नरहर्यानंदके गुरुका नाम ग्रनंतानन्द।

(प्रिय शिष्य ग्रनंतानन्द हते नरहर्यानंद सु छाप हते)

ग्रसंगत ठहराया है। ग्रनंतानन्द ग्रौर नरहर्यानन्द दोनों रामानन्दजीके बारह शिष्योंमें थे। नरहरिदासको ग्रलबत कुछ लोग ग्रनंतानन्दका शिष्य कहते हैं, पर भक्तमालके ग्रनुसार वे ग्रनंतानन्दके शिष्य श्रीरंगके शिष्य थे।' —हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १२५

भक्तमालमें निम्नांकित तीन नरहरि हैं—

१—रामानन्दके बारह प्रसिद्ध शिष्योंमेंसे—(१) ग्रनंतानन्द, (२) कबीर,

---

१. तुलसीदास, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३१-३२

(३) सुरवा, (४) सुरसुरानन्द, (५) पद्मावती, (६) नरहरि, (७) पीपा, (८) भावानंद, (९) रैदास, (१०) धना, (११) सेन, (१२) सुरसुरानन्दकी स्त्री। इस बातका सामूहिक उल्लेख छप्पय ३६ में हुआ हैं। इन 'नरहरि' या नरहर्यानिन्दका विवरण स्वतन्त्र रूपसे छप्पय ६७ में हुआ है। यह तुलसीदाससे बहुत पहले हुए हैं और उनके गुरु नहीं हो सकते।

२—अनंतानन्द या अनंतानन्दके शिष्य श्रीरंगके शिष्य नरहरि। छप्पय ३७ में अनन्तानन्दके शिष्योंकी नामावली है—

योगानन्द[१], गणेश[२], करमचंद[३], अल्ह[४], मैहारी[५], सारीरामदास[६], श्रीरंग[७], अवधि गुण महिमाभारी, तिनके नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलयतन, रघुबर यदुबर गाइ विमल कीरति संच्योधन। हरिभक्ति सिंधु वेला रचे, पानि पद्मजा सिर दए, अनन्तानन्द पद परसि कै लोकपालसे ते भए ॥३७॥

दूसरे चरणमें आया 'तिनके' संदेह उत्पन्न करता है कि नरहरि अनन्तानन्दके शिष्य थे अथवा श्रीरंगके। शुक्लजीने इन्हें 'श्रीरंग' का शिष्य स्वीकार किया है।

रूपकलाजीने 'तिनके' पर यह टिप्पणी दी है—

"तिन्हके अर्थात् श्री अनन्तानन्दजी महाराजके शिष्य, और कोई कोई महात्मा ऐसा भी लिखते हैं कि श्री श्रीरंगजीके शिष्य।" —भक्तमाल सटीक पृष्ठ २९९

रूपकलाजी पुनः लिखते हैं—

"किसी किसीने श्री नरहरिदासजीको श्री श्रीरंगजीका शिष्य लिखा है, और कोई-कोई आपको श्री अनन्तानन्दजीका पौत्र शिष्य नहीं, वरंच स्वयं श्री अनन्तानन्दजी ही का शिष्य लिखते हैं।"

किसीका लेख है कि यही महाराज श्री नरहरिदासजी श्री गोस्वामी तुलसीदासजीके गुरु थे। और किसीका मत है नहीं, श्री गोस्वामीजीके गुरु श्री नरहरिदासजी तो और ही थे। वे श्री गोपालदासजी वाराहक्षेत्र वासीके शिष्य थे— —भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ३०७

३—अग्रदासके १६ शिष्योंमेंसे एक छप्पय १५० में अग्रदासके १६ शिष्योंका उल्लेख हुआ हैं जिनमें एक 'नरसिंह' हैं—

जंगी प्रसिद्ध प्रयाग विनोदी पुरन बनवारी। नरसिंह भक्त भगवान दिवाकर दृढ़ व्रतधारी॥

छप्पय १०० में एक 'नरहरियानन्द' एक 'भक्त नरहरि' हैं। इनमें 'भक्त नरहरि' तो अग्रदासके शिष्य 'नरसिंह भक्त' (छप्पय १५० हैं और नरहरियानन्द संभवतः प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दके १२ शिष्योंमेंसे हैं। इस छप्पयमें २६ दिग्गज भक्तोंका उल्लेख हुआ है।

छप्पय १६३ में श्री सोतीजीका विवरण है। यह सोतीजी राम 'उपासक' छापवाले थे। इनके गुरु नरहरि थे।

नरहरि गुरु परसाद पूत पोते चलि आई।

यह नरहरि कौन हैं—कुछ ठीक पता नहीं। संभवतः ऊपर वर्णित तीन नरहरियोंमेंसे ही यह कोई हैं।

इन तीनों 'नरहरियोंमेंसे प्रथम दो तुलसीदासके गुरु नहीं हो सकते। ये पर्याप्त पूर्वकालीन हैं। तीसरे नरहरि (अग्रदासके शिष्य) नाभाके समकालीन हैं और तुलसीके गुरु हो सकते हैं। इन तीनोंकी गुरु परम्परा यों है—

	१	२	३
१—	रामानन्द	रामानन्द	रामानन्द
२—	नरहरि	अनन्तनन्द	अनन्तानन्द
३—	–	श्रीरंग	कृष्णदास पयहारी
४—	–	नरहरि	अग्रदास
५—	–	–	नरहरि

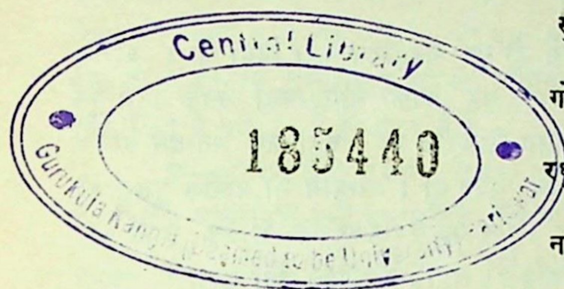
परन्तु रसिक प्रकाश भक्तमालके अनुसार तुलसीके गुरु नरहरि इनमेंसे कोई भी नहीं है। उनकी परंपरा रामानंदके नित्य सुरसुरानंदसे चलती है। संभवतः इसी परंपराका उल्लेख रूपकला जी ने भक्तमाल सटीक ३०७पर किया है। प्रसंग प्राप्त उद्धरण पीछे दिया जा चुका है। जिस प्रकार अग्रदासके शिष्य नरहरि रामानंदसे पाँचवों पीढ़ीमें है, उसी प्रकार तुलसीदासके गुरु नरहरि भी रामानंदजीसे पाँचवी पीढ़ी ही में हैं।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की रचना चिरान जिला छपराके महंत श्री जीवारामजी उपनाम युगल प्रियाशरणजीने सं० १८९३ में मकरमासकी पंचमीको गंगाजीके किनारे चिरानमें ही प्रारंभ करके वैशाख सुदी ९, सं० १८९८ को पूर्ण की थी। इसकी टीका जीवारामजीके शिष्य वासुदेवदास उपनाम जानकी रसिक शरणने ६१९ कवियोंमें सं० १९१९ में की थी। ग्रंथमें रसिक रामभक्तोंका वर्णन हुआ है। उक्त-ग्रंथ अप्रैल १८९३ ई० (१९५० वि०) में प्रिंटिंग यंत्रालय लखनऊमें टीकाके सहित छपकर प्रकाशित हुआ था।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल'के छप्पय २१ में केवल कूबाके शिष्योंका वर्णन है। इस छप्पयकी टीकामें कवित १०४ में केवल कूबाकी गुरु-परंपरा दी हुई है। रामानंदजीके द्वादश प्रसिद्ध शिष्योंमें एक सुरसुरानंद हैं। सुरसुरानंदजीके शिष्य गोपालदास हुए। गोपालदासके शिष्य रघुनाथदास हुए। रघुनाथ दासके शिष्य नरहरिदास हुए। इन्हीं नरहरिदासके बड़े शिष्य केवल कूबा और छोटे शिष्य हिन्दी काव्य गगनके गोस्वामी तुलसीदास हुए—

सुरसुरानंदजीके शिष्य श्रीगोपालदास बड़े अवधूत घुघुरारे सिराबार हैं।
तिनके सु शिष्य रघुनाथदासजी मराल राम रास ध्यानी जिन जान्यो रूप सार है॥
तिनके विमल नरहरिदास रस रास जिनके विदित कूबा केवल आधार है।
कूबाजीके छोटे गुरु भाई श्रीगोसाइँ जिन रामायन गाथागाई महिमा अपार है॥१०४॥

इस कबित्तके अनुसार गोसाइंजीकी रामानंद तक गुरु परंपरा यह हुई—



रामानंद
|
सुरसुरानंद
|
गोपालदास
|
रघुनाथदास
|
नरहरिदास
|
गो० तुलसीदास

केवल कूबा और नाभादास समकालीन थे। यह केवल कूबाके एक शिष्य प्रेम पय अहारी (छप्पय २१) के सम्बन्धमें लिखित टीका कवित्तसे स्पष्ट होता है—

कूबाजीने जानी, नाभा जू के मन मानी। हरि संत गुरु सेवाको प्रत्यक्ष फल पाये हैं ॥१०३॥

'केवल कूबा'का नाम भक्तमाल छप्पय १४६ में मधुकरी मांगकर संतोंकी सेवा करनेवाले १३ संतोंकी नामावलीके अंतर्गत एकदम अंतमें है। प्रियादासने इनकी कथाका विस्तार कुल ६ कवित्तों (५६७-७५) में किया है।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' का उक्त टीका कवित संवत् १६१६ में आजसे ११० वर्ष पहले रचा गया था। इससे तुलसीदासका रामानंदकी परंपरामें दीक्षित होना सिद्ध है।

ग्रियर्सनने गोसाईंजीकी गुरु परंपराकी दो सूचियाँ (इंडियन ऐंटिक्वेरी सन् १८६३ ई० पृष्ठ २६६) दी हैं। दोनों सूचियाँ प्रायः एक सी हैं। इनमें रामानंदसे तुलसीदास तककी गुरु परम्परा भी बनती है—

श्री रामानंद
|
श्री सुरसुरानंद
|
श्री माधवानंद
|
श्री गरीबदास
|
श्री लक्ष्मीदास
|
श्री गोपालदास
|
श्री नरहरिदास
|
श्री तुलसीदास

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' वाली सूचीसे इसे मिलाया जा सकता है और अन्दर भी देखा जा सकता है। दोनों सूचियाँ कुछ घट बढ़के साथ एक ही हैं। ग्रियर्सन वाली यह सूची शिवनंदन

सहाय, श्री रामचन्द्र द्विवेदी एवं डा माताप्रसाद गुप्त द्वारा दी गई है। ग्रियर्सनने अपनी सूची किसी मौखिक परंपरासे प्राप्त की थी। मुझे रसिक प्रकाश भक्तमाल वाली वंशावली मान्य है।

११. शिक्षा

तुलसीदासका उपनयन एवं विद्यारम्भ सूकरखेतमें ही गुरु नरहरिने करा दिया था। बालक तुलसीकी प्रतिभाको वह पहचानते थे। अतः उसको लेकर वह काशी आए, जहाँ उनके परम गुरु रामानन्दजीका स्थान पंचगंगा घाट पर था। वह प्रतिष्ठित सिद्धपीठ था। वहां शेष सनातन नामक प्रसिद्ध पण्डित थे। वह वृद्ध हो गए थे। पर उनका मन युवा था। उन्होंने भी बालक तुलसीको देखा, उसकी प्रतिभा परखी और नरहरिजीसे उन्हें मांग लिया यह कहकर कि मैं इसे चारों वेद, षड्दर्शन, इतिहास, पुराण, काव्यकला पढ़ाऊँगा और इसे अप्रतिम पण्डित बना दूँगा। तुलसी शेष सनातनजीके यहां पन्द्रह वर्षोंतक पढ़ते रहे और सभी शास्त्रोंमें पारगंत हो गए। यह इसी युगका उनका पढ़ना-लिखना था, जिसने उन्हें राम चरितमानस जैसा महान काव्य ग्रन्थ विरचनके लिए समर्थ बनाया। तुलसीदासने मानसके प्रारम्भमें महा हैं—

नाना पुराणनिगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्य तोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथयाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

यह सब नाना पुराण निगम आगम और क्वचित अन्य यही पढ़ा गया था, जो समयपर काम आया।

इस प्रकार नरहरिजो गोसाईंजीके दीक्षा,गुरु थे और शेष सनातनजी विद्या-गुरु। दोनोंने मिलकर तुलसीके मानस-व्यक्तित्वका निर्माण किया था।

१२. विवाह

(क) क्या गोसाईंजीका विवाह नहीं हुआ था ?

अभी तक सर्वमान्य तथ्यके रूपमें यह स्वीकृत रहा है कि गोस्वामीजीका विवाह हुआ था और वे अपनी पत्नीमें परमासक्त थे तथा उसीकी व्यंग्यमयी फटकारसे उन्हें रामके प्रति पूर्ण अनुराग एवं संसारमें एकांत विराग उत्पन्न हुआ। इधर सद्गुरु कुटी, गोलाघाट, अयोध्याके श्री श्रीकान्त-शरणजीने १९६९ ई० में 'श्री तुलसी चरित विमर्श' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित कराई है, जो उनके आठ लेखोंका संकलन है। एक लेख है—श्री गोस्वामी तुलसोदासके कल्पित विवाहकी समालोचना', जो 'अवध-संदेश'के अगस्त १९६४ एवं 'विरक्त' के जुलाई-अक्टूबर ५९ अङ्कमें प्रकाशित हुआ था। लेख सात पृष्टों का है। इसमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि गोसाईंजीका विवाह नहीं हुआ था। गोसाईंजीने बालपनमें ही विरक्त-दीक्षा ले ली थी। यदि वे पूर्ण विद्वान होकर २९ वर्षकी वयमें विवाह कर गृहस्थ हो गए, तो वे 'आरूढ़पतित' हो जाते हैं, जिसका कोई भी प्रायश्चित नहीं। इस प्रकरणमें शरणजीने छह तर्क दिए हैं। एक एक कर ये तर्क एवं इनके उत्तर दिए जा रहे हैं।

१—श्रीगोस्वामीजीने अपने जीवन-वृत्तकी बहुत बातें जहाँ-तहां लिखी हैं, पर अपने विवाह होनेकी कहीं भी चर्चा नहीं की है। 'परयो लोकरीतिमें पुनीत प्रीति ......'हनुमान बाहुक ४० में आए 'लोकरीतिमें पड़नेको' विवाहका सूचक नहीं मानना चाहते और इसका अर्थं लोकेषणा मात्र करते हैं।

इस सम्बन्धमें निवेदन है कि कितने और किन साहित्यकारोने अपने विवाहोंका उल्लेख किया है--पुराने तो पुराने रहे, जो आत्मगोपनको ही अपना वैशिष्ट्य समझते थे, आजके ही किस साहित्यकार--प्रेमचन्द्र, प्रसाद, भारतेन्दु, रत्नाकर, पंत, निराला, महादेवी—ने अपने विवाहका उल्लेख किया है ? कोई साहित्यकार इन सभी बातोंका उल्लेख तभी करता है, जब वह आत्म-कथा लिखने बैंठा हो। गोसाईं तुलसीदास अपनी जीवनी नहीं लिखने बैठे थे। दैन्य निवेदनके सम्बन्धमें वे जो कुछ संकेत दे गए हैं, वे ही बहुत हैं।

२—गोसाईंजीने गुरुको ईश्वर रूप मानकर उन्हें बहुत महत्व दिया है। जिस नारीने अपनी एक व्यंगोक्तिसे इन्हें महामुनिके पदपर पहुँचा दिया, उसकी तो और महिमा माननी थी, पर उसकी कहीं चर्चातक क्यों नहीं की। ऐसी कृतघ्नता क्यों ?

क्या जितनी महिमाएं मानी जाती हैं, वे कहकर ही मानी जाती हैं ? क्या किसीका उपकार मन ही मन मानना कृतघ्नता है। कृतघ्नता तो तब होगी, जब उपकारीका अपकार किया जाय। साथ ही यहां भी यह कहा जा सकता है कि गोसाईंजी आत्म-चरित नहीं लिखते बैंठे थे। राम-चरित लिखने बैठे थे। प्राकृत-जनका गुन गान वे निषिद्ध मानते थे, फिर अपना ही गुण-गान कैसे करते ? वे भी तो प्राकृत जन ही थे।

(३) यदि गोस्वामीजीने २९ वर्षकी पूर्ण युवावस्थामें स्त्री पाई है और उसमें अत्यन्त आसक्त भी थे तथा ऐसे ही पांच वर्ष पलके समान बीत गए, तो फिर कोई संतान होनेकी चर्चा क्यों नहीं आई ?

परंपरा तो गोसाईंजीके अल्पायु पुत्र तारककी चर्चा करती ही है। दूसरे अनेक जन विवाहित जीवन बिताते हैं, पर संतान-सुखसे वंचित रहते हैं। इस विधि विधानके लिए क्या किया जाय। पुनः तुलसी अपने पुत्रकी चर्चा इसीलिए नहीं करते कि वे आत्म-चरित नहीं लिख रहे थे।

(४) फिर उसी स्त्रीने पति विरहमें स्वतः तुरत देह त्याग दिया है। यह बात भी विदित नहीं है। किसी भी स्त्री या पुरुषकी मृत्यु अपने हाथ (वश) में नहीं होती।

मूल गोसाईं चरितके अनुसार तुलसीदासकी पत्नी तुलसीके विरक्त हो जानेपर तुरत मर गई। मान लिया किसीकी भी इच्छा-मृत्यु प्राप्त नहीं। पर इससे यह कहाँ सिद्ध हुआ कि तुलसीदासका विवाह ही नहीं हुआ था।

(५) श्री गोस्वामीजीने स्वयं सबके लिए चेतावनी दी है—

परमारथ पहिचानि मति, लसति विषय लपटानी।
निकसि चिता ते अध जरति, मानहु सती परानि ॥ २५३ ॥
सीस उघारन किन कह्यो, बरजि रहे प्रिय लोग।
धर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥ २५४ ॥—दोहावली

ऐसी ही धिक्कार-यति-धर्मनिष्ठ एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारीके गृही होकर 'आरूढ़ पतित' होनेपर संसारकी ओरसे दिया जाता है। जिन गोस्वामीजीने दोहावलीके इन दोहोंसे ऐसी चेतावनी दी है, वे स्वयं इसके विरुद्ध आचरण वाले रहे हों, यह कैसे हो सकता है ?

इस संबंधमें कहा जा सकता है कि गोसाईंजी अपनी अनुभूति ही इन दोनों दोहोंमें व्यक्त कर रहे हैं, बालकपनमें वे रामकी शरण गए, पंडित होनेपर राम-शरणसे रामा-शरण हुए और

उसकी लताड़ पाकर पुनः राम-शरण हो गए। इसीका उल्लेख तो वे इन दोहोंमें कर रहे हैं। वे अपनी अनुभूतियोंका ही उपदेश तो दूसरोंको दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त तुलसीने ही तो यह भी कहा है—

पर उपदेस कुसल बहुतेरे जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

(६) गोसाईंजीने बालकांड दोहा १२४-१३८ में नारद मोह प्रकरणका वर्णन किया है। अरण्यकांड दोहा ४०-४४ में नारदके पूछनेपर श्री रामने उन्हें समझाया है कि उन्होंने क्यों नारदको 'आरूढ़ पतित' होनेसे बचाया। श्री गोस्वामीजीने इस श्री नारदजीके चरितार्थ चरितसे सभी विरक्तोंको शिक्षा दी है कि सँभलकर रहें तथा समझ बूझकर विरक्त हों। जिन श्री गोस्वामीजीने श्री नारदजीका चरितार्थ प्रसंग लिखा है, वे स्वयं इसके विरुद्ध आचरणवाले रहे हों, वह कैसे हो सकता है ?

नारद-मोह-कथासे यह कभी नहीं सिद्ध किया जा सकता कि गो० तुलसीदासजीने विवाह ही नहीं किया था। यह तो दूरकी कौड़ी लाना हुआ। रामायणकी किन-किन कथाओंको तुलसीके जीवनपर घटानेकी प्रयत्न किया जायगा। आदर्श साधु होनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी समय गृहस्थ-जीवन बिताया ही न गया हो।

नीचे उद्धृत छंदोंसे यह प्रतीयमान होता है कि गोसाईंजीका विवाह हुआ था—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो राम नाम लेत, माँगि खात टूक टाक हौं
पर्यो लोक रीतिमें, पुनीत प्रीति राम राम, मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं
तुलसी गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो ताको फल पावत निदान परिपाक हौं
—हनुमान बाहुक ४०

पहले चरणमें कविने अपने बालपनका चित्रण किया है—जब वह टूक टाक मांगके खाता था और रामका नाम लेता था। दूसरे चरणमें वह अपने लोकरीतिमें पड़नेकी बात करता है। इसमें युवावस्थाका उल्लेख है और लोकरीतिमें पड़नेकी बात विवाहसे संबंधित है। कविने विवाह किया और पत्नीमें इतना आसक्त हुआ कि वह पत्नीके मोहमें रामकी पुनीत प्रीतिको तड़ाकसे तोड़ बैठा। तीसरे चरणमें खोटे आचरण करते हुए भी पुनः राम द्वारा अंजनीकुमारके माध्यमसे अपनाए जानेका उल्लेख है। चौथे चरणमें वृद्धावस्थाका संकेत है।

विनय पत्रिकाकी इन पंक्तियोंमें भी यही तथ्य प्रतीयमान हो रहा है—

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि, भजे न राम मन बचन काय
लरिकाइ दीन्यो अचेत चित, चंचलता चौगुनी पाय।
जोबन जर जुवती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोस भरि मदन बाय ॥ ८३ ॥

ये पंक्तियां तुलसीने अपनेको उपदेश देनेके लिए कही हैं, किसी अपरको उपदेश देनेके लिए नहीं। शंकराचार्यकी निम्नांकित पंक्तियां परोपदेश हैं—

बालस्तावत क्रीड़ासक्तः तरुणस्तावत तरुणीरक्तः

तुलसी और शंकराचार्यकी उक्तियोंमें यह तात्त्विक अंतर है।

'काहूकी बेटीसे बेटा न व्याहब' और 'धूत कहौ अवधूत कहौ'

आदि उक्तियाँ तो खीझकी हैं। इनसे गोसाईंजीका अविवाहित होना सिद्ध नहीं होता।

(ख) विवाह हुआ था

काशीसे विद्या पढ़कर, पूर्ण पण्डित होकर, प्रायः तेईस-चौबीस वर्षकी वयमें, तुलसीदासजी चित्रकूट आए। मूल गोसाईं चरितके अनुसार इनकी कथा सुनकर इनके ससुर दीनबंधु पाठक इनपर मुग्ध हो गए और यह जानकर कि यह अभी अविवाहित हैं, इनका विवाह अपनी कन्या रत्नावलीसे कर दिया।[1] मूल गोसाईं चरितके अनुसार दीनबंधु पाठक और तुलसीकी भेंट राजापुरमें हुई। मेरी समझसे यह भेंट चित्रकूटमें हुई। कुछ लोगोंके अनुसार तुलसीदासके मामाने विवाह कराया। जो हो, जैसे भी हो, तुलसीका विवाह हुआ और वे राजापुरमें घर बनाकर रहने लगे। तुलसीका पत्नी-प्रेम परम प्रसिद्ध है। वे उसे आँखकी ओट नहीं होने देना चाहते थे। पर एक दिन वह इनकी अल्पकालिक अनुपस्थितिमें अपने भाईके साथ यमुना पार अपने नैहर महेवा चली गई। तुलसीसे यह विरह नहीं सहा गया और वे भी ससुराल जा पहुँचे। स्त्री लजाकर खीझ उठी और उसने कहा—

अस्थि चर्म मय देह मम, तामें जैसी प्रीति। तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भव-भीति।

तुलसीदास पंडित थे। बात उनके हृदयमें धँस गई। वे तुरंत वापस हो गए और विरक्त होकर राजापुर छोड़ दिया।

प्रियादासके समयमें भी (सं० १७६९ वि०) यह कथा प्रसिद्ध हो चुकी थी। उन्होंने इस घटनाका विवरण निम्नांकित कवित्तमें किया है—

तिया सों सनेह, बिन पूछे पिता गेह गई, भूलि सुधि देह, भजे वाही नैर आए हैं
वधू अति लाज भई, रिस सों निकस गई, प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं
सुनी जग बात, मानो ह्वै गयो प्रभात, वह पाछे पछतात, तजि कासीपुरी धाए हैं
कियो तहां बास, प्रभु सेवा लै प्रकास कीने, लीनो दृढ़ भव नेम रूपके तिसाए हैं ५००

मूल गोसाईं चरितके अनुसार तो तुलसीके विरक्त हो जानेके कुछ दिनों बाद रत्नावली दिवंगत हो गई। पर परम्परा कहती है कि वृद्धावस्थामें एक बार पति-पत्नीकी पुनः भेंट हुई थी। पतिने नहीं पहचाना, पर पत्नीने अपने प्राणेश्वरको पहचान लिया और साथ ले चलनेका आग्रह किया। पर पतिके अस्वीकार करनेपर उसने यह दोहा कहा, जो परम प्रसिद्ध है—

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न दिय तिय त्याग कै खरिया मोहि मेलिकै, अचल करो अनुराग।

१३ वैराग्य साधना-दर्शन

गोसाईंजी ससुरालसे सीधे काशी आए। यहां वे विरक्त भावसे रहने लगे। यहीं उनकी प्रेत एवं हनुमानसे भेंट हुई। गोस्वामीजीका प्रेतसे मिलना एवं प्रेतके इंगितपर हनुमानसे मिलना लोक विश्रुत है। हनुमानके संकेतपर तुलसी चित्रकूट आए, जहां उन्हें रामका दर्शन मिला। यह कथा भी परम प्रसिद्ध है।

चित्रकूटके घाटपर भइ संतनकी भीर, तुलसिदास चंदन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।

इस दोहेसे सभी हिंदी-भाषा-भाषी परिचित हैं।

---

१. गोस्वामीजीकी चार पत्नियोंके या उनकी पत्नीके चार नाम मिलते हैं—रत्नावली, बुद्धिमती ममता और यमुना।

प्रेत प्रसंग, हनुमान प्रसंग, राम दर्शन प्रसंग, तीनों चमत्कार हैं। आजका बुद्धिवादी इन्हें स्वीकार नहीं करना चाहेगा। पर संसारमें सर्वदा चमत्कार होते आए हैं आज भी होते हैं। शेक्सपियरके हेमलेटकी यह बात यथार्थ है।

देअर आर मोर थिंग्स इन दिस वर्ल्ड होरेशियो दैन योर फ़िलौसोफ़ी कैन ड्रीम ऑफ़।

आज भी ऐसी घटनाएं होती हैं, जिनकी व्याख्या विज्ञान नहीं कर सकता। आज भी ऐसे प्राणी हैं जो सहज ज्ञानसे भूत-भविष्यकी अनेक बातें बता देते हैं, जो सच होती हैं। रामचरित मानसकी रचनाके बाद तो गोसाइं तुलसीदासजी सिद्ध पुरुष हो गए और उनका जीवन चमत्कारोंसे परिपूर्ण हो गया। हम उन चमत्कारोंका अतिरंजित वर्णन नहीं करना चाहते। यह बात भी है कि चमत्कारोंकी बात अत्यन्त चमत्कार पूर्ण ढंगसे फैलती भी है। अतः चमत्कारोंपर नियंत्रित दृष्टिसे ही विचार करना चाहिए।

अंगरेज कवि टेनिसमके शब्दोंमें—मोर थिंग्स आर रौट बाइ प्रेयर दैन दिस वर्ल्ड ड्रीम्स ऑफ़ प्रार्थनासे अनेक अद्भुत बातें हो सकती हैं। ऐसी ही अद्भुत बातें प्रेत, हनुमान एवं राम दर्शन की हैं। हनुमान तो तुलसीके परम सहायक रहे हैं। प्रारंभमें भी, मध्यमें भी और अंतमें भी। प्रारंभमें उन्होंने अयोध्यामें रोटी दी। मध्यमें उन्होंने चित्रकूटमें राम दर्शन कराया और अंतमें बाहु पीड़ा दूर की। अस्तु।

१४ रामचरित मानसके रचना-कालकी अवधि

गोसाईंजीने राम चरित मानसका रचनारंभ काल उक्त ग्रंथके प्रथम सोपानमें दे दिया है—संवत् १६३१, चैत सुदी ६, मंगलवार—

संवत् सोरह सै इकतीसा करौं कथा हरि-पद धरि सीसा
नौमी भौमवार मधुमासा अवधपुरी यह चरित प्रकासा

—बालकांड दोहा—३४।४-५

मानसका रचनारंभ अयोध्यामें हुआ। इस संबंधमें 'मूल गोसाईं चरित' में एक रोचक कथा दी गई है जिसका सार है--

संवत् १६२८ में गोसाइं तुलसीदास प्रयाग आए। यहाँ उन्होंने मकर स्नान किया। मकर बीत जानेपर एक दिन उन्हें वटकी छायामें दो मुनि दिखाई पड़े। वे वही रामकथा कह सुन रहे थे, जो उन्होंने अपने गुरुसे सूकरखेतमें सुनी थी। यह भरद्वाज और याज्ञवल्क्य थे। दूसरे दिन गोसाइं जी पुनः वहाँ गए, पर अब वह स्थान सूना था। न वट वृक्ष था, न पर्णकुटी, न वे मुनि द्वय। तुलसीने तै किया कि अब काशी विश्वनाथका दर्शन करके अयोध्या चलूंगा। प्रयागसे वे गंगाके तीर ही तीर चले। रास्तेमें दिगपुर (वर्तमान डीघ) और बारिपुर (वर्तमान बारीपुरा) के बीच वे सीतामढ़ी आए। यहाँ उन्हें अपने पूर्व जन्म-वाल्मीकि रूपका स्मरण हो आया। उन्हें न भूख लगी, न प्यास। यहाँ वे तीन दिन रहे और सीतावटकी प्रशंसामें तीन कवित्त कहे (कवितावली, उत्तरकांड छन्द १३८-४०)। तदनन्तर यह बिधनृपकी बंदि छुड़ाते हुए काशी पहुँचे। काशीमें यह प्रतिदिन कुछ संस्कृत रचना करते, पर रातमें वह न जाने कैसे लुप्त हो जाती। आठवें दिन शिव-पार्वतीने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिया और आज्ञा दी कि अवधपुरीमें जाकर जन कल्याणार्थ भाषा में रामकथा कहो। मेरे प्रसादसे तुम्हारी रचना सामवेदकी ऋचा सी सफल होगी।

गोसाइँजी काशीसे अवधपुरी आ गए। वे उसी दिन अयोध्या पहुँचे जिस दिन बादशाहकी सभामें उदयको सन्मान मिला। गोसाइँजीने सरयू स्नान किया। उन्हें एक संत मिले। वे उन्हें उस स्थानपर ले गये जिसे आजकल तुलसीके नामपर तुलसी चौरा कहा जाता है। वहाँ वट वृक्षोंकी डाली थी। उनमें एक विशाल वट वृक्ष था। उसके नीचे वेदिका बनी हुई थी। उस वेदीपर एक सिद्ध पुरुष बैठे हुए थे। गोसाइँजीका मन उस स्थानको देखकर लुभा गया और उन्होंने वहाँ कुटी बनाकर बसना चाहा। वे उस सिद्धके पास गए और निवेदन किया। सिद्धने कहा—'मेरे गुरुने आज्ञा दी थी कि तुम इस कुटीमें रहो। एक दिन तुलसीदास यहां आएंगे। वे यहीं रहकर राम कथा कहेंगे। तुम उन्हें यह कुटी सौंपकर मेरे निकट चले आना। तभीसे मैं आपकी यहां रहकर प्रतीक्षा करता रहा हूँ। यह कहकर सिद्ध चौरीसे नीचे उतर आया और योगाग्निमें जलकर मर गया। प्रभुकी इच्छा समझ तुलसी वहीं रहने लगे। इस प्रकार केवल एक समय जल पीकर उन्होंने दो से अधिक वर्ष बिता दिए।

तब तक संवत् १६३१ आ गया—चैतका महीना, शुक्ल पक्ष, राम जन्मकी तिथिको वे ही लग्न ग्रह लगे जो त्रेतामें राम जन्मके समय थे। उसी दिन गोसाइँ जीने राम चरित मानसका आरम्भ किया। 'मूल गोसाईं चरित' में दी हुई तिथिका मेल 'राम चरित मानस' में दी हुई तिथिसे पूर्ण रूपसे हो जाता है।

मूल गोसाईं चरितमें आगे दिया गया है कि गोसाइंजीने दो वर्ष, सात मास, छब्बीस दिनमें संवत् १६३३ अगहन सुदी ५ को सीताराम विवाहके दिन यह महा ग्रन्थ पूर्ण किया—

दुइ वत्सर सातेक मास परे दिन छब्बिस मांझ सो पूर करे
तैंतीसको संवत् औ मगसर सुभ दयौस सु राम विवाहहि पर
सुठि सप्त जहाज तयार भयो भवसागर पार उतारन को
युत सप्त सोपान समाप्त भयो सदग्रन्थ बन्यो सुप्रबन्ध नयो।
महि-सुत वासर मध्य दिन, सुभ मिति तत्सतकूल।
सुर समूह जय जय किए, हर्षित बरसे फूल॥ ४१॥

'मूल गोसाईं चरित' इस अर्थमें अप्रामाणिक है कि इसे गोसाइँ तुलसीदासके किसी शिष्य वेणीमाधवदासने सं० १६८७ में नहीं रचा। यह सं० १९५० वि० के आस पासकी रचना है और किसीने वेणीमाधवदासके नामसे रचकर यह जाल किया है। इसमें लिखी सभी बातें अप्रामाणिक हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अभिनवभरत आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदीने मूल गोसाइँ चरितके इस कथनको अविश्वसनीय माना है और उनका कथन है कि गोसाईंजीने एक-एक दिनमें ४७ या ६५ दोहे तक लिखे और उन्होंने बारह तेरह दिनोंमें मानसकी रचना पूर्ण कर डाली। यदि उन्होंने ३४ दोहे तक भी एक दिनमें लिखा हो, तो १६ दिनमें पूरा मानस लिख डाला होगा। कितना भी कोई रससिद्ध हो, १६ दिनमें मानस जैसा महामहिम ग्रंथ नहीं रच सकता। रचना तो दूरकी बात है, प्रतिलिपि भी नहीं कर सकता। एक अच्छा मुद्रण अपनी पूरी शक्तिसे इसे १६ दिनोंमें छाप दे तो छाप दे, नहीं तो साधारणतया इसे १६ दिनोंमें छापा नहीं जा सकता। काव्य रचना गणितके त्रैराशिक सिद्धांत पर नहीं होती।

रामचरित मानस चैत सुदी ६ संवत् १६३१ को प्रारंभ हुआ और अगहन सुदी ५ संवत् १६३३ को पूर्ण हुआ—इसका मुझे एक और पुराना प्रमाण मिला है। एक और एक मिलकर

ग्यारह होते हैं। इस प्रमाणके मिल जाने पर अब यह निर्बिवाद हो जाना चाहिए कि रामचरित मानसकी रचनामें कुल कितना समय लगा।

मोहन साईं 'साईं मत' के प्रवर्तक थे। इस संप्रदायकी गद्दी सुलतानपुर जिलेके अंतर्गत चनउर नामक स्थान पर है। इस संप्रदायमें हाथरस वाले तुलसी साहिबके 'घट रामायण'की प्रतिष्ठा है, साथ ही 'रामचरित मानस' भी उपेक्षित नहीं है। मोहन साईंका समय सं० १८१२ वि०के आस पास हैं। लाला सीतारामने मोहन साईंका एक गीत माधुरी वर्ष १४, खंड २, संख्या ३, पृष्ठ ३६४-५ पर छपाया है और न जाने किस आधार पर मोहन साईंको मुसलमान फकीर माना है। आचार्य चंद्रबली पांडेने 'तुलसीकी जीवन भूमि' में उक्त गीतको पृष्ठ १३८-४१ पर उद्धृत किया है और इसे 'साईं मत' के प्रवतंक मोहन साईंका माना है। इस गीतमें तुलसी चौराकी सारी कथा आ गई है जो मूल गोसाइँ चरितमें वर्णित है।

१. तुलसी चौराका वट वृक्ष

अवधकी भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका, विरंचि नारद महेश गौरा॥ १॥
वह घड़ी अजब थी कि जिस घड़ी वह दरख्त बट का उगा यहाँ।
उसी शब में बढ़के बुलंदशुद, उसे कैसे कोई करे बयां॥
हैरां हुए सब देखकर, कुदरत इलाही दर जहाँ।
न खुला मुअम्मा किसीसे भी, पोशीदा इसरारे निहाँ॥
सुना न देखा किसीने पहले, बना दिया इसने सबको बौरा।
अवधकी भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा॥ २॥

२. तुलसी चौराके सिद्ध

जमाया आसन उसीके नीचे, प्रसिद्ध मुनि योगिराजजीने।
वे जानते मर्म भीतरी थे, बता दिया था उन्हें किसीने॥
यहाँ पै काशीसे जब गुसाईं, पधारे श्री राम रसमें भीने।
सुनाके आदेश अपने गुरुका, उन्हें ही सौंपा सब उस यतीने॥
जलाके तन योग अग्निमें तब, सिधारा गुरु पद पदमका भौंरा।
अवधकी भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा॥ ३॥

३. रामचरित मानसका रचना काल

लगी जब इकतीसी राम नौमी, गुसाईंजीने कलम उठाई।
उछाहसे राम ब्याह तेंतिस समाप्ति तिथि मानसी सुहाई॥
हुई जो पूणाकी धूम, सुर गनने राम गाथा ए थी बड़ाई।
सु दिव्य मनि तीन सुचि अलौकिक, सुघरता जिनकी कही न जाई॥
खिचा था उनमें समेत परिकरके रामजीका सबीह औरा।
अवधकी भूमि पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा॥ ४॥

४. मिरजा राजा जयसिंह द्वारा फर्श और छतरीका निर्माण

थी एक पर विष्णु जीकी झांकी, व दूसरे पर थी रामजी की।
व तीसरे पर अनुज हनूमत विराजती मूर्ति सीयकी।।
उन्हींकी पूजा वहाँ पै होती, चलाई मानो गुसाइंजीकी।
बना दिया मिरजा मानसिंहने, फरश जमुर्रद व छत्रि ही की।।
बहुत दिनों तक चहल-पहल थी, पलट गया समयका दौरा।
अवधकी भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा।। ५।।

५. सूबेदार द्वारा तुलसी चौराका विनाश

चढ़ा भी शैतान सूबाके सिर, कि ताजपोशीकी भी तयारी।
उपार कर फर्श तख्त ताजा, दुखाके दिल और रुलाके भारी।।
वो तख्त पर बैठने न पाया, पहुँचके नौरंगने जान मारी।
मुगलके घर रत्न फर्श छत्री, किएका फल हाथों हाथ धारी।।
गुनाह बेलज्जत उसने चक्खा, पहुँच गए दिल्लियां पिथौरा।
अवधकी भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा।। ६।।

अंततः वह वट वृक्ष भी न बच सका। मोहन साइंको इसका बहुत दुख था। छंद ७ में वट वृक्षके गिरनेका वर्णन है और छंद ८, ९ में मोहन साइंने उसके गिरनेका दुःख व्यक्त किया है।

मोहन साइंका यह गीत करीब-करीब उसी समय रचा गया था, जब भवानीदासने अपना 'गोसाइं चरित' रचा। इस गीतकी जानकारी लोगोंको थी, पर इससे रामचरित मानसके समस्त रचनाकालकी जो जानकारी होती है, उस पर अभी तक किसीका ध्यान नहीं गया था।

१५. काशी निवास

रामचरित मानसकी रचनाके पश्चात् गोसाइंजीने अपना स्थायी निवास काशी बनाया। यहाँसे समय समय पर वे विभिन्न तीर्थोंमें जाते रहे, पर अधिक दिन रुकसे नहीं थे। घूम फिरकर काशी ही लौट आते। इनका काशी-वास भी यहीं हुआ, यह तथ्य तो सर्वसम्मत है।

यों तो गोसाइंजीने भारतवर्षके प्रायः सभी तीर्थोंकी यात्राएँ कीं, पर उनके प्रिय तीर्थ काशी, चित्रकूट और अवध रहे। वे यहाँ प्रायः आते रहे। गोसाईं चरित और मूल गोसाइं चरितमें इनकी यात्राओंके विवरण देखे जा सकते हैं।

काशीमें गोसाईंजी' के खेलने-कूदने पढ़ने-लिखनेके महत्वपूर्ण दिन बीते, साथ ही साधना एवं समाधिके भी। काशी उन्हे बहुत प्रिय थी, तभी उन्होंने कहा—

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान-खानि, अघ-हानिकर। जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न।।

—रामचरितमानस, किष्किधाकांड मंगलाचरण

विनय पत्रिकाका अधिकांश काशीमें रचा गया। गोपाल मंदिरकी एक कोठरीमें तुलसीदास कुछ दिनों तक थे। वहाँ उन्होंने विनय पत्रिकाके अनेक पदोंकी रचना की थी। अंगरेजीमें इस आशयका शिलालेख वहाँ लगा हुआ है। सगुनावली या रामशलाका गंगाराम ज्योतिषीके लिए विचरित हुई। तुलसीदास पहले प्रह्लादघाट पर ही रहते थे, जहाँ ज्योतिषी गंगाराम रहते थे। असी पर तो उनका अंतिम जीवन बीता ही। यहीं उनका काशीवास भी हुआ। संकटमोचन हनुमानकी स्थापना गोंसाईंजीकी

हुई है। कहा जाता है ऐसे ही उन्होंने बारह हनुमान प्रतिमाओंकी काशीके विभिन्न स्थानों पर स्थापनाकी थी। काशीकी लंकावाली रामलीला एवं असीकी नागनथैया वाली कृष्णलीला तुलसीदास के जीवंत स्मारक हैं।

गोसाईंजीने सूकरकेत, अवध, काशी, चित्रकूटके अतिरिक्त प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार बद्रीनाथ, नैमिषारण्य, मिथिला, जगन्नाथ, रामेश्वर आदि तीर्थोंकी यात्राएँ की थी।

१६. तुलसी मित्र टोडर

भदैनी पर रहनेवाले टोडर तुलसीदासजीके अनन्य मित्र थे। यह पांच गांवोंके जमींदार थे और भूमिहार थे। इनकी जमींदारीमें भदैनी, नदेसर, शिवपुर, छित्तूपुर और लहतारा थे। तुलसी-दास नर काव्यको उचित नहीं समझते ते। वे स्पष्ट लिखते हैं—

कीन्हें प्रावृत्त जन गुन जाना। सिर धुनि मोरा लागि पछिताना॥

टोडर प्रेमपूर्वक तुलसीदासजीकी सारी व्यवस्था करते थे। और तुलसीदास उनसे स्नेह मानते थे। १६६८ वि०में टोडर का देहांत हुआ। तुलसीदासको उनके मरनेका शोक हुआ। और उन्होने अपना सिद्धांत तोड़कर इनकी मृत्युपर निम्नांकित चार दोहे कहे—

चार गांवको ठाकुरो, मनको महा महीप। तुलसी या कलि कालमें, अथए टोडर दीप॥ १॥
तुलसीराम सनेह को, सिर पर भारी भार। टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥ २॥
तुलसी उर माला विमल, टोडर गुन गन बाग। ये दोउ नयना सींचिहौं, समुझि-समुझि अनुराग॥३॥
राम-धाम टोडर गए, तुलसी भए असोच। जियवे मोत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥ ४॥

गोसाईंजीकी मृत्यु तिथि सावन वदी ३ को टोडरके वंशज अब भी गोसाईं जीके नाम पर ब्राह्मणको सीधा देते हैं। इस समय टोडरके वंशजोंमें भदैनी स्थित 'तुलसी पुस्तकालय' के कर्ताधर्ता श्री आनन्द बहादुर सिंह हैं। तुलसी और टोडरकी यह मैत्री धन्य है।

टोडरकी मृत्यु पर उनके पुत्र आनन्दराम एवं पौत्र कन्हईके बीच पारिवारिक संपत्ति एवं जमींदारीको लेकर जो गृह कलह हुआ, उसके लिए जो पंचायत बैठी, उसका पंचायत नामा गोसाईं जीकी ही देख रेखमें लिखा गया। उसका सिरनामा तुलसीदास जीके हाथका लिखा हुआ है। यही तुलसीके हाथका लिखा एक मात्र प्रामाणिक लेख है, जो अब काशी नरेशके यहाँ सुरक्षित है। इस पंचायतनामेकी तिथि है आश्विन सुदी १३ सं० १६६९ वि०। इसकी प्रतिच्छवि बाबू श्यामसुंदर दास कृत गोस्वामी तुलसीदास एवं डा० माताप्रसाद गुप्त कृत तुलसीदासमें देखी जा सकती है।

१७. विरोध

रामचरित मानसकी रचनाके बाद जब तुलसी काशीमें रहने लगे और अपने काव्य एवं सिद्धिके लिए परम प्रसिद्ध हो गए, तब इनका विरोध भी व्यापक रूपमें बढ़ा। मार पीट, चोरी आदिके प्रयत्न किए कराए गए। इस विरोधकी सूचना तुलसीके उत्तरकालीन साहित्यसे भी मिलती है।

१—लोग कहैं पोच सो न सोच न सकोच मेरे, व्याह न बरेखी जाति पांति न चहत हौं
—विनय पत्रिका ७६

२—देवसरि सैवों, वामदेव द्वार रावरे ही, नाम राम ही के माँगि उदर भरन हौं
दीबे जोग तुलसी न लेत काहूको कछूक लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं
एते पर हूँ को कोऊ रावरो ह्वै जोर करै, ताकौं जोर देबे दीन द्वारे गुदरत हौं
—कवितावली, उ० कांड, १६५

३—धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ
काहूकी बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ
'तुलसी' सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ
मांगी के खैबो, मसीतको सोइबो, लैबेको एक न देबेको दोऊ

—कवितावली, उ० कांड १०६

४—कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै रामको गुलाम खरो खूब है
साधु जानैं महा साधु, खल जानैं महा खल, बानी झूठी सांची कोटि उठत हबूब है
चहत न काहू सों न कहत काहूकी कछू, सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है
तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के रामकी भगति भूमि मेरी मति दूब है

—कवितावली, उ० कांड, १०८

५— साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहूके द्वार परौं जो हौं सो हौं राम को।

—कवितावली, उ० कांड १०७

६—गांव वसत बामदेव, कबहूँ न निहोरे अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे
बेगि बोलि बरजिए करतूति कठोरे तुलसी दलि रुंध्यों चहैं सठ साखि सिहोरे।

—विनय पत्रिका, ८

दोहावलीसे भी विरोधकी यह ध्वनि निकलती है—

तुलसी रघुबर सेवकहिं, खल डांटत मन माखि।
बाज-राजके बालकहिं, लवा दिखावत आँखि॥ १४४॥
रावन रिपुके दास तें, कायर करहिं कुचालि।
खर दूसन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥ १४५॥
पुन्य पाप जस अजस के, भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास को, राम करहिंगे दूरि॥ १४६॥
भली कहैं बिनु जानेई, बिन जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय, करिय न हरस विसाद॥ ३८७॥
पर सुख संपति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसीं तिनके भाग ते, चलै भलाई भागि॥ ३८८॥
तुलसी जे कीरति चहैं, पर कीरतिको खोय।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न, मरिहै धोय॥ ३८९॥

काशीके पंडित एवं दुष्टजन तो परेशान करते ही थे। काशीके कोतवाल भैरव जी ने भी उन्हें सताया—कलिकालने भी अपना रूप दिखाया।

सुनिए करल कलिकाल भूमिपाल! तुम जाहि घाला चाहिए, कहौ धौं राखै ताहि को।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न, मैं हूँ तै हूँ ताहिको, सकल जग जाहि को।
काम कोह ताइ कै देखाइयत आंखि मोहिं एते मान अकस कीबे को आपु आहि की।
साहेब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो, राम बोला नाम हौं गुलाम राम राय को।

—कवितावली, उत्तरकांड १००

२४

डा० माताप्रसाद गुप्तका अनुमान है कि काशीमें दुष्टोंने गोसाइँजीके प्राण लेनेकी भी कदाचित चेष्टा की थी। तभी गोसाइँजीको कहना पड़ा—

व्याल कराल, महा विस, पावक, मत्त गयंदहुके रद तोरे
सांसति संकि चली डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे
नेकु विसाद नहीं प्रह्लादहि, कारन केवल केहरि हो रे
कौन की त्रास करै तुलसी, जोपैं राखिहैं राम, तो मारिहै को रे।

—कवितावली उत्तरकांड ४८

जो पै कृपा रघुपति कृपाल की, बैर और के कहा सरै
होइ न बाँको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै
तकै नीच जो मीच साधु की, सोइ पामर तेहि मीच मरै
वेद विदित प्रह्लाद कथा सुनि, कौन भगति पथ पांव धरै,
जो जो कूप खनैंगे पर कहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै
सपनेहु सुख न संत द्रोही कहँ, सुरतरु सोउ बिस फरनि फरै।
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जनकी सीम चरै
तुलसिदास रघुबीर बाहुबल, सदा अभय काहू न डरै।

—विनय पत्रिका—१३०

१८. सम्मान

गोसाइँ तुलसीदासजीका जहाँ काशीमें विरोध हुआ, वहीं उनका सम्मान भी काशीकी उस समयकी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य प्रतिभा आनन्द कानन[1] ब्रह्मचारीने राम चरित मानसका पारायण करनेके पश्चात् उच्छ्वास पूर्ण स्वरमें यह कहकर किया—

आनन्दकानने ह्यस्मिन्, तुलसी जंगमस्तरुः कवितामञ्जरी यस्य, रामभ्रमरभूषिता

यह तुलसीके लिए प्रमाण पत्र हुआ और दुष्ट पंडितोंका मुँह बन्द हुआ।

नाभादासने तुलसीदासको भक्तमालका सुमेरु कहा था और भक्तमालमें इन्हें आदि कवि वाल्मीकिका अवतार कहा है।

त्रेता काव्य निबन्ध करिव, सतकोटि रमायन। इक अच्छर उचरे, ब्रह्महत्यादि परायन।
पुनि भक्तन सुख देन, बहुरि लीला विस्तारी। राम चरन रस मत्त रहत, अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपारके पार को, सुगम रूप नौका लए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीक, तुलसी भए॥ १२९॥

रामचरित मानसकी रचनाके उपरान्त तुलसीदास जीका सम्मान महामुनि बालमीकि सा होने लगा था। इसकी अनुभूति स्वयं तुलसीको भी थी, तभी वे कहते हैं—

'राम नामको प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप तुलसीसे जग मानियत महा मुनि सो।

—कवितावली उत्तरकाण्ड ७२

राजा महाराजा उनके पांव पूजने लगे थे।

घर-घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजे पांय। जो तुलसी तब राम बिनु, सो अब राम सहाय।

—दोहावली—१०९

१. मधुसूदन सरस्वती।

१९. क्या तुलसीदास कभी बंदी हुए थे ?

प्रियादास, गोसाइँ चरित, मूल गोसाईं चरित सभी कहते हैं कि गोसाइँजीको तत्कालीन मुगल सम्राट (जहांगीर) ने दिल्ली बुलवाया और कोई करामात दिखानेके लिए कहा। पर तुलसीने कहा कि राम नामको छोड़ मैं कोई कारामात नहीं जानता। इसपर रुष्ट होकर उसने इन्हें बंदींगृहमें डाल दिया था। इन्होंने हनुमानजीकी स्तुतिकी, तत्काल मुगल किलेको हनुमानजीकी बानरी सेनाने घेर लिया, बादशाह और बेगमोंकी दुर्दशाकर दी। इतनी करामात देख लेनेपर बह गुसाइँजीकी शरणमें आया, क्षमा मांगी, तब गोसाइँजीने हनुमानजीकी पुनः विनती की और उन्होंने अपनी सेना हटा ली। गोसाइँजीने कहा यह कोट रामदास हनुमानका हुआ, इसे छोड़ दो और अपने लिए दूसरा कोट बनवाओ। बादशाहने ऐसा ही किया। प्रियादासका उल्लेख सबसे पुराना है। वे कहते हैं—

दिल्ली पति बादशाह अहदी पठाए लैन। ताको सो सुनाये सूबे विप्र ज्यायो जानिए ॥
देखिबे कौं चाहैं, नीके सुख सों निबाहे। आइ कही बहु बिनै गहि, चले मन आनिए ॥
पहुँचे नृपति पास, आदर प्रकास कियो। दियो उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिए ॥
दीजै करामाति जग ख्यात सब मात किए"। कही, "झूठ बात, एक राम पहिचानिए" ॥५०७
२ 'देखौं राम कैसो" कहि कैद किए, किए हिए। "हूजिए कृपाल हनुमान जू दयाल हो" ॥
ताही समै फैलि गए, कोटि-कोटि कपि नए। लोचैं तन, खोंचै चीर, भयो यों विहाल हो ॥
फोरैं कोट, मारैं चोट, किए डारैं लोट पोट। लीजै कौन ओट जाय, मान्यो प्रलै काल हो ॥
भई तब आँखें, दुख सागरको चाखें। अब वेई हमें राखें, भाखें वारो धन माल हो ॥५०८
३ आय पाय लिए, 'तुम दिए हम प्रान पावैं"। आप समझावैं, 'करामात नेकु लीजिये" ॥
लाज दवि गयो नृप, तब राखि लयो, कह्यो। "भयो घर राम जूको, वेग दोड़ दीजिए" ॥
सुनि तजि दयो और कर्यो लै कै कोट नयो। अबहूँ न रहै कोऊ नामैं तन छीजिए ॥५०९

पर इस बानरी दुर्घटनाका कोई उल्लेख मुस्लिम इतिहासकारोंने नहीं किया है। तुलसीदासने महामहिपालोंकी अवश्य भर्त्सना की है—

१ गोंड़ गँवार नृपाल महि, पवन महा महिपाल। साम न, दाम न, भेद करि, केवल दंड कराल ॥
२ काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल। पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहमीयाल ॥
—दोहावली ५१५

गोसाइँजीने हनुमानजीको 'बंदिछोर' कहा है—

१ उथपे थपन, थपे उथपन, पन विबुध वृंद बँदिछोरको ॥ —विनय पत्रिका ३१
२ बंदिछोर विरुदावली निगमागम गाई ॥ —वही १४६

यह वंदि कलियुगकी है, किसी पातसाहकी भी हो सकती है।

कोई आश्चर्य नहीं गोसाइँजीने पुरानी दिल्लीके किलेको कुछ दिनोंके लिए गौरवान्वित किया हो। कुछ ही दिनों बाद तो शाहजहाँने शाहजहानाबाद बसाया। शासकोंके दांव पेंचको कौन जानता है। इतिहासमें वही लिखा जाता था, जो वे चाहते थे।

२० अंतिम दिन

गोसाइँजीने रुद्र बीसी (१६६५-८५ वि०) एवं मीनकी सनीचरी चैत सुदी २ सं० १६६९

से ज्येष्ठ १६७१ तकका वर्णन किया है। यह समय काशीके लिये भयावह था और तुलसीके लिये भी। काशीकी दुर्दशाका वर्णन वे इस कबित्तमें करते हैं—

संकर सहर सर, नर नारि वारिचर। विकल सकल महाभारी मांजा भई है॥
उछरत उतरात हहरात मरि जात। भमरि भगात जल थल मीचु भई है॥
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित। वारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है॥
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत। रामहूकी विगरी तुहि सुधारि लई है॥

—कवितावली उत्तरकांड १७६

यह महामारी प्लेगकी थी। यह महामारी भारतमें पहली बार संवत् १६७३ में आई। यह आठ वर्ष तक रही और १६८१में शांत हुई।

एक तो कराल कलिकाल सूत मूल तामें। कोढ़में की खाज सी सनीचरी है मीन की॥
वेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए। साधु सिद्यमान जाति रीति पाप पीनकी॥
दूबरेको दूसरोन द्वार, राम दयाधाम। रावरी ही गति बल-विभव-विहीनकी॥
लगेगी पै लाज वा विराजमान विरुदहिं। महाराज आजु जौ न देत दादि दीनकी॥

—कवितावली-उत्तरकांड १७७

इस कालमें तुलसीदासकी बांहमें अपार पीड़ा हुई थी, जिससे विकल होकर उन्होंने एक ग्रंथ ही हनुमानकी स्तुतिमें रच डाला, जिसका नाम हनुमान-बाहुक है, जिसमें कुल ४४ छंद हैं।

(१) साहसी समीरके, दुलारे रघुबीर जूके। बांह पीर महाबीर वेगि ही निवारिए॥२०।
(२) केसरी किसोर, रन-रोर, बरजोर वीर। बाहु पीर राहु-मातु ज्यौं पछारि मानिए॥२१॥
(३) पोखरी बिसाल बाहू, बलि बारिचर पीर। मकरी ज्यों पकरि कै बदन विदारिए॥२२॥
(४) महावीर बांकुरे, बराकी बाहु पीर क्यों न। लंकिनी ज्यौं लात घात ही मरोरि मारिए॥२३
(५) बाहु तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि। उपजी, सकेलि कपि खेल ही उखारिए॥२४॥
(६) पूतना पिसाचिनी ज्यों कपि-कान्ह तुलसीकी। बाहु पीर, महावीर, तेरे मारे मरेगी॥२५॥
(७) आन हनुमानकी, दोहाई बलवानकी। समथ महावीरकी, जो रहे पीर बांहकी॥२६॥

अंतमें यह बाहु पीड़ा हनुमानकी कृपासे दूर भी हुई।

(१) खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि। केसरी किसोर राखे वीर बरियाई है॥३५॥
(२) तुलसी-तनु-सर, सुख जलज, भुज-रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि - केसरी - किसोर॥

—दोहावली २३४

२१. निधन

(क) संवत एवं तिथि

गोसाइँजीके निधन संवत्‌के रूपमें किसीका निम्नांकित दोहा परंपरासे परम प्रसिद्ध रहा है—

संवत् सोरह सै असी, असी गंगके तीर। सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

और इसी दोहेके आधारपर गोसाइँजीकी मृत्यु तिथिपर पहले तुलसी जयंती मनानेका श्री गणेश हुआ, जो कालांतरमें परंपरा बन गयी।

मूल गोसाइँ चरितकी संप्राप्तिके साथ यह दोहा निम्नांकित रूपमें ज्ञात हुआ—

संवत् सोरह सै असी, असी गंगके तीर। श्रावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यौ शरीर॥

अब 'श्रावण श्यामा तीज' ही गोस्वामीजीकी निधन-तिथिके रूपमें मान्य है। इस तिथिकी पुष्टि इस तथ्यसे भी होती है कि गोसाइँ तुलसीदासके मित्र टोडरके वंशज अब भी इसी तिथिको ब्राह्मणोंको गोसाइँजीके वार्षिक श्राद्धकी स्मृतिमें सीधा देते हैं। इधर इस तिथिकी पुष्टिमें एक और प्रमाण मिला है। नागरी प्रचारिणी सभा काशोमें श्रीधर स्वामी विरचित भागवतकी टीकापर श्री चिंतामणि भट्ट द्वारा १६७६ में रचित भावार्थ दीपिकाकी प्रति है। इस हस्तलेखमें सप्तम स्कंधकी पुष्पिका वाले पृष्ठके पोछे चिंतामणि भट्टके ही हाथसे निम्नांकित श्लोक लिखा गया है—

आकाशाहिरसक्षपाकर मिते संवत्सरे श्रावणे
प्रातर्वासव-भूसिते सित दिने कृष्णे तृतीया तिथौ
काश्यां देवनदीजलेऽतिविमले लीला शरीरं मुदा
त्यक्त्वा रामहरं जगाम, तुलसीदासः कलौ दुर्लभम्॥

आकाश—०, अहि=८, रस=५, क्षपाकर=१। अंकानामवामतो गतिः के अनुसार संवत् १६८० निकला। इस श्लोकसे ज्ञात होता है कि गोसाइँजीकी मृत्यु प्रातःकाल गंगा-तटपर हुई थी।

गोसाईंजीकी मृत्यु-तिथि सुनिश्चित हो जानेपर भी तुलसी जयंती परंपराके अनुसार श्रावण शुक्ला सप्तमीको मनाई जा रही है, जिसे पहले मृत्यु तिथि समझा गया था, अब उसे जन्म-तिथि स्वीकार किया जाने लगा है और दोहेके 'तज्यो'को 'धर्‌यो'में बदला जा रहा है।

(ख) अंत समय—कहा जाता है कि तुलसीदासने महाप्रमाण कालमें निम्नाकित छंद, क्षेमकारी-दर्शन पाकर कहा था—

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुख-चंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोक विसाद हरी है॥
गौरी कि गंग विहंगिनि वेस, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचनि छेमकरी है॥

—कवितावली, उ० का० १८०

ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजीने स्वस्थचित्त महाप्रमाण किया था।

कहा जाता है कि मरनेके पहले उन्होंने यह दोहा कहा था—

राम-नाम-जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन। तुलसीके मुख दीजिए, अब ही तुलसी सोन॥

गोस्वामी तुलसीदास और सोरों-सामग्री

डा० रामदत्त भारद्वाज, एम० ए०, डी० लिट

सोरों-सामग्रीका अभिप्राय गोस्वामी तुलसीदास-परक उस सामग्रीसे हैं, जो सोरों या उसके निकटवर्ती स्थानोंसे उपलब्ध है, एवं वह सामग्री जो उक्त सामग्रीका समर्थन करती है। इसके दो रूप हैं—गृह्य और बाह्य।

१. गृह्य सामग्री

सोरोंकी गृह्य सामग्री षड्‌विध है, क्योंकि उसके आधार हैं। भवन, वंशज, जनश्रुति, भाषा-शैली, पाण्डु-लिपियाँ और तुलसीदासजीके वचन।

(क) भवन सामग्री एवं (ख) वंशज

इसके अन्तर्गत रामपुर ग्रामका बलराम मन्दिर हैं। जिसके नामपर इस ग्रामका नाम पड़ा और जहाँ आज भी बलदेव छटका मेला लगता है। सोरोंमें गुरु नरसिंहजीकी पाठशाला, वराह मन्दिर और गंगाघाट, तुलसीदास-गृह, नन्ददास-गृह तथा सीताराम और सोमेश्वरके मन्दिर विद्यमान हैं। सोरोंके सम्मुख बदरिया ग्राममें गोस्वामीजीकी सुसराल थी। सोरोंमें गुरु नरसिंह और महाकवि नन्ददासके वंशज आज भी हैं।

(ग) जनश्रुतियाँ

गोस्वामीजीकी पत्नी रत्नवाली जिस घरमें निवास करती थीं, उसकी रज धारण करनेसे आरोग्य लाभ होता है, ऐसी जनश्रुति है। इसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेदीने भी संवत् १८२९ में किया था। सोरोंके हिन्दु-मुसलमान दोनों ही कहते हैं कि तुलसीदास सोरोंके थे। उनका घर कसाइयों के निकट था। आज भी मुसलमान और कसाई वहाँ रहते हैं, और वहीं पासमें श्मशान भी है। जनश्रुति है—तुलसी तेरी झोंपड़ी गलकटियनके पास', अथवा 'तुलसी घर मरघटमें गलकटियनके पास'। नरसिंह मन्दिरके विषयमें लोग कहते हैं कि उसमें तुलसीदासजीके गुरु नरसिंहजी पढ़ाते थे, और उसमें आज भी हनुमान्‌जीकी प्रतिमा विद्यमान है। एटा जिलेके तारी नामक ग्राममें यह जनश्रुति अभी तक रही है कि वहाँ गोस्वामीजीकी ननसाल थी।

(घ) भाषा-शैली

'रामचरित मानस'की भाषा-शैलीका साम्य तत्कालीन अन्य कवियोंकी भाषा-शैली से है। महाकवि नन्ददास और कृष्णदासने, जो गोस्वामीजीके क्रमशः भाई और भतीजे लगते थे, चौपाई और दोहोंमें भी रचना की है। रत्नावलीके दोहे और मुरलीधर चतुर्वेदीकी रचना ब्रजावधीमें है।

सोरोंकी, विशेषतः उसके ग्रास-पासके ग्रामोंकी, भाषा न शुद्ध व्रजी है ग्रौर न शुद्ध ग्रवधी। पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट, पं० गौरीशंकर द्विवेदी ग्रौर पं० रामनरेश त्रिपाठीने कुछ ऐसे शब्दोंकी ग्रोर ध्यान ग्राकृष्ट किया है जो सोरोंमें ही बोले जाते हैं, कुछ कासगंज, हाथरस ग्रौर मथुरामें भी बोले जाते हैं। सोरों ग्रौर मथुरामें राजपुतानेके यात्री बहु-संख्यामें प्रतिवर्ष ग्राते हैं, कदाचित् इस कारण तुलसी-रचनामें मारवाड़ी शब्द भी विद्यमान हैं, सोरों तो पश्चिमी उत्तर प्रदेशमें मुस्लिम जनसंख्यासे संकुल रहा है, ग्रतएव तुलसी-साहित्यमें ग्ररबी-फारसीके शब्द भी न्यून नहीं हैं। लखनऊ विश्व-विद्यालयके डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तवने 'तुलसीदाकी भाषा' नामक ग्रपने शोध,प्रबन्धमें लिखा कि 'भाषाके ग्राधारपर हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि तुलसीदास जन्मकालसे बाल्यकाल तक सोरों या उसके ग्रास-पास रहे।

(ङ) ग्रात्म-परिचय

गोस्वामीजीके कुछ वचन ग्रौर कूट ग्रात्म-परिचयात्मक हैं, उनसे भी सोरों-पक्षकी पुष्टि होती है। उनमेंसे कुछका मौखिक निर्देश सोरोंके ऋषि-कल्प दशरथ शास्त्रीने ग्रौर कुछका उल्लेख ग्रलीगढ़के पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्रीने किया है। मुझे 'तुलसी सतसई'में भी एतद्विषयक प्रामाण्य दृष्टिगोचर हूग्रा। सोरों सामग्रीके ग्रनुसार, तुलसीदासजीका जन्म-स्थान रामपुर ग्राम था, ग्रतएव उन्होंने भी लिखा 'तुलसी तिहारो घर जायां है घर को, क ७,१२२। रामपुर गंगाजीके किनारे था, ग्रतएव गोस्वामीजीने लिखा —

वरु वारहिं बार सरीर धरौं रघुवीरको ह्वै तब तीर रहोगो।
भागीरथी तिनवौं कर जोरि वहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥ क७,१४७

गोस्वामीजी सुकुल व्राह्मण थे, इस बातकी पुष्टि उनके इन वचनोंसे होती है—

दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर, वि० १३५
जायो कुल मंगल वधावनो बजायो सुनि, क ७, ७३
व्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यौं ही तिहारें हिये न हिते हौं,—क ७, १०२

तुलसीदासके समकालीन महाकवि केशवदासकी 'कविप्रिया' (२१३) को ध्यानसे रखें, तो निम्नलिखित पंक्तियोंसे गोस्वामीजीका सनाढ्यत्व स्पष्ट है—

वहुत प्रीति पुजाइवे पर पूजिवे पर थोरि, देत सिख सिखयो न मानति मूढ़ता ग्रस मोरि, वि० १५८

गोस्वामीजीकी शिक्षा-दीक्षा, बचपनमें, सूकरक्षेत्रमें हुई थी, जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं—

मैं पुनि निज गुरु सब सुनी कथा सो सूकरखेत,
समुझि नहीं तस बालपन तब ग्रति रहेउँ ग्रचेत, रा १,३० (क)

तुलसीदासके गुरु नरसिंहजी थे। तुलसीकी प्रणति हैं। वंदौ गुरु पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि, रा० १०५। तुलसीदासकी माता हुलसी थी जिनका स्मरण इस प्रकार किया गया है—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसीसी तुलसीदास हित हिय हुलसी सी। रा १, ३० (ख)

तुलसीदासने ग्रपने पिता ग्रात्मारामका उल्लेख 'तुलसी सतसई'में इस कूटके द्वारा किया है—

जतन ग्रनूपम जानु वर सकल कला गुन धाम।
ग्रविनासी ग्रव्यय ग्रमल माँ यह तनु धरि राम॥ तु० स० १५

(च) पाण्डु-लिपियाँ

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंके संचय एवं संरक्षण करनेवालोंमें प्रमुख हैं सर्वश्री गोविन्दवल्लभ भट्ट, भद्रदत्त शर्मा, हरगोविन्द पंडा, वेदव्रत शर्मा। सोरों-सम्बन्धी प्रामाणिक पाण्डु-लिपियाँ ये हैं—

१—'रामचरितमानस'के दो काण्ड।

(क) बालकाण्ड, १६४३ वि० की प्रति, एवं

(ख) अरण्यकांड, १६४३ वि० की प्रति।

उक्त काण्ड खण्डित हैं, ये नन्ददासजीके पुत्र सूकर-क्षेत्र निवासी कृष्णदासके लिए नकल किये गये थे। बालकांडकी पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्री रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसते विमल वैराग्य सम्पादिनी नाम १ सोपान समाप्तः संवत् १६४३ शाके १५०८……वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिषी रघुनाथदासने कासीपुरी में। अरण्यकाण्डकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री रामायने सकल कलिकलुष विध्वंसने विमल वैराग्य सम्पादिनी षट सुजन संवादे रामवन चरित्र वर्ननों नाम तृतयो सोपान आरन्य कांड समाप्त ॥ ३ ॥ श्री तुलसीदास गुरुकी आज्ञा सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिषितं लछिमन दास कासीजी मध्य सम्वत् १६४३ आषाढ सुद्ध ४ सुके इति ॥

२—भ्रमरगीत। नन्ददासने जो भ्रमरगीत लिखा था उसकी प्रतिलिपि उनके पुत्र कृष्णदासके शिष्य बालकृष्णने सोरोंमें की। इसकी पुष्पिकामें 'सच्चिदानन्द'से 'व्रजचन्द्र' तक गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददासजीकी वंशावलीका उल्लेख है। यह माघ कृष्णा ३ सोमवार १६७२ वि० को लिखी गयी थी।

३—रत्नावलीके दोहे। रत्नावली-कृत दोहोंके दो संस्करण उपलब्ध हैं, जिसमें एक तो २०१ दोहोंका है, और दूसरा १११ दोहों का। इन दोहोंमें रत्नावलीने कुछ आत्म-परिचय दिया, अपने वियोगका वर्णन किया, और कन्याओंको शिक्षा प्रदान की है। प्रतियाँ ये हैं —

(क) दोहा-रत्नावली, गोपालदासकी प्रति जो भाद्रपद अमावस्या सोमवार १८२४ वि० को पूर्ण हुई, और

(ख) गंगाधारकी प्रति जो भाद्रपद शुक्ला ३ चन्द्रवार १८२९ वि० में पूर्ण हुई, तथा

(ग) रत्नावली लघु दोहा संग्रह, सम्वत् १८७५ माघ शुक्ला त्रयोदशी सोमवारकी लिखी हुई ईश्वरनाथ की प्रति। इसमें रत्नावलीके केवल १११ दोहे हैं जो उक्त दोनों प्रतियोंमें भी मिलते हैं।

५ – सूकरक्षेत्र-महात्म्य। इस माहात्म्यको नन्ददासके पुत्र कृष्णदासजीने १६७० वि० में लिखा था। इसकी तीन प्रतियाँ विद्यमान हैं; इनके अतिरिक्त १९२७ वि० की, अर्थात् आजसे शताधिक वर्ष पूर्व मुद्रित प्रति भी उपलब्ध है।

(क) मुरलीधर चतुर्वेदीके हाथकी प्रतिलिपि जो उन्होंने १८०९ वि० में की, तथा

(ख) शिवसहायकी प्रति, जो कार्तिक कृष्णा ११ बुधवारको १८७० वि० में पूर्ण हुई। इस रचनामें वराह पुराणके अनुसार सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरोंका वर्णन है। कृष्णदासने आद्यन्तमें जो परिचय दिया है उससे स्पष्ट है कि वे सूकरक्षेत्रके निकट रामपुर ग्राममें रहते थे। इससे यह भी विदित है कि तुलसीदासजी सुकुल ब्राह्मण, नन्ददासजीके ताऊके पुत्र और स्वयं कृष्णदासके ताऊ थे, रत्नावली

ताई और कमला कृष्णदासकी माता थी, तुलसी और नन्द दोनों ही गुरु नरसिंहके शिष्य थे, तुलसीदासजीने 'रामचरित मानस' लिखा और नन्ददासजीने 'रामपंचाध्यायी' लिखी।

५—कृष्णदास वंशावली। कृष्णदासजीने अपनी वंशावली दस दोहोंमें लिखी है, जिसे मुरलीधर चतुर्वेदीने और शिवसहाय कायस्थने 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य'के अन्तमें दिया है। इससे ज्ञात है कि रामपुर नामका ग्राम सूकरक्षेत्रके निकट था। वहाँ नारायण शुक्लके चार पुत्र हुए—श्रीधर, शेषधर, सनक और सनातन। सनातनके पुत्र परमानन्द थे, और उनके पुत्र सच्चिदानन्द हुए। सच्चिदानन्दके दो पुत्र थे आत्माराम और जीवाराम। आत्मारामके पुत्र तुलसीदास थे, और जीवारामके दो पुत्र हुए—नन्ददास और चन्द्रहास। नन्ददाससे पुत्र कृष्णदास और चन्द्रहासके पुत्र ब्रजचन्द्र हुए। तुलसीदासजीने 'रामचरित मानस' लिखा तो नन्ददासजीने वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित हो भागवतरास रचा।

६—रत्नावली चरित। मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत इस पुस्तकका प्रारम्भ गणेशस्तव और तुलसीदास-प्रशस्तिसे हुआ है जो दोनों ही संस्कृतमें हैं, तदनन्तर रत्नावलीका जीवन-चरित है। इसके पश्चात् छप्पय हैं, जिनमेंसे दो में गो० तुलसीदास तथा नन्ददासजीके जन्मस्थानका तीनमें सूकरक्षेत्रकी महिमाका, और अंतिममें अपनी आयुके इक्यासीवें वर्षमें चतुर्वेदजीके प्रवेशका उल्लेख है। इस पुस्तककी दो प्रतियाँ उपलब्ध है।

(क) स्वयं मुरलीधर चतुर्वेदीकी प्रति जो उन्होंने श्रावण शुक्ला प्रतिपदा १८२९ वि० को पूर्ण की, और

(ख) रामवल्लभ मिश्रकी प्रतिलिपि जो मार्गशीर्ष शुक्ला ६ शनिार १८६४ वि० को पूर्ण हुई।

७—वर्षफल। इसे कृष्णदासजीने नभ कृष्णा त्रयोदशी १६५७ वि० में अपने चाचा चन्द्रहासके निर्देशसे लिखा था। यह पुस्तक ज्योतिषकी है। इसके आदि और अन्तमें कविने अपने वंशका परिचय दिया है। उन्होंने इस बातका उल्लेख किया है कि रत्नावलीकी जन्म भूमि बदरीको गंगाजीकी उस बाढ़ने नष्ट कर दिया जो १६५७ वि० के आषाढ़ मासके अन्त आयी थी। इस वर्ष फलकी प्रतिलिपि रुद्रनाथने १८७२ वि० में की।

८—सेवादासकी टीका नाभादास-कृत भक्तमालपर प्रियादासने 'भक्ति रस बोधिनी' टीका लिखी' उस पर सेवादासने टीका की जो मार्ग-शीर्ष शुक्ला १० गुरुवार १८९४ वि० को पूर्ण हुई। प्रियादासने लिखा था—

लिया सों सनेह बिन पूछै पिता गेह गई, भूलि सुधि देह भजे वाहि ठोर आये हैं।

उक्त 'वाहि ठौर' को सेवादासजीसे इस प्रकार स्पष्ट किया है—

सुनों लषि गेह उमड्यो तिय सनेह जिय, रत्नावलि दर्श हेतु नैन अकुलाये हैं।
भादोंकी अरध राति चंचला चमकि जात, मंद-मंद बिन्दु परें घोर घन छाये हैं।
औसेमें तुलसी षेत सूकर सों मोद भरे, चपल चाल चलत जात गंगधार धाये हैं।
शब पै सवार ह्वै गंगधार पार करी, बदरी ससुरारि जाय पौरिया जगाये हैं।

सेवादासने तुलसीदास और नन्ददासके पत्र-व्यवहारकी भी चर्चा की है।

२५

गृह्य सामग्रीका परीक्षण

सोरोंकी गृह्य सामग्रीपर कुछ आक्षेप हुए हैं, मुझे भी अपने ग्रन्थोंमें उनपर विचार-विमर्शके लिए अवसर मिला है। वास्तवमें, आक्षेपोंने इस सामग्रीके सम्बन्धमें अधिकाधिक विचारके लिए प्रेरणा प्रदान की है। विचार-विमर्शसे, मेरी समझमें, सोरों-सामग्रीको बड़ा बल मिला है। कुछ शंकाएँ कतिपय शब्द तथा उनके अर्थ और प्रयोगके सम्बन्धमें हैं, जिनका समाधान शब्द कोशों और तत्कालीन प्रयोगोंसे ही हो जाता है। संवत् १६४३ के मानसके पाठमें कुछ अशुद्धियोंका निर्देश किया गया है जिनमेंसे कुछ तो प्रतिलिपिकारोंकी ही हैं। भद्दी भूलें राजापुरके अयोध्या काण्ड और श्रावण कुंज (अयोध्या) के बालकाण्डमें भी मिलती हैं, किन्तु इस प्रासंगिक चर्चाका यह तात्पर्य नहीं कि वे प्रतियाँ प्राचीन नहीं अथवा महत्त्वपूर्ण नहीं। तुलसीदास जैसे व्यस्त महापुरुषोंको इतना अवकाश कहाँ मिलता होगा कि वे अपनी रचनाकी प्रतिलिपियोंको प्रदान करते समय उनके एक-एक शब्दको पढ़कर शोधते रहते। पाठान्तरके सम्बन्धमें निवेदन है कि १६४३ वि० की प्रति 'रामचरित मानस' की अब तक उपलब्ध सबसे प्राचीन प्रति है। सं० १६४३ अरण्यकाण्डका पाठ काशिराजकी प्रतिसे साम्य रखता हुआ भी भिन्न है। अतएव हमारी धारणा है कि 'मानस' का पाठ समय-समयपर बदलता रहा, उसका वर्तमान रूप अन्यून काट-छाँट, घटा-बढ़ी, तथा शब्द-परिवर्तनका परिणाम है और बहुतसे ऐसे क्षेपक जिन्हें हम यों ही टाल देते हैं प्रारम्भमें गोस्वामीजीके द्वारा लिखे गये थे। मानसमें पाठ-भेद कितना, कब और क्यों हुआ यह प्रश्न स्वतंत्र एवं गंभीर विचारकी अपेक्षा रखता है। १६४३ वि० का पाठ साहित्यिक दृष्टिसे कितना उपादेय है, यह अलग बात है; किन्तु हमारी विनम्र धारणा है कि वह पाठ ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणोंसे परम महत्त्वपूर्ण है। कुछ आक्षेप हस्तलेख और लिखावटके सम्बन्धमें भी हुए हैं, जो वैज्ञानिक परीक्षणके उपरान्त नितान्त निराधार ठहरते हैं।

वैज्ञानिक परीक्षण

कागज-स्याही, लिखावट और मिति-वारके सम्बन्धमें क्रमशः नेशनल आरकाइव्ज, भारतीय पुरातत्त्व विभाग एवं गवर्नमेंट एपिग्रेफिस्ट फॉर इण्डियाने सोरों-सामग्रीकी कुछ प्रमुख पाण्डुलिपियोंका वैज्ञानिक परीक्षण किया, जो उसकी प्रामाणिकताकी पुष्टि करता है। इस परीक्षणके अनुसार उक्त बालकाण्डकी पुष्पिका अपने मूल रूपमें विद्यमान है, अर्थात् वह किसी और पुष्पिकाको मिटाकर नहीं लिखी गयी। उक्त अरण्यकालकी पुष्पिकामें 'श्री रामायने' से 'निवासी' तक सब शब्द (लाल स्याही फीकी होनेके कारण) लाल शब्दोंके ऊपर काली स्याहीमें लिखे गये हैं। इन शब्दोंमें 'श्री तुलसीदास गुरुकी आग्या सों उनके भ्राता सुत कृधमदास सोरों क्षेत्र निवासी' भी हैं। तुलसीदासजीका स्वर्गारोहण १६८० वि० में हुआ था, उनकी आज्ञा १६८० वि० से पूर्व ही मिल सकती थी, अतएव स्पष्ट है कि पुष्पिका तुलसीदासजीके जीवन-काल की है। पुष्पिकाके संवत् '१६४३' के कुछ अंकोंपर स्याही फिरी प्रतीत होती है, किन्तु '४' के नीचे लाल स्याहीका '४' भी चमकता है। '१' में परिवर्तनकी आवश्यकता ही नहीं क्योंकि 'रामचरित मानस' का निर्माण १६३१ वि० में हुआ और प्रस्तुत पाण्डुलिपिपर सर्व-प्रथम आक्षेप १९९६ वि० में हो चुका था। अंक '३' पर कोई आक्षेप नहीं, '६' के सम्बन्धमें आक्षेप है। इस विषयमें यह सन्देह सम्भव है कि उसके स्थान पर ७,८ अथवा ९ का अंक रहा हो, किन्तु इस सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिए कि १७४३,

१८४३ और १६४३ मेंसे किसी संवत्में आषाढ़ शुक्ला चतुर्थीको शुक्रवार न था, पर १६४३ वि० में था जैसा कि एपिग्रेफ़िस्ट उटकमंडसे सूचित करते हैं। अतएव पुष्पिकाके मिति, बार और संवत् गणनासे शुद्ध हैं। बालकाण्डकी पुष्पिका भी १६४३ वि० को है और उसके पर्याय १५०८ शक संवत्का भी उल्लेख उसमें है। अतएव सन्देहके लिए कोई गुजांइश नहीं। सोरोंकी उक्त ग्रन्य सभी पाण्डुलिपियोंके मितीवार आदि मिलते हैं। स्याही, कागज़ आदि पर विशेषज्ञका अभिमत इस प्रकार है :—

रिपोर्ट औन दि ऐग्ज़ामिनेशन औफ़ मैन्यूस्क्रिप्ट वौल्यूम्स औफ़ 'बालकांड', आरण्यकांड औफ़ तुलसी कृत रामायण ऐंड भक्तमाल बाइ श्री सेवादास रिसीव्ड फ्रौम डा० भारद्वाज।

दि मैन्यूस्क्रिप्ट वौल्यूम औफ़ 'आरण्यकांड', 'बालकांड' औफ़ तुलसीकृत रामायण ऐंड 'भक्तमाल' बाइ श्री सेवादासजी वेअर ऐग्ज़ामिंड इन दिस डिपार्टमेंट। दीज़ थ्री मैन्यूस्क्रिप्ट्स आर रिटिन विद कार्बन इंक, फ़्रौम व्हिच ऐनी डेटिंग एविडेन्स इज़ नौट पौसिबिल। दि पेपर औफ़ दीज़ मैन्यूस्क्रिप्ट्स हैज़ बीन फ़ाउंड टु बी औल रैग ऐंड इज़ साइज्ड विद स्टार्च। औल रैग स्टार्च साइज्ड पेपर हैज़ बीन इन यूज़ सिन्स एन्शंट टाइम (१३ वीं १४ वीं शती) अपटु दि प्रेज़ेंट पीरिअड फ़ौर राइटिंग पर्पज़ेज़ ऐंड ऐज़ सच इट इज़ नौट पौसिबिल टुडिराइव ऐनी कन्क्ल्यूजन रिगार्डिंग दि डेट औफ़ दीज़ मैन्यूस्क्रिप्ट्स फ्रौम दि अबव औब्ज़रवेशन।

कोलोफ़न्स औन पेज १२४ औफ़ मैन्यूस्क्रिप्ट 'बालकांड' ऐंड पेज २८ औफ़ मैन्यूस्क्रिप्ट 'आरण्यकांड' हैव बीन आलसो ऐंग्ज़ामिंड। दि रेडिश टिंज अंडरनीथ दि ब्लैक राइटिंग इन दि एन्ड थ्री लाइन्स औन पेज १२४ औफ 'बालकांड' मैन्यूस्क्रिप्ट इज़ नौट अपीयर टु बी फ्रौम ऐनी प्रीवियस राइटिंग। पर हैप्स रेड कलर हैज़ बीन यूज़्ड ऐज़ ए बैंकग्राउंड फ़ौर दि कोलोफ़न इन ब्लैक इंक ऐज़ ए डेकोरेशन। हाउएवर, दि एंड फ़ोर लाइन्स औफ़ कोलोफ़न औन पेज २८ औफ मैंन्यूस्क्रिप्ट 'आरण्यकांड' अपीयर टुबी रीरिटेन इन ब्लैक इंक ओवर रेड् राइटिंग। सम औफ़ दि एल्फ़ेबेट्स औफ़ दि प्रीवियस राइटिंग इन रेड् इंक कुड बी डिस्टिंक्टली सीन अपटु दि फ़र्स्ट ऐंड सेकिंड लाइन बट फ़्रौम दि मिडिल पोर्शन औफ़ दि थर्ड लाइन अपटु दि एंड औफ़ फोर्थ लाइन, देअर इज़ नों क्लीअर इंडिकेशन औफ़ ओवर राइटिंग, सिन्स दि रेड् इंक अपीयर्स टू हैव फ़ेडेड इन दिज पोर्शन्स हाऊ एवर, स्लाइट फ़ेडेड इम्प्रेशन औफ़ डिजिट ४ इज़ विजिबिल स्लाइटली शिफ्टेड फ्रौम दि इम्प्रेशन औफ़ दि डिजिट ४ इन ब्लैक इंक इन दि ईअर इन्स्क्रिप्शन १६४३ (इन हिन्दी न्यूमरल्स)।

पर हैप्स ए कैलिग्रैफ़िक स्टडी औफ़ दि मैन्यूस्क्रिप्ट्स में हेल्प देअर डेटिंग, एंड् दि डिपार्टमेंट औफ़ आर्केओलौजी मे बी इन ए पोज़ीशन टु हेल्प यू इन दिस मैटर।

(ह०) के० डी० भार्गवा डाइरेक्टर औफ़ आर्काइव्ज़ गवर्नमेंट औफ़ इंडिया।

पुरातत्व विभागके संयुक्त डाइरेक्टर जनरलने लिखावट आदिके सम्बन्धमें परीक्षण किया। इस विशेषज्ञके अनुसार १६४३ वि० के बालकाण्ड और अरण्यकाण्ड तथा १८६४ वि० की सेवादासकी भक्तमाल-टीका सर्वथा प्रामाणिक है। उनमेंसे प्रत्येककी लिखावट तत्कालीन है और पुष्पिका भी उसी हाथकी लिखी हुई है जिसने पुस्तकको प्रतिलिपि प्रस्तुत की। सेवादासकी पुस्तकमें ऊपर, नीचे तथा हाशिये पर जो टिप्पणियाँ हैं वे भी सेवादासके हाथ की हैं। इस विषयमें विशेषज्ञका निर्णय इस प्रकार है—

डी० ओ० नं० पी/II/५३–जे डी जी ए

फ्रौम डा० बी० छाबरा, एम० ए० एम० ओ० एल्० पी० एच्० डी० (आई यू जी डी) एफ़० ए० एस०,

ज्वाइंट डाइरेक्टर जनरल औफ़ आर्केओलौजी इन इंडिया,

न्यू देहली–II दि० २२ वीं सेप्टेम्बर, १९५९

डीअर डा० भारद्वाज

प्लीज़ रेफ़र टु योर लेटर डेटेंड दि २१ वीं सेप्टेम्बर, १९५९ आइ ऐग्ज़ामिंड दि मैन्यूस्क्रिप्ट्स इन दि ओरिजिनल औफ़ दि फ़ौलोइंग ह्विच यू हैड ब्रौट पर्सनली विद यू।

१. दि बालकांड औफ़ दि रामचरित मानस डेटेड १६४३ वि० ए०

२. दि आरण्यकांड औफ़ दि रामचरित मानस डेटेड १६४३ वि० ए०

३. दि भक्तमाल बाइ सेवादास डेटेड १८९४ वि० ए०

आइ हीअर बाइ कन्फ़र्म ह्वाट आइ टोल्ड यू अबाउट दि जिनुइननेस औफ़ दि मैन्यूस्क्रिप्ट्स। इन ईच केस दि कोलोफ़न एंड दि रेस्ट औफ़ दि टेक्स्ट औन दि लास्ट पेज अपीयर टु मी टु बी बाइ वन एंड् दि सेम हैंड। इन दि केस औफ़ दि थर्ड मैन्यूस्क्रिप्ट, नेमली दैट औफ़ दि भक्तमाल, दि टौप ऐंड बौटम नोट्स एंड आलसो दि मार्जिनल नोट्स औन पेज १६४ एंड् दि रेस्ट औफ़ दि टैक्स्ट आलसो अपीयर टुबी बाइ वन एंड् दि सेम हैंड।

दि देवनागरी कैरेक्टर्स यूज्ड इन औल दि थ्री मैन्यूस्क्रिप्ट्स अपीयर टुबी औफ़ दि पीरियड नोटेड इन ईच केस।

दि फ़ोर फोटोग्राफ्स कांइडली सेंट बाइ यू आर हीअर बाइ रिटर्न्ड।

डा० आर० भारद्वाज, १४।२९ शक्तिनगर, दिल्ली संलग्न : ४ फोटोग्राफ्स

योर्स सिन्सिअर्ली (ह०) बी० च० छाबरा
ज्योएंट डाइरेक्टर जनरल, २२-९-१९५९

२. बाह्य सामग्री

इसके अतिरिक्त ऐसी बाह्य सामग्री है जो सोरोंकी गृह्य सामग्रीका समर्थन करती हैं, यथा नन्ददासका विनय पद, नाभादासकी प्रशस्तियाँ, प्रियादासकी टीका, अष्टसखामृत, वैष्णव वार्ताएँ, भावप्रकाश, गोकुलनाथजीके वचनामृत, काका वल्लभजीके वचनामृत और उनकी भगवदीयनाम-मणिमाला, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके प्रशस्तिपद, रामचरित मानसकी प्राचीन टीकाएँ, बाबू शिवनन्दन सहायके लेख, और ग्रन्थ, भक्तमालपर सीताराम शरण भगवान् प्रसादकी टीका, सर जार्ज ग्रियर्सन एवं ऐवरेंड एडविन ग्रीव्ज़ तथा एफ० एस० ग्राउज़के अनुसंधान, पूर्वी उत्तर प्रदेशकी जनश्रुतियाँ, एवं राजापुर, बुन्देलखण्ड और एटाके गज़टियरोंका समर्थन। बाह्य सामग्रीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

नन्ददासका विनय-पद

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरू भ्राता पद बन्दे। शेष-सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमल हारी। करि पोथीपर सही आदरेउ आप पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनुधारी। वालमीकि अवतार कहत तेहि सन्त प्रचारी॥
नन्ददासके हृदय नयनको खोलउ सोई। उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई॥

इस पदमें नन्ददास जीने अपने बड़े भाई तुलसीदासजीकी वन्दना की है। इससे प्रतीत होता है कि नन्ददासजी तुलसीदासजीके छोटे भाई और शेष सनातन वंशके थे, जैसा कि सोरो-सामग्री भी बताती है। यह पद महात्मा विनायक रावकी कृपासे 'कल्याण' के रामायणांकमें प्रकाशित हुआ था।

नामादासकी प्रशस्तियाँ

(क) कलि कुटिल जीव निस्तार हेत वाल्मीकि तुलसी भयो। इसपर प्रियादासने अनेक छन्दोंमें टीका की है। एक यह है—

तिया सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई। भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं॥
वधू अति लाज भई रिस सों निकस गई। प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं॥

उक्त छन्दमें 'वाही ठौर' को स्पष्ट करते हुए सेवादासने अपनी टीकामें लिखा है कि तुलसीदास सूकरक्षेत्रसे गंगाजीको पारकर अपनी पत्नी रत्नावलीसे मिलने ससुराल बदरिया पहुंचे थे, उस समय भादोंकी अर्धरात्रि थी और मन्द-मन्द वर्षा हो रही थी।

(ख) नाभाजीने नन्ददास जीके विषयमें निम्नलिखित षड्पदी उपस्थित की है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचनामें नागर। सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस ज्ञान उजागर।
प्रचुर पयथलों सुजस रामपुर ग्राम निवासी। सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम-पथमें पगे। श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रमुदित रंगे पगे॥

इससे स्पष्ट है कि महाकवि नन्ददास बड़े विद्वान् थे और रामपुर ग्रामके निवासी थे। यह सूचना सोरों-सामग्रीके अनुकूल पड़ती है। उक्त षटपदीके आरम्भमें सेवादासने लिखा है कि 'तुलसीदास जी कही व्रजमें मति जाहि। जब बिधि चुके फिरि आयबो जायबो कहाँ तुलसीदास जीको उत्तर दियो।'

अष्ट सखामृत

रामभगत तुलसी अनुज नन्ददास व्रजख्यात। दुज सनौढिया सुकुल कवि कृष्णभगत अवदात॥ १॥
कयौ राम ते स्याम निज बदलि इष्ट अरुग्राम। रच्यौ स्यामसर बाछरू हरि बलदाऊ धाम॥ ३॥
सौंपि अनुज चन्द्रहास कर सुत दारा धन धाम। आये सूकर खेत तजि व्रज बसि सेवत स्याम॥ ४॥
कृष्ण रामके रूपमें भए नन्ददास मन आनि। लखि तुलसी मन चलि रहे प्रान जोरि जुग पानि॥ ७॥
रामायन भाषा विरचि भ्राता करी प्रकास। देखि रची श्री भागवत भाषा श्री नन्ददास॥

प्राणेश कविके उक्त लेखसे स्पष्ट है कि नन्ददासजी रामभक्त तुलसीदासजीके अनुज, जातिसे सुकुल आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण तथा सूकरक्षेत्रान्तर्गत रामपुर ग्रामके निवासी थे। उनके इष्टदेव पहले राम थे, फिर कृष्ण हो गये और उन्होंने कृष्णभक्तिके आवेगमें अपने ग्रामका नाम भी परिवर्तित कर दिया। सूकरक्षेत्रको त्याग और घरका सब भार छोटे भाई चन्द्रहासको सौंप, वे व्रजमें भी निवास करने लगे। जब देखा कि बड़े भाई तुलसीदासजीने हिन्दी भाषामें रामचरित मानस लिखा है, तो उन्होंने भी भागवतका हिन्दी रूपान्तर कर दिया। प्राणेश कविके 'अष्ट सखामृत' की एक प्रति चैत्र शुक्ला ५ शुक्रवार १८६५ वि० की, पं० रमण लाल वैद्य गोकुलसे प्राप्त है। गणनासे यह तिथि १ अप्रैल १८०८ ई० है। इसकी एक प्रति, पौष कृष्णा ३० शनिवार सं० १६६७ की, वैष्णव ग्वालदासने गोवर्धनमें की जो अब बम्बईके गो० गोकुलनाथजी महाराजके पास है।

वार्ताएँ

वार्ताओंमें 'चौरासी' और 'दो सौ बावन' वैष्णवोंकी वार्ताएँ हैं। वचनामृतोंमें उल्लेखनीय है गोकुलनाथजीके और काका वल्लभजीके शब्द। श्री कण्ठमणि शास्त्रीके शब्दोंमें—इस अक्षय निधिके संचय एवं परिदर्शनका श्रेय जहाँ गोकुलनाथजीको दिया जा सकता है, वहाँ उसके वर्गीकरण और सज्जीकरणका श्रेय हरिदासजी महानुभावको समाधिगत होता है। इन वार्ताओं और वचनामृतोंसे तुलसीदासजी और नन्ददासजीका भ्रातृत्व और सनाढ्यत्व स्पष्ट है, एवं यह भी विदित है कि नन्ददासजी रामपुर नामक ग्राममें जन्मे थे।

(ग) गोकुलनाथजीके समकालकी सबसे प्राचीन प्रति विद्या-विभाग काँकरौलीमें उपलब्ध है। चौरासी वैष्णव वार्तान्तर्गत 'गोसाईं जीके सेवक चारि अष्ट छापी तिनकी वार्ता' की प्रतिलिपि चुन्नीलाल नामक किसी सनाढ्य ब्राह्मणने गोकुलमें यमुना-तटपर चैत्र सुदी ५ को १६९७ वि० में की थी। इसमें लिखा है—"अब श्री गुसाईं जीके सेवक नन्ददास सनौढ्या ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हैं सो वे पूर्वमें रहते तिनकी वार्ता। सो वे नन्ददास और तुलसीदास दोइ माह हते तामें बढ़े तो तुलसीदास छोटे नन्ददास। सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।" इस 'पूर्व' शब्दको लेकर कुछ लोगोंकी कल्पना अयोध्या या काशी तक जा पहुँची, किन्तु औरंगजेबके उपद्रवके कारण श्रीनाथजीका देव-विग्रह ब्रजसे मेवाड़ लाया गया था। उसी समय हरिराम जी भी मेवाड़ चले गये। 'भाव प्रकाश' का निर्माण मेवाड़में हुआ और रामपुर मेवाड़से 'पूर्व' में है ही।

(ख) संवत् १७५२ की 'भाव प्रकाश' वाली वार्ता। यह प्रति पारीख द्वारकादासके पास है। इसमें लिखा है कि 'अब श्री गुसाईंजीके सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुरमें रहते जिनके पद अष्टछापमें गाइयत हैं जिनकी वार्ता सो वे तुलसीदासजी तो बढ़ भाई और छोटे भाई नन्ददास जी हैं। सो वे नन्ददास जी पढ़े बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानन्दीनके सेवक हते।'

(ग) भाव प्रकाश ! श्री हरिरायजी (१६४७-१७७२ वि०) ने 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ताओं' का सम्पादन किया और यत्र-तत्र भावको स्पष्ट करनेके लिए अपनी ओरसे संवत् १७२९ के पश्चात् टीका लिखी। नन्ददासजीकी : वह वार्ता ठीक इस प्रकार है। 'अब श्री गुसाईं जीके सेवक नन्ददास जो सनाढ्य ब्राह्मण रामपुरमें रहते जिनके पद अष्टछापमें गाइयत हैं तिनकी वार्ताको भाव कहत हैं।'

भाव प्रकाश—ये नन्ददास जी लीलामेँ श्री ठाकुर जीके भोज सखा अन्तरंग तिनको प्राकृट्य है। सो दिवसकी लोलामें तो ये भोज सखा हैं और रात्रिकी लीलामें श्री चन्द्रावली जीकी सखी चन्द्ररेखा इनको नाम है। सो तातें उनके सात्त्विक भाव रूप हैं। सो ये पूरबमें रामापुर ग्राममें जन्मे।

(घ) दो सौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता। इसका सम्पादन गोस्वामी हरिदासजीने १७३० वि० के लगभग किया। इसकी दो सौ इकतालीसवीं वार्ता नन्ददासजीकी है और उसमें तुलसीदासजीका भी उल्लेख नन्ददासजीके भाईके नाते, अनेक स्थलोंपर हुआ है, जिनसे विदित होता है कि नन्ददास जी और तुलसीदासजी भाई-भाई और सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदासजी नन्ददासजीके लिए चिंतित रहते, नन्ददासजीने उन्हें कृष्ण जीके दर्शन भगवान् रामके रूपमें कराये ; दोनों भाइयोंका पत्र-व्यवहार बड़ा मनोरम है। 'वार्ता' के कुछ आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं।

'सो वे तुलसीदासजीके भाई सनोढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े और छोटे भाई नन्ददास हते। सो वे नन्ददास जी पढ़े बहुत हते' (वार्ता प्रसंग १)। 'सो मैं तो अब तन, मन धन यह लोक परलोक श्रीकृष्णको दीनों है। (और) अब तो मैं परवश होई कै पर्यो हूँ। ऐसो नन्ददासने तुलसीदास जीको पत्र लिख्यो' (वार्ता प्रसंग २)। 'तब नन्ददास श्री गुसाईं जीसे विनती करी, ये मेरे भाई तुलसीदास हैं, सो श्री रामचन्द्र जी बिना और को नहीं नमें हैं' (वार्ता प्रसंग ४)। 'सो एक दिन नन्ददासके मनमें ऐसी आई जो—जैसे तुलसीदास जीने रामायण भाषा किये हैं। तैंसे हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें। पाछे नन्ददासने श्रीमद्भागवत दशम, भाषा संपूरन कियो' (वार्ता प्रसंग ५)।

(ङ) गोकुलनाथजीके वचनामृत। १७९६ वि०की इस हस्तलिखित प्रतिसे भी तुलसीदास जी और नन्ददासजीके भ्रातृत्वकी पुष्टि होती है। लेख है 'एक बार श्री मुखं वातन प्रसंगे आज्ञाकारी जो तुलसीदास जो मर्यादामार्गी हते। पर टेक कैसी हती ते ऊपर दोहो कह्यो ।।दोहा।।

बने तो रघुबर ते बने बिगरें तो भरपूर। तुलसी औरन के बने या बनिबेमें धूर ।।

जीवको सर्वथा अनन्यता चाहिए। ते तुलसीदासजी गोकुल आये हते। ता दिन श्री रघुनाथजी महाराजको विवाह हतां।……नन्ददासजी अष्ठ काव्य बारे सो तुलसीदासके छोटे भाई।। तुलसीदास बड़े भाई।। २३०।।

(च) श्री काकावल्लभजी महाराजके साक्ष्य

(अ) इनका प्राकट्य-संवत् १७०३ वि० है। इन्होंने अपने पचासवें वचनामृतमें गोस्वामी तुलसीदास और नंददासका उल्लेख किया है, उससे भी दोनोंके भातृत्वका प्रबल पुष्टि होती है—'जो मर्यादा मार्गमें श्रीरामचन्द्रजीके भक्त तुलसीदास बहोत बड़े बैष्णव हते ताके अनेक पद हैं। रामायण ग्रन्थ पथ बन्ध कवित्त बन्ध चौपाई बन्ध ऐसे अनेक कीने हैं……उनके भाई नन्ददासजी बहोत हँते……श्री गोकुल आयके श्री गुसाईंजीकी शरण आये और अष्टछापमें प्रख्यात भये……… पिछे तुलसीदासजी भाईकी खबर लेवे ब्रजमें आये। सो एतो राम उपासी हते और ब्रजमें तो सब ठिकाणे कृष्ण कृष्णकी धुनि सुनी। तव तुलसीदास एक साखी कही……पाछे भाई सों मिलें तब कह्यो जो तैंने व्यभिचार धर्म क्यों कीनों अपने प्रभूनको छोड़ि अन्य धर्मके आचरण क्यों करत हैं। अब पिछों चालि।

(आ) काका वल्लभजी महाराजने 'भगवदीय नाम मणिमाला' लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व लिखी, जिसमें उन्होंने २५२ वैष्णवोंका नामोल्लेख गुजराती 'धीलों'में किया और लिखा है—'नन्ददास सखा रामपुरी कहिये रे, सात्विक चंपकलता 'चन्द्रलेखा लहिये रे'।। ३०८।। स्पष्टतः नंददास जीके जन्म-स्थान 'रामपुर'का उल्लेखकर महाराजजीने 'अष्टसखामृत' 'भाव-प्रकाश' आदिका समर्थन किया है।

अन्य साक्ष्य

(क) रामायण बालकाण्ड १। कर मतब हिन्दू प्रेस लाला प्यारेलालके स्तमामसे छपी सं० १९२८ वि० इसके पृष्ठ ४ पर 'नररूप हरि' का अर्थ है 'नर हरिदास बाराह क्षेत्र निवासी' और पृष्ट २६ पर 'सूकरखेत' का अर्थ है 'गंगा-तीर सोरों घाट जहाँ वाराह अवतार भया'।

(ख) १९०२ ई०के (ज्ञानसागर प्रेस बंबईमें छपे) रामचरित मानसके प्रारंभमें प्रदत्त जीवनचरित्रके पृष्ठ ३ और ४५ पर 'सूकरखेत'का अर्थ 'गंगा किनारेका सोरों' किया गया है।

(ग) पं० रामेश्वर भट्टने १९०२ ई०में 'तुलसीकृत रामायण' में लिखा कि 'दीनबन्धु पाठकने गुसाईंजीको एक सुयोग्य भक्त जानकर अपनी गुणवती कन्याका विवाह इनके साथ कर दिया।'

(घ) लखीमपुर खीरीके निवासी और रामायणके टीकाकार पं० नारायणप्रसाद मिश्रके अनुसार (१९३० ई०) 'प्रसिद्ध है कि दीनबन्धु पाठककी कन्या रत्नावलीसे इनका (तुलसीदासका) विवाह हुआ था, जिसके तारक नामका एक पुत्र भी हुआ था।'

(ङ) डॉ० श्यामसुन्दरदासने इस उक्तिकी पुष्टि की कि 'तुलसीदासजीके गुरु स्मार्त वैष्णव थे।'

(च) विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रने तुलसीकृत-रामायणकी अपनी संजीवनी टीकामें लिखा कि 'इनका विवाह दीनबन्धु पाठककी कन्या रत्नावलीसे हुआ।'

(छ) पं० बाबूराम मिश्र 'रामचरित मानस सटीक' में लिखते हैं कि 'वे (तुलसीदास) स्मार्त वैष्णव थे।'

(ज) श्री सूरजभान अग्रवालने 'रामचरित मानस रामायण टीका सहित' में लिखा है कि 'तुलसीदासने अपना विवाह दीनबन्धु पाठककी कन्यासे कर लिया'।

(झ) लखीमपुर–खीरीके पण्डित सीताराम मिश्रने गोस्वामी तुलसीदास रामायणकी टीका में लिखा है कि 'नंददास सनोढिया ब्राह्मण तुलसीदासके छोटे भाई पूर्व देशके रहनेवाले थे। गोस्वामी जीका विवाह दीनबन्धु पाठककी कन्यासे हुआ था। तारक नामका पुत्र हुआ था।'

(ञ) 'मानस' के अनन्य प्रेमी रायबहादुर लाला सीतारामने तुलसीदासजीको तारीमें उत्पन्न सनाढ्य ब्राह्मण माना है। महात्मा रूपकलाजीने भी उनका जन्म तारीमें माना है। तुलसीके अनन्य भक्त रामदास गौड़ भी गोस्वामीजीको तारी-जात समझते थे। तारी एटा जिलेके अन्तर्वेद (दुआब) में है।

(ट) अयोध्याके श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसादका सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त श्री भक्तमाल नवलकिशोर प्रेस लखनऊसे १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ था, उसके ७४१ वें पृष्ठपर वे लिखते हैं—'जन्म स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा जिलेमें यमुना तीर 'राजापुर' को बहुत लोग कहते हैं, परन्तु राजापुर आपका जन्म स्थान नहीं है। श्री गोस्वामीजीका जन्म-स्थान श्री गंगा वाराह क्षेत्र (सौरों) के प्रान्त अन्तर्वेदमें 'तरी' नामक ग्राम या तारी था। अपने राजापुरमें विरक्त होनेके पीछे निवास कर भजन किया, इसीसे वहाँ गोस्वामीजीकी विराजमान की हुई मूर्ति संकट मोचन श्री हनुमानजीकी मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह वार्ता वहाँ जाके भली प्रकार निश्चय की है।'

(ठ) पं० गोविन्दवल्लभ भट्टको १९१९ ई० में तुलसी-स्मारक सभा, राजापुरके मंत्रीसे यह विदित हुआ कि तुलसीदासका जन्म-स्थान सोरों या उसके आसपास कोई स्थान है।

विदेशी अनुसंधान

(क) गज़ेटियर। अंग्रेजोंने १८५७ ई० के पश्चात् अपनी राज्य-सत्ताको सुदृढ़ करके भारतके विभिन्न स्थान अर्थात् प्रान्त, मण्डल, जिले आदिके विवरण, लेख, जनश्रुति आदिके आधारपर प्रस्तुत किये। १८७४ ई० में श्री एडविन टी० एटकिंसनने 'स्टेटिस्टिकल डिस्क्रप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउण्ट ऑव द नॉर्थ वेस्टर्न प्रॉविंस ऑव इंडिया' बुन्देलखण्ड, जिल्द १, सम्पादित की। १८८६ ई० में श्री ड्बल्यू इण्टरने इंपीरियल गजटियर ऑव इंडिया, यू० पी०, २ प्रॉविंशल सीरिज़, और १९०९

में बाँदा ज़िलेका गजटियर प्रकाशित कराया। इनका सार यह है कि, जनश्रुतिके अनुसार सम्राट् अकबरके कालमें 'रामचरित मानस' के रचयिता तुलसीदास सोरोंके निवासी थे, उन्होंने वहाँसे आकर राजापुरकी नींव डाली और जनताको भगवद्भक्तिकी ओर प्रेरित किया। विभिन्न गज़टियरोंके उद्धरण इस प्रकार हैं।

ट्रेडिशन हैज़ इट दैट इन अकबर्स रेन, ए होली मैन, तुलसीदास, एज रेज़िडेंट ऑफ़ सोरों, इन परगना अलीगंज ऑफ़ दि एटा डिस्ट्रिक्ट, केम टु दि जंगिल ऑन दि बैंक्स ऑफ़ दि जमना, व्हेअर राजापुर नाउ स्टैंड्स, इरेक्टेड ए टेंपिल, ऐंड् डिवोटेड हिमसेल्फ टु प्रेयर ऐंड मेडिटेशन। हिज़ सेंक्टिटी सून ऐट्रैक्टेड फ़ौलोअर्स, हू सेटिल्ड एराउंड हिम ऐंड ऐज देअर न बर्स इन्क्रीज्ड दे बिगैन टु डिवोट दैमसैल्व्ज़ (ऐंडविद वंडरफ़ुल सक्सेस) टु कौमर्स ऐज़र्वेल ऐज टु। रिलीजन। देअर आर सम क्यूरिअस लोकल कस्टम्स पीक्यूलियर टु राजापुर डिराइव्ड फ्रौम दि प्रीसेप्ट्स ऑफ़ तुलसी……।"

स्टैटिस्टिकल डेस्क्रिप्शन ऐंड हिस्टौरिकल एकाउण्ट ऑफ़ दि नौर्थ वेस्टर्न प्रौविंस ऑफ़ इंडिया, एडिटेड् बाइ एडविन टी एटकिंसन, बी० ए० बी० सी० एस०, वौल्यूम १, बुन्देलखंड, इलाहाबाद, १८७४, पेजेज़ ५७२-७३।

राजापुर वाज़ फ़ाउंडेड् इन दि बी रेन ऑफ़ अकबर बाइ तुलसीदास, ए डिवोटी फ्रौम सोरों, हू इरेक्टेड् ए टेंपिल, ऐंड ऐट्रैक्टेड मैनी फ़ौलो अर्स।

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ इंडिया, वौल्यूम ii बाइ डब्ल्यू० डब्ल्यू० इंटर, सेकिंड एडीशन, १८८६, पेजेज़ ३८५-८६।

"राजापुर इज़ दि नेम ऑफ़ दि टाउन, ऐंड सी मझगाँव दैट ऑफ़ दि मौजा और विलेज विदिन ह्विच इट इज़ सिचुएटेड्। एकौर्डिंग टु ट्रेडिशन, दि टाउन वाज़ फ़ाउंडेड् बाइ तुलसीदास, दि सेलिब्रेटेड ऑथर ऑफ़ दि रामायण ऐंड हिज रेज़िडेन्स इज़ स्टिल शोन………इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ इंडिया, यू० पी०, ii (प्रोविन्शल सीरीज़), कलकत्ता, १९०८, पेज ५०।

इट इज़ सेड् दैट इन दि रेन डी ऑफ़ अकबर, ए होली मैन, नेम्ड तुलसीदास, ए रेज़िडेंट ऑफ़ सोरों इन कासगंज तहसील ऑफ़ दि एटा डिस्ट्रिक्ट, केम टु दि जंगिल ऑफ दि बैंक्स ऑव दि जमना, व्हेअर राजापुर नाउ स्टैंड्स, ऐंड डिवोटेड हिमसेल्फ़ टु प्रेयर ऐंड मेडिटेशन……दिस इज़ ऑफ़ कोर्स तुलसीदास, दि ऑकर ऑफ़ दि रामायण ऐंड हिज हाउस इज़ स्टिल शोन इन दि टाउन……।" डिस्टिक्ट गज़टियर ऑफ़ दि यूनाइटेड प्रोविन्सेज़, वौल्यूम २१, बाँदा, १९०९, पेजेज़ २८५-६।

(ख) तत्पश्चात् श्री जार्ज ए० ग्रियर्सन ने, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी आदि कतिपय भारतीय विद्वानोंके सहायतासे, गोस्वामीजीके जीवन और रचनापर स्वयं अनुसंधानकर भारतीय तथा अभारतीय विद्वानोंको इस ओर प्रेरित किया। उनका अनुमान था कि गोस्वामीजीका जन्म-स्थान वह 'तारी' ग्राम था जो अन्तर्वेद (दुआब) में स्थित हैं। राजापुरके निकट वाला तारी ग्राम अन्तर्वेदमें नहीं है, सोरोंके निकट वाला तो है, वहाँ सोरों-सामग्रीके अनुसार गोस्वामीजीकी ननहाल थी। ग्रियर्सन महोदयकी गवेषणाके अनुसार गोस्वामीजीके पिता आत्माराम, माता हुलसी, गुरु नरसिंह, श्वसुर दीनबन्धु पाठक, पत्नी रत्नावली और पुत्र तारक था जो उन्हींके समय दिवंगत हो गया था। श्री एफ० एस० ग्राउज़ने १८७६ ई० में लिखा कि गोस्वामीजीकी शिक्षा सोरोंमें

२६

हुई। तदनन्तर अनेक विदेशी लेखकोंने गोस्वामीजीकी जीवनके सम्बन्धमें इन्हीं दोनोंका न्यूनाधिक अनुसरण किया है।

जनश्रुति

पूर्वी जिलोंकी जनश्रुति नवनवति प्रतिशत सोरों-सामग्रीका ही समर्थन करती है।

दुबे आतमाराम है पिता नाम जग जान। माता हुलसी कहत सब तुलसीके सुन कान।
प्रह्लाद उद्धरण नाम करि गुरुको सुनिये साधु। प्रकट नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराधु।
दीनबन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ, रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गत होइ॥

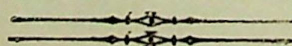
सोरों-सामग्रीके गृह्य और बाह्य रूप तुलसीदासजीके जन्म-स्थानके सम्बन्धमें सोरों-परक हैं। राजापुरकी जनश्रुतिके भी अनुसार राजापुर तुलसीदासका जन्म-स्थान नहीं, जैसा कि १९१३ ई० में अयोध्याके सीतारामशरण भगवान प्रसादजीने इन स्थानोंपर स्वयं विचरण कर निश्चय किया।

आराके बाबू शिवनन्दन सहायने १९१६ ई० में 'श्री गोस्वामी तुलसीदासजीका जीवन-चरित' लिखा। अपनी इस महनीय कृतिमें उन्होंने कहा है—'हमारे युवक मित्र बाबू गोकरण सिंह २५ वीं अक्टूबरसे दस नवम्बर १९११ तक राजापुरमें ठहरे थे। उनसे ज्ञात हुआ है कि कवि मंगलदीन शर्मा एवं कई वृद्धा स्त्रियाँ आज भी वर्तमान हैं जो राजापुरको गोस्वामीजीका जन्म-स्थान होना नहीं बतातीं। कई महीने हुए कि आरा-निवासी पं० रघुनन्दनजीसे हमारी भेंट हुई थी, वह भी कहते थे कि राजापुरमें गोसाईजीका जन्म नहीं हुआ था। इन्हीं सब कारणोंसे हम राजापुर-को गोस्वामीजीका निवास-स्थान मानते हैं, जन्म-स्थान माननेको तैयार नहीं हैं' (पृष्ठ ७)। 'किसी-किसीका मत है कि तारी और सोरोंके बीच कहींपर गोसाईंजीकी ससुरार थी' (पृष्ठ २२)। १९२६ ई० की 'माधुरी' में उक्त सहायजीने उक्त तथ्यकी आवृत्ति इन शब्दोंमें की है। 'यद्यपि राजापुरमें आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहींके बड़े बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईं-जीका जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होनेपर यह वहाँ रहे अवश्य थे और प्राय: जाया करते थे।'

गोस्वामीजीके जन्म-स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाली उपलब्ध समग्र सामग्रीका अध्ययन करनेके पश्चात्, मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि तुलसीदासजीकी गर्भ-स्थिति तारीमें हुई, जन्म रामपुरमें हुआ और विद्याध्ययन गुरू नरसिंहजीसे सोरोंमें। रामपुर और तारी दोनों ही ग्राम सोरोंसे क्रमशः दो और चार मीलकी दूरीपर हैं। गोस्वामीजीका विवाह दीनबन्धु पाठककी पुत्री रत्नावलीसे हुआ जो बदरियाकी थी और जिसके २०१ दोहे और कुछ पद उपलब्ध हैं। यह ग्राम सोरोंके सम्मुख गंगा पार था। गोस्वामीजी १६०४ वि० में सोरोंसे चले गये और भ्रमण करते रहे। उन्होंने 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ अयोध्यामें किया, तदनन्तर राजापुरकी नींव डाली, और प्रधान निवास काशीमें किया। कतिपय कारणोंसे मेरी निश्चित धारणा है कि 'रामचरित मानस' की भाषा ब्रजावधी है जिसका साक्ष्य अन्य कवियोंकी रचनाओंमें विद्यमान है।

सोरों-सामग्रीकी महत्ता

यदि सोरों-सामग्री न होती, तो भी तुलसीदास जीके जन्म स्थान आदिके विषयमें हमारा निष्कर्ष, बहुल बाह्य सामग्रीके आधारपर, सोरों-परक ही होता। सोरों-सामग्री विशाल है और वैज्ञानिक परीक्षणसे प्रमाणित भी। इसकी विशेषता यह है कि इसके द्वारा भारतके विभिन्न भागोंमें विद्यमान प्रकीर्ण जनश्रुतियों एवं लेखोंको सप्रकाश सामंजस्य प्राप्त होता है।



सोरों सामग्रीका परीक्षण

डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय

संवत् १९९३ में पं० रामनरेश त्रिपाठीने अपने संपादित रामचरित मानसकी भूमिकामें गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्म भूमि सोरों सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था। अपने प्रमाणमें उन्होंने सोरोंके पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट और व्याकरणाचार्य पं० गंगा वल्लभजी शास्त्रीके कथनोंका प्रमाण दिया था।

पं० गोविन्द वल्लभ भट्टने सं० २०१५ विक्रमीमें सोरों सामग्रीका पूर्ण परिचय देनेके निमित्त बम्बईसे एक पुस्तक छपवाई थी जिसका प्रकाशन उन्हींके सुपुत्र पं० राम वल्लभ शास्त्री सहयोगी संपादक नवभारत टाइम्स, ने किया था। इस सौ पृष्ठकी पुस्तिकामें भट्टजीने निम्नांकित कारण दिए हैं कि तुलसीदासजीका जन्म स्थान सोरों था—

१. भट्टजीने लिखा है कि कनवर रोगके लिए सोरोंके योगमार्ग मुहल्लेके तथा कथित तुलसीके स्थानकी मिट्टी लाभ पहुँचती है और यह बात उन्होंने अपनी माँसे सुनी थी पर कनवर रोग तो गंगाजीकी मिट्टीसे या किसी भी शुद्ध गीली चिकनी मिट्टी लगानेसे अच्छा हो जाता है फिर भट्टजीकी माता तो लखनऊकी थी, उन्होंने यह बात यदि जानी भी होंगी तो किसीसे सुनीं होगी।

२. जिन दोहोंके प्रचलित होनेकी चर्चा भट्टजीने की है, वे औजिच्य गुजरातियोंमें तो क्या सोरोंके लोगों तकमें प्रचलित नहीं है। और न यात्री दल ही उनसे परिचित है। भट्टजीकी पुस्तकोंमें उद्धृत प्रथम दोहा कबीरके नामसे ही प्रसिद्ध है। शेष दूसरा और तीसरा दोहा उन्होंने तथा कथित रत्नावली दोहा संग्रहसे लिए हैं जिनकी प्रामाणिकता स्वयं संदिग्ध है।

३. पं० दशरथ शास्त्री केवल संस्कृतके विद्वान थे, उनका अनुमान भट्टजीने इसलिए प्रमाण मान लिया कि वे भट्टजीके विद्या गुरु थे।

४. गंगा तटपर स्थित संस्कृत पाठशालाओंके अनेक अड्डोंको छोटी काशी कहते हैं यहाँ तक कि अनूप शहर और कर्णवास भी छोटी काशी कहलाते हैं।

५. एक दंडी संन्यासीकी कथा भट्टजी सुनाया करते थे कि वे भट्टजीको किसी दिन तुलसीके विषयमें अनुमान या अटकल देकर दूसरे दिन प्रातः अन्तर्धान हो गए थे। इससे पूर्व तुलसी सामग्रीकी अस्तित्व ही नहीं था, न उससे सोरोंका संबंध दूर-दूर तक था। न कभी रही न किसीने इसे उठाया। अतः यह कथा ही सोरों सामग्रीके मूलमें है। और भयंकर संदेह उत्पन्न करती है।

६. रत्नावली दोहा संग्रहकी मूल पुरातन प्रति भट्टजीके अनुसार खो गई तो यह नवीन प्रति था कहाँसे गई और प्रतिलिपि कारको यह मिल कहाँसे गई? सोरोंके ही कुछ विद्वान् उसे संदिग्ध बतलाते हैं।

७. शास्त्रीजीको दो सौ बावन वार्ताकी पुस्तक खोजनेकी क्या आवश्यकता थी ? वे तो बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी हैं और प्राप्य भी हैं।

८. तुलसीकी जन्म भूमिके संबंधमें जो सामग्री महत्त्वपूर्ण हो सकती थी और विद्वानों द्वारा विचारणीय हो सकती थी, उसके सम्बन्धमें भट्टजी यही कहकर टाल देते हैं 'खो गई' या कोई ले गया या प्राप्त नहीं या नष्ट हो गई और जिस सामग्रीकी सीधा सम्बन्ध नहीं है उसे व्यर्थमें प्रकाशमें लानेकी चेष्टा करते हैं। यह क्या कम आश्चर्यकी बात है कि वहाँके जिन पंडोके पास पांच सौ वर्ष पुरानेका कागज और दस्तावेज सुरक्षित हैं वे तुलसी सम्बन्धी सामग्री क्यों नहीं सुरक्षित रख सके जो अपने समयमें ही बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे फिर सोरोंमें तुलसीदासजीके ग्रन्थ और उनसे सम्बन्धित सामग्री क्यों नहीं मिल पाई।

शास्त्रीजीको जीवन भर साहित्य उड़ाने वालों और साहित्यिक चोरोंसे भेट हुई है इसीलिए वे कहते हैं कि पं० पद्मसिह शर्माने सोरोंके पक्षमें जो सम्मति दी थी, वह भी किसीने उड़ा ली पर न तो उड़ानेवालोंने ही वह सामग्री प्रकट की, न भट्टजीने ही उड़ाने वालोंका नाम दिया। इतना ही नहीं, जगन्नाथदास रत्नाकरजीने भट्टजीको सोरोंके पक्षमें मौखिक मत ही क्यों दिया था। वे स्वयं एक 'तत्वान्वेषक थे।

९. भट्टजीके पुराने साथी और प्रसिद्ध पत्रकार गोपी वल्लभजी उपाध्यायने भी न तो इस विषयमें कोई रुचि ली न कुछ लिखा ही। व्यर्थ ही भट्टजीने उन्हें अपने मतमें घसीटा। मैं स्वयं गोपी वल्लभजीके अत्यन्त निकट संपर्कमें था। उन्होंने अनेक साहित्यिक चर्चाएं की। पर इस सम्बन्धमें लेखकसे कभी कोई चर्चा नहीं हुई।

१०. भट्टजीका कथन है कि इस सम्बन्धमें उनके लेख सब मासिक पत्रोंने अस्वीकृतिकर दिए। पं० गोपी वल्लभ उपाध्याय जैसे प्रसिद्ध पत्रकारके मित्र होते हुए भी उनका लेख कैसे अस्वीकृति हो सकता था। उपाध्यायजीने बीसियों पत्रोंका संपादन किया था।

११. शास्त्रीजीने अपनी पुस्तकमें राजापुरके जिस सज्जनका पत्र अपने समर्थनके लिए छापा है उसमें स्पष्ट लिखा है सोरोंके पक्षमें लिखित कोई प्रमाण नहीं मिलता केवल मानस बालकांडके प्रसिद्ध दोहे—'मैं पुनि' के 'अचेत' शब्दसे सोरोंके उनके जन्म भूमि होनेकी अटकल लगाई गई है किन्तु साथका दूसरा दोहा ही इस 'अचेत' शब्दकी व्याख्या कर देता है कि यह अचेतावस्था अवस्था-जन्य नहीं अपितु विषयासक्त बुद्धिकी अक्षमताकी सूचक है। जिसे ठीक संदर्भसे समझनेपर स्पष्ट हो जाता है कि यह अचेतावस्था अथवा मोहावस्था यौवन ज्वर तथा 'जुवति कुपथ्य जन्य' थी। गोस्वामीजीने वहींपर आगे लिखा है—श्रोता वक्ता ज्ञान निधि, कथा रामकी गूढ़। किमि समझौं मैं जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़। इस दोहेमें 'अचेत' शब्दकी स्पष्ट व्याख्या हैं। गुरुने रामकथा कहते समय शिष्यकी अवस्था कृत पात्रतापर अवश्य ध्यान रक्खा होगा। उस राम कहानी सुननेकी दशामें तुलसीकी अवस्था १०-१५ वर्षकी रही होगी। किशोर तुलसीका किसी महात्माके साथ सूकरखेत जाना तो माना जा सकता है किन्तु उनकी जन्मभूमि कथमपि सिद्ध नहीं हो सकती। अभुक्त मूल नक्षत्रमें उत्पन्न बालककी जब धाय (मुनिया) भी मर गई तो कुछ वर्ष बाद किसीका आश्रय पाकर भ्रमणमें पड़ जाना संभव था। अतः उक्त पत्रसे भी तुलसीदास सोरोंके नहीं सिद्ध किए जा सकते।

१२. सुधा संपादकने शास्त्रीजीका उक्त विषयपर लेख तो ले लिया परन्तु न उसे छापा न लौटाया। और ३१-१०-२८ के एक पत्रमें लिख दिया कि स्थानाभावसे लेख नहीं छापा जा सकता। यह उत्तर सुधा संपादक उसी क्षण दे सकते थे और आश्चर्य यह है कि भट्टजीके पास लिफाफा सुरक्षित है लेख नहीं। सन् १९२९ की माधुरीमें जब यह लेख पुनः छपा तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई यह तो भट्टजीने नहीं लिखा, केवल उथल-पुथल मच गई यही कह दिया है फिर अपनी इसी पुस्तकमें साहित्यिक शौर्य शीर्षकसे भट्टजीने अपने इस एक मात्र लेखको ऐसा निर्णयात्मक अभूतपूर्व सिद्ध किया कि उसके आधारपर अनेक महानुभावोंने गोस्वामीजीका सोरोंका मान लिया, पर उन महानुभावोंमेंसे किसीका नाम भी शास्त्रीजीने नहीं लिया। साहित्यिक चोरोंके भयसे भट्टजीके सोरों सम्बन्धी तथा कथित सामाग्रीको छातीसे लगाए, लिए-लिए फिरे और अंतमें विद्वानोंको बताना भी बंद कर दिया।' उनका कथन है कि डॉ० भारद्वाज उन्हींकी सामाग्रीसे लाभान्वित हुए हैं।

१३. सन् १९३५ की बम्बईकी सभामें उपस्थित तथा कथित बड़े-बड़े साहित्यकारोंके नाम शास्त्रीजीने नहीं लिए जब कि अपने दोनों अग्रज अनुजोंके इस प्रकरणसे असंबद्ध नाम और चित्र दे दिए हैं।

भट्टजीने बांदा गजेटियरका उल्लेख तो किया किन्तु एटा गजेटियरका नाम नहीं लिया जिसमें न तुलसीकी चर्चा है न नन्ददास की। यों भी गजेटिपर कोई प्रामाणिक नहीं होते। श्री पुरुषोत्तमदास टंडनके सुझाव पर भी भट्टजीने न तो आचार्य शुक्लजीको ही अपनी सामग्री दिखाई न अन्य किसी विद्वानको ही। सोरोंमें न तो तुलसी या नन्ददासका घर है, न रामपुरका ही पता है। भट्टजी न तो पाण्डुलिपियाँ प्रस्तुत करते हैं न उसके भी एक या दो पृष्ठ ही दिखाते हैं जिसकी लिखावट स्पष्टतः १८ या १९ वीं शताब्दी की है। कासगंजके भद्रदत्त शास्त्रीने भी तुलसीदास सम्बन्धी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज शीर्षक लेखमें जिन ग्यारह ग्रन्थोंका हवाला दिया है उनसे गोस्वामीजी सोरोंके सिद्ध नहीं होते और विचित्र बात यह है कि उनकी सूची और सोरोंकी सूचीमें भी रत्नावली चरित्र ही ग्रन्थ है जिसका नाम दोनों सूचियोंमें है और जिसका रचना काल संवत १८२९ है। इस प्रकार तुलसीके जन्म सोरोंका प्रवर्त्तन करनेवाले पं० गोविन्द वल्लभ शास्त्री और उसके पोषक कासगंजके डा० रामदत्त भारद्वाज और पं० भद्रदत्ताजी हैं। डा० दीनदयाल गुप्तने भी इस सोरों सामग्रीके सम्बन्धमें लिखा है कि जब तक उस सामग्रीकी प्रामाणिकता संक्षिध है तबतक सोरों अथवा जिला एटाका रामपुर कविकी जन्म भूमि नहीं कही जा सकती।

पं० रामनरेश त्रिपाठीने सोरों सामग्रीका परीक्षण नहीं किया, वे केवल पं० गोविन्दबल्लभ शास्त्री और पं० गंगाबल्लभजीके मौखिक कथनको आधार मानकर चले हैं अतः उनके तर्क नितान्त भ्रामक हैं और जिन एक-दो शब्दोंके अनुमान पर उन्होंने अपना मत स्थिर किया है वे भी प्रामाणिक नहीं है। उन्होंने वार्ता साहित्यकी प्रामाणिकतापर जो सन्देह किया है, वह स्वयं नितान्त भ्रामक हैं। क्योंकि वार्ताकी प्रामाणिकता तो पूर्णतः सिद्ध हो चुकी है उन्होंने सुनी सुनाई बातोंके आधारपर तुलसीका जन्म स्थान सोरों मान लिया है यों भी वार्तामें न सोरोंका नाम है न नन्ददासजी ही सोरों या सूकरखेतके हैं। शास्त्रीजीने जिन छः ग्रन्थोंका नाम सोरों सामग्रीके सन्दर्भमें लिया है उनमेंसे किसीसे भी यह सिद्ध नहीं होता कि तुलसीदासजी सोरोंके थे।

पं० रामदत्त भरद्वाजने सन् १९४९ में पं० गोविन्दबल्लभजीके आग्रहपर बम्बईसे 'तुलसीका घर बार' नामक पुस्तक छपवाई जिसमें उन्होंने मूल गोसाईं चरित और तुलसी चरित और घट

रामायणको बड़े लचर प्रमाणोंसे अमौलिक, जाल और अप्रमाणिक सिद्ध किया है और तुलसी प्रकाशमें दी-हुई उन्हीं घटनाओंको प्रामाणिक मान लिया गया है जब कि 'तुलसी प्रकाश' स्वयं सिद्ध नहीं हो सका। उन्होंने घट रामायणको किस आधारपर अप्रामाणिक बताया उसका कारण यही है कि इससे उनके सोरोंके पक्षका खंडन होता है किन्तु इन सबसे बढ़कर अन्तरसाक्ष्यकी दृष्टिसे भी इस समस्यापर विचारकर लेना चाहिए।

अन्तरसाक्ष्य

तुलसीके ग्रन्थोंमें अन्तस्साक्ष्य रूपमें जिन स्थानोंकी चर्चा है, उनमें सोरोंका नाम कहीं नहीं। स्थानके उपरान्त जब अन्तस्साक्ष्यके अन्तर्गत तुलसीकी भाषापर भी थोड़ा विचार आवश्यक है। तुलसीकी भाषा अवधी और ब्रज दोनों है अवधी उनकी मातृभूमि की भाषा है और ब्रज तत्कालीन मान्य काव्यभाषा होनेके नाते। सोरों न तो अवधि क्षेत्र में है न ब्रज में। हाँ ब्रजभाषा क्षेत्रके किनारे अवश्य है। अतः भाषाके आधारपर तुलसीको कन्नौज और सोरोंका मान लेना कहाँ तक उचित है इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। यहाँ तुलसीके प्रयुक्त कतिपय शब्द दिये जाते हैं जो सोरोंमें प्रचलित तो क्या परीचित भी नहीं। यथा चाहि (अपेक्षा), नीको (अच्छा) २—खोरि (दोम), ३—जाय (व्यर्थ), ४ - सरा (चिता), ५—गुडी (पतंग) ६—पैत (बाजी), ७—गथ (दाम), ८—भदेस (बुरी), ९—औले (गीले) १० ओल (गिरवी) आदि। इसके अतिरिक्त सोरोंमें नाइन बोलते हैं तुलसीने नहछूमें 'नउनियां' प्रयोग किया है जो अवध की ओर ही चलता है। सोरोंमें नाइनें दुल्हेको केवल स्नान उबटन कराती है और जातिमें निमंत्रण देती हैं किन्तु उस्तरे आदिका काम पुरुष नाई ही करते हैं। किन्तु पूरबमें स्त्रियाँ भी क्षुरादिका कार्य कर लेती हैं। इधर पश्चिमी जिलोंमें स्त्री वर्गमें नाइन और मालिन ही मांगलिक अवसरोंपर कार्य करने आती हैं शेष कार्य सब पुरुष करते हैं जैसे दर्जी, तंबोली, मोची आदि। किन्तु 'नहछू' से अवध प्रान्तकी रिवाजका पता चलता है तुलसीने वहाँकी परिपाटीके अनुसार दरजिनि, तंबोलिनि, मोचिनि, बरिनियाँ आदि स्त्री वर्गको पूरबकी रिवाजके अनुसार ही नहछू संस्कारके अवसरपर रक्खा है फिर नहछूका रिवाज पूरबमें है। इधर सोरोंकी तरफ कोई कोई नही जानता इसी प्रकार—हरवा (हार), गरवा (गला), आदिमें अवधीका 'वा' प्रत्यय है। सोरोंमें हरवा, गरवा, लुटवा आदि नहीं बोले जाते। निगा नांग (निपट नंगा) प्रयोग ठेठ अवधीका है सोरोंमें इसे कोई जानता तक नहीं।

उहकनु (धोखा) अवधी शब्द है कनावियनु, आंखियनु, नारियक, पगु बिनु, जगु, जसु, जपु, हितु, जानु, मानु, प्रतापु आदि ह्रस्व उकारान्त शब्द अवधीमें ही प्रयुक्त होते हैं। मानस तथा तुलसीके अन्य ग्रन्थोंमें अवधी बैसवाड़ी प्रयोगोंका बाहुल्य मिलता है। जैसे—

करब, जानब, भरब, लुनिय, होउब, कहब भविष्यत् कालीन क्रियाओंके ये अवधी रूप हैं। कोहाब (कलह) (तुम्हहिंको हाव परमप्रिय अहई—प्रयो०) साहिब, ठाहर (करहु कतहु अब ठाहर ठाह्व) फुर, मोट, ढरके, सबतियाँ (सौत) खुमाऊ, गुदारा (भा भिनुसार गुदारा लागा) बाट, कठौता, बियानी, रजाई (आज्ञा) रोरे, थूनी (छप्परका स्तम्भ) अहिदानी, सहिदानु, लोई। (हम नीके देखा सब लोई) (गहऊ जानि लावहु) चपरि, रहस (हर्ष) आदि अवधीके अपने प्रयोग है।

निम्नांकित संस्कारोंके नाम पूरबमें इस प्रकार हैं :—

अवधमें विवाह पर	सोरोंमें विवाह पर
सिंदूर बंदन	सुमंगलीकरण
होमलावा अथवा लावाहोम	लाजा होम
सिलपोहनी	अश्मारोहण, सिलाचढ़ी
कोहबर	बरोनियां
दुरी दुरा	सोरोंमें इसका प्रचार नहीं
लहकौर (छोटी लड़कियाँ)	लरकिनीं ल्हौरी
लघुकौर (लघुकवल)	मौंह जुठारनी

कुछ क्रिया पद--

ध्यायबी करवी, खाइवी, जाइवी, राखबि । सोरोंमें कहीं नहीं बोले जोते ।

परेउ निसानहिं घाउ (चोट)

बिलगु न मानब (बुरा न मानना)

उहार=(पर्दा) जा० मं० ११६

जनेत=(बरात) पा० मं० ३५

माहुर=(बिष) मानस एवं पार्वती मंगल ३५

पारि=सेनामानस पा० मं० ३५ सौतुरव (प्रत्यक्ष) कनउड़ अनुहारि भभरि, सुपास (सुविधा) सुआर (रसोइए) आदि शब्द सोरोंमें प्रयुक्त नहीं होते ।

इसके अतिरिक्त कवि कबीर की शैलीपर तुलसीका लिखा विनय पत्रिकाका प्रसिद्ध पद सोरोंका निवासी कदापि नहीं लिख सकता ।

राम कहत चल कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नांहित भव बेगारि महं परिहौ, छूटत अति कठिनाई रे ।
बांस पुरान साज सब अटखट, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचंद मोल बिनु डोलारे ।
विकय कहार मार मदमाते चलहिं न पाऊँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइप दुख झकझोरा रे ।
कांट कुराप लपेटन लोटनु, ठाँवहिं ठांव बझाउ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ।
मारग अगम संगनहिं संबल, नाऊँ नाऊँ कर भूला रे ।
तुलसिदास अब भास हरहु अब होउ राम अनुकूला रे ।

यहाँ दिहल बभाउ, नाऊँ गाऊँ चलिय आदि शब्द अवधी के हैं । पूरी अवधी शैली है । 'निरापने' (बिराने) वि० प० १६० ।

सिबिका--पालकी ।

डासत (बिछाते हुए) मानस तथा विनय पत्रिका (पद २४५) आदि शब्द पूरबके हैं । कुछ और शब्द उराउ (उत्साह) पगारू, खूसट (उल्लू), सालिम (सकुशल) भेदस (बुरा) सही भरी (अनुमोदन करना) साको (नाम करना), सरीकता (भाग हिस्सा) मेतई (विमाता)

टेई पैनाना), पठावनी (मजूरी) सोरों वाले नहीं जानते । अवधीमें भी, ग -भो बोला जाता है । सोरोंमें गम्रो, भम्रो चलता है । इसी प्रकार कैंधौ, निबुकि (उछलकर) हुमै (होम करें) दाढ़ी जार, पाइमाल (तबाह), धौंज (दौड़), औंजि (घबराकर) उमेल (गिरवी) डफोरि (चिल्ला-कर), जांगरू (भूसा), चांपना (दबाना) चाकि (सुरक्षित) बिड़ (नीच) दहपट (चौपट) खिरिरि (खरोंचकद), भाँडिगो (घूम फिर गया) अवधीके नित्य प्रयुक्त शब्द हैं । साँठ (पीछे लिए) कहरी (उत्पाती) बहरी, बाज, फग दाँव पवारी (फेंकना) चकोट (चुटकी) सरखतु, रखतु, लतस (निकम्मा) ओड़िए (फैलाइए) साटक (निस्सार) उपखानु (उपख्यान) किसबर (कारीगरी) कबारू (धंघा) जेंवनार, गोहारि, पुकार, खपु (क्लेश) फेकरहिं सियारका चिल्लाना) इनके लिए सोरोंमें दूसरे-दूसरे शब्द प्रचलित हैं । वहां उच्चारण भेद भी बहुत हैं ।

कतिपय प्रयोग

१—कहां जाइका करी ? (कवि० उत्त० ९७) फरि बात, (गीता०)

२—आपने चना चबाई हाथ चाटियतु है । डाटियतु है । काटियतु है । मसककी वांसरी पयोधि पाटियतु है । करिहों न हहा है । तिहारे हिऐं नहिते हैं, चितै हों, जाऊ (ज्यायान् अथवा पुश्तेनी (कविता उ० १२२) 'बजाई' ठोक बजाकर प्रसिद्ध करके) (अवधीमें यह शब्द परस्पर संघर्ष लड़ाईके लिए आता है ।) आदि प्रयोग सोरोंसे कोसों दूरके हैं । सावज=हिंस्र पशु (मानस अयो० कवि उ० १४२ (सीठ (रूखा) खांगो (अभाव) (मानस अर० कवि० उ० १५३ राखौं देह नाथ केहि खाँगे) अभावा (मांजा = वर्षाका प्रथम जल) पूरबके शब्द हैं ।

व्यावसायिक शब्द—

उपरोहित, व्यवहारिया, धनिक आगमी (ज्योतिषी) अवधके ओरके ही शब्द हैं । बटमार, भंड आदि इधर पश्चिमके शब्द नहीं ।

स्थान संबंधी शब्द—

चऊहह, सुबह

संगीत वाद्य—

सहनाई, आयज, डफ सोरोंमें नहीं होते ।

(१) तात्पर्य यह कि तुलसीमें ठेठ बोलचालके शब्द अवधी और अवध प्रान्तसे ही संबंधित हैं । संस्कार रीति-रिवाज भोजन संबंधित शब्द प्रयोग एवं रिवाज अवध प्रान्तके हैं सोरोंके अथवा पश्चिमके नहीं ।

(२) ध्वनियोंके अंतर्गत 'ष' और 'ख' दोनों ध्वनियोंके बोधके लिए एक ही रूप 'ष' का व्यवहार तुलसीकी कृतियोंकी लगभग सभी हस्त लिखित प्रतियोंमें प्राप्त है अवधीके कवि लालदासके 'अवध विलास' जैसे ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियोंमें यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । सोरों सामग्रीमें यह प्रवृत्ति कहीं नहीं दृष्टिगत होती ।

(३) तुलसीकी समस्त रचनाएँ निम्नांकित ५ वर्गोंमें आती है—

१—पूर्वी अवधी बरवै, रामलला नहछू ।

२—पश्चिमी अवधी–जानकी मंगल, पार्वती मंगल ।

३—बेसवाड़ी अवधी–रामचरित मानस।

४—पश्चिमी व्रज भाषा–गीतावली, विनय पत्रिका, दोहावली, वैराग्य संदीपिनी।

५—पूर्वी व्रजभाषा जिसके कोरपर सोरों स्थित हैं–श्रीकृष्ण गीतावली एवं कवितावली।

कवितावलीमें पुनः अनेक अवधी शब्द स्वभावतः घुस आये हैं। बेसवाड़ो–अवधीकी एक उप बोली है। इसे 'कोसली' भी कहते हैं। 'कोसल' अवधका प्राचीन नाम है अतः इसे भी अवधी ही कहना चाहिए। इसका क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, खीरी, रायबरेली, फतहपुर, बहराइच तथा बाराबंकी गोंडा तथा आस पासके अन्य जिले और दक्षिणमें भोजपुरी तक इसका क्षेत्र फैला हुआ है।

तुलसीकी रचनाका क्षेत्र इस प्रकार अवधी ही है अतः भाषा और भाषा शास्त्रीय दृष्टिसे तुलसी सोरोंके नहीं ठहरते।

'गृह सामग्री' के नामसे कही जाने वाली सामग्रीमें भवन, वंशज, जनश्रुति, भाषा शैली और पाण्डु लिपियाँ और तुलसीने वचन इन सबके लिए निम्नांकित निवेदन है—

(अ) भवन-योगमार्ग मुहल्ला और मकान विषयक उक्तियोंके विषयमें तुलसीके अपने कथन कहीं नहीं मिलते, न अन्य पुष्ट प्रमाण ही मिलते हैं। जो प्रमाण दिये गये हैं वह संदिग्ध और एक देशीय हैं अन्य स्थानोंसे तुलसीका अपना कोई संबंध नहीं।

(आ) वंशज—अपनेको तुलसीका वंशज कहने वाले राजापुरकी तरफ भी मिलते हैं और आचार्य शुक्लजो उनकी ननिहालके वंशजोमेंसे थे। सोरों वाले व्यर्थ ही ऐसा कहकर अपनेको गौरवान्वित करना चाहते हैं।

(इ) भाषा शैलीपर ऊपर काफी विस्तृत रूपसे कहा जा चुका है।

(उ) पाण्डुलिपियाँ जो अयोध्याके कनक भवन एवं मानसहंस विजयानन्द त्रिपाठीने बताई है वे अधिक प्रामाणिक हैं वैसे तुलसीकी मानसकी अनेक प्रतियाँ (१६ वीं १७ वीं शताब्दीकी) अन्यत्र भी कई स्थानोंपर सुरक्षित हैं और उपलब्ध हैं। बाह्य साक्ष्यके अन्तर्गत आने वाले गजेटियर्स मेंसे एकने भी उनका जन्म स्थान कहीं नहीं स्वीकार किया है।

कतिपय निष्कर्ष

१—'सोरों सामग्री' के नामपर उपलब्ध वस्तुओंमेंसे एक भी पूर्णतया एवं कठोर प्रामाणिकताके साथ प्राप्त नहीं सबमें समय संबंधी भूलें हैं।

२—जनश्रुतियों एवं किंवदन्तियोंके जालमें सत्य इतना ढक गया है कि किसी तथ्यपर पहुँचना कठिन हो रहा है।

३—तुलसीने सोरोंके स्थान देवता ग्रामदेवता, स्थान तीर्थ—वाराह भगवान, वाराह कुण्ड, नरहरिके उपास्य मारुति आदिकी चर्चा नहीं की। सोरोंमें रामानन्द संप्रदायके भक्तोंकी परम्परा न कभी थी न आज हैं।

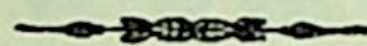
४—'सोरों सामग्रो' के मूलमें आत्म विज्ञापनका और कुछ विचित्रता प्रस्तुत करने भाव भरा है। वह एक जालमात्र है।

२७

मेरा अपना मत—

अभुक्त मूलमें उत्पन्न होनेके कारण तुलसीने धात्रीके पास शैशव व्यतीत किया। कुछ काल पश्चात् धात्रीके दिवंगत हो जानेपर निराश्रित तुलसीदास राम नाम लेकर भटकते रहे। इससे उनका नाम 'राम बोला' पड़ गया। लगभग १०-१२ वर्षकी अवस्थामें तुलसीदासजीको वहींके 'सूकरखेत' निवासी कोई राम-भक्त संत जो चित्रकूट आदि स्थानोंमें भ्रमण करते होंगे, तुलसीको अपने साथ लेकर 'सूकरखेत' चले आये, और विद्या अध्ययन करानेके साथ-साथ रामकथा भी सुनाई' विद्याकी समाप्तिपर तुलसीका विवाह विद्यागुरुके मार्फत ही हो गया और पत्नीमें आसक्त तुलसीदास पत्नीसे उद्‌बोधन पाकर पुनः अपने ग्राम राजापुर चले आये और कुछ काल अपनी जन्मभूमिमें रहे भी। इसके अनन्तर पत्नीसे उद्‌बोधन पाकर वे लम्बे प्रयासके उपरांत कभी अयोध्या, कभी काशी, कभी प्रयाग, कभी चित्रकूटमें रहे।

यह 'सूकरखेत' गोंडा जिलेका है जिसे भ्रमसे गजेटियरमें जिले ऐटेका लिख दिया गया है। अतः गुरुका आवास स्थान होनेसे और यह स्थान सामान्य कोटिका होनेसे तुलसीने उसकी कोई महत्वपूर्ण चर्चा नहीं की। न उसे भगवान् वाराहसे संबंधित बताया। तुलसीके गुरु रामानन्दकी शिष्य परंपरामें थे किन्तु उनसे कविने शंकर विष्णुकी अभेद दृष्टि पाई थी। अतः वे गुरूदेव उसके लिये साक्षात नर-रूप 'हर' थे। इन्हीं आन्तरिक कारणोंसे तुलसीने मानसकी भूमिकामें शिव-पार्वती संवादको बड़ी मुख्यता दी है। 'तुलसीके गुरु' इस विषयपर अपना मत फिर कभी विद्वानोंकी सेवामें प्रस्तुत करूँगा।



तुलसीका जन्म-स्थान

श्री विष्णुदत्त दीक्षित

किसीको यह क्या ज्ञात था कि एक अकिंचन मातृ-पितृ-हीन बालक एक दिन भारतका ही नहीं, विश्वका एक रत्न होगा ! तुलसीदासजी आधुनिक युगके विद्वानोंकी तरह आत्म-कथा लिखनेके अनुयायी नहीं थे। वे तो केवल 'तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो रामदुआरे दीन' थे। कविकी लेखनीसे प्रसूत जो सामग्री हमारे सम्मुख है, उससे ही तत्कालीन देश-कालकी परिस्थितिका जो कुछ आभास मिलता है, वही कविका परिचय है, वही आधारशिला है।

कविके मुख्य प्रामाणिक-ग्रन्थ बारह हैं। इनमें 'मानस' सर्वश्रेष्ठ है, जिसका 'चतुश्शती-समारोह' मनानेके लिए राष्ट्रीय कार्य-क्रम निर्धारित किया जा रहा है। इसके लिए एक समिति गठित हुई है, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गाँधी है। यही कविका सबसे बड़ा परिचय है, स्मारक है। यह सब होते हुए भी हर व्यक्तिकी जिज्ञासा कविके जन्म-स्थानादिके विषयमें होती ही है।

आजके युगमें विद्वान्, आचार्य, तर्कशास्त्री, ऐतिहासिक तथ्यों, किंवदन्तियों, देश-काल-परिस्थितियोंके आधारपर अपना पक्ष स्थापित करनेमें कोर-कसर नहीं छोड़ते। मिश्र-बन्धुओंने हिन्दी-साहित्यके इतिहासके संकलनमें स्तुत्य परिश्रम किया है। एक रूप सम्मुख आया, यह ठीक है कि इसमें त्रुटियाँ बहुत कुछ शेष रह गयी हैं। आचार्य शुक्लजीने आलोचनात्मक ढंगसे सुधार-सँवारकर सम्पादित किया है किन्तु यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि तर्कका अन्त इतना ही है और उसमें त्रुटि है ही नहीं। आचार्यजीने कविके जन्म-स्थानके सम्बन्धमें लिखा है—

पन्द्रह सौ चौअन बिसै, कालिन्दीके तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरचो शरीर ॥

गोसाईं-चरितके आधारपर राजापुर ग्राम तुलसीके जन्म-स्थानके लिए सर्वमान्य है, इसमें सन्देह किसीको नहीं है। पर भारतके अन्तर्गत कौन-सा राजापुर है ? उपर्युक्त आचार्यजीके दोहेके आधारपर कालिन्दी-तीर होनेसे बाँदा-जिलेका राजापुर, जो कालिन्दी (यमुना) के किनारे है, मान लिया गया। वहाँपर श्री चतुर्भुज शर्माके प्रयत्न एवं सरकारकी उदारतासे स्मारक भी बन गया है। कार्य उत्तम हुआ है। तुलसीका सम्बन्ध जिस-जिस स्थलसे रहा है सर्वत्र स्मारक बनना ही कविकी श्रद्धांजलि है पर साथ ही साथ वास्तविक एवं निर्विवाद स्थलोंकी उपेक्षा भी न होनी चाहिये।

बाँदा-जिलेके राजापुरके सम्बन्धमें विद्वानोंका मतैक्य नहीं है। तर्कोंके आधारपर एवं देश-काल-परिस्थितिके आधारपर सन्देहका विषय बना हुआ है। इस सम्बन्धमें तथ्य यहाँ सम्मुख लाये जा रहे हैं, उनपर विद्वत्समाज विचार करेगा।

सर्वप्रथम रहन-सहन, जातीयता, परिवार-सम्बन्ध, रचना, भाषा, देश-कालकी स्थिति आदिको देखते हुए जन्म-स्थानका निर्णय लेना स्वाभाविक एवं युक्तिसंगत होगा। कविका वर्णन मानसमें सरयूके आस-पासकी भाषा, रहन-सहनका प्रभाव विशेष मिलता है। सरयूके उत्तर-तटपर ही सरयूपारीण ब्राह्मणोंका गढ़ है। सरयू-घाघरा-संगमपर दुबे-परिवारोंकी बहुतायत है। यहाँ आज भी वंश-परम्परामें कविके पूर्वज हैं। इस कारण कर्नलगंज गोंडाके समीप सरयू-घाघरा संगमपर 'पसका' के पास राजापुर ग्राम तुलसीका जन्म-स्थल है। अब प्रश्न होता है कि यहाँ निवास कैसे हुआ ? ऐसा मालूम होता है कि कर्नलगंजके ही आस-पास आत्माराम दुबेके प्रपितामह आदि रहते

थे, जैसी किंवदन्ती है। साथ ही जब व्यक्तिपर कष्ट पड़ता या चिन्ता होती है, तो शान्तिके लिए वह पूर्वजोंके स्थानपर जाता है।

आजसे चार सौ वर्ष-पूर्व यातायातकी सुविधा नहीं थी। उस समय बाँदासे बहराइच आकर तुलसीके पिताका विवाह होना स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। वास्तविकता यह है कि आत्माराम दुबेका विवाह बहराइच जिलेके अन्तर्गत दधिबल-कुण्ड (दधौडा-ताल) के निवासी पं० धतीर मिश्रके पुत्र पं० जगत्नारायण मिश्रकी पुत्री 'हुलसी देवी' से हुआ था। जगत् नारायण मिश्र उन दिनों देवरियाके अन्तर्गत मझौली-स्टेटमें राजपण्डितके रूपमें रहते थे। इनके दो कन्याएँ थीं : विमला और कमला, जिनकी मृत्यु ८-९ वर्षकी अवस्थामें हो गयी। इस कारण हुलसी दुखी रहा करती थी। इसी बीच यहाँ सूखा पड़ा। उस समयका घाघरा-सरयू-संगमपर स्थित पसका-स्थानपर, जहाँ वाराही देवीका मन्दिर और वाराह-क्षेत्र है, आत्माराम दुबे सपत्नी चले आये और वाराही देवीकी पूजा करके समय व्यतीत करने लगे। इनकी निष्ठा और भक्ति देखकर वहाँ (वर्तमान कर्नलगंज)के राजा इन्हें आश्रय दिया। कहते हैं कि देवीकी कृपासे हुलसीको स्वप्न हुआ कि 'तुम्हें एक पुत्र होगा, जिसका बड़ा यश होगा।' फलतः तुलसी हुए। बचपनमें ही उन्हें माता-पिताका बिछोह हो गया था। वे माँगते-खाते इधर-उधर घूमा करते थे, जैसा संकेत 'कवितावली'से मिलता है। होनहार बालक देखकर स्वयं स्वभावसे साधु लोग असहाय बालककों चेला बना लेना चाहते हैं। इसी प्रकार श्री नरहरिदासने तुलसीको अपने संरक्षणमें ले रखा। प्रखर-बुद्धि देखकर शिक्षा भी दी। 'बन्दौ गुरुपद-कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि'ने 'जदपि कही गुरु बारहि बारा। समुझ परी कछु मति अनुसारा।।' यहाँ कथा होती थी : 'मैं निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत। समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।' इससे यह भी संकेत मिल जाता है कि गुरुके पास ये अत्यन्त बालपनसे ही रहते थे।

पसकामें नरहरिदासका स्थान, वाराहक्षेत्र, वाराही देवीका स्थान, संगमका किनारा और राजापुर ग्राम तो है ही, साथ ही साथ यहाँसे ३ मीलकी दूरीपर कंचनपुर (कचनापुर) ग्रामके निवासी रत्नावली देवीके पिताने देखा—एक योग्य ब्राह्मण तुलसी है, अतः अपनी कन्याका विवाह कर दिया। नरहरिदास अन्य साधुओंके समान नहीं थे, जो तुलसीको बाबा ही बनाते। अतः उन्होंने गृहस्थाश्रममें जानेकी आज्ञा दे दी। वे गृहस्थीमें रहने तो लगे, पर परिस्थितिने रहने न दिया। भगवान्को तो उनसे जगत्का हित कराना था। फलतः घर-बारका त्यागकर गुरु-कृपा, सन्त-संग, प्रखरबुद्धि एवं भगवत्-कृपासे आज वनकी घास तुलसी भी रामकृपासे 'तुलसीदास' हो गये। बाबा बेनीमाधवदास (वास्तवमें बिहारीदास) ने भी गोसाँई-चरितमें लिखा है कि 'अयोध्यासे २० मीलकी दूरीपर सरजूपार 'राजापुर' ग्राममें तुलसीका जन्म हुआ था। इन सब साक्ष्योंके आधारपर बाँदा-जिलेके राजापुरकी अपेक्षा गोंडाके कर्नलगंजके अन्तर्गत घाघरा-सरजूके संगमपर स्थित राजापुर ग्राममें तुलसीदासका जन्म होना स्वाभाविक जान पड़ता है।

यों तो तुलसीका महान् स्मारक उनका ग्रन्थ 'मानस' ही है, जो सदैव नवीन रहेगा। किन्तु आज जिनकी चतुश्शतीके समारोहकी चर्चा सर्वत्र चल रही है, उस अवसरपर उनके जन्म-स्थानकी उपेक्षा करना उचित न होगा।

मानसके निर्माण-स्थल अयोध्यामें तो स्मारक बन ही रहा है। उद्यानकी भी कल्पना हो गयी है। शेष है जन्म-स्थान, उसका भी उद्धार हो जाना चाहिए।

जहाँ गोस्वामी तुलसीदासने रामकथा सुनी

श्री उदयशंकर दुबे

अन्वेषक : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

रामचरित-मानसके प्रणेता गोस्वामी तुलसीदासने अपने गुरुसे किस धरतीपर सरस रामकथा सुनी, इस विषयमें विद्वानोंमें मतैक्यका अभाव है। मानसके 'में पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत : समुझो नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।' (१.३०) के आधारपर तुलसी-साहित्यके मर्मज्ञोंने 'सूकरखेत' नामक स्थानको यह श्रेय प्रदान किया है। किन्तु इस 'सूकरखेत' स्थानकी स्थितिके संबंधमें विचारकोंमें पारस्परिक मतभेद है। विद्वानोंका एक पक्ष 'सूकरखेत' की स्थिति गोंडा जिलेमें सरयू और घाघराके संगमपर मानता है, तो दूसरा पक्ष एटा जिलेमें स्थित सोरों नामक स्थानको। वह न केवल रामकथा सुननेका स्थान माना गया, बल्कि उसीको तुलसीका जन्मस्थान भी सिद्ध करनेका शक्तिभर प्रयास हुआ है।

मानसकी हस्तलिखित प्रतियोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जहाँ एक ओर उसमें समय-समयपर क्षेपकोंका समावेश किया गया, वहीं दूसरी ओर उसका पाठ भी परिवर्तित होता रहा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण किन्हीं भी दो प्रकाशन-संस्थाओंसे प्रकाशित रामचरित-मानसकी प्रतियाँ हैं। कुछ प्रकाशित प्रतियोंमें तो पाठांतरके साथ-साथ दोहे और चौपाइयोंमें भी घट-बढ़ मिलती है। इसका कारण मानसकी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। मानसकी सभी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें पाठान्तर मिलते हैं। इसी प्रकार पंक्तियोंकी अभिवृद्धि भी देखी जा सकती है। मानसके सर्वाधिक विवादग्रस्त प्रसंग 'तापस-प्रसंग' के अन्तर्गत, जहाँ गीताप्रेस गोरखपुर, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, काशिराज-संस्करण, डाक्टर माताप्रसाद गुप्त आदिके अन्य मानस-संस्करणोंमें यह प्रसंग 'पिअत नयनपुट रूप-पियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ।।' (२ १११.६) पर समाप्त हो जाता है, वहीं बुन्देलखण्डके प्रसिद्ध कवि नवलसिंह प्रधानद्वारा महाराजा जगतराजके पढ़नेके लिए तैयार की गयी अयोध्याकांडकी प्रतिमें एक पंक्ति अधिक है। वह पंक्ति है : 'बारि-बारि करि बिनय बड़ाउ। चलेउ सुमन भावति बरु पाई ।।' प्रतियोंमें पाठान्तर होनेके अनेक कारण हैं। कभी-कभी प्रतिकी लिखावटकी अस्पष्टताके कारण पाठ अशुद्ध हो जाता है। यही बात मानसके उक्त दोहेपर लागू होती है। देशके विभिन्न अंचलोंमें समय-समयपर तैयार की गयी मानसकी प्रतियोंमें इस दोहेका पाठ भिन्न है। यहाँपर कुछ प्रतियोंका संक्षिप्त विवरण और दोहेका उपलब्ध पाठ प्रस्तुत है—

१. दतिया (मध्यप्रदेश) राजकीय पुस्तकालयमें सुरक्षित मानसकी प्रति : यह प्रति अन्तसे खंडित हैं। प्रारम्भिक पाँच सोपान पूर्ण हैं। कागज प्राचीन हैं। प्रतिका लिपिकाल संवत् १७७६ वि० है। प्रतिमें यत्र-तत्र संशोधन भी हुआ है। बालकांडकी कुल पत्रसंख्या १६७ हैं। इस प्रतिमें दोहेका पाठ निम्नलिखित रूपमें है—

मैं पुनि निज गुर सो सुनी कथा सो कुरखेत। समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउ अचेत।

—हस्तलिखित प्रति, पत्रसंख्या १९

२—श्री हीरालाल दुबे, खमरिया, वाराणसी (उ० प्र०) से प्राप्त मानसकी पूर्ण प्रति। प्रस्तुत प्रतिके प्रारम्भिक पाँच पत्र बादमें जोड़े गये हैं। प्रति आद्यन्त एक लिखावटमें है। इसका आकार ११.६×८.८ इंच है। इसका लिपिकाल संवत् १८३६ वि० है। कहा जाता है कि यह प्रति पं० रामगुलाम द्विवेदी द्वारा संशोधित की गयी थी। इसमें यह दोहा निम्न लिखित प्रकारका है—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सोई कुरखेत। समुझि नहि तसि बालपन तब अति रहेउ अचेत॥

—मानसकी हस्तलिखित प्रति, पत्र सं० ६

३—मेरे निजी संग्रहकी विशालकाय प्रति : यह प्रति कैथी-मिश्रित नागरी लिपिमें है। इसका लिपिकाल सं० १८५१ वि० है। यह बलिया (उ० प्र०) जिलेमें लिपिबद्ध हुई थी। अब तक ज्ञात मानसकी प्रतियोंसे यह भिन्न है। इसमें विविध कथाओंका समावेश है। 'मूल रामायण अंश' (उत्तरकांडके अन्तर्गत काकभुशुंडि-गरुड़-संवाद) भी भिन्न है। इसको आधार मान लेनेपर मानसके वर्तमान स्वरूपमें परिवर्तन हो जाता है। प्रतिमें दोहेका पाठ द्रष्टव्य है—

मैं पुनि निज गुर पहं सुनी कथा जाइ कुरखेत। समुझी नाही बालपन तब मैं रहेउ अचेत॥

—मानसकी हस्तलिखित प्रति पत्र २७

४—स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद खरे, ग्राम-कानूनगोपुर, जिला वाराणसीसे प्राप्त मानसकी सचित्र प्रति : यह खण्डित है। लिपि कैथी है। प्रतिका लिपिकाल सं० १६५६ वि० है। प्रति प्राप्त दोहेका पाठ प्रस्तुत है—

मैं पुनि निज गुरसन सुनी कथा सतित कुरखेत। समुझा नहि तस बालपन तब अति रहेउ अचेत॥

—मानसकी हस्तलिखित प्रति, पत्र सं० १७

५—नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें सुरक्षित मानसकी प्रति, यह प्रति पूर्ण है। इसका आकार ६-१/२×६-३/१० इंच है। लिपिकाल संवत् १८६५ वि० है। (द्रष्टव्य। 'मानस-अनुशीलन', पृ० सं० ३१३)। इस प्रतिमें दोहेका पाठ निम्नलिखित रूपमें है।

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सुरस कुरखेत। समुझि नहीं तस बालपन तब रहेउ अचेत॥

—मानसकी ह० प्रति०, पत्र सं० २१

६—श्री मन्नूलाल पुस्तकालय, गया (बिहार) में सुरक्षित संवत् १८६७ वि० की प्रति यह प्रति कैथो लिपिमें है। इसमें 'कथा सोइ कुरखेत' पाठ मिलता है। दोहा—

मैं पुनि गुर सन सुनी कथा सोई कुरखेत समुझी परा नहिं बालपन तब अति रहेउ अचेत॥

—मानसकी ह० प्रति०, पत्र सं० २६; पुस्तकालय ग्रन्थ सं० प० २६

७—श्री महेशकुमार मिश्र, दतिया (म० प्र०) के संग्रहमें सुरक्षित मानसकी प्रति : इसमें केवल प्रथम सोपान है, जो पूर्ण है। प्रति हाथके बने बाँसी कागजपर लिखी हुई है। प्रतिका लिपि-काल सं० १८८० वि० है। प्रतिका आकार ६×६ इंच है। इस प्रतिमें दोहेका पाठ निम्नांकित रूपमें मिलता है।

मैं पुनि निज गुरसन सुनि कथा सकल कुरषेत। समुन्दि परि नहि बालपन तब मैं रहिब अचेत॥

—मानसकी ह० प्रति, पत्र सं० ११

८—छतरपुर (म० प्र०) से खोजमें प्राप्त और नागरीप्रचारिणी सभा काशीमें आरक्षित मानसकी प्रति। इस प्रतिका लिपि-काल अज्ञात है। कागज और स्याहीसे प्रति १६वीं शताब्दीकी ज्ञात होती है। प्रतिमें उपलब्ध दोहेका पाठ निम्नांकित है।

मैं पुनि निज गुरसन सुनी कथा सेष कुरखेत । समुन्दि परि नहि बालपन तब में रहेब अचेत ।।
—मानसकी हृ० प्रति, पत्र सं० २४

६—श्री राधारमण जी वैद्य (दतिया म० प्र०) के संग्रहमें सुरक्षित प्रति । यह प्रति अन्तसे खंडित है । मात्र बालकांड है । यह प्रति केशवदासके खानदानकी बतायी जाती है । प्रति आकार ८॥ इंच × ६.६/१० इंच है । इस प्रतिका लिपिकाल अज्ञात है । अनुमानसे यह १८वीं शतीकी प्रतीत होती है । प्रतिमें उपलब्ध दोहेका पाठ प्रस्तुत है—

मैं पुनि निज गुरसन सुनी कथा सो सु कुरषेत । समुन्दि परि नहि बालपन तब अति रहेउ अचेत ।।
—मानसकी हृ० प्रति, पत्र सं० १८

उपर्युक्त पाठ मानसकी हस्तलिखित प्रतियोंके है । इसके अतिरिक्त मानसकी निम्नांकित प्रकाशित प्रतियोंमें भी 'कुरुखेत' पाठ गृहीत हुआ है । यथा—

१—त्रिलोकीनाथ पुरवार, नगर पालिकाध्यक्ष, मिरजापुर (मिर्जापुर उ० प्र०) के संग्रहमें सुरक्षित मानसकी पूर्ण पति । इस प्रतिका प्रकाशन काल और संस्थान ज्ञात नहीं हो सका, क्योंकि प्रारंभिक मुखपृष्ठ नहीं है । प्रति अच्छी दशामें और लीथो-प्रेससे प्रकाशित है । इसमें आलोच्य दोहेका रूप इस प्रकार है ।

मैं पुनि निज गुरसन सुनी कथा रुचिर कुरखेत । समुझी नहिँतसु बालपन तब अति रहेंउ अचेत ।।
—पृष्ठ संख्या १४

२—निर्णयसागर प्रेस, बम्बईसे संवत् १९४६ वि० में प्रकाशित मानसकी प्रति । मानसकी यह प्रति निर्णयसार प्रेस, बम्बईसे संवत् १९४६ विक्रमी शक संवत् १८१२ (सन् १८९० ई०) में प्रकाशित हुई थी । इसके सम्पादक श्री हरिप्रसाद भगीरथ थे । उन्होंने सुमेरपुरवासी श्री विद्वार, श्री रामभद्र शास्त्रीसे प्रस्तुत प्रतिका संशोधन कराकर प्रकाशित किया । इसमें 'कुरखेत' पाठको स्वीकार किया है ।

मैं पुनि निज गुरसन सुनि कथा रुचिरत कुरुखेत । समुझ नहीं तस बालपन तब अति रहेउ अचेत ।।
—प्रकाशित मानस पृष्ठ २१

संपादकने नीचे संकेतमें 'कुरखेत'का अर्थ कुरुक्षेत्र लिखा है । (देखिये पृष्ठ सं० २१, संकेत सं० ९) ऐसा ज्ञात होता है कि प्रस्तुत प्रतिके प्रकाशन-काल अर्थात् सन् १८९० ई० तक संभवतः 'सूकरखेत' विवादास्पद नहीं था, अन्यथा इस पाठके विषयमें संपादकने अवश्य कुछ लिखा होता । इस प्रतिके प्रकाशनका आधार कौन-सी हस्तलिखित प्रति थी, इसका उल्लेख नहीं किया गया है । श्री हरिप्रसाद भगीरथने पुनः दस वर्ष पश्चात् अपने इसी मानसको लघु आकारमें क्षेपकसहित आठों कांडयुक्त तथा प्रारंभमें 'तुलसीदास-चरितामृत' जोड़कर प्रकाशित कराया । अबकी बार यह जगदीश्वर छापाखाना, बम्बईसे प्रकाशित हुआ । इसमें भी वही पाठ है । 'तुलसीदास-चरितामृत' के अंतमें भगीरथजीने लिखा है कि 'यह पुस्तक छोटेलाल लक्ष्मीचन्दने श्री महाराज परम उदार सुयशविस्तार श्री १०८ स्वामी सीताशरणजीकी आज्ञासे छापनेको हमें दिया ।' ज्ञातव्य : रामायण क्षेपकसहित पृ० ३० भूमिकांश । इसमें उक्त दोहेके 'कुरुखेत' शब्दपर संख्या ३ लगाकर नीचे उसका अर्थ 'कुरुक्षेत्र' लिखा हुआ है । (द्र० रामायण क्षेपक, पृ० २३) पुनः संवत् १९६० वि० में जैसा कि डाक्टर रामदत्त भारद्वाजने लिखा है कि "संवत् १९६० के लगभग श्री हरिप्रसाद भगीरथने राम-

चरितमानसको सटीक प्रकाशित किया, जिसके ४०वें पृष्ठपर सूकरखेतके स्थानपर 'कुरुखेत' पाठ इस प्रकार दिया है।

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा रुचिर कुरुखेत।

सुमेरपुरवासी पंडित रघुवंशने इसी संस्करणके प्रारंभमें जो "श्री गोस्वामी तुलसीदास-चरितामृत दिया है, उसके २३वें पृष्टपर, यह पाठ उद्धृत किया जा चुका था।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत।

—द्रष्टव्यः गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३१९

इस प्रकार हरिप्रसाद भगीरथने मानसके तीन संस्करण बृहत्, लघु और टीकायुक्त समय-समयपर प्रकाशित कराये। तीनों ही संस्करणोंमें उन्होंने 'कुरुखेत' पाठको ग्रहण किया है। जगदीश्वर-छापाखानासे प्रकाशित तथा डा० रामदत्त भारद्वाज द्वारा कथित मानसके संस्करणोंके प्रारंभमें 'तुलसीदास-चरितामृत' लिखता है। निर्णयसागर प्रेससे प्रकाशित प्रतिमें यह अंश नहीं है। ऐसी स्थितिमें संपादक हरिप्रसाद और संशोधनकर्ताने पाठका संशोधन क्यों नहीं कर लिया ? इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि वे 'कुरुखेत' पाठको उन्होंने इस कारण ज्यों-का-त्यों प्रकाशित किया कि वह ग्रंथ उन्हें स्वामी सीताशरणजीसे प्राप्त हुआ था। अतः हरिप्रसाद स्वयं उसमें संशोधन करनेमें असमर्थ थे।

इस क्रमसे मानसकी हस्तलिखित और प्रकाशित प्रतियोंमें 'कुरुखेत' पाठ मिलता है। और तो और, दोहेको प्रथम पंक्तिका पाठ अलग-अलग प्रतियोंमें भिन्न-भिन्न है। समानता है तो केवल 'कुरुखेत' शब्दकी। यथा सुकुरुखेत, सोई कुरुखेत, जाइ कुरुखेत, चिर कुरुखेत, सरस कुरुखेत, सकल कुरुखेत आदि एक ही पंक्तिके इतने अधिक पाठ मिलना इस तथ्यका सूचक है कि मूल पाठ अवश्य प्रतिलिपि-कर्ताओंके लिए सिरदर्दका विषय रहा। प्रतियोंमें पाठांतर होनेके कारणोंको ध्यानमें रखकर यह कहा जा सकता है कि 'सो सुकुरखेत' पाठ ही आगे चलकर अस्पष्टतावश 'सो सूकरषेत' बन गया और इसकी एक अलग परंपरा चल पड़ी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'सूकरखेत' शब्दपर अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'सारे उपद्रवकी जड़ है 'सूकरखेत', जो भ्रमसे 'सोरों' समझ लिया है।' (द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १२९) यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि 'सूकरखेत' शब्दके कारण हिन्दी साहित्य-जगत्में एक भारी वितंडावाद छाया हुआ है। इस शब्दको लेकर विद्वानोंमें दो दल बन गये। एक पक्षने इसकी स्थिति सेरयू और घाघराके संगमपर बताई तो दूसरे पक्षने एटा जिलेके सोरों नामक स्थानपर। पं० रामनरेश त्रिपाठी, डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० राजाराम रस्तोगी आदि विद्वानोंने एटा जिलेमें स्थित 'सोरों की जबरदस्ती वकालत की है। इन महानुभावोंने तुलसीका घर-बार, ससुराल, ननिहाल आदिको भी इसी सोरों और उसके इर्द-गिर्द प्रमाणित करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा दी है।

लेखमें उद्धृत मानसकी इन लिखित प्रतियोंमेंसे प्रति सं० ५ और ७ भईश्वरी (भद्रपुरी) ग्रामकी परम्पराकी प्रतियाँ हैं। सोरों (एटा) की ह्रास मानस-बालकाण्डकी खण्डित प्रति भी इसी ग्रामकी परम्पराकी प्रतियोंमें से एक है। इस परम्पराकी सभी प्रतियोंके अन्तिम अंश एक-से हैं। विस्तार-भयसे उनको यहाँ नहीं दिया जा रहा है। सोरोंकी प्रतिका लिपिकाल संवत् १६४३ वि० डाक्टर रामदत्त भारद्वाजने स्वीकार किया है। (द्र० गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ट २२७-२२८) इस

आधारपर भईश्वरी ग्रामकी प्रतियोंकी एक लम्बी परम्परा ही मिल जाती है। हस्तलिखित प्रतियोंकी परम्पराके आधारपर यह अधिक सम्भव है कि सोरोंकी उक्त प्रतिमें 'कुरखेत' पाठ रहा होगा। किन्तु दुर्भाग्य है कि प्रतिका वह पत्र ही लुप्त है, जिसमें आलोच्य दोहा लिखा हुआ था। वैसे यह प्रति संवत् १६४३ वि० की हो या न हो, किन्तु इतना तो निश्चित है कि यह भईश्वरी ग्रामकी परम्परा में आती है। भईश्वरी ग्रामकी प्रतियोंमें 'सुरस कुरुखेत' तथा 'सकल कुरुखेत' पाठ मिलता है। ऐसी स्थितिमें 'कुरखेत' पाठ अपने स्थानपर शुद्ध प्रतीत होता है।

इसी संदर्भमें एक और रहस्यकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह यह कि अपने आठ वर्ष पूर्व स्वर्गीय श्री शिवप्रसादजी खरेने मानसके पाठके विषयमें बताते हुए कहा था कि 'मानसके 'काशिराज-संस्करण' में भी पाठ संबंधी कुछ भूलें रह गयी हैं। तुलसीके आत्म-विषयक दोहें 'मैं पुनि······'सूकरखेत', पाठके स्थानपर 'कुरखेत' पाठ होना चाहिए था। 'कुरखेत' पाठ शुद्ध है। मानसकी प्रतियोंमें यह पाठ मिलता है।' ध्यान देने योग्य है कि लेखमें विवृत प्रति-संख्या ४ स्वयं खरेजीने मुझे प्रदान की थी। 'इसमें 'कुरखेत' पाठ है। इसके साथ ही उन्होंने कहा था कि रामदास कृत 'गुरचरित' ग्रंथमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि 'गोस्वमी तुलसीदासने अपने गुरुसे धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके पावन पर्वपर रामकी सरस कथा सुनी थी।' मानसके काशिराज-संस्करणमें श्री खरेका विशेष सहयोग रहा। स्व० श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दारसे उनका मानसके संबंधमें निरंतर पत्र-व्यवहार होता रहता था। इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागसे उनके द्वारा समय-समयपर लिखे गये पत्र देखे जा सकते हैं। 'रामदास' कृत गुर-चरित ग्रन्थकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि उनके पास सुरक्षित थी। उनका दर्शन करनेका सौभाग्य भी मुझे मिला था। किन्तु तब मैं अति अचेत था और वे सहसा इस लोकसे चले गये। उनकी मृत्युके बाद उनके सुपुत्रोंने इस ग्रन्थके विषयमें कोई भी जानकारी नहीं दी। अभीतक अन्यत्र इस ग्रन्थकी पांडुलिपि कहीं मुझे देखनेको नहीं मिली।

ये रामदास कौन थे, कहाँके थे, आदि कुछ विवरण ज्ञात नहीं। हाँ प्रसिद्ध रामायणी पंडित बंदन पाठकने मानसके व्यासोंकी चर्चा करते हुए लिखा है—

प्रथम तुलसी कह्यो मानस गुरू सो लहि तिन दीन्हों बूढ़े रामदासको जनाय कै।
तातें लही रामदीन ज्योतिषी बखाने भले जन्म भरि गाई सब सुख सरसाय कै।
तातें लही घनीराम सन्त भक्त भाव करि तातो पायो मानदास अति सुखदाय कै।
पंडित गुलामराम तासों लही चोपराम ताको सिष्य कहै द्विज बंदन बनाय कै।

—द्रष्टव्य गोसाईं तुलसीदास, पृ० ३३४

श्री बंदन पाठक द्वारा वर्णित उक्त व्यास-परंपरा सही है। अतः रामदास तुलसीके प्रत्यक्ष शिष्य होते हैं। स्वाभाविक है कि उन्होंने अपने गुरुके चरित्रको लिपिबद्ध किया होगा।

रामचरित्र-मानसकी हस्तलिखित प्रतियोंमेंसे प्राप्त पाठ और उसकी परंपरा तथा रामदासके कथनपर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदासने कुरुक्षेत्रकी पवित्र धरती-पर अपने गुरुसे सरस रामकथा अवश्य सुनी होगी। मानस-चतुश्शती समारोहके पूर्व तुलसी-साहित्यके मर्मज्ञोंको इस ओर ध्यान देना आवश्यक है, ताकि 'सूकरखेत द्वय' और 'कुरुखेत' का चलानेवाला विवाद सत्मोन्मुख हो जाय।

मानस रूपक

साहित्य-वाचस्पति डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा कि उन्होंने नवमी भौमवार मधुमासके समय अवधपुरीमें अपना यह राम चरित्र प्रकाशित किया अर्थात मनकी वस्तुको कागजपर उतारा। जिस विमल कथाका उन्होंने आरम्भ किया उसका नाम उन्होंने दिया 'रामचरित मानस' केवल इसलिए नहीं कि वह उनके मानसकी वस्तु थी, उनके बुद्धि विवेकके अनुसार सोची हुई रामकथा थी, किन्तु इसलिए भी कि वह विषयानलमें जलते रहनेवाले मन-मातंगको सुखी बनानेके लिए लिखी जा रही थी। मानस मानसरोवरका भी तो नाम है। मन-मातंगको शीतल सुख पहुँचाने वाला मान-सरोवर अभिव्यक्त हो जाय तो क्या कहना। गोस्वामीजीको विश्वास हो चुका था कि रामकथाकी उनकी अभिव्यक्तिमें 'जस कछु बुद्धि विवेक बल मोरे' ही नहीं किन्तु 'तस कहिहउं सब हरिके प्रेरे' की भावना भी है अतएव उन्होंने निश्चयात्मक स्वरमें कहा 'मन-करि विषय अनत बन जरई, होय सुखी जो एहि सर परई।' एक बात और। रामकथाके आदि प्रवर्तक तो स्वयं शंकरजी माने जाते है। उन्होंने भी इसकी रचना करके सर्व प्रथम अपने मानस ही में रखा था और सुसमय पाकर जगज्जननीसे उसकी चर्चा की थी। अपनी उस कथाका नाम इसीलिए शंकरजीने स्वतः रख दिया था 'रामचरित मानस'। 'रचि महेस निज मानस राखा, पाई सुसमउ सिवा सन भाखा, ताते रामचरित मानसवर घरेउ नाम हिय हेरि रषि हर।" गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं तो वही कथा अपने बुद्धि विवेक और हरिहर प्रेरणासे दुहरा रहा हूँ क्योंकि उसमें मनोरंजकला (सुहाई) और कल्याण प्रदता (सुखद) भरपूर है—कहउं कथा सोइ सुखद सुहाई—अतएव गोस्वामीजीने अपनी कृतिका भी स्वभावतः नाम रखा 'रामचरित मानस।'

महेशके मानसकी बात गोस्वामीजीके मानसमें आई और उसने मानस (मानसरोवर) के समान शीतलता दी। वह सुखद (श्रेय युक्त) भी है और हुआ है (प्रेययुक्त) भी है अतएव उसमें कल्याण (सिद्धान्तरत्न भी होंगे और काव्यकलाके सूक्ति-चमत्कार भी होंगे। गोस्वामीजीने सन्तत्वकी नम्रतामें यद्यपि तीन-तीन बार कहा कि वे कवि नहीं है, उनमें कवित्वविवेक एक भी नहीं है, किन्तु शंकरजीके रचे रामचरित मानसमें किस वस्तुकी कमी रह सकती है अतएव अब वही मानस गोस्वामीजीके द्वारा प्रकट किया जा रहा है तब उसके तत्वोत्कर्ष और काव्योत्कर्षपर मौन कैसे रहा जा सकता है अथवा उसे नकारा कैसे जा सकता है। इसीलिए गोस्वामीजीको लंबा-चौड़ा मानस-रूपक बांधना पड़ा है। वह मानस क्या है (जस मानस) कैसे हुआ (जेहि विधि भयउ) और क्यों हुआ, (जग प्रचार जेहि हेतु) इसे स्पष्ट करनेमें मानसरोवरवाला रूपक बहुत उपयोगी समझना चाहिए। शंकरजीके प्रसादसे गोस्वामीजीकी सुमतिको हृदयमें उल्लखितकर दिया जिसका परिणाम हुआ है रामचरित मानस और तदर्थ तुलसीका कवित्त। कवि न होकर भी वे कवि हो गये। परन्तु उन्होंने अपनी मतिके अनुसार (ध्यान दीजिये कि यहाँ सु-मति शब्दका प्रयोग नहीं हुआ

है) जहां-जहां उस प्रासादिक कथाको मनोहर बनानेका यत्न किया है वहां सम्भव है सु-मति मान सन्त (सुजनसुचित) कुछ संशोधनकी गुंजाइश देखें। उनसे गोस्वामीजीने निवेदन किया है कि वे ऐसा संशोधनकर लेनेकी कृपा करें।

शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, रामचरित मानस कवि तुलसी।
करइ मनोहर मति अनुहारी, सुजन सुचित मुनि लेहु सुधारी ।।

अब देखिये मानस-रूपककी बहार। पहिले मानसरोवरकी पूरी कल्पना मनमें जमा ली जाय, फिर मानस काव्यकी उसके साथ पूरी तुलना करते चलें तब, क्या, कैसे और क्यों, के स्पष्ट उत्तर मिलेंगे। मानसरोवरकी महिमा उसके पुण्य स्थल और निर्मल जलके कारण है। हिमालयका उदात्त पुण्य क्षेत्र उसका आधार-स्थल है जिसमें सिमट-सिमटकर जल भरता है और मधुर मनोहर मंगलकारी स्वच्छ शीतल थिर (पंक विहीन) चारू चिरायमान उसका अमृतोपम जल है जो किसी भी घाट की (गढ़ी या अनगढ़) सीढ़ियोंसे उस तक पहुँचनेपर सुग्राह्य हो सकता है। बादल इस जलको समुद्रसे खींचकर लाते और यहां बरसा जाते हैं। यह जल जहाँ-जहाँ जायगा वहां वनस्पतियोंमें तो रससिंचन करेगा ही परन्तु जो इसके पास पहुँच जायेंगे उनके लिए जीवन-धन सिद्ध होगा (स्मरण रहे कि जलको भी जीवन कहा जाता है)।

सुमति रूपी पावन भूमिपर हृदयानुभूतिकी गहराई ही वह अगाध क्षेत्र है जिसमें रामयश रूपी जल संचित है। वह कथामृत सन्तरूपी बादलों द्वारा वेद पुराण रूपी समुद्रसे अर्थात ज्ञान विज्ञानके विशाल वाङ्मयसे चुनकर लाया गया है। यही तो उस समुद्रका अमृतोपम श्रेष्ठ जल है—वर वारि है। वह वारि मधुर (हृदयको सरस) मनोहर (बुद्धिका तोषक) और मंगलकारी (अन्तरात्माका पोषक) तो है ही। साथ ही इस कथाका सगुण लीलाख्यान उस जलकी स्वच्छता है जो मलको छांट देती है, उसके अवर्णनीय प्रेम और भक्तिके संकेत (मतलब यह कि आख्यान-श्रवणसे प्राप्त प्रेरणाएं) उस जलके माधुर्य और शैत्य गुण है। वह पावन जल कविकी मेधा (ग्राहिका शक्ति) का आधार लेकर तथा उसके श्रवण मार्गसे चलकर उसके सु-मन रूपी सु-स्थलमें थिर (संचित होकर सुस्थिर एवं निर्मल) हो चुका है। कविके मनमें संजोया हुआ यह सुधास्वादीय जल सहृदयोंको सुलभ हो, इसीलिए बुद्धिने विचारकर उसकी चारों दिशाओंमें चार घाट और प्रत्येक घाटमें सात-सात कांडों (प्रबन्धों) के रूपको सात-सात सीढ़ियां कल्पितकर दी है। मतलब यह कि चाहे ज्ञानघाट पकड़िये चाहे कर्मघाट, चाहे भक्तिघाट और चाहे दैन्यघाट, आपको सात सीढ़ियां (सात उपलब्धियां) पार करनी ही पड़ेगी तभी आप वास्तविक रूपसे रसावगाहनकर पायेंगे। गोस्वामीजीने सोपानों (सीढ़ियों) का जो नामकरण किया है, उससे इन उपलब्धियोंका रहस्य स्पष्ट हो जाता है (विशेष विवरण मेरे अन्य ग्रन्थोंमें देखा जा सकता हैं)। न तो ये घाट भौतिक हैं और न सीढ़ियां। मानस सरोवर जाकर कोई न तो इन घाटोंको देख सकेगा न उसकी सीढ़ियोंको। घाट तो बौद्धिक है और सीढ़ियां ज्ञान नयनोंसे ही निरीक्षित हो सकती है। ज्ञान-चक्षुसे देखनेपर मन उन्हें निश्चय ही मान लेगा। "ज्ञान नयन निरखत मन माना"

गोस्वामीजीके काव्यका यह अनुभूति पक्ष कितना उदात्त है! उनकी सुमतिने सत्शास्त्रोंका सार जो सन्तों द्वारा ग्रहण किया उसे चिरसंचित रखकर एकदम निर्मल और परिपक्व बना डाला, तब कल्पनाके संयोगसे उसे जनमानसके लिए हृदयहारी बनाकर अभिव्यक्त किया ताकि उसके मधुर मनोहर मंगलकारी रूपसे सर्वान्तः सुख संपादित हो सके। यह है इतनी दूर तकके कथनका रहस्य।

मानसरूपक बताता है कि जैसा उदात्त गोस्वामीजीका अनुभूति पक्ष (भाव पक्ष) है वैसा ही उनका अभिव्यक्ति पक्ष (कलापक्ष) भी समझिये। अभिव्यक्तिमें शब्द, अर्थ, शैली, रस, छन्द अलंकार तथा प्रधान रसके पोषक भांति-भांतिके वर्ण्य विषय भांति-भांतिके भाव विभाव अनुमान सभी आ जाते हैं। गोस्वामीजीका संकेत है कि उनके काव्यमें ये भी सब वस्तुएँ मिलेंगी और ऊँचे दर्जेकी मिलेंगी। सब शास्त्रोंका निचोड़ तो है रामसुयशरस। वही मानसका प्राण है। परन्तु उस प्राणके अंगभूत होकर भांति-भांतिके अभिव्यक्ति सौंदर्य भी उसमें विलस रहे हैं। जैसे मानसरोवरमें कमल भी है सीपें भी हैं उसकी लहरें भी हैं और उसकी अगाधता भी है उसमें मछलियां भी हैं, जलपक्षी भी है, उसके प्रभावसे पनपनेवाले भांति-भांतिके वृक्ष और लताएं भी हैं जिनमें फूल फल ही नहीं, ऋतुओंकी बहार भी देखी जा सकती है। जलसे दूर रहनेवाले शुक पिक सदृश गगनचारी पक्षी भी उन्हीं वृक्षों लताओंका आश्रय लेकर अपना जीवन सार्थक कर रहे हैं। उसी तरह मानस-काव्यमें भी वे सब बातें मिलेंगी। त्रिगुणातीतका महिमा-गान उस राम-सुयश-रसकी अगाधता है, साम्य (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि) के सहारे वर्ण्यका उत्कर्ष-प्रदर्शन उस रसका मनोरम वीचि-विलास है। चौपाइयों (चतुष्पदियों) का विस्तार ही पुरइनका प्रसार है, सयुक्तिक कथन ही उस प्रसारसे आच्छादित रत्न और सुन्दर सीपें (शुक्तियां) है तथा सुन्दर दोहे, सोरठे एवं अन्य छन्द उस सरोवरके बहुरंगी कमलोंके फूल है। उन छन्दोंकी सु-भाषा, उनके सुभाव और उनके अनुपम अर्थ ही उन बहुरंगी कमलोंकी पराग है, मकरन्द है और सुगन्ध है। ये भाषा-भाव और अर्थ सुकृत रूपी भौंरों और ज्ञान-वैराग्य-विचार रूपी हंसोंको अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। इस काव्यमें ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्यगुणकी अनेक जातियाँ है, वे ही भांति-भांतिके मनोहर मत्स्य है। पुरूषार्थ चतुष्टय ज्ञान-विज्ञान, जपतप, योग वैराग्य तथा नव-रस (काव्य रस) के कथन ही इस काव्य सरोवरके चारु जलचर (मत्स्यके अतिरिक्त अन्य जलचर है) हैं। स्मरण रहे कि सरोवरका प्राण तो भगवत कथा रस अथवा भगवत्प्रेम रस है। शृंगार, हास्य, करुणा, आदि काव्य रस तो उस दिव्य रससे ही पोषण पाकर आनन्द दायक हो सकते है इसलिए नवरसोंको मानस सुरस नहीं किन्तु सुरस द्वारा पोषित जलचर कहा गया है। इस काव्यमें जो विविध प्रकार भगवद् नाम गुणगान या भगवद् भक्तोंके नामगुण गान है वे ही विचित्र विचित्र जल विहंग है।

जलमें सदा सर्वदा लीन रहनेवाले हुए कमल, मत्स्य तथा अन्य जलचर। जल पर प्रायः आश्रित रहनेवाले हुए जल विहंग। जलसे दूर किन्तु जलसे ही पोषित होनेवाले हैं भांति-भांतिके लता और द्रुम। यह मानस काव्य उस सन्तत्वका पोषण करता है जिसे मानसरोवरके जलसे पोषित आसपासकी अमराई (आम्रवाटिका) कह सकते हैं। उस अमराईमें श्रद्धारूपी वसन्त ऋतुकी सदा-बहार रहती है। सद्‌विचार (भगति निरूपण) सत्कर्म (विविध विधान) और सद्भाव (छमा, दया) ही उस अमराईके द्रुम और लता वितान है। सन्तत्वका पोषण अर्थात् सद्‌विचार सत्कर्म और सद्भावका पोषण। इन्हीं द्रुमों और लता वितानोंके फूल हैं—शमयम नियम। फल है ज्ञान। और, भगवत् प्राप्ति (हरिपद) ही उस फलका श्रेष्ठ रस जिसका बखान वेदों तकने किया है। इस मानस काव्यमें और भी गौण प्रासंगिक कथाएं जो जुड़ती चली है या जुड़ती चलेगी उन कर्णमधुर उक्तियों (शुक पिक वाणियों) को मानसरोवरके समीपवर्ती बहुवर्णी विहंग समझ लीजिये। इस मानस काव्यके चिन्तन मनन अनुशीलनसे विविध प्रकारकी पुलकावली (भावविभोरता) होना स्वाभाविक है। वह पुलकावली ही मानसरोवरसे पोषित वाटिका, बाग और वन समझी जाय।

(स्मरण रहे कि यह कवि कल्पना एक अच्छे सरोवरको लक्ष्य करके की गई है। भौगोलिक मानसरोवरके किनारे तो अब न वाटिका है न बाग है न बन है।) सुखरूपी सुबिहंगका बिहार ऐसी ही पुलकावलियोंमें होगा। अर्थात यदि सहृदय श्रोतागण मानस काव्यसे पुलकित न हो उठे तो उन्हें सुख रूपी विहंगके दर्शन भी न होंगे। सहृदयोंका सुमन ही उनका माली है जो अपनी भावुकताभरी सूझ रूपी सुन्दर आँखोंसे स्नेह रूपी जल सींचता रहता और पुलकावलीका संवर्धन करता रहता है।

जो सूझबूझके साथ (संभाल-संभाल कर) इस चरित्रका गान करेंगे वे ही इस मानस-तालके चतुर रखवारे हैं। जो नरनारी आदरके साथ इसे सदा सुनेंगे वे ही इसके श्रेष्ठ देवतुल्य अधिकारी होंगे। जो अत्यन्त खल और विषयी हैं वे तो प्रकृत्या बकके समान धर्मध्वजी, ढोंगी तथा हिंसक और कौवेके समान भीतर बाहरसे काले हैं। ऐसे भाग्यहीन बगुले और कौवे इस मानसरोवरके पास कहां जा सकते हैं। यहां तो विषयोंकी कथाका नाना प्रकारका भोगरस रूपी, घोंघा (जलकीड़ा) मेंढक, या सियार है ही नहीं फिर कौवे और बगुले आयेंगे ही क्यों। ऐसे कामी लोग आये तो निश्चय ही उनका दिल टूट जायगा। वे हिम्मत हार बैठेंगे। इस अभौतिक मानसरोवरके पास आना भी तो बहुत कठिन है। रामकृपाके बिना यहां तक आया नहीं जा सकता। इस संसारमें कठिन कुसंगियोंका जमघट है जो कराल कुपथ ही के साथी हैं फिर मानसरोवरका सुपथ दिखाये कौन। वे बाते भी ऐसी हिंसापूर्ण करते हैं जो बटोहीके लिए बाघ, बन-हाथी और विषधर सांपकी तरह घातक है। गृह कार्यके नाना जंजाल ही मानसरोवर मार्गके अति दुर्गम विशाल शैल है। विषम मोह मद मान ही अनेकानेक वन हैं और नाना प्रकारके कुतर्क ही भयंकर नदियां है जो रास्ता रोक देती है। बस यह समझ लिया जाय कि जिनके पास श्रद्धाका सम्बल नहीं है, सन्तोंका साथ नहीं है और रघुनाथके प्रति प्रेम नहीं है उनके लिए मानस अत्यन्त अगम्य है। (चाहे वह भौतिक मानस हो चाहे अभौतिक मानस हो, चाहे अनुभूतिवाला मानस हो चाहे अभिव्यक्तिवाला मानस हो)।

गोस्वामी जी कहना है कि यदि कोई अनधिकारी व्यक्ति कष्ठ उठाकर मानसके समीप जाता भी है तो उसे नींद लग जाती है, कंपकपी आ जाती है, जड़त्वका बुखार (जाड़ा देने वाला मलेरिया) धमक पड़ता हैं और इस प्रकार वह अभागा उस सर तक पहुँचकर भी उसमें अवगाहन नहीं कर पाता। जब अवगाहन नहीं कर पाता (अर्थात् उसमें रस विभोर नहीं हो पाता) तब अपना अहं लेकर वह लौट पड़ता है और फिर यदि कोई पूछता है कि कहिये मानस कैसा रहा तो उसकी निन्दापरक आलोचनाएं करने लगता है। हाँ, जिसपर रामकी कृपा दृष्टि हो जाय उसे विघ्न बाधाएं सता ही नहीं सकती और वही आदर पूर्वक (श्रद्धाके साथ) इस सरोवरका अवगाहन करता है तथा सामान्य ऊष्माकी कौन कहे महाघोर त्रितापों (दैहिक दैविक भौतिक तापों या तनजन्य मन जन्य तापों) से भी जलने नहीं पाता। (मानस-सरके लिए वही बात है और मानस काव्यके लिए भी यही बात है)।

मानस राम-सुयशके माध्यमसे उस सुमति-संचित प्रेरणास्पद ज्ञान विज्ञान पूर्ण रस-राशिका नाम है जो सहृदयोंको भाव विभोर करके उन्हें अनायास त्रितापोंसे मुक्त कर सकती है। परम शिवतत्व (विश्व कल्याण भावना) से हो उसका निर्माण हुआ है। उसी परम शिवतत्वका प्रेरणाका प्रसाद जब कविके मानसको मिला तब मानस काव्यका सांगोपाङ्ग सृजन हुआ। उस सृष्टिका हेतु ही

है जगत कल्याण-विशेषतः त्रितापतापित मानव समाजका कल्याण। कल्याणकी कामनासे ही उसका विविध वक्ता श्रोता-परम्परासे प्रचार हुआ है। जगमें उसका जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही संवर्धनमें योग मिलता रहेगा, यह गोस्वामीजीने लक्षणा व्यंजनाके सहारे बड़ी खूबीसे कह दिया है।

प्रचारकी बातको और अधिक पुष्ट करनेके लिए गोस्वामी जी एक दूसरा रूपक भी चुनते हैं। वह है कथा-सरिता रूपक। समझदार लोग तत्वको प्रायः उदाहरणोंके द्वारा, कथानकोंके द्वारा, स्पष्ट किया करते हैं। तत्व मानस (मन) में रहता है कथा शब्दों द्वारा प्रचारित होती है। ब्रह्म तत्त्व है जिसको गोस्वामीजीने राम नाम, रामरूप, रामगुणके सहारे सोचा समझा है। इसे अनुभूत ही नहीं किन्तु अपने मानसमें अभिव्यक्त भी किया है। अनुभूतिमें वह तत्व दिव्य रस है अभिव्यक्तिमें वह त्रितापनाशक प्रेमप्रसाद है। वह प्रसाद सर्व सुलभ हो इसीलिए वह तत्व कथा रूपमें प्रवाहित किया गया। भौतिक जगतमें यदि मानस-सरका जल सरयूके रूपमें प्रवाहित हुआ तो काव्य जगतमें राम सुयशका अमृत राम कथाके रूपमें प्रवाहित हो गया है। गोस्वामीजी कहते हैं कि रामकथाका सृजन प्रयत्नपूर्वक-कष्ट साध्य तरीकेसे नहीं किया गया है। कवि-हृदयने तो अपने मानस चक्षुओंसे पूर्वोक्त दिव्य मानसके दर्शन करके और उपमें अवगाहन करके अपनो बुद्धिको विमल कर लिया था— कर क्या लिया था बुद्धि स्वतः अवगाहन करके विमल हो गई थी। परिणाम यह हुआ कि आनन्दका उत्साह भर उठा और प्रेमका प्रवाह उमंग पड़ा। रामके विमल यशसे भरी हुई सौभाग्य शीला कविता इस प्रकार सरिताके समान अनायास बह चली। वही सरयू है। लोकमत और वेदमत ही उसके दोनों मंजुल कूल हैं। वह नदी (कथा सरिता) पुनीत है क्योंकि वह सु-मानस नन्दिनी है (मानससे जन्मी है) अतएव वह कलिमलोंकी चाहे वे तृणके समान छोटे हो चाहे तरूके समान विशाल हो — जड़से नाश करने वाला है। त्रिविध श्रोताओंका समाज ही उस सरिताके तटवर्ती गाँवों और नगरोंका समूह है और सकल सुमंगल मूल सन्द सभा (जिसकी सान्निध्य प्राप्ति ही के लिए राम कथा युक्त मानस काव्य विशेष प्रवृत्त हुआ है) सकल सुमंगल मूल अनुपम अवध नगर है।

गंगामें यदि उत्तरको ओरसे सरयू आकर मिली है तो दक्षिणसे सोनभद्र। विश्वमानसके धरातलसे बाहर न तो गंगा है, न सरयू, न शोण। कथा-रस वितरित करनेवाली सहायक नदियोंका उद्देश्य है भक्ति भागीरथीकी प्राप्ति। रामकथाका पूर्वार्ध यदि सरयू है तो उत्तरार्ध (जिसमें सानुज रामका समर यश भरा है) शोण है। दोनों एक ही जलके चमत्कार है। उसमें भी रामयश है इसमें भी रामयश है। राम सुकीति और रामसुयशके बीच रामभक्तिकी पावन मंदाकिनी प्रवाहित है। जान पड़ता है कि वैराग्य और विवेकके वीच साक्षात भक्ति ही प्रवाहित हो रही है। इन तीनोंकी त्रिवेणी त्रिविध तापोंकी त्रासिका है। इस त्रिपथगाका लक्ष्य है राम स्वरूप रूपी समुद्र। यही लक्ष्य अकेली सरयूका भी समझिये। जहां तक सरयूका सवाल है वह मानससे उद्भूत है और सुरसरितामें मिली है अर्थात् यह रामकथा प्रासादिक रूपसे सुमति द्वारा उद्धृत है और भगवद्भक्ति ही में उसकी कृतार्थता है अतएव निश्चय है कि श्रवण गोचर होते ही वह सुजन मनोंको पवित्र कर देगी। इस रामकथाके बीच-बीच चित्र-विचित्र उपकथाएँ भी आ गई है। उन्हें आप सरिता-तटके वन-बाग समझ लें।

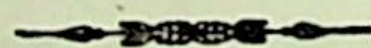
उस कथा-सरिताका पूरा रूपक देखिये, कितना मनोरम है। रूपक क्या है पूरे काव्य प्रबंधकी विषयानुक्रमणिका ही दे दी गई है। काव्य प्रबंधमें उमा-शंभु विवाहका वर्णन पहिले किया गया है। रूपकमें भी शंकरके बरातियोंपर पहिले ध्यान दिया गया है। वे ही मानो उस सरिताके भाँति-भाँतिके जलचर हैं। (यह लाजिमी नहीं है कि काव्य पहिले लिख दिया गया हो और विषयानुक्रमणिका पीछे बनाकर जोड़ी गई हो। प्रबंधकार विषयसूची सहित प्रायः पूरा ढांचा ही अपने मनमें (मानसमें) पहिले बना लेता है तब रचनाको कागजपर उतारता चलता है।) राम जन्मकी आनन्द बधाई उस सरिताकी भंवर तरंगोंकी मनोहरता है, चारों बन्धुओंके बालचरित्र बहुरंगी कमल है, राजारानी और पुरजनों परिजनोंके सुकृत उन कमलोंके इर्द गिर्द चक्कर लगानेवाले भ्रमर तथा जल पक्षी है। सीता स्वयंवरकी सुहाई कथा छविसे छाई हुई सुहावनी सहायक सरित है। अनेक पटु प्रश्न (जो बीच बीचमें पूछे गये हैं) उस नदीकी नावें हैं और विवेक पूर्ण उत्तर कुशल केवट हैं जो उन नावोंको पार लगाते हैं। इन प्रश्नोत्तरोंपर आधारित परस्परका वार्तालाप पथिक समाजकी भाँति शोभित हो रहा है।' परशुरामजीका क्रोध इस नदीकी घोर धारा है और रामजीकी श्रेष्ठ वाणी उस धाराको पार करनेके लिए अच्छे बंधे हुए घाटकी तरह है। सानुज राम व्याहका उत्साह सब किसीके लिए सुखद उस नदीकी शुभ उमंग (समृद्धि) है। जो उस विवाहकी चर्चा करते हुए पुलकायमान हों जाते हैं वे ही मनमुदित सुकृती इस सरिताके स्नान करनेवाले है। राम तिलकके लिए जो मंगल साज एकत्र किया गया था, वही मानों पर्व योगपर जुड़ा हुआ स्नानार्थी समाज है। कैकैयीजीको कुमति ही जलकी वह काई है जिसके पड़नेके परिणाम स्वरूप धनी विपत्ति पड़ गई। भरत चरित्र ही इस सरिता तीरका जप याग है जो अमित उत्पातीका भी शमन करता है और कलिमल तथा खलोंके अवगुणोंका कथन ही उस जलका मल है और उसके किनारेके बगुले तथा कौवे हैं। (जिनसे श्रोताओंको सतर्क रहना है)

पहिले ही कहा गया है कि सरयूका सम्बन्ध रामकथाके पूर्वार्धसे अर्थात् चित्रकूटके चरित्र तक ही विशेष है अतएव उपयुक्त विषयानुक्रमणिका भी यहांतक है। परन्तु राम-समरका यश भी तो राम-कीर्तिका जल है। अतएव काल प्रवाहके क्रममें उत्तरार्धकी घटनाओंको भी सलिलके ऋतु सौंदर्यके रूपमें सांकेतिक करके गोस्वामीजीने विषयसूची पूरी कर दी है। पूर्वार्धका घटनाक्रम विस्तारसे वर्णित है उत्तरार्धका त्वराके साथ। सरयूसे गोस्वामीजीका जो लगाव है वह शोणके साथ कैसे रह सकता है। किन्तु वह भी प्रभुका चरित्र है अतएव कहा गया कि पूरी कथा कीर्ति सरिता छहों ऋतुओंमें सुन्दर है प्रत्येक समयमें सुहावनी और बहुत पवित्र है। शिव पार्वती व्याह ही उसका हेमन्ती-सौंदर्य है, प्रभु-जन्मका सुखद उत्साह उसका शिशिर सौंदर्य है, राम विवाहके समाजका वर्णन ही उसका मुदमंगलमय वसन्त सौंदर्य है, राम वन गमन ही उसका दुःसह ग्रीष्म सौंदर्य है जिसकी पथ-कथा ही तेज धूप और प्रचण्ड आंधी समझी जाय। निशाचरोंके साथ घोर युद्ध ही वर्षाकी झड़ीका सौंदर्य है जो देवकुल रूपी शांतिके लिए सुमंगलकारी भी है। राम राज्यके सुख विनय बड़ाईको ही विशद सुख दायक सुहावनी शरद ऋतु समझना चाहिए।

चाहे मान सरोवरका जल हो चाहे सरयूका, दोनोंमें निर्मलता शीतलता और मधुरताका गुण है ही। सो सती शिरोमणि सीताजीकी गुण गाथा ही उस अनुपम जलका नैर्मल्य गुण है, भरतका स्वभाव ही सुशैत्य गुण है जो सदा एकरस होकर वर्णनातीत है और चारों बन्धुओंका पारस्परिक हेलमेल एवं सुन्दर भ्रातृत्व ही उसका माधुर्यगुण है। जलका एक गुण और होता है

जिसको लघुत्व गुण (उसका हलका पन) कहते हैं। (हल्का पानी चाहिए न कि भारी पानी। तभी वह सुपाच्य होता है।) गोस्वामीजी कहते हैं मेरी आर्ति विनय और दीनता ही इस ललित सुवारिकी लघुता है। इसे जलका दोष न माना जाय। यह तो जल ही बड़ा अद्भुत है जो सुनते ही सुख देने लगता तथा आशाओंकी प्यास एवं मनका मैल, दोनोंको ही मिटा देता है। भगवान राम स्वत: इस जलका प्रेम पूर्वक पोषण किया करते हैं और सकल कलि कलुष ग्लानिका हरण किया करते हैं। यह जल भवस्रम शोषक है, तोषको भी तोष प्रद है, दुरित दु:ख दारिद्र, दोषका शमनकर्ता है। काम क्रोध मद मोहका नाशक है, विमल विवेक वैराग्यका सम्बर्धक है। जो कोई सादर इसमें अवगाहन करेंगे अथवा इसका पान करेंगे उनके हृदयके पाप परिताप मिट जायेंगे। जिन्होंने इस जलसे अपना मानस (मन) नहीं धोया वे कायर कलिकालमें खो गये ऐसा समझना चाहिए। वे प्यासे जीव मृगतृषणाको देखकर दुखी मृगके समान भटकते फिरेंगे।

सर सरिता रूपकके रूपमें इतनी भूमिका प्रस्तुत करनेके बाद गोस्वामीजी कहते हैं 'मति अनुहारि सुवारि गुण गनि, मन अन्हवाइ, सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाई।" मतलब यह कि जिस दिव्य रसमें मनको सिक्त करके गोस्वामीजीने रामकथा कही है, उसके गुणगणोंकी गणना उन्होंने मतिके अनुसार कर दी है। यह गुण गणना अनेक दृष्टियोंसे आवश्यक थी और अनेक दृष्टियोंसे मननीय है। कविने आत्म श्रद्धाके कुएंसे और आत्महीनताकी खाईसे बचते हुए अपने रचे रामचरित्र मानस काव्यके यथार्थ गुण कथनका धर्म एक तटस्थ समलोचकके समान जिस कौशलसे इस सर सरिता रूपकमें निभाया है, उस पर जितना चिन्तन किया जाय उतना ही थोड़ा है।



मानस की संवाद-योजना

डा० स्वामीनाथ शर्मा

मानसमें चार संवादोंकी योजना की गई है। रामकी यह कथा गोस्वामीजी पाठकों अथवा भक्तजनोंसे तो कर ही रहे हैं, साथ ही याज्ञवल्क्य भारद्वाजसे, शिव उमासे तथा काकभुशुण्डि गरुड़से भी कह रहे हैं। इन संवादोंका पारस्परिक अनुक्रम सम्बन्ध भी हैं। गोस्वामीजी याज्ञवल्क्य भारद्वाज का संवाद, याज्ञवल्यक्य शिव, उमा संवाद तथा शिव काकभुशुण्डि-गरुड़ संवादके वक्ता हैं।

ये संवाद काव्यके घाट हैं। ये कथावस्तुकी सीमाका निर्धारण करते हैं ! यों तो हरि अनन्त हरिकथा, अनन्ता है, परन्तु मानसमें जो कथा वर्णित है उसकी रूपरेखा तथा उसका घटना प्रवाह इन चारों संवादों द्वारा निश्चित कर दिया गया है, उसकी परम्परा निर्धारित कर दी गयी है। और वह यों है—

सम्भु कीन्हि यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमँहि सुनावा ॥
सोइ शिव काकभुसंडहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा ॥
तेहि सन यागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रतिगावा ॥—१।३०।३-५

ये सब भक्त हैं और भगवान् रामका गुणगान करते हैं। इन्हें भगवान रामका वही रूप प्रिय हैं जो दीनोंका दुख दूर करता है, जो पतितोंका उद्धार करता है, जो भक्तोंका योग-क्षेम वहन करता है और दुष्टोंका दलन करता है। मानव रामके गुणों और कार्योंकी सार्थकता इनके लिये मुख्यतः इसीमें हैं कि उनके इस चरितको गानेसे इनकी भक्ति दृढ़ होती है, इनमें इनकी भक्तिको आधार मिलता है। रामचरित मानसकी बाल्मीकि रामायणसे जब तुलना की जाती है तब यह बात भुला दी जानी है कि बाल्मीकिजी ऐसे रामकी कथा लिखने बैठे थे जो उस समय संसारमें गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रत अनेक प्रकारके चरित्र करनेवाले प्राणिमात्रके हितैषी, विद्वान, समर्थ अतिप्रियदर्शन, धैर्यवान, क्रोधको जीतनेवाले, तेजस्वी, ईर्ष्याशून्य और मुंहमें क्रोध होनेपर देवताओंको भतभीत करनेवाले थे, परन्तु तुलसीदासजी जिस रामकी गाथाका वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए थे, वे सब गुणोंसे मुक्त होनेके साथ ही "विष्णु कोटि सम पालनकर्त्ता रुद्र कोटि सत सम संहर्त्ता" हैं और उनका स्वरूप ऐसा अगम है कि "निगम नेति शिव अन्त न पावा"। इन दोनों व्यक्तियोंमें कितना महान अन्तर है। दोनों महानुभावोंने एक ही रामको अपने-अपने दृष्टिकोणोंसे देखा है और अच्छा देखा है। एकके राम पुरुषोत्तम हैं और दूसरेके परात्पर ब्रह्म। एक बनको मानवीय गुणोंकी पराकाष्ठा समझता है और दूसरा निखिल ईश्वरीय विभूतियोंका निधान। एकके राम मनुष्योचित

कार्योंको करते हुए मानव आदर्शोंके प्रतीक हैं और दूसरेके राम "माया वपुधारी" हैं, मनुष्योंके से आचरण-भर करते हैं, मनुष्य हैं नहीं।

घाट सरोवरके सौन्दर्य और भव्यतामें वृद्धि करते हैं। मानसके ये संवाद भी कथावस्तुको अलौकिक गरिमा और अनुपम श्री प्रदान करते हैं। कथाके प्रवहमान स्वरूपको अनिश्चितताकी ओर उन्मुख नहीं होने देते, दीर्घताके इस विशाल आयोजनमें नीरसता नहीं आने देते और वर्णोंकी स्वाभाविकताकी रक्षामें प्रमादका अवलम्बन नहीं करते। जिस प्रकार वायु संसारसे सरोवरके जल-में तरंगें उठती हैं और घाटके सम्पर्कमें आकर दिशा परिवर्तन करती है। उसी प्रकार परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न घटना-प्रवाह इन सम्वादोंके द्वारा यथोचित मार्ग ग्रहण करता जाता है। वर्णनकी निरन्तरता जब श्रम कारक प्रतीत होने लगती है, तब ये सम्वाद साँस लेनेका अवसर प्रदान करते हैं जब कोई गूढ़ कथन उपस्थित हो जाता है तो हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित करते हैं और साथ ही समझते भी हैं, जब कोई रहस्य मनको उलझनमें डाल देता है तब ये अविलम्ब इनकी गुत्थियोंमें सुलझाकर उसे प्रकृतिस्थ बनाते हैं। जब कथाकी विचित्रता आश्चर्यकी सृष्टि करके मानसिक चकाचौंध उत्पन्न कर देती है, तब ये उसकी वास्तविक पृष्ठभूमिकी स्पष्टताको सामने लाकर उसके सुचारु दर्शन की व्यवस्था करते है, जब विश्वासको कहीं लटपटानेका स्थान मिल जाता है तब ये उसे सम्हालकर उसमें नवीन दृढ़ताका संचार करते हैं। ये सम्वाद क्या हैं कथा जल तक पहुँचनेके लिए सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, कथा मन्दिरमें प्रवेश करनेके निमित्त चतुर्दिक द्वार हैं और कथा रूपी गन्तव्य स्थान तक ले जानेके लिये प्रशस्त राजपथ है।

इतने-संवादोंकी योजना केवल कथाके स्वरूप-निर्णय तथा घटनाक्रमके निर्वाहके लिए ही हुई यह बात गलेके नीचे इतनी सरलतासे नहीं उतरती। बिना संवादोंके अथवा एक ही संवादसे भी यह काम सफलतापूर्वक हो सकता था ! इस संवाद-चतुष्टयके पीछे कोई विशेष मन्तव्य होना चाहिए। हिन्दीके कुछ विद्वानोंने इसके लिए विभिन्न समाधान उपस्थित किये हैं। कुछ पण्डितोंने शिव-पार्वती संवादको ज्ञान-घाट, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवादको कर्मकाण्ड घाट, काक भुशुण्डि-गरुड़ संवादको उपासना-घाट तथा गोस्वामीजी मन (भक्त, संतजन, पाठक) संवादको दैन्य घाट माना है।[1] कुछ लोगोंका मत है कि चार दार्शनिक [2]सिद्धान्तोंका प्रतिपादन ही इन संवादोंका उद्देश्य है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि "गरुड़, पार्वती, भारद्वाज तीनों श्रोताओंको दशरथि रामके ईश्वरावतार होनेमें सन्देह है। वक्ताओंने इसी सन्देहका निराकर किया है। श्रोताओंका सन्देह तो एक नहीं है, पर वक्ताओंके प्रतिपादनमें सूक्ष्म भेद भी लक्षित होता है। काकभुशुण्डिका प्रतिपादन उपासना-परक, शिवका ज्ञानपरक और याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड परक है। स्वयं तुलसीदासकी उक्ति शीलपरक मानना चाहिए।[3]" इनके विपरीत श्री चन्द्रबली पाण्डेयका विचार है कि "हैं एक कि ही कथा प्रत्येक संबादमें चल रही है और उसमें एक ही प्रकारकी ज्ञान-कर्म-व्यवस्थित भक्तिका निरुपण है, इसलिये अध्यात्म-वैभिन्यसे मतलब नहीं है।"[4] इस मत विभिन्नतासे यही प्रकट होता है किइ स क्षेत्रमें "जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखो तिन्ह तैसी॥" ही चरितार्थ हो रहा है।

१. मिश्रबन्धु, हिन्दी नवरत्न, पृ० ८० ।
२. अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत द्वैताद्वैत।
३. मानसके संवाद, (कल्याण, १३, २; श्रीधर सिंह, मानसका कथाशिल्प पृ० १५१।
४. मानसके संवाद और सोपान, ना० प्र० पत्रिका

इन संवादोंके सम्बन्धमें निश्चयात्मक निर्णयके लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न वक्ताओंके कथनका परीक्षण किया जाय और उन्हींके आधारपर उनकी प्रकृतिका प्रकार निर्धारित हो। "मानस" में जितने भी संवाद-निर्देशात्मक कथन है उन्हें सामान्य रूपसे दो श्रेणियोंमें रक्खा जा सकता है, कथात्मक तथा विचारात्मक। कथात्मक कथन किसी घटना या विषयकी ओर संकेत करते हैं। जब शिव उमासे कहते हैं "अपर हेतु सुनु सैल कुमारी। कहउँ विचित्र कथा बिस्तारी ॥१।१४१।१" अथवा "इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥३।२३।८।" तो वे कथा प्रवाहको आगे बढ़ानेका उपक्रम करते हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्यके ये कथन कि—

प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥ —१।१२४।४

तथा

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥—१।१५३।१

आदि अथवा काकभुशुण्डिकी उक्तियाँ—

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्हके मन अति बिस्मय भयऊ॥ (४।२९।५)

तथा

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि वृन्द। चढ़ि विमान आये सब सुर देखन सुखकन्द॥ ७।११ ग

आदि भी घटनापरक होनेसे संवाद-विशेषका परिचय देनेमें असमर्थ हैं।

विचारात्मक कथन वे हैं जिनमें विभिन्न वक्ताओंने किसी विषयके बारेमें अपने विचार व्यक्त किये हैं। इन्हीं कथनोंके विश्लेषण तथा परीक्षणसे हमें ऐसे सूत्रोंके मिलनेकी सम्भावना हो सकती है जो इनके पारस्परिक अन्तरका संकेत कर सकें। अतः इनपर सविस्तार विचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। पहले याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद को लें। इस संवादके निर्देशात्मक कथनोंकी संख्या मिलाकर कुल तेरह हैं जिसमें बारह बालकाण्डमें हैं और एक उत्तरकाण्डमें। इनमें विचारात्मक कथन निम्नलिखित हैं—

१. जाग बलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहिं बिदित रघुपति प्रभुताई॥ (१।४७।२)

२. कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद।
भयउ समय जेंहि हेतु जेहि सुनु जेंहि मिटिहि बिषाद॥ १।४७

३. संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहिं सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥१।१२७।

४. सो मैं तुम्ह सन कहउँ सब सुनु मुनीस मन लाइ।
रामकथा कलिमलि हरनि मंगल करनि सुहाइ॥१।१४१

५. भरद्वाज सुनु जाहिँ जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि व्याल सम दाम॥१।१७५

पहलेमें रामकी प्रभुता संकेत है, दूसरा उमा-शंभु संवादके श्रवणको विषादनाशक बताता है, तीसरा ईश्वरेच्छाकी प्रबलता और पाँचवां विधातकी प्रतिकूलताके परिणामका भयावह चित्र प्रस्तुत करता है। इसमेंसे ईश्वरेच्छाकी प्रबलता तथा विधाताकी वामताके कथन ही ऐसे हैं जिन्हें हम कर्म सिद्धान्तसे जोड़ सकते हैं किन्तु कर्मकाण्डसे तो इनका दूरका नाता भी नहीं सिद्ध हो पाता। केवल दो कथनोंके क्षीण आधारपर किसी सिद्धान्तका विशाल भवन नहीं खड़ा किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त इन्हींके समानान्तर कथन अन्य दो संवादोंमें भी प्राप्त होते हैं जिससे इस संवादकी यह विशिष्टता भी विलुप्त हो जाती है।

शिव-उमा संवाद सर्वाधिक व्यापक हैं। इनके निर्देश प्रायः साठ स्थलोंपर मिलते हैं जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) कथात्मक, जिनकी संख्या इक्सीस है; यथा—

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥ (१।१७७।५)

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा॥ (४।२२।१)

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहि आगे॥ (६।४३।१)

(ख) रामके स्वरूप—सम्बन्धी कथन, जो बारह स्थलोंपर आये हैं।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतर जामी॥ (३।३९।१)

जासु कृपा छूटहिं मन मोहा। ताकहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥ (४।१८।६)

गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंधतर आवइ व्यापक बिस्व निवास॥ (६।७३)

(ग) रामके प्रभाव तथा प्रतापके निर्देशक, जो आठ स्थानोंपर मिलते हैं उदाहरणके लिए—

उमा दारु जोषितकी नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं॥ (४।११।७)

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई॥ (५।३।९)

उमा बिभिषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब गिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ॥ (६।९४)

(घ) भक्ति सम्बन्धी कथन भी प्रायः आठ ही हैं—

जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी॥ (१।२००।२)

उमा राम सुभाउ जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥ (५।३४।३)

निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरजा ते नर मन्द मति जे न भजहिं श्रीराम॥ (६।७१)

(ङ) लोक-व्यवहारके निर्देशन जो तीन स्थलोंपर मिलते हैं—

जिन्हके अस आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥ (१८४।१)

भयदायक खल कै प्रियबानी। जिमि अकालके कुसुम भवानी॥ (३।२४।८)

उमा संत कहँ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥ (५।४१।७)

(च) फुटकल, जिसमें उपदेशात्मक, समाधानात्मक, माया सम्बन्धी तथा ईश्वरेच्छा सम्बन्धी आदि कथन आते हैं—

साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥ (५।४२।२)

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥ (६।११२।६)

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरि माया मोहहिं मुनि ग्यानी॥ (१।१४०।७)

बोले बिहसि महेस तब ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छनहोइ॥ (१।१२४ क)

इस सर्वेक्षणके आधारपर इस संवादको ज्ञानपरक ठहराना प्रमाण-सिद्ध नहीं कहा जा सकता।

काकभुशुण्डि-गरुड़ संवादका विश्लेषण भी कोई उत्साहवर्द्धक परिणाम नहीं प्रस्तुत करता। इस संवादके निर्देशात्मक कथन चौवन स्थलोंपर प्राप्त होते हैं जिनका विषयानुकूल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) कथात्मक निर्देश, जो इक्कीस स्थानोंपर मिलते हैं, जैसे—

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्हके मन अति बिसमय भयऊ॥ (४।२९।५)

बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक शरीर॥ (७।१३ख)

देखि कृपाल बिकल मोहि बिहसे तब रघुबीर।
बिहंसत ही मुख बाहेर आयउ सुनु मतिधीर॥ (७।८२क)

(ख) भक्ति सम्बन्धी कथन जो ग्यारह बार आये हैं—

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी॥ (७।३१।१)

अस बिचारि मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुन्दर सुखद॥ (७।९०ख)

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥ (७।१२२।१३)

(ग) नीति तथा व्यवहार सम्बन्धी कथन, जिनकी संख्या सात है—

काटेहि पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पइ नव नीच॥ (५।५८)

जब जेहि दिसिभ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उगेउ दिनेसा॥ (७।७३।४)

पन्नगारि अस नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित॥ (७।८५क)

(घ) रामके स्वभाव तथा प्रतापके निर्देशन कथन, जो चार स्थानोंपर मिलते हैं—

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ज्ञानी॥ (६।११।३)

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस रामकर समुझि परइ कहु काहि॥ (७।१९ग)

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥ (७।३१।१)

(ङ) फुटकल जिसमें रामको माया, ईश्वरेच्छा, रामकी प्रतिकूलतासे सम्बन्धित तथा आलोचनात्मक कथन आते हैं—

नर मरकट इव सबहिं नचावत। राम खगेस बेद, अस गावत॥ (४।७।२४)

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषण॥ (७।१३।१)

मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनुहरि जाना॥ ३।२।६

इमि कुपंथ पग देख खगेसा। रह न तेज तन बुद्धि लवलेसा॥ ३।२८।१०

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥ ३।१७।५

गोस्वामीजीके निजी संवादका निर्देश, जहाँ उन्होंने अपना नाम रखा है, प्रायः एकावन स्थानोंपर मिलता है। इनका विश्लेषण भी संवादकी विशिष्ट कोटिका निर्धारण करानेमें सहायक

तथा सफल नहीं होता। मोटे तौरपर इनका विषयानुकूल वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) कथात्मक तथा छन्दात्मक : छन्दात्मक वे स्थान हैं जहाँ कविका नाम मात्र पद-पूर्तिका काम करता दिखाई देता है।

(१) संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी। (१।३६।१)
(२) तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली। (१।२३६।१२)
(३) सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल। (२।२२६।१४)
(४) एहि लागि तुलसीदास इन्हकी कथा कछु एक है कही। (५।३।२२)

(ख) रामकथा तथा राम-नामकी महिमा आदिसे सम्बन्धित—

(१) तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसि उजियार। (१।२१)
(२) निज गिरा पावनि करनि कारन राम जसु तुलसी कह्यो। (१।३६१।६)
(३) यह चरित कलिमल हर जथा मति दास तुलसी गायऊ। (५।६०।१०)

(ग) भक्ति सम्बन्धी कथन—

(१) साहिब सीतानाथ सों, सेवक तुलसीदास। (१।२८)
(२) भवभंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद। (१।१२४) (ख)
(३) मतिमन्द तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो। (६।१२१।१८)

(घ) भाग्य तथा लोक-व्यवहार सम्बन्धी—

(१) तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलइ सहाइ। (१।१५६ ख)
(२) तुलसी देखि सुवेष भूलहिं मूढ़ न चतुर नर। (१।१६१ ख)
(३) पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक। (२।३१५।१०)

इस अन्वेषण तथा अनुशीलनसे यही प्रकट होता है कि इन संवादोंके द्वारा भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक सिद्धांतोंकी न तो व्याख्या की गयी है, न विभिन्न दार्शनिक वादोंका प्रतिपादन ही हुआ है। विद्वानोंने अपनी इन व्याख्याओंके द्वारा इन संवादोंमें अपनी व्यक्तिगत विचारधाराका ही प्रक्षेप किया है।

अब आचार्य विश्वनाथ मिश्रके इस कथनपर कि श्रोताओंका सन्देह तो एक ही है, पर वक्ताओंके प्रतिपादनमें सूक्ष्म भेद भी लक्षित होता है। विचार कर लेना प्रसंगानुकूल तो होगी ही, साथ ही समीचीन भी है। वक्ताओंके प्रतिपादनसे विषयमें तो ऊपर विचार किया जा सकता है। यहाँ श्रोताओंके सन्देह पर विचार किया जायेगा। श्रोताओंका सन्देह तो अवश्य एक ही है, किन्तु उसके प्रकार तथा कारणमें पर्याप्त अन्तर है। इसके साथ ही वक्ताओंकी स्थिति तथा व्यक्तित्व भी जो सन्देहके रूपके अनुकूल ही नियोजित है, अपनी विशिष्टता रखते हैं। यह विशिष्टता प्रतिपादन प्रणालीमें अन्तर नहीं प्रस्तुत करती। यह तो वक्ता श्रोताके सम्बन्धके कारण उत्पन्न हो गई है। भरद्वाजका सन्देह वास्तविक नहीं है; वह जिज्ञासाकी भावनासे उत्पन्न हुआ है। सती तथा गरुड़के सन्देहके लिए जिस प्रकारका आधार उपस्थित किया गया है, वैसा प्रयत्न यहाँ नहीं हुआ है। गोस्वामीजीका अभिप्राय भी यह नहीं था कि वे भारद्वाजको एक संशयशील व्यक्तिके रूपमें प्रस्तुत करें! रामकथा सुननेके लिए कोई बहाना चाहिए था अतः भरद्वाजने अपनी इच्छाको ही अपने

संशयात्मक प्रश्नोंके रूपमें याज्ञवल्क्यके सामने रख दिया ! भरद्वाजके प्रश्नको सुनकर याज्ञवल्क्य कहते हैं—

(जागबलिक बोले मुसुकाई)। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ।।
रामभगत तुम्ह मनक्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ।।
चाहहु सुनैं राम रस गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ।।
तात सुनहु सादर मनु लाई। कहऊँ राम कै कथा सुहाई ।।१।४७।२-५।।

यह अंश भरद्वाजके सन्देहका सच्चा स्वरूप हमारे सामने उपस्थित कर देता है। दोनों मुनि हैं; समान रूपसे तपोलीन तथा वीतराग हैं छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं हैं। सत्संगके लिए सन्देहको साधन बना लिया गया। एक बात और भी ध्यान देने योग्य हैं। याज्ञवल्क्य-भरद्वाजका संवाद बालकाण्डके आरम्भमें ही मिलता है अन्य काण्डोंमें इस संवादके निर्देश नहीं प्राप्त होते। यह भी सकारण हैं। सती एवं गरुड़के सन्देह वास्तविक थे, अतः शिव और काकभुशुण्डि उन दोनोंको बार-बार सम्बोधित करते हैं और इस प्रकार राम-कथाकी ओर उनका ध्यान आकर्षित रखने तथा सन्देहका उन्मूलन करनेका प्रयत्न करते हैं। भरद्वाजके लिए बार-बार सम्बोधनोंकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उन्हें सन्देह नहीं था; अतः यह सम्वाद कथारम्भके कुछ समय बाद गुप्त कर दिया गया।

सतीका सन्देह अज्ञान-जन्य था जिसे उन्होंने तर्क द्वारा पुष्ट भी कर लिया था। शिवद्वारा रामका अभिवादन किये जानेपर वे तर्क करती हैं—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सोकि देहधरि होइ नर जाहि न जानत बेद।। (१।५०)
बिष्णु जो सुरहित नर तनुधारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।
खोजइ सोकि अग्यइव नारी। ग्यान धाम श्रीपति असुरारी ।।

उन्होंने इस प्रकार रामके व्यक्तित्वको ही अस्वीकार कर दिया था और जब उन्होंने राम की परीक्षा लेनेका निश्चय किया तो शिवके व्यक्तित्वका भी अपमान किया एवं उनके अनुभव तथा ज्ञानपर अपने अनुभव तथा ज्ञानको प्राथमिकता देनेका दुस्साहस और मूर्खता भी की। सतीका सन्देह जितना प्रत्यक्ष, जितना गम्भीर एवं गुरु जितना उत्कर एवं पुष्ट था, उसकी कोई तुलना ही नहीं। उनके हृदयमें बद्धमूल इस सन्देहको उखाड़ फेंकनेके लिए ही गोस्वामीजीने 'मानस' में इस संवादको अधिक व्यापकता प्रदान की है और शिवके द्वारा उमाको बार-बार सम्बोधित कराया है। रामके स्वरूप सम्बन्धी भ्रमके निवारणार्थ जितने भी संवाद निर्देश मानसमें मिलते हैं, वे सब शिवके द्वारा उमाके प्रति सम्बोधित हैं। रामकथाकी विभिन्न घटनाओंके वर्णनमें भी इस संवादका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है क्योंकि उनको रामकी लीला तथा महिमाका दृढ़ ज्ञान कराना आवश्यक था। उमा पत्नी हैं शिव पति हैं। यहाँ समानतामें भी असमानता हैं। शिव उन्हें आदेश भी दे सकते हैं और उपदेश भी। यहाँ वक्ताकी स्थिति श्रोतासे ऊँची है और व्यक्तित्वकी तो बात ही नहीं करनी। देवाधिदेव हैं, जो कहेगें साधिकार कहेंगे। इन दोनोंकी स्थितियोंका अन्तर गोस्वामीजीने इस संवादके आरम्भमें ही व्यक्त कर दिया है। उमा अन्य बातोंके साथ यह भी पूछती हैं कि—

प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ।।
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुनगाना ।।

तुम्ह पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती॥
राम सो अवध नृपति सुत होइ। की अज अगुन अलख गति सोइ॥ (१।१०८।५-८)

उमाकी अनुनय पूर्ण बातोंको सुनकर शिव पहले तो उनकी प्रशंसा करते हैं किन्तु बादमें कहते हैं—

उमा प्रश्न तव सहज सुहाई। सुखद सन्त सम्मत मोहिं भाई॥
एक बात नहिं मोहिं सुहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

दोहा

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद विमुख जो नहिं झूठ न सांच॥ (१।११४)

अग्य अकोबिद अन्ध अभागी। काइ विषय मुकुर मन लागी॥
लम्पट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ सन्त समानहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असम्मत बानी। जिनके सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन और नयन विहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥
जिनके अगुन न सगुन बिबेका। जलपहिं कलपित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद माना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥

सोरठा

अस निज हृदय बिचारि तज संसय भज रामपद।
सुन गिरिराज कुमारि भ्रम तन रविकर बचन मम॥ (१।११५)

यहाँ शिवने जो एक ही साँसमें भर्त्सना भरे विशेषणोंकी भरमार कर दी, वह अकारण नहीं। रामके विषयमें संशयात्मक प्रश्नको सुनकर शिवको उमाके पूर्व-जन्मकी घटनाएँ स्मरण हो आई और वह यह सोचकर उबल पड़े कि रामको परीक्षा करने तथा अपनी मूर्खताके कारण इतनी यातनाएँ सहनेके पश्चात् भी उमाका सन्देह बना ही हुआ है। ऐसी भाषाका प्रयोग न याज्ञबल्क्य भरद्वाजके लिए कर सकते थे न काकभुशुण्डि गरुड़के लिए।

गरुड़का सन्देह मोह जन्य हैं जिसमें, अहंकारका पुट भी पड़ गया है, यह बुद्धिका क्षणिक स्खलन है। जो जीवका स्वाभाविक धर्म हैं। जीवमें ज्ञानकी एकरसता नहीं होती, अतः राम की लीला उसे भ्रममें डाल दिया करती है। उमाके समान गरुड़ रामके अवतारके विषयमें सन्देह नहीं करते वे रामावतारसे अभिज्ञ हैं किन्तु उनके प्रभावोंसे अपरिचित हो गये हैं क्योंकि राम बिना गरुड़की सहायताके नागपाशसे अपनेको मुक्त नहीं कर सके। रामके इस असहायताको देखकर गरुड़का यह सोचना विशेष अनुचित नहीं लगता कि—

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।
सो अवतार सुनेहुँ जगमाहीं। देखहुँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥

भव बन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम। खर्व निसाचर बाँधेहु नागपास सोइ राम॥ (७।५८)

यद्यपि शिव उमासे कहते हैं कि इन विचारोंके कारण "खेयि खिना मन तर्क बढ़ाई" गरुड़ भी "भग्रऊ मोह बस तुम्हरि हिं नाई" (७।५६।२) किन्तु गरुड़का मोह उमाके मोहकी तुलनामें कहीं अल्प था। गरुड़के प्रति सम्बोधनोंकी मात्रा इसलिए उमाकी अपेक्षा कम है उनके सन्देहके साथ ही उनका अहंकार भी नष्ट करना था। इसलिए उन्हें शिवने काकभुशुण्डिके पास भेज दिया था। नीचातिनीच पक्षीके समक्ष अपना भ्रम निवारण करनेके लिये निवेदन लेकर उपस्थित होना गरुड़के वैयक्तिक अहंकारका सर्वोत्तम उपचार था गरुड़को काकभुशुण्डिके पास भेजनेका कारण बताते हुये शिव उमासे कहते हैं—

तातें उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना॥
कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥ (७।६२।७-६)

"समुझाइ खग-खगहीके भाषा" से एक तो यह ध्वनित हैं कि काकभुशुण्डिकी भक्ति मुक्त वाणीको जातिगत विशिष्टताकी कुमुक भी प्राप्त रहेगी जिससे खगपतिका अहंकार शीघ्र गल जायेगा, दूसरी ध्वनि यह भी है कि काकभुशुण्डिको रामके व्यक्तिके प्रति संशय तथा उसके परिणामका व्यक्ति गत अनुभव है, अतः वह अधिक कुशलता तथा पूर्णतासे गरुड़की मानसिक स्थितिको समझ सकेगा और अधिक सुचारु रूपसे उनके सन्देहका निराकरण करनेमें समर्थ होगा। इस विवेचनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि इन संवादोंके सम्बन्धमें विभिन्न विद्वानोंके समाधान संतोषजनक नहीं सिद्ध हो पा रहें हैं। रुचि विशेष उनमें अपना प्रतिबिम्ब भले ही देख ले, पर तथ्यात्मक विश्लेषणको इस दिशामें कोई उत्साह वर्द्धक उपलब्धि नहीं प्राप्त होती। इन संवादोकी उपस्थितिका कारण जाननेके लिए हमें गोस्वामीजीका हृदय टटोलना पड़ेगा। उनकी रामकथा सम्बन्धी धारणाकी पकड़ करनी होगी। उनका मत था कि "रामकथा जे सुनत अघाहीं—रस विशेष जाना तिन नाहीं।" रामकथा कुछ ऐसे विशेष रससे ओतप्रोत रहती है कि उसे सुन-सुनकर मन ऊबता नहीं, उससे विरत होनेको जी नहीं चाहता। कथासे संतुष्ट हो जाना अपनी अरसिकताका प्रमाण देना है। गोस्वामीजी निरे सन्त नहीं थे, संसारका अनुभव भी रखते थे। वे रुचि-विभिन्नताके कायल थे। नीरसता उत्पन्न तो न होनी चाहिए, पर उसकी सम्भावनाकी ओरसे वे आँखे किस तरह मूँद सकते थे। आदमीका मन ही तो है, ऊब ही गया तो? इस कारण गोस्वामीजीको अपनी रामकथाको कुछ ऐसे तत्वोंसे संयुक्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ जिससे श्रोताको उससे विरस होनेका अवसर ही न मिलें। इन चारों संवादोंके रूपमें उन्होंने पाठकोंकी सतत तल्लीनताका साधन प्रस्तुत कर दिया। पाठक कभी शिवसे कथा सुनता हैं तो कभी काकभुशुण्डिसे, कभी याज्ञवल्क्यकी मंडलीमें जा बैठता हैं तो कभी स्वयं गोस्वामीजीकी सभाका आनन्द लूटता हैं। कथा तो एक ही हैं पर भिन्न-भिन्न लोगोंसे सुननेसे मनवहलाव भी होता हैं और चित लगाव भी। परिवर्तन आकर्षणकी जान होता हैं, और एक रसता नीरसताकी जननी होती हैं। गोस्वामीजीके सामान्य ज्ञानने उन्हें समझा दिया था कि कथा कहना ही सब कुछ नहीं हैं, श्रोताओंकी रुचिको लगाये रखना भी बहुत कुछ हैं। यही प्रतीति इन संवादोंके द्वारा प्रत्यक्षानुभूति में परिणत हो गयी, 'मानस' सबके मनका आराध्य बन गया।

मानसके कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द

पं० रमापति शुक्ल

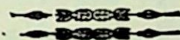
जिस प्रकार मथुराके चारों ओरका प्रदेश ब्रजमंडल कहलाता है उसी प्रकार अयोध्याके चारों ओरका प्रदेश अवधमंडल कहा जा सकता है। उस मंडलकी भाषा एक विशेष प्रकारकी अवधी है। इस मंडलके अन्तर्गत सरयू नदीके किनारे गोंडा बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और फैजाबादके भाग आते हैं। इस क्षेत्रमें केवल विशिष्ट अवधी भाषाका ही प्रयोग नहीं होता वरन् इसमें रामलीला और रामचरितका विशेष महत्त्व है। रामचरित मानसकी जैसी पूजा इस क्षेत्रमें होती है वैसी अन्यत्र नहीं।

गोस्वामीजीने मानसमें कुछ ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है जो इस क्षेत्रमें बहुत प्रचलित थे और आज भी प्रचलित हैं। वे शब्द अन्यत्र भी बोले जाते होंगे परन्तु जिस अर्थमें गोस्वामीजीने उनका प्रयोग किया है लगभग उसी अर्थमें वे आज भी अवधमंडलमें बोले जाते हैं। इसीसे इस अनुमानकी पुष्टि होती है कि गोस्वामीजीने अयोध्यामें रहकर यदि रामचरित मानस संपूर्ण नहीं तो उसका अधिकांश अवश्य लिखा है। जो शब्द यहाँ दिए जा रहे हैं उनका प्रयोग प्रथम दो सोपानों (बाल और अयोध्या काण्डों) में अधिक हुआ है। अतः ये दो सोपान तो अयोध्यामें बैठकर अवश्य ही लिखे गए होंगे। मानसमें वर्णित निवाह पद्धति तथा अन्य रीति-रिवाजोंका अधिक विस्तृत वर्णन रामलला नहछू और जानकी मंगल तथा पार्वती मंगलमें पाया जाता है। अतः ये ग्रन्थ भी वहींके लिखे जान पड़ते हैं। जो भी हो निम्नलिखित शब्द अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं—

कूट (करना)—दिल्लगी उड़ाना (१।दो०१४२ के बाद) करहिं कूट नारदहिं सुनाई।
आरो (अरव)—आहट (१।१६१) घुरघुरात हय आरो पाए।
घवरि—गुच्छा (१।३१६)
चौक पुराना—मंगल कार्यके लिए आटेसे चतुष्कोण बनाना (१।३२६)
पखान—पत्थर (१।३३०)
दधि चिउरा—दही-चूड़ा सरयूपारकी आज भी विशेषता है (१।३३४)
पहुनई—मेहमानी (१।३३५)
परिछन—तिलक करके वर-वधूकी अगवानी करना (१।छंद ३८)
नाऊ-बारी—सेवा टहल करनेवाली दो प्रमुख जातियाँ (१।३४८)
नेग—पुरस्कार जो विविध मांगलिक अवसरोंपर नाऊ-बारीके दिए जाते हैं (१।३५३)
अकनि (आकर्ण्य)—सुनकर (१।३७१)
ओहार—परिच्छेद, डोलीको ढकनेके लिए कामदार रंगीन वस्त्र। सरयूपारमें आज भी इसका व्यापक रिवाज है (१।३७५)
करवरें—कठिनाइयाँ (१।३८५)

गवँ—अवसर, मोका (२।२३)
जठेरी—बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ (२।४८)
निबुकि—बच कर निकल भागना ।
तलफत—तड़पते हूए ।
झूठ-फुर—झूठ-सच ।
साँसति—दुर्दशा ।
महतारी—माता ।
कोहाब—नाराज होना ।
अछत—रहते हुए ।
कोहबर—मातृ-पूजा तथा वर-वधूकी द्युत-क्रीड़ाका स्थान ।
जनम भरब—जीवन-यापन करना ।
उपरोहित—पुरोहित ।
अँचै—भोजनके बाद हाथ मुँह धोना कुल्ला करना ।
रौरे—आप
सरो—दंड करना ।

यह सूची अपनेमें पूर्ण नहीं है । यह तो एक नमूना मात्र है । इस प्रकारके शब्दोंकी सूची पर्याप्त लेनी होगी । यहाँ विद्वानोंके विचारके लिए केवल कुछ शब्द दिए जा रहे हैं ।



मानस-सूक्तियाँ

श्री धर्मशील चतुर्वेदी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, बी० एड्०

(दोहे, चौपाई, छन्द या सोरठेकी क्रम संख्या)

अ अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ।। १८२ ।।
अंधहि लोचन लाभु सुहावा ।। ३५४ ।।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु ।। २३६ ।।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।। १०७ ।।
अचल होहु अहिबात तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ।। ६९ ।।
अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं । चढ़ि पिपीलिकौ परम लघु बिनु स्रम पारहिं जाहिं ।१३
अति संघरषन जौं कर कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ।। १०६ ।।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड़ ।। ३८ ।।
अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ।।२३१।।
अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन । ते भाजन सुख सुजसुके बसहिं अमरपति ऐन ।।१६९
अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ।। ९ ।।
अमित दानि भर्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेव न ते ही ।। ६ ।।
अरध तजहिं बुध सरबसु जाता ।। २५६ ।।
अरिबस दैउ जिआवत जाहि । मरनु नीक तेहि जीव न चाही ।। २१ ।।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही ।। १ ।।
अहि अघ अवगुन नहिं मन गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ।। १८४ ।।
आ आरत कहहिं बिचार न काऊ । सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ।। २५८ ।।
आरत काह न करइ कुकरम् ।। २०४ ।।
ई इंधनु पात किरात मिताई ।। २५१ ।।
उ उचित कि अनुचित किए बिचारू । धरम जाइ सिर पातक भारू ।। १७७ ।।
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ।। २६९ ।।
उदासीन नित रहिअ गोसाइँ । खल परिहरिअ स्वानकी नाइँ ।। १०२ ।।
उमा जे राम चरत रत बिगत राम मद क्रोध ।
निज प्रभुमत देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।। १०९ ।।
उमा जोग जप ध्यान तप नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहि तसि जसि निष्केवल प्रेम ।। ११४ ।।

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहिं नचावत रामु गोसाईं ।। ११ ।।
उमा राम राम हित जग माहीं । गुरु पित मातु बंधु प्रभु नाहीं ।। १२ ।।
उमा संत कह कहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ।। ४१ ।।

ऊ ऊंच निवासु नीचि करतूती । देख न सकहिं पराइ बिभूती ।। १२ ।।

ए एक पितुके विपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।। ८५ ।।

ओ औरु करै अपराध कोउ और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवन्त गतिको जग जानइ जोगु ।। ७५ ।।

क कठिन राम गति जान निधाता ।। २८२ ।।
कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ।। २८५ ।।
कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही ।। ४२ ।।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि ही सिंघु बिन साइ ।। २२३ ।।
कबहुँ कि दुख सनका हित ताकें । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाकें ।।१०७ ।।
कवि कोबिद गावहिं अस नीती । खलसन कलह न भल नहिं प्रीती ।। १०२ ।।
कबि हि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहरि ताल गतिहिं नटु नाचा ।।२४१ ।।
कमठ पीठ जामहिं बरु बारा । बन्ध्या सुत बरु काहुहि मारा ।।
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रति कूला ।। ११७ ।।
करइ जो करमु पाव फल सोई ।। ७७ ।।
करइ स्वामि हित सेवक सोई ।। १८६ ।।
करमनाम जलु सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ।। १९४ ।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।। २१९ ।।
काम बचन मनु छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लागि सुखु सपनेहुँ नहिं किएँ कोटि उपचार ।। १०४ ।।
करम बिबस दुखु सुखु छति लाहू ।। २८२ ।।
करम प्रधान सत्य कह लोग ।। ९१ ।।
कवनउ सिद्धि कि नितु बित्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ।। ८८ ।।
कसें कनकु कनि पारखि पाएँ । पुरुष परखि अहिं समयँ सुभाएँ ।। २८३ ।।
कह मुनीस हिमवंत सुतु जो बिधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेट निहार ।। ६६ ।।
कहहिं संत मुनि वेद पुराना । नहिं कहु दुर्लभ ज्ञान समाना ।। ११० ।।
कहिअ तात सो परम बिरागी । तन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ।। १७ ।।
कहु खगेस अस कौन अभागी । खरी सेव सुरधेतुहिं त्यागी ।। १०५ ।।
काक होहिं पिक बकउ मराला ।। ३ ।।
काटेंहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच । बिनय न मान खगेस सुनु डाटेंहिं पइ नव नीच ।५७।
कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।। ५१ ।।
का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुकें पुनिका पछिताने ।। २६५ ।।
काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।। ४४ ।।
काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरकके पंथ ।। ३७ ।।
कारन ते कारज कठिन होइ दोस नहिं मोर । कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ।। १७३ ।।
का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह दिखावा ।। ४८ ।।
कालकूट मुख पयमुख नाहीं ।। २८१ ।।
काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।। ३७ ।।
कौल कालबस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
सदा रोग बस संतत क्रोधी । बिष्नु बिमुख स्तुति संत बिरोधी ।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ।। ३१ ।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सब भ्राता ।। ९२ ।।
काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि पर त्रिय गामी ।।१०७।।
कोट मनोरथ दास सरीरा । जेहि न लाग घुनको असि धीरा ।। ६९ ।।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगति पछिताना ।। ११ ।।
कीरति भनिति भूति भल सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।। १४ ।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ।।
देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा । स्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।। ७ ।।
कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ।।१३३।।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ।। २२९ ।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ।। १६ ।।
कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरइ ।। ५ ।।
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहें न नीच मतें चतुराई ।। २४ ।।
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ।। २१ ।।
क्रोधहि सम कामिहि हरि कथा । ऊसर बीज बएँ फल जथा ।। ५८ ।।
क्रोधु पाप कर मूल ।। २७१ ।।

ख खल बिनु स्वास्थ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ।। ११६ ।।

ग गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलै नीच जल संगा ।। ७ ।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।
गरुड सुमेरु रेनु सम ताही । रामकृपा कर चितवा जाही ।। ५ ।।
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।। ५ ।।
गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ।। ६४ ।।
गुन सागर नागर नर जोऊ । अलय लोभ भल कहइ न कोऊ ।। ३८ ।।
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ।। ७४ ।।
गुर पितु मातु स्वामि सिख पाले । चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ।। ३१५ ।।
गुरु पितु मातु स्वामी हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भल जानी ।। १७७ ।।

जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब विषद विलास बिरागा ।। ६३ ।।
जासु भवनु सुरतरु तर होई । सह कि दरिद्र जनित दुखु सोई ।। १०८ ।।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ।। ७१ ।।
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।। ६५ ।।
जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी २४५ ।।
जीव करमबस सुख दुख भागी ।। १२ ।।
जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा ।। ११ ।।
जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक इव सबहि डेराहिं ।। १२५ ।।
जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल विभव बस करहीं ।। ३ ।।
जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी ।। २५६ ।।
जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ।। ७ ।।
जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ।। १०३ ।।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ।। ७८ ।।
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ।। २६३ ।।
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ।। ६३ ।।
जेहि पितु देइ राज सो लहई ।। २०७ ।।
जेहि पितु देइ सो पावहि टीका ।। १७५ ।।
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ।। १२ ।।
जो अति आतप ब्याकुल होई । तरुछाया सुख जानइ सोई ।। ६७ ।।
जो अपराध भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ।। २१८ ।।
जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजहु चउथि के चन्द कि नाईं ।। ३८ ।।
जोगु कुजोगु ज्ञानु अज्ञानू । जहँ नहिं राम प्रेम परधानू ।। २९१ ।।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।। ५ ।।
जो न तरइ भव सागर नर समाज अस पाइ । सो कृत निंदक मंद मति आतमहन गति जाइ ।।४५।।
जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं । सो स्रम बादि बाल कबि करहीं ।। १४ ।।
जोबन ज्वर किहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जस न नसावा ।। ६६ ।।
जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।। २६२ ।।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ।। २८१ ।।
जौं सब के रह ज्ञान एक रस । ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस ।। ७६ ।।
ज्ञानी तापस सूर कबि कोविद गुन आगार । केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहि संसार ।। ७० ।।

ट टेढ़ जानि संका सब काहू । बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू ।। २८५ ।।

त तजि माया सेइअ परलोका । मिटहिं सकल भव संभव सोका ।। २३ ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।। ४१ ।।
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्य संध कहुँ तृन सम बरनी ।। ३५ ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।। ७३ ।।

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहिं विरोधे नहीं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कवि मानस गुनी॥ २८॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिस्राम॥
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥ ४५॥
तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥ २१३॥
तसि मति फिरी अहइ जस भावी॥ १७॥
तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ॥
मुनि बिज्ञान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥ ३९॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ ४॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जिनके हाथा॥ ६॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई॥ ४२॥
ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिस्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रत काम॥ ७५॥
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपु न आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥ १५१॥
तुलसी देखि सुबेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकहिं पेखु, बचन सुधा सम असन अहि॥ १९॥
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह री॥ ११॥
तृषा जाइ बरु मृग जल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥ ११७॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई॥ ३५॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तड़ागा॥ २६५॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदयँ क्रोध नहिं दाहा॥ ६२॥
तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥ २६०॥

द दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥ ३५॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा॥ ६२॥
दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥ २८५॥
दुइ कि होहिं एक समय भुवाला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥ ३५॥
दुखित दोष गुन गनहि न साधू॥ १७७॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥ १७७॥
दुष्टौ धेनु दुही सुनु भाई। साधु रासभी दुही न जाई॥ ३६॥
दुहू हाथ मुद मोदक मोरें॥ १९०॥
देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥ २९६॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥ ९२॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥ २३॥

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥ २६३ ॥
द्विज देवता घरहिंके बाढ़े ॥ २८० ॥

ध धन्य घरी सोइ जब सत संगा ॥ १२२ ॥
धन्य जनक जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ॥ ४६ ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥ ६५ ॥
धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना । ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥ १८ ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥ ६ ॥

न नर मरकट इव सबहिं नचावत । रामु खगेस बेद अस गावत ॥ ७ ॥
नयन दोष जा कहँ जब होई । पीत बरन ससि कहुँ कह सोई ॥ ७१ ॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ॥ ४२ ॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो ॥ ४२ ॥
नर तनु सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ॥ ११६ ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥ ३६ ॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥ २६ ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥ २८ ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥ ६० ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥ ११६ ॥
नहि बिषु बेलि अमिअ फल फरहीं ॥ १८९ ॥
नाथ बयरु कीजै ताही सों । बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ॥ ६ ॥
नाथ विषय सम मद कछु नाहीं । मुनि मन मोह करइ छन माहीं ॥ २० ॥
नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
लोभ पाँस जोहि गर न बँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥ २१ ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह के असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ॥ ७ ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि धीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥ ८८ ॥
निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥ १९ ॥
निरगुन तें यहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार । कहौं नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ॥२२॥
नीति विरोध न मारिअ दूता ॥ २४ ॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोहबस आपुहि लेखा ॥ ७१ ॥

प पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥ ७८ ॥
पर द्रोही की होहिं निसंका । कामी पुनि कि रहहिं अकलंका ॥ १०७ ॥
परद्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद । ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥ ४० ॥
परम धरम स्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥ ११६ ॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥ ११६ ॥
परहित बस जिन्हके मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥ ३३ ॥
परहित लागि तजै जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥ ८४ ॥

परहित सरिस धर्म नहिँ भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।। ३९ ।।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं ।। १०२ ।।
परिजनु प्रजउ चहिअ जस राजा ।। २५० ।।
पारस परस कुधातु सोहाई ।। ३ ।।
पावहुगे फल आपन कीन्हा ।। १३७ ।।
पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ।। १०७ ।।
पितु आयसु सब धरम क टीका ।। ५५ ।।
पिय वियोग सम दुखु जग नाहीं ।। ६४ ।।
पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुत होई ।। ७५ ।।
पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ।। २९८ ।।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई । कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई ।। ९७ ।।
प्रभु अपने नोचहुं आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ।। २८५ ।।
प्रभु प्रसाद कछु दुरलभ नाहीं ।। १०९ ।।
प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी ।। ६० ।।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ।
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।। ९ ।।
प्रीति कि रीति न जाति बखानो ।। ३१३ ।।
प्रीति विरोध समान सन करिअ नीति अस आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ।। २३ ।।
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ।। ४७ ।।

फ फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली ।। २६१ ।।

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद । मूरख हृदयँ न चेत जौं गुरु मिलहिं विरंचि सम ।।२।।

ब बंदौ बिधि पद रेनु भवसागर जेहिं कीन्ह जहँ ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी ।। २ ।।
बकिहि सराइह मानि मराली ।। २० ।।
बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।। ४१ ।।
बड़े सनेह लघुन पर करहीं । गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं ।। १६७ ।।
बधूं लरिकिनीं पर घर आईं । राखेहु नयन पलककी नाइँ ।। ३५९ ।।
बररैं बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहिं न सन्त बिदूषहिं काऊ ।। २८३ ।।
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ।। ४६ ।।
बना सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।। १६ ।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी । सब भूषन भूषित बर नारी ।। २३ ।।
बहुरि बंदि खल गन सतिभायें । जे बिनु काज दाहिनेहु बायें ।। ४ ।।
बांझ कि जान प्रसव कै पीरा ।। ९७ ।।
बहे जात कइ भइसि अधारा ।। २३ ।।
बादि बसन बिनु भूषन भारू । बादि विरति बिनु ब्रह्म बिचारू ।। १७८ ।।

बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।। ११९ ।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परसपर मिथ्याबादी ।। ७१ ।।
बाल दोष गुन गनहिं न साधू ।। २७९ ।।
बाल मराल कि मंदर लेहीं ।। २६० ।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेई । मिलत एक दुख दारुन देई ।। ५ ।।
बिधि करतब उलटे सब अहहीं ।। ११९ ।।
बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ।। २८२ ।।
बिधि गति बाम सदा सब काहू ।। ५५ ।।
बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ।। १७१ ।।
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहहि हरि भगति बिनु ।। ५ ।।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ।। ८८ ।।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै बिधि नाना ।। ११८ ।।
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ।। ८८ ।।
बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहु जीव न लह बिस्राम ।। ८८ ।।
बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ।। ८८ ।।
बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।। ६२ ।।
बिनु सतसंग बिबेक न होई ।। ३ ।।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता ।। ७ ।।
बिमुख राम त्राता नहिं कोऽपी ।। २३ ।।
बिषई जीव पाइ प्रभुताई । मूढ़ मोहबस होहिं जनाई ।। २२८ ।।
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी ।। २१ ।।
बुध नहिं करहिं अधम कर संगा ।। १०२ ।।
बेनुमूल सुत भयउ घमोई ।। १० ।।
बैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु बिहाइ जेहि मानइ भोगू ।। १७३ ।।
बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ।। २६४ ।।
भ भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ।। ५५ ।।
भएँ बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ ।। १८२ ।।
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ।। १८ ।।
भगति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।। ४३ ।।
भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ।। ८२ ।।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।। ३७ ।।
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकालके कुसुम भवानी ।। २६ ।।

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम । धूरि मेरु सम जनक जम ताहि काल सम दाम ।१६६।

भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥ ७६ ॥

भलो भलाई पै लहै लहै निचाइहि नीचु । सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु ।५।

भव कि परहिं परमातमा बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक ॥ १०७ ॥

भानु पीठ सेइअ उर आगी । स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी ॥ २३ ॥

भावी बस न ज्ञानु उर आवा ॥ ६२ ॥

भूमि परा कर गहत अकासा ॥ ५७ ॥

भूर्ज तरू सम संत कृपाला । पर हित नित सह बिपति बिसाला ॥ ११६ ॥

म मंगन लहहिं न जिनकै नाहीं । ते नरवर थोरे जग माहीं ॥ २३५ ॥

मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥ ६८ ॥

मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥ १० ॥

मन मोदकन्हि कि भूख बुताई । मनि मानिक मुकुता छबि जैसी ।

अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥ २५० ॥

नृप किरीट तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥

तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ॥ ११ ॥

मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥ १६२ ॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ ।

लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥ ६९ ॥

मातु पिता प्रभु गुर कै बानी बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥ ७७ ॥

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥ ६३ ॥

मायापति सेवक सन माया । करिअ त उलट परइ सुरराया ॥ २१८ ॥

मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥ ६१ ॥

मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिकहिं देखि पराहीं ॥ १२६ ॥

मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥ २८४ ॥

मेटि जाइ नहिं राम रजाई । कठिन करम गति कछु न बसाई ॥ ९९ ॥

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥ ६८ ॥

मोह न नारि नारि कै रूपा । पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥ १११ ॥

मोह निसा सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥ ९३ ॥

मोहमूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ॥ २२ ॥

य यह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन बसन चोराई ॥ २५१ ॥

यहि तन कर फल बिषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥ ४२ ॥

र रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई ॥ २८ ॥

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ ॥ २३५ ॥

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि ।

जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि ॥ ११२ ॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥ २२ ॥

रहत न भारत कें चित चेतू ॥ २६६ ॥

राकापति षोडस उअहिं तारागत समुदाइ । सकल गिरिन्ह दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ ॥७८॥

राखि को सकइ राम कर द्रोही ॥ २ ॥

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहिं समर्पे बिनु सत कर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ । स्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ ॥ २३ ॥

राजु कि रहइ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरि चरित बखानें ॥ १०७ ॥

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकालु । जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु ॥२६॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ॥ २३ ॥

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥२०॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिनु पाई ॥ २३ ॥

राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥ २५६ ॥

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥ ८८ ॥

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं ॥ १९४ ॥

राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभा बड़ आदर तासू ॥ २७७ ॥

रामहि केवल प्रेमु पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥ १३७ ॥

रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥ १६१ ॥

रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ॥ ७ ॥

रिस तनु जरै होइ बल हानी ॥ २८२ ॥

ल लातहुँ मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥ २२१ ॥

लाभु कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना ॥ १०७ ॥

लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥ २५२ ॥

लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥ २९५ ॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कै केवल नारि । क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥३९॥

स संग तें जती कुमंत्र ते राजा । मान तें ज्ञान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति असि सुनी ॥ २३ ॥

संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगन्ध बसाई ॥ ३५ ॥

संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥ ११६ ॥

संत कहहिं अस नीति दसानन । चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥ ७ ॥

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥ १२० ॥

संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ । कहहिं संत कबि कोबिद स्रुति पुरान सदग्रन्थ ॥३४॥

संत सहहिं दुख पर हित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥ ११६ ॥

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ १२० ॥

संभावित कहुं अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥ ९५ ॥

कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥१३॥
सिरिस सुमन कत बेधिअ हीरा ॥ २६२ ॥
सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ बचन पतु राखा ॥ ३० ॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ॥ १२६ ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं ॥ ८८ ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥ १५० ॥
सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥ ६१ ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥ ६९ ॥
सुधा-समुद्र समीप बिहाई । मृगजलु निरखि मरहु कत धाई ॥ २५० ॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होंहि विषय अनुरागी ॥ ३५ ॥
सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥२७१॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥ ४१ ॥
सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किएँ । उपज क्रोध ज्ञानिनके हिएँ ॥ १०६ ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥ ७७ ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥ १२ ॥
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु । बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु ॥२६८॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी ॥ ७ ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दलनू ॥ ९ ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी । ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ॥
लोभी जस चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥ २० ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें । रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ॥ ३ ॥
सेवा धरमु कठिन जगु जाना ॥ २९३ ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥ २९८ ॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत । मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥३॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥ २३ ॥
सोइ जानइ जेहि देउ जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥ २६ ॥
सोचनीअ सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरिजन होई ॥ १७३ ॥
सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥ १६७ ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥ १७२ ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी ॥ १७३ ॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥ १७२ ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ॥ १७२ ॥
सोचिअ बयसु कृपन धनमानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥ १७२ ॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना । तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥ १७२ ॥

सोचिश्र सूद्रु बिप्र अवमानी । मुखरु मानप्रिय ज्ञान गुमानी ॥
सो न टरै जो रचै बिधाता ॥ ६७ ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नर अनकूला ॥ ४१ ॥
सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा ॥ २४६ ॥
सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥ २६१ ॥
सोह न राम पेम बिनु ज्ञानू । करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥ २७७ ॥
स्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥ ८८ ॥
स्रोमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि । मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ।७०।
स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू । बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥ २९३ ॥
स्वारथ मीत सकल जग माहिं । सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥ ४५ ॥

ह हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥ ६० ॥
हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ॥ २५३ ॥
हरि इच्छा बलवान ॥ १२२ ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना ॥ ५६ ॥
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥ ११५ ॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना । होइ पाप गोघात समाना ॥ ३२ ॥
हानि कि जग एहि सम कहु भाई । भजिअ न रामहि नर तनु पाई ॥ १०७ ॥
हानि लाभ जीवनु मरन जसु अपजसु बिधि हाथ ॥ १६६ ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ज्ञान विधाना ॥ २६४ ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा ॥ ५२ ॥
होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए । ओड़िअहि हाथ असनिहु कै घाए ॥



तुलसीके गुरु और तापस-प्रसंग

डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, अलीगढ़ विश्वविद्यालय

महाकवि तुलसीदासजीने अपनी समस्त रचनाओंमें दो-चार स्थलोंको अपवाद स्वरूप छोड़कर आत्म चर्चा कहीं भी नहीं की है फिर अपने जागतिक सम्बन्धियों, नातें-रिश्तेदारोंकी तो बात ही दूर है। महाकविने दो व्यक्तियों माता और गुरुको छोड़कर अन्य किसीका भी उल्लेख नहीं किया है। पिता, पत्नी, पुत्र, मित्र अथवा किसी भी अन्य व्यक्तिकी चर्चा उनके द्वारा नहीं हुई। हां, अकबरी दरबारके एक रत्न टोडरमलकी मृत्युपर तुलसीको बड़ी बलवती शोकानुभूति हुई थी। सांसारिक समस्त सम्बन्धोंको तिलांजलि देनेवाले महाकविको शोकका दारुण दौरा पड़ा और बलात् उसकी लेखनीसे निकल पड़ा—

रामधाम टोडर गए, तुलसी भये असोच। जियबो मीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच ॥

मोह ममताके अंतिम-बन्धन-पुनीत मित्रके टोडरके विछोहसे तुलसी "असोच" हो गए बात ऐसी नहीं है, तुलसीका मन्तव्य यही है कि पूर्ण वीतराग स्थितिमें जो अपूर्णता थी, वह आज पूरी हुई। मनके रागका अन्तिम तन्तु भी आज समाप्त हुआ, अब निश्चिन्त हुए। टोडरके प्रति तुलसीकी यह श्रद्धा कितनी मार्मिक हो जाती है जब "जियबो मीत पुनीत बिनु" पर ध्यान जाता है। गृह त्यागी, पूर्ण विरक्त वीतरागी महात्माओंको भी "पुनीत मीत" की आवश्यकता होती है। सुना जाता है निस्पृह तुलसी अपने इन्हीं पुनीत मीतके माध्यमसे अनेक दुखियोंके लिए राजकीय सहायता प्राप्त करते थे। टोडरके अतिरिक्त तुलसीने यदि किसीको भावांजलि दी है तो अपनी जननी हुलसीको। बाबा बेनीमाधवके मूल गुसाईं चरित एवं अन्य प्रामाणिक सूत्रोंके आधारपर तुलसीका माताका नाम "हुलसी" मिलता है। इस हुलसी मांकी चर्चा रामचरितमानसमें तुलसीने अपने संदर्भमें स्पष्ट की है। मानसका अन्तस्साक्ष्य अत्यन्त विचारणीय है।

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥

"यह राम कथा भगवान् रामको पवित्र तुलसीके समान अत्यन्त प्रिय हैं और मुझ तुलसीदासके कल्याणके लिए हुलसी माताके समान है।"

प्रस्तुत अर्द्धालीमें कई बातें विचारणीय हैं—रामको पवित्र तुलसी इतनी प्रिय हैं कि वे उसे हृदयपर धारण किये रहते हैं। तुलसी लिखते हैं—

"अजहुं तुलसिका हरि प्रिया (मानस अरण्य काण्ड-सोरठा)।

गीतावलीमें लिखते हैं—

सुन्दर पटपीत बिसद भ्राजत बनमाल उरसि तुलसीका प्रसून चरित बिबिध बिधि बनाई ॥ गी० ७।३

भगवान् राम तुलसी मालाको हृदयपर धारण किये रहते हैं, तुलसीदास अपने हितके लिए रामकथा अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं। रामकथा उनका वैसा ही कल्याण करती है जैसा माता हुलसी। माता हुलसीने तुलसीका कल्याण न केवल नर देह देकर ही किया अपितु राम भक्त और रामकथामें आनन्द लेनेवाला बनाकर भी। तुलसीके इस संकेतात्मक कथनसे यह स्पष्ट ध्वनित है कि उनके अभुक्त मूलमें जन्म लेनेके कारण भले ही पिताको उल्लास न हुआ हो, मां हुलसीको अवश्य आनन्द हुआ था। और अपने पुत्र तुलसीको धायको सौंपकर भी वह यदा कदा बालक तुलसीसे भेंटकर उन्हें गोदमें लेकर दुलारती और प्यार करती रही होगी। इस बातका संकेत उनके समकालीन कवि, लेखक, मन्त्री और तुलसीके परम प्रशंसक अब्दुर्रहीम खानखानाके निम्न दोहेसे और भी पुष्ट हो जाती है—

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय। गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

खानखानाने अपने समसामयिक सूत्रों, चर्चाओं और किंवदन्तियोंके आधारपर तुलसीकी माताका नाम, उसका तुलसीके प्रति प्रेम और दूरस्थिता रहती हुई उसके संरक्षण आदिकी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली होगी। तभी वे ऐसा कह गए। फिर अभुक्त मूलके नागतिय "जैसी स्वर्ग, मर्त्य, पातालकी माताओंकी दिव्य पुत्र प्राप्तिका दिव्यवासनाकी चर्चा न करते। निश्चय तुलसी अपने माताके अत्यन्त प्यारे दुलारे पुत्र रहे होंगे, और माताके दिव्य प्रेम और मातृदत्त भक्तिके अव्यक्त संस्कारोंने ही उन्हें युग-युगका चिरंजीवी कालजयी पुत्र बना दिया था। माताके इस ऋण भारको ही तुलसीने रामकथा के संदर्भमें ताबीजी अर्द्धालीमें स्वीकार किया है और अपने अचेतन मनमें पड़ी पिताकी कठोरताने उन्हें पितृ-स्मरणसे वंचित रखा। परिणामतः उन्होंने पिताका कहीं संकेत तक नहीं दिया। अन्यथा रामकथाके अमर शिल्पीने दशरथ-मरणके प्रसंगमें रामकी पितृ भक्तिका जैसा चित्र खींचा हैं उस संदर्भमें यदि विचार किया जाय तो तुलसी अपने पिताको भी कहीं न कहीं (चित्रकूटपर न सही अयोध्यामें ही सही) पिण्डदान देकर वाङ्मय श्राद्ध अवश्य कर लेते। परन्तु तुलसीने पिता कहीं भी गलदश्रु भावसे तो दूर, साधारण भावसे भी स्मरण नहीं किया। माता हुलसीके अगाध प्रेमका परिचय बाबा बेनीमाधवदास कृत मूल गुसाईं चरितकी इन पंक्तियोंसे भली भाँति झलक जाती है—

अबहि सिसु लै गवनहु हरि पुर।
नहिं तो ध्रुव जानहु मोरे मुये। सिसु फेंकि पवारहिंगे भकुये॥
सखि जानि न पावै कोऊ बतियां। चलि जाय हुमग रतियां रतियां॥
तेहि गोद दियौ सिसु ढारस दै। निज भूषन दै दियो ताहि पठै॥
चुपचाप चली सो गई सिसु लै। हुलसी उर सिसुन बियोग फबै॥
गोहराइ रमेस महेस बिधी। बिनती करि राखबि मोर निधी॥[1]

प्रस्तुत पंक्तियोंमें माताका अगाध वात्सल्य भाव, पुत्रके रक्षणकी उद्दाम लालसा और कुटुम्ब वालोंकी उपेक्षाके प्रति गहरा आक्रोश सभी कुछ झलक रहा है। "भकुए" में संभवतः पति आत्माराम या अम्बादत्त[2] भी समाहित होगें। राम भक्त तुलसीने इसी कारण अपने माता-पिता गुरु-सब कुछ

१. मूल गोसाईं चरित—बाबा बे० मा० दा० रचित।
२. सन्त उन्मनी टीकाकारने अपने बृहद् रामायण माहात्म्यमें तुलसीकी मांका नाम हुलसी और पिताका नाम अम्बादत्त लिखा है। (लेखक)

भगवान् शंकरको ही स्वीकार किया है। वही उनके एकमात्र हितैषी हैं। वही तुलसी जैसे दीनके लिए अवढरदानी बन्धु हैं।

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउं दीन बन्धु दिनदानी ॥

ये शंकर कोई पार्थिव-मानव नहीं, ये वहीं हैं जो तुलसीके इष्टदेव सीतापति भगवान रामके सेवक हैं, स्वामी हैं और सखा भी हैं। अतः वे तुलसीके सब उपाधियोंसे रहित हितैषी हैं।

सेवक स्वामि सखा सियपी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसीके ॥

अतः लौकिक गुरु, माता पिता विहीन तुलसी मां हुलसीकी कृपासे शैशवमें मृत्यु-मुखसे बच गए और अपनी दासीको, अपने पुत्र तुलसीके लालन-पालनके लिए निज आभूषण देकर रातों रात बिदा कर देना और ब्रह्मा, विष्णु, महादेवसे मन ही मन अपनी जीवन निधिके रक्षणकी प्रार्थना करना क्या पुत्र प्रेमकी चरम सीमा नहीं? तुलसीको माताके इस अनुपम उपकार एवं ऋणभारका क्या बोध नहीं रहा होगा? अवश्य होगा। इसीलिए तुलसीने माता हुलसीको रामकथा जैसी पावन बताकर उसे राम प्रेममयी दिव्य माता होनेका संकेत दिया है। तुलसी अपनी माताका यह उपकार भूल नहीं सकते थे? हुलसी माताके संदर्भमें ही तुलसीदासने अपना पूरा नाम "तुलसीदास" दिया है। सम्भव है उनका यह नामकरण उनकी माताने ही किया हो। कविको अपना यह नाम अति प्रिय था। विनयपत्रिकामें उन्होंने एक ही पदमें नामके सन्दर्भमें चरम दैन्य और गौरव दोनोंके दर्शन कराये हैं। शास्त्रकी आज्ञा—"आत्मनाम गुरोर्नाम[1]" के अनुसार आत्म नाम लेना नहीं चाहिए। फिर बड़ोंके सामने तो और भी नहीं, इसी कारण तुलसी सीता मातासे अपने नामको सीधे-सीधे प्रस्तुत न करवाकर—"प्रभु-दासी-दास" कहलाते हैं।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ।
बूझिहैं सो है कौन कहिबी नाम दसा जनाइ। सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनिजाइ।
जानकी जगजननि जनकी कियै बचन सहाइ। तरै तुलसीदास भव, तव नाथ गुन गन गाइ ॥

प्रस्तुत पंक्तियोंमें भगवान् रामके आगे 'प्रभुदासीदास कहाइ' में शास्त्र मर्यादा रक्षणके साथ चरम दैन्य और प्रभुको दर्याद्र करनेकी भली और शालीन पद्धति अपनाई गई है। दासीपर ही पर्याप्त कृपा वर्षण होता है तो उसके भी दास पर कितनी असीम कृपा अपेक्षित होगी यह सहज अनुमेय है। तदनन्तर माँ जानकी[2] के सामने वे अपना पूरा नाम रख देते हैं और उनके मनकी अपनी तरफ करनेके लिए तव नाथ गुनगन गाइके रूपमें उनके आराध्यकी वाङ्मयी पूजाका संकेत दे देते हैं। काम बननेमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। यह वचन सहायताकी गई थी और तुलसीको इसका पूरा आभास था—विनयपत्रिकाके अन्तिम पदमें स्वयं भगवान् रामने स्वीकार किया है—

बिहंसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैंहू लही है[3] आत्म चर्चाके सन्दर्भमें तुलसीने अपना नाम तुलसीदास जिस अभूतपूर्व शैलीमें प्रस्तुत किया है वह भारतीय भक्ति वाङ्मयकी परम्परामें नितान्त अनूठी है।

---

१. आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयात्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः ॥

२. यहां स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि तुलसीदासको जब मां जानकीसे कुछ सीधा कथन करनेकी आवश्यकता होती है तो जानकी और जगजननि दोनों पद साथ रहते हैं। (लेखक)

३. विनयपत्रिका—२७९।

आत्मनामके बाद तुलसीने गुरोर्नामकी चर्चामें भी शास्त्र मर्यादाका उल्लंघन नहीं किया है। उन्होंने अपने गुरुका नाम किसी व्याजसे भी नहीं लिया है। बालकाण्डके मंगलाचरणके दोहे—

वन्दों गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हर। महामोह तम पुन्ज जासु बचन रविकर निकर॥

में हरि पाठ करके तुलसी भक्तोंने किन्हीं अनन्तानन्द[1] के शिष्य नरहर्यानंदकी कल्पना कर ली। पहले तो इसका मूल कारण मूल गुसाइँ चरित ही है। मूल गुसाइँ चरितके कारण बादमें सभी छपी प्रतियोंमें नर रूप हरि आ गया। किन्तु साकेतवासी प्रसिद्ध राम भक्त श्री रूपकलाजी और उनके गुरु प्रसिद्ध रामायणी श्री रामदासजी महाराजने हर पाठ ही स्वीकार किया है।[2]

फिर जहाँ एक ओर मूल गोसाइँ चरित्र किन्हीं नरहरिजीको गुरु बताता है, वहाँ दूसरी ओर उसमें लिखा है —

सिव भाषेउ भाषा महँ काव्य रचौ। सुरबानि के पीछे न तात पचौ॥
सबकर हित होइ सोइ करिए। अरु पूरब प्रथा मत आचरिए॥
तुम जाइ अवधपुर बास करो। तहँइ निज काव्य प्रकास करौ॥
मम पुन्य प्रसाद सों काव्यकला। होइ है सम साम रिचा सफला॥

सो० कहि अस संभुभवानि अर्न्तधान भये तुरत। आपुन भाग्य बखानि चले गुसाइँ अवधपुर॥

उपर्युक्त पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि काशीके प्रहलादघाटपर निवास करते हुए वे संस्कृतमें रामकथा लिखने का उपक्रम कर रहे थे और वह सफल न हो सका, अंतमें वे अयोध्या आए और वहाँ उन्होंने चैत्र शुक्ला नवमी-राम जन्मके दिन-राम कथाको नरगिरामें जन्म दिया। उधर सोरों सामग्री वालोंकी उर्वर कल्पना शीघ्र नरहर्यानंदका आधार लेकर उड़ चली। शीघ्र ही सोरोंके नरहरिके एक स्थानकी कल्पना भी कर ली गई और सोरोंके सुप्रसिद्ध श्री वाराहजीके मंदिरके पिछवाड़े मोहल्ला चौधरानके एक पश्चिमाभिमुख चबूतरेपर स्थित हनुमानके मंदिरको नरह्यर्यनंदका स्थान घोषितकर दिया गया।[3] मंदिर आज भी है किन्तु तुलसीके कोई गुरु नरह्यर्यानद यहाँ रहते थे इसका कहीं कोई प्रमाण नहीं। इस मंदिरसे तुलसी तथा तुलसीके गुरुका कोई प्रामाणिक सम्बन्ध नहीं मिलता। अबोध तुलसी यदि यायावरीय स्थितिमें कभी किसी साधुके साथ सोरों आये भी होगें तो गंगा तटपर स्थित सीताराम मंदिरके आस-पास ठहरे होगें। इसी मंदिरके नातिदूर मुस्लिम परिवारोंके आज भी मकान हैं जिसे तुलसीने गलकटियोंका नाम दिया था। साथ ही सामने प्रसिद्ध बटुक भैरवका मंदिर है, जो एक रेतीला मैदान है जिसकी बालू इस बातकी साक्षी देती है कि यहींसे थोड़ी दूरपर गंगाकी धारा बहती रही होगी। सीतारामजीका मंदिर पुरातत्व दृष्टिसे अत्यधिक पुराना है। और पूर्वाभिमुख है। गंगा उत्तरसे आती हुई यहींसे पूर्वाभिमुख होना प्रारंभ होता है। सीतारामके मंदिरका ऊँचा टीला और वल्लभाचार्यकी बैठकका टीला गंगाके प्राचीन प्रवाहकी पूरी-पूरी साक्षी देते हैं। तुलसी यहीं कहीं

---

१. प्रिय शिष्य अनन्तानन्द हते। नरहर्यानन्द सुनाम छते।—मूल गुसाईंचरित।

२. देखों मानस पीयूष-प्रथम खण्ड—पृ० ४४।

३ यह स्थान मोहल्ला चौधरानके नामसे आज भी विख्यात है। वहाँ हनुमानजीका एक मंदिर पश्चिमाभिमुख अब भी स्थित है। वहींसे मोहल्ला घटियाको भी मार्ग जाता है जहाँ सोरों सामग्री वाले स्वर्गीय पं० गोविन्द वल्लभ भट्टका पारिवारिक मकान स्थित है। लेखक।

सीताराम मंदिरके आस-पास अपने गुरुसे विद्या पढ़ते रहे होगें।[1] मैं पुनि निज० में पुनि शब्द भक्ति के किसी पूर्व संस्कारकी सूचना देते ही हैं, तुलसीने अपने गुरुसे संस्कृत भाषामें रामकथा सुनी अतः उस परम्पराका भी संकेत हैं। इस दोहेके बालपन और अचेत शब्द उनकी महामोहमयी दशाका संकेत देते हैं। वयसे अति अचेत बालकको कोई भी समझदार गुरु कथा रामकी गूढ़ नहीं सुनावेगा। शिष्य की पात्रताका बोध तो अति मूढ़ गुरु भी रखते हैं तो रामकथा कहनेवाले सद्‌गुरुकी तो बात ही क्या ? वे ऐसी भूल कभी नहीं करेगें। जीवनके उषाकालकी चरम विषयाशक्तिका महामोहमय रूप देखकर ही तुलसीकी पत्नी खीज उठी होगी और उसने उन्हें दुत्कार दिया होगा! परिणामतः तुलसी रास्तेसे लग गये। और आगे चलकर भव श्रमसे थके पथिकोंको राजमार्ग बता गए।

अब मंगलाचरणके सोरठेपर विचार करना है—

वंदौ गुरुपद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हर। महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥

दोहेमें किन्हीं कल्पित गुरुदेव नरहर्यानंदकी स्थिति सुरक्षित रखनेके लिए छपी प्रतियोंमें, 'हरि' पाठ तो कर लिया गया। किन्तु इस प्रकार स्वयं मूल गुसाईं चरितमें वदतोव्याधात दोष आ गया है। यहां मूल गुसाईं चरितकी प्रामाणिकता और अप्रमाणिकताका प्रश्न उठाना उचित नहीं। भक्तोंकी वार्ता लिखनेवालोंमें भावना और भावुकता ही मुख्य रूपसे विद्यमान रहती है। ऐतिहासिक तथ्योंकी साक्षियां, कालक्रमकी तर्क संगत चर्चा, व्यक्तियोंकी ऐतिहासिकतासे भक्त चरित्रोंके भावुक लेखकोंका विशेष वास्ता नहीं होता। इस बातकी पुष्टि मराठी संतोंके चरित्रों, पुष्टिमार्गीय वार्ताओं एवं अन्य भक्ति-संप्रदायकी भक्त वार्ताओं, वचनामृतोंकी शैलीसे हो जाती है। प्रायः सभी भक्त चरित्रोंके लेखक श्रद्धाके अतिरेक और भावुकताकी वेगवती धारासे अपनेको बचा नहीं पाये हैं। उनका लक्ष्य तथ्य देना, अथवा इतिहास प्रस्तुत करना नहीं, भक्तोंके चामत्कारिक व्यक्तित्वके दिव्य माध्यमसे मानव जीवनका उदात्तीकरण ही उनको अभिप्रेत है। मूल गुसाईं चरित भी इसका अपवाद नहीं। बाबा बेनी माधवदास गोस्वामीजीकी गुरु परंपराके पचड़ेमें नहीं पड़े, न उनको संप्रदाय परंपराके। तुलसी साहित्यका तटस्थ अध्ययन बता देगा कि तुलसीके मर्यादा भक्तिकी विधिवत् दीक्षा अवश्य ली, और अपने गुरुके प्रति असीम निष्ठा व्यक्त करते हुए उन्हें साक्षात् शंकरका रूप ही माना। वे भारतीय धर्म परंपराके मूल स्तभों, वेद मत और पुराणमतकी मर्यादाओंसे बाहर नहीं जाते। उनके भक्ति सिद्धान्त मर्यादामय और श्रीमद्‌भागवत प्रतिपाद्य हैं। मंगलाचरणके वंदौ गुरु पद कंज वाले दोहेमें हरि पाठ चल तो पड़ा पर तुलसीका गुरु चर्चा शृङ्खलाको विशृङ्खलित कर गया। भावुक पाठकोंने तो इस पाठभेदसे भी समझौता कर लिया, परन्तु महाकवि तुलसी स्वयं कहीं भी विकल्पकी गुंजाइश नहीं रखते। वे अपनी मान्यताओं और शास्त्र-सिद्धान्तोंमें सर्वथा निर्विकल्प और सुशृंखलित हैं। नीचेकी पंक्तिमें रविकर निकर लिखनेवाले तुलसी ऊपरकी पंक्तिमें शायद हरि नहीं लिखेगें। वे सदैव नर रूप ही ही लिखेगें। अतः तुलसी अपने रामकथाके गुरु भगवान् शंकरको ही स्वीकार करते हैं। तुलसीने रामकथाके मूलमें अपने प्रेरणा स्रोतके रूपमें भगवान् शंकरको भांति-भांतिसे स्मरण किया है। भगवान् रामके गुण-ग्राम

---

१. सोरों सामग्री वाले अपने विस्तृत लेखमें मैंने स्वीकार किया है कि सोरों तुलसीकी विद्यभूमि एवं दीक्षा भूमि रही होगी और कटुभाषिणी पत्नीकी फटकारसे वैराग्यके अंकुर भी यहीं पनपे होंगे। लेखक।

शंकरके पूज्य प्रियतम अतिथि हैं[1] और वे ही मानसके आद्य प्रणेता हैं। अतः एक बार नहीं अनेक बार स्पष्ट किया है कि राम कथा वे भगवान् शंकरकी प्रेरणा, आदेश और उन्हींकी शैलीपर प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः वे ही उनके राम कथाके आद्य गुरु हैं और (स्वप्नमें) नर रूपमें उन्होंने ही उन्हें रामकथाका बोध कराया। उन्हीं कामारिने अपने रविकर निकर वचनोंसे उनकी मूल महामोहमयी अन्धकाररूपी काम-वासनाका समूलोच्छेदन करके दिव्य राम कथाका सूत्र-पात कराया।

इस सोरठेसे पूर्व तुलसीने मानसके संस्कृत मंगलाचरणमें वाणी और विनायकके उपरान्त अपने गुरुदेव भगवान् शंकरकी वंदना बड़े भावके साथ की है—

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्। यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

तुलसी गुरुको बोधमय नित्य और शंकर रूप मानते हैं, दूसरी पंक्तिमें सद्गुरुका लक्षण अहैतुक कृपा और शिष्यकी कामांधता मोहान्धता जन्य अपात्रता-वक्रताका संकेत देते हुए संभवतः अपनी अपात्रता और बोधमय गुरुकी उदारताका संकेत दे जाते हैं।

इस संस्कृत मंगलाचरणके उपरान्त सोरठोंमें गणनायक करिवर वदन गणेश, कलिमल दहन करनेवाले क्षीरशायी विष्णुके उपरान्त कुंद इंदुसम देह धारी उमारयन करुणायतन, दीनपर नेह रहनेवाले मदनका मर्दन करनेवाले शंकरकी वन्दनाके तत्काल उपरान्त ही वंदौ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरमें हर रूप गुरुदेवकी वंदना की गई है।

प्रस्तुत सोरठेमें राम कथाके आद्य गुरुकी वंदना की गई है। यह स्पष्ट है।

तुलसीने अपने मानसका उपक्रम सती मोह और तदुपरान्त पार्वती शंकरके प्रश्नोत्तर रूपमें रामकथाको प्रारंभ किया है। मोह-स्वरूप-विस्मृतिका नाम है। विमोह-अज्ञानका। अज्ञानका स्वरूप-वस्तुको अवस्तुके रूपमें देखना है। यह सब तुलसीमें रहा होगा। अतः तुलसीका सद्गुरुके मुखसे राम कथा सुनना और परिणामतः मोह रहित होना वैसा ही था जैसा सतीके साथ हुआ। तुलसीने उसी पद्धतिकी पुनः पुनरावृत्ति की है। यहां तक बात प्रेरणा की हुई। आदेश भी तुलसीको शंकरसे ही मिलता है। ऊपर कहा जा चुका है कि राम कथाके लिखनेमें वे संस्कृत के पचड़ेमें न पड़े। काशीके पंडितोंको उन्होंने इसी शांकरी-आदेशके बल बूते पर फटकार दिया था—

हरि हर जस सुर नर गिरा, बरनहिं संत सुजान। हाँड़ी हाटक चारु चिर राँधे स्वाद समान।

'नरगिरा' का आदेश उन्हें भगवान् शंकरसे ही मिला था। इस दिशामें 'तुलसी पत्र' की आख्यायिका विचारणीय है कि उनके लिखे संस्कृत श्लोक गायब हो जाते थे। निदान उन्हें भाषामें आना पड़ा।[3]

प्रेरणा और आदेशके उपरान्त मानसकी शैलीपर भी संक्षेपसे विचार कर लेना समीचीन होगा। तुलसीके मानसकी शैली साकारोपासक भक्ति साधनाओंकी दृष्टिसे समन्वयात्मक है। उसमें रामकृष्ण, शिव, गणेश, सूर्य, दुर्गा, सभीके प्रति पूज्य भाव और श्रद्धाका संकेत है। वस्तु विधान

---

१. अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारिके। कामद घन दारिद दवारिके।

२. रचि महेश निज मानस राखा।

३. मानस पीयष—पृ० ४४।

एवं प्रबन्ध विधानमें वे शांकरी-आदेशका अनुवर्तन करते हैं किन्तु जागतिक समस्याओं एवं भवतापसे निवृत्ति और त्रय तापसे मुक्तिके लिए वे श्रीमद्भागवती शैली अर्थात् एकांत भक्तिकी साधनाका उपदेश देते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है वस्तु और प्रबन्धमें वे भगवान् शंकरके आदेशका पालन करते हैं, इस दृष्टिसे उनके ग्रन्थ देवता और गुरु देवता भगवान् शंकर ठहरते हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण इस प्रकार भी दिया जा सकता है कि मानसके प्रत्येक काण्डके मंगलाचरणमें भगवान् शंकरकी वंदना की गई है। केवल सुन्दरकाण्ड इस नियमका किंचित् अपवाद है। किन्तु वहाँ भी शंकरकी अप्रत्यक्ष चर्चा है।[1] फिर तुलसी रामदूत हनुमानजीको शंकरका अवतार ही मानते हैं।[2] सुंदर काण्डके तीन चरित्रोंमें हनुमच्चरित ही प्रधान है। हनुमच्चरित्रके द्वारा भगवान् शंकरकी पर्याप्त चर्चा स्वयमेव हो जाती है। पृथक्से मंगलाचरणकी आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार तुलसीके रामकथाके आदि गुरु शंकर हैं। कोई नरहरि पृथक्से उनके गुरु नहीं। तुलसीने जिन गुरु देवसे अचेत अवस्थामें रामकथा सुनी थी उनकी आनुषंगिक चर्चा ही तुलसीने बालकाण्डके दोहेमें 'पुनि निज गुरुसन' में की है ये कोई उनके विद्या गुरु रहे होंगें जिन्होंने उनमें सँस्कृतमें रामकथा कहकर भक्तिके संस्कार भर दिये। महामोहतम पुंजको नाश करनेवाली रविकर निकर जैसी वाणी सुनानेवाले ये गुरु नहीं थे। अतः सोरों सामग्री वालोंका यह दावा कि वहींके किन्हीं नरह्यानंदसे उन्होंने रामकथा सुनी थी एक बड़ा भ्रमजाल है जो अटकलके आधारपर उत्पन्न किया गया है। इसमें सोरों सामग्री वालोंको केवल गौरव-लाभके अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। सोरों सामग्रीवाले नरहर्यानंदकी पूर्वापर परंपराका कुछ अता-पता नहीं प्रस्तुत कर सके। मूल गुसाइँ चरितकारके लाभकी बात कही जाय तो उन्हें भी अपनी गुरु-परंपरामें तुलसी जैसे सुमेरु शिष्यको भर्ती करनेका गौरव मिलता है। किन्तु तुलसीकी कहां यह स्वीकारोक्ति कि समुझी नहिं तसि बालपन और वंदनाकी यह भाव भरी निष्ठा कि महामोहतमपुंज, जासु वचन रविकर निकरमें परस्पर संगति नहीं बैठती। निश्चय ही राम कथाके तुलसीके गुरु भगवान् शंकर ही रहे होंगे, जिन्होंने तुलसीको रामकथाका आदेश स्वप्नमें दिया था।[3] और वह भी भाषाबद्ध करनेका। भाषा भनितिका इतना प्रभावशाली होना शुद्ध हर गौरिका कृपा प्रसाद ही है। तुलसीने संकेत भी दिया है—

भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥

इस प्रकार तुलसीने अपनी प्रबन्ध रचनामें शिव कृपा एवं उनके उभयादेश-स्वप्नादेश तथा प्रत्यक्षादेशका पदे पदे संकेत दिया है। मानसकी वस्तु विधानमें सती मोहसे लेकर विवाहोपरान्त पार्वतीके रामकथा विषयक प्रश्न तकको कथाको सांगोपांग एवं सुगठित शैलीसे मानसके उपक्रमके रूपमें प्रस्तुत करनेमें तुलसीका उद्देश्य अपनी स्थिति (आर्त जिज्ञासु) अपनी रुचि (मर्यादा पुरुषोत्तमका गुणानुवाद एवं अपनी वृत्ति (शक्तिशील और सौंदर्यके समन्वित रूपको प्रस्तुत करनेवाली)

---

१. ब्रह्माशंभुफणीन्द्रसेव्यमनिशं। (सुन्दर०)

२. जेहि सरीर रति राम सो, सो आदरहिं सुजान। रुद्र देह तजि नेह बस, बानरमें हनुमान॥ —(दोहा०)

३. सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर जो हर गौरि पसाउ। तो फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ।

का परिचय देना है। अर्थात् पार्वतीकी प्रणति-पुरस्सर रामकथा-निष्ठा तुलसीकी अपनी निष्ठाका प्रतिनिधित्व करती है। इस दृष्टिसे भगवान् शंकर तुलसीके मानस-गुरु ठहरते हैं। ऊपर कहा जा चुका है तुलसीने अपने मानसके प्रत्येक काण्डके मंगलाचरणमें भगवान् शंकरको एवं कोसलेन्द्र रामको ही स्मरण किया है। गुरु-गोविन्दमें अभेद दृष्टिवाले तुलसी प्रथम तीन काण्डोंमें शंकरकी वंदना रामसे पूर्व करते हैं। सुन्दर काण्डको छोड़कर शेष तीन काण्डोंमें शंकर की वंदना रामके पश्चात् करते हैं।[1] तात्पर्य यही कि संपूर्ण मानसके संपुट रूपमें भगवान् शंकर आद्योपान्त सूत्रकी भाँति अनुस्यूत हैं। ऊपर नीचे प्रत्यक्ष, और मध्यमें अप्रत्यक्ष।[2]

तात्पर्य इतना ही कि मानस-प्रणेताके रूपमें तुलसीको आदेश एवं प्रेरणा देनेवाले उनके आद्य, नित्य, बोधमय गुरुदेव शंकर ही हैं, जिनकी चरम अनुकंपासे उनकी 'भाषा-भनिति' तत्कालीन संस्कृत भक्ति रचनाओंसे भी अधिक मान्य हुई। बालकाण्डके मंगलाचरणके सोरठेके आधार पर नरहर्यानंद केवल अनुमान या अटकलके प्रतिफल हैं।

मानसमें तापस-प्रसंग

रामचरितमानसके अयोध्याकाण्डका तापस-प्रसंग[3] विद्वानों, मनीषियों, मानसहंसों और श्रद्धालु पाठकोंका बहुचर्चित विषय रहा है। अयोध्याकांडके कथा-प्रवाहमें अचानक उभरा हुआ यह प्रसंग पाठकको प्रवाहसे अलग धकेलकर एक विशिष्ट रहस्यमय स्थितिमें डाल देता है। पूर्वापर प्रसंगसे नितान्त पृथक् इस प्रसंग का अपना एक निरालापन है जिसका अपना महत्व है। संदर्भ तथा कथा-प्रवाहसे मेल न खानेके कारण कुछ चिन्तकोंने इन दस-पंक्तियोंको प्रक्षिप्त माना है। इस तापसका नाम-धाम अथवा परिचय न देकर इसे रहस्यमय ढंगसे प्रस्तुत कर गोस्वामीजीने अनेक कल्पनाओं, अटकलोंके लिए पर्याप्त अवकाश दे दिया है। वैसे रामचरित-मानसकी शैली रही है कि जहाँ कहीं भी कोई जिज्ञासा अथवा उक्ति शंकाकी संभावना रहती है वहाँ उसका समाधान भी आगे पीछे अथवा साथ-साथ उपस्थित रहता है, परन्तु यह प्रसंग इस तथ्यका अपवाद स्वरूप है। वस्तुतः तापस-प्रसंग रामचरितमानसकी एक रहस्यमय ग्रन्थि है जिसकी उलझनसे विकल होकर कुछ विद्वानोंने इसे प्रक्षिप्त मान लेनेमें ही मानसिक शांतिका अनुभव किया, कुछ लोगोंने तापसके बारेमें विविध अटकलें लगाईं। अंतिम निर्णय मेरे गुरुदेव पण्डित सीतारामजी चतुर्वेदीने दे दिया कि यह तापस सनत्कुमारजी थे। किन्तु मनको संतोष नहीं हुआ। और "नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहूँ" के अनुसार प्रस्तुत प्रयास है।

मानसके तापस-प्रसंगके विचारणीय दो पक्ष हैं। पहला प्रश्न तो यह है कि यह प्रसंग रामकथाकी भागीरथीके भरपूर प्रवाहमें अचानक एक स्लीपरकी भाँति कैसे बहता चला आया? यह गोस्वामीजीका मौलिक प्रसंग है अथवा क्षेपक। दूसरा प्रश्न है यह कि तापस कौन व्यक्ति है जिसकी चर्चा गोस्वामीको अनिवार्यतः करनी पड़ी। या तो यह तापस रामके पथिक वेषका प्रेमी होना चाहिए, अथवा वनके उस भागका, जहाँ सीता-राम-लक्ष्मण, गुजर रहे हैं अथवा कहीं आसपासका निवासी होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है, प्रसंगसे न तो उसके आसपास रहनेका आभास मिलता है न उसकी उपस्थिति एकदम अचानक है। गोस्वामीजीका 'तेहि अवसर' शब्द विशिष्ट अवसरका

१. मानसके 'मंगलचरणोंका रहस्य' लेखकका एक स्वतन्त्र लेख है।
२. देखिए—नीचे तापस प्रसंग।
३. देखिए—रामचरित अयो० दो० १०९ के उप० पं० ११२२-११३१ पं० सीताराम चतुर्वेदी संस्करण।

द्योतक होता है।[1] और वह किसी सुनियोजित नाटकीय पट - परिवर्तनका संकेत देता है। अतः मानसकी प्रसंग-उपस्थापना-शैलीसे इस प्रसंगकी उपस्थापना शैली भिन्न प्रतीत नहीं होती अपितु मिलती जुलती है।

अतः पहले यह विचार करना आवश्यक है कि तापस-प्रसंग मानसान्तर्गत है अथवा क्षेपक। पंडित रामकुमारजीने तापस प्रसंगको क्षेपक माना है और इसपर उन्होंने एक छोटी सी पुस्तिका भी लिखी है। उनके क्षेपकवाले तर्कोंसे यह अकिंचन लेखक अनभिज्ञ है। श्री उदयशंकर दुबेने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के, अप्रैल १९७० के अंकमें "मानसमें तापस प्रसंग" एक बड़ासा लेख लिखा है। आचार्य चतुर्वेदीकी तुलसी-ग्रंथावली द्वितीय खण्ड पृ० २१ पर उक्त दोनों बातोंकी चर्चा है। किंतु उससे यह स्पष्ट नहीं कि दुबेजीकी स्थापना क्या है। वे इसे प्रक्षिप्त मानते हैं अथवा नहीं ? उनका कथन है कि "यह प्रसंग बहुत विस्तृत है।" परन्तु इस प्रसंगका विस्तार एक ही विशिष्ट प्रतिमें मिला है। अन्य कहीं किसी प्रतिमें उतना विस्तार नहीं। परन्तु तीन मूल प्रश्न फिर भी रह जाते हैं।

१. यह प्रसंग गोस्वामीजीने लिखा है अथवा अन्य किसीने ?

२. यदि यह प्रक्षिप्त है तो इसकी आवश्यकता क्या थी ?

३. यदि यह मूल कथाके साथ है तो ये तापस कौन हैं ?

तापस-प्रसंग क्षेपक नहीं

मानसमें जहाँ क्षेपक आये हैं वहाँ उनका पूर्व संकेत अवश्य उपस्थित रहता है। उदाहरणके लिए मानसके कतिपय क्षेपक दिये जाते हैं जिनके कथा-संकेत मानसमें वहींके वहीं उपलब्ध हैं :—

क्षेपक	मानसमें कथा संकेत
१—जलंधरकी कथा	तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परमपद दयऊ॥
२—रावणकी कथा	काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
३—रावण दिग्विजय कथा	रनमदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
४—गंगावतरणकी कथा	गाधिसुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥
५—श्रवणकुमार कथा	तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥
६—दुन्दुभि-अस्थि ताल	दुन्दुभि अस्थिताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये॥
७ – हनुमज्जन्म कथा	रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥
८—सुलोचनाकी कथा	बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंकाद्वार राखि पुनि आयो॥

१. (अ) तेहि अवसर सीता तहँ आई।—बाल
(आ) तेहि अवसर रघुबर रुख पाई॥—अयो०
(इ) तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। ,,
(ई) जनक दूत तेहि अवसर आए। ,,
(उ) तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। ,,
(ऊ, तेहि अवसर केवट धीरज धरि—अयो० २४१
(ए) तेहि अवसर कर हरष विषादू—अयो० २४५।
(ऐ) तेहि अवसर रावन तहँ आवा—सुन्दर०

१. मानस-बाल, कांड २. मानस बाल काण्ड ३. मानस-बाल काण्ड ४. मानस बालकाण्ड
५. ,, अयोध्या० ६. ,, किष्किंधाकाण्ड ७. ,, किष्किं० ८. मानस किष्किंधाकाण्ड

९—अहिरावन की कथा— अपर महोदर आदिक बीरा।
परे समर महि सब रन धीरा ॥

यहाँ कतिपय बहुप्रचलित क्षेपकों की सूची दी गई है।[1] तात्पर्य इतना ही कि प्रक्षिप्त कथाओंके संकेत जहाँ मूल प्रवाहमें सन्निहित रहते हैं वहीं क्षेपकों की गुंजाइश रहती है, अन्यथा क्षेपक एकदम कथा-प्रवाहमें आ नहीं पाते। किन्तु तापस-प्रसंगका कोई पूर्व संकेत उपलब्ध नहीं। यह प्रसंग 'तेहि अवसर' की गोस्वामीकी अपनी नाटकीय शैली-परंपरामें उपस्थित हुआ है। यदि इस अंशको प्रक्षिप्त माना जाय तो प्रश्न होता है कि इन दस पंक्तियोंके प्रक्षिप्त अंशको मूल प्रवाहमें सन्निविष्ट करनेकी क्या आवश्यकता थी? सन्निवेश करनेवालेका क्या प्रयोजन हो सकता था? "प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोऽपि न प्रवर्तते।" इस अंशके प्रक्षेपका कोई लौकिक उद्देश्य भी तो नहीं। अवश्य ही यह कोई अलौकिक प्रेरणावश लिखा गया है और अलौकिक प्रेरणा मूल लेखक या कवि की हो सकती है। तापस-प्रसंगके सन्निवेशकी शैलीपर विचार करें तो कहा जा सकता है कि महापुराणोंकी प्रायः परंपरा रही है कि मूल-प्रवाहमें ऐसे रहस्यात्मक प्रसंग—जो अन्तरंग व्यक्तियोंसे संबंधित होते हैं—कहीं न कहीं सन्निविष्ट रहते हैं। गोस्वामीजीने अपने मानसके प्रणयन अथवा निबंधनमें अपने सामने जो प्रच्छन्न आदर्श रखा है वह श्रीमद्भागवतका है।[2] श्रीमद्भागवत कल्पपादप है और रामचरितमानस एक सरोवर। भागवतपुराण पादपका रूपक पूरा करता है और मानस-मानसरोवरका। वह स्कंधात्मक है और मानस सोपानात्मक। श्रीमद्भागवतमें तीन प्रकारकी भाषा है—स्वमत, परमत और समाधि भाषा। मानसमें भी स्वमत, परमत और समाधि भाषा है। जहाँ भी शंकरने उमाको सम्बोधन करके जो कुछ कहा है वह सब समाधि भाषा है।[3] जहाँ स्वयं भगवान् शंकरकी उनकी स्तुति, महत्व अथवा रामसे न्यूनता है (ब्रह्मरुद्र सरनागत गए, न उबरहिं प्रान) अथवा (विधि हरि सम्भु नचावनहारे) आदिमें परमत भाषा है। इसके अतिरिक्त सर्वत्र गोस्वामीजीकी स्वमत भाषा है। दोनोंका चरम लक्ष्य भगवद्भक्ति है जिसके अधिकारी आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त हैं। भागवतमें दशविध लीलाओंके एकमात्र आश्रय कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् हैं। वह परब्रह्म हैं और परमात्मा हैं।[4] मानसके प्रतिपाद्य रामस्तु भगवान् स्वयं हैं। यह 'भाषाबद्ध' गाथा भक्तके अन्तस्तमको शान्त करती हुई रघुनाथ नाम निरत[5] है। मानसके राम भी नरभूपाल नहीं, भुवनेश्वर हैं, कालके भी काल हैं। वे ब्रह्म हैं, अज अनामय भगवान्, व्यापक, अजित, अनादि और अनन्त हैं।[6] वे भी कृष्णकी भाँति गो, द्विज, धेनु, देव हितकारी हैं और कृपा-सागर हैं। अतः मानव शरीर धारण[7]

---

९. मानस-लंकाकाण्ड।

१. देखिए—मानसका रामेश्वर भट्ट संस्करण।

२. मानसकी भागवतीय शैली लेखकका एक स्वतंत्र निबंध है।

३. (अ) हरहिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥
मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह। बाल का० दो० ११०–१११

४. स आश्रयः परब्रह्म परमात्मेतिशब्द्यते। २।१०।७

५. उत्तरकाण्ड–अंतिम श्लोक।

६. सुन्दरकाण्ड दोहा–३८।

७. सुन्दरकाण्ड–दो० ३८।

करते हैं। इस प्रकार वस्तुमें गहन साम्य तो है ही भागवतकी और मानसकी शैलीमें भी गहन साम्य है। भागवतकार प्रारम्भमें भागवतके चार वक्ता-श्रोताओंका गठन करते हैं। तुलसीने भी मानसके चार घाटोंके रूपकमें चार संवादों (वक्ता-श्रोताओंका) संकेत दिया है। संपूर्ण भागवतके कथा-प्रसंगोंका गठन करके बारहवें स्कंधमें पुनः उन प्रसंगोंकी सूचीकी पुनरावृत्ति की गई है। उसी प्रकार तुलसीने संपूर्ण मानसकी पुनरावृत्ति कागभुशुण्डि प्रसंगके बहाने उत्तरकाण्डमें की है। दशम स्कंधका लक्ष्य 'निरोध' है। तुलसीके मानसका लक्ष्य भी 'विश्राम' है।[1] भागवतकारका 'निरोध' और तुलसीका 'विश्राम' तात्विक दृष्टिसे एक ही वस्तुके दो नाम हैं। तात्पर्य यह कि मानस और भागवतमें वस्तुगत एवं शैलीगत साम्य है। भागवतमें श्रीकृष्णकी पौगण्ड लीलाके संदर्भमें एक श्लोककी दो बार आवृत्ति हुई है—

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे। निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥[2]

इसके उपरांत तीन अध्यायों की रहस्यात्मक अन्तरंग लीलाके उपरान्त इसी श्लोक की पुनरावृत्ति पुनः दशम स्कंध के चौदहवें अध्यायके अन्त में हुई है। एक श्लोक की आवृत्ति वह भी सुनिश्चित रूप से अध्यायान्तमें होना इस बात द्योतक है कि मध्य के अध्यायोंकी कथा अन्तरंग और रहस्यात्मक है जो पात्र विशेषको ही लक्ष्य कर लिखी गई है। तुलसी भी अपने मानसमें इसी प्रकारका रहस्य प्रस्तुत करनेमें नहीं चूकते। मानसमें प्रस्तुत अर्द्धाली दो बार आई है जो अपनेमें एक अद्भुत और सप्रयोजन उदाहरण है—

ते पितु-मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥[3]

प्रथम बार प्रस्तुत अर्द्धालीके उपरान्त सिंसुपा वृक्षके नीचे निवास, लक्ष्मणका पहरा, लक्ष्मण-गीता (निषादपतिको उपदेश), सुमन्त द्वारा दशरथ-संदेश एवं राम द्वारा सुमन्त का समाधान, केवट-प्रसंग, गंगापूजन, प्रयाग-महिमा, भरद्वाज-मिलन एवं तापसप्रसंग आदि नौ प्रसंग हैं। उपरान्त पुनः इसी अर्द्धाली की पुनरावृत्ति है। इस संपुटमें आनेवाले प्रसंग सभी एकान्त महत्त्वके राम-रहस्य[4] हैं। ये सभी प्रसंग कथा-वस्तु की दृष्टि से ऐकान्तिक, व्यक्तिगत और रहस्यात्मक हैं। साधारण दृष्टिसे इन लीला-प्रसंगोंका मानसके मुख्य लक्ष्य लोक मंगल भावनासे सीधा सम्बन्ध नहीं। दशरथ-सन्देशमें महाराज दशरथका सम्पूर्ण कथन मोहसे आच्छन्न लोक-समाराधन-भावनासे शून्य है। केवट-प्रसंग केवट की ऐकान्त-भक्तिका निदर्शन है जो भावुक भक्तों की वस्तु है। गंगा-पूजन गंगाका आशीर्वाद भी भगवती सीता की वैयक्तिक श्रद्धाका द्योतक है। प्रयाग-महिमा एवं भरद्वाज मिलन भी एकान्त श्रद्धा-भक्तिके विषय हैं। तदुपरान्त तापस-प्रसंग रहस्यात्मक है ही। उपर्युक्त नौ प्रसंगों को एक विशेष दृष्टिसे एक ही प्रसंगात्मक अर्द्धाली के संपुटमें सुरक्षित रखकर कवि पुनः मूल प्रवाह पर आ जाता है। इन प्रसंगोंमें भावुक हृदयों की एकान्त-भावना ही प्रधान है।

---

१. बुध बिस्राम सकल जनरंजनि—बालकाण्ड

२. श्रीमद्भागवत १०।११।५९।

३. (अ) अयो० दोहा ८८।
   (आ) ,, ,, ११०।

४. औरहु राम-रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥ बाल० दो० ११०

साथ ही वनवासी रामका तपस्वी वेश भी यहीं प्रारम्भ होता है। सिंसुपा वृक्षके नीचे तापसवेश विशेष उदासीका स्वरूप आरम्भ होकर भरद्वाजमिलन तक अपनी पूर्णता पर आ जाता है। ऐसे तपस्वी वनवासी रामके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं। अपनी आद्याशक्ति सीता और लक्ष्मणसे संयुक्त पथिक रामका प्रारंभिक दर्शन करनेके लिए ही यह तापस उपस्थित होता है। इसके दर्शनके उपरान्त ही भगवानकी सार्वभौम लोकहितकारी लोकरंजक लीलाओंका प्रारम्भ होता है। इसी पथिक-वेशके दुर्लभ दर्शनवाले प्रसंग की अपनी फलश्रुति है। इस फलश्रुतिको गोस्वामीजीने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"जिन्ह-जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मग अगम अनंद तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ॥ अयो० १२३
अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहु लखन सिय राम बटाऊ।
रामधाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

इस दुर्लभ दर्शनका चरम आनन्द लेनेवाला एक मात्र द्रष्टा यह तापस था। अतः इस प्रसंगको क्षेपक नहीं माना जा सकता। इसका उपस्थित करना गोस्वामीजी को अत्यन्त अभीष्ट था। अतः इतना महत्वपूर्ण प्रसंग प्रक्षिप्त कैसे कहा जा सकता है। अब प्रश्न है—

यह तापस था कौन ?

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवतकी दशम स्कंधकी वत्सहरणकी लीलामें अन्तरंग व्यक्ति ब्रह्माजी हैं, और मानसमें ये तापस स्वयं भगवान् शंकर हैं जो भगवान्के पथिक वेशके दर्शन करने पधारे हैं। रामचरितमानसके प्रत्येक काण्डमें भगवान् शंकरने श्रीरामसे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूपमें साक्षात्कार अवश्य किया है। उदाहरणके लिए—मानसके काण्डोंमें भगवान् राम एवं शंकरके मिलन-स्थल देखिए:—

१—बालकाण्ड— १. काक भुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानहिं नहिं कोऊ॥
२. संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
२—अयोध्याकाण्ड— १. तेहि अवसर इक तापस आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
३—अरण्यकाण्डकी भेंटका विवरण देखिए—बालकाण्ड दो० ४८–५० तक।[1]
४—किष्किंधाकाण्डमें प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
[अप्रत्यक्षरूपमें] निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई—तक
यहाँ हनुमान स्वयं रुद्रावतार हैं।[2]
५—सुन्दरकाण्ड— प्रभु-कर-पंकज कपिकें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
[अप्रत्यक्ष रूपमें] सावधान मन करि पुनि संकर। ··· ··· लागे कहत कथा अति सुन्दर॥
दो० ३२

---

१. एहि बिधि भए सोच बस ईसा ··· ···संभु समय तेहि रामहि देखा॥
उपजा हिय अति हरष विशेषा। ··· ··· ···कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥
—बालका० ४८–५० दो०

२. (अ) जेहि सरीर रति राम सो, सो आदरहिं सुजान।
रुद्र देह तजि नेह बस, बानर भे हनुमान॥ दो० १४२
(आ) पुरखातें सेवक भे, हरतें भे हनुमान॥ दोहा० १४३।
(इ) राम काज लगि तब अवतारा—दो० २९।

६—लंकाकाण्ड— सुरब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा। देखत रामचरित रन रंगा॥ दो० ८०

तथा—"मामभिरक्षय रघुकुलनायक" के उपरान्त लंकाकाण्डमें भगवान् शंकर अपनी राम-स्तुतिके अन्तमें पुनः कहते हैं—

"नाथ जबहिं कोसलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिन्धु मैं आउब, देखन चरित उदार"॥ दो० ११५

७—उत्तरकाण्ड— बैनतेय सुनु संभु तब आए जहाँ रघुबीर।
बिनय करत गदगदगिरा पूरित पुलक सरीर॥

लंकाकाण्डमें राक्षस वधोपरान्त देवताओं की सामूहिक स्तुति दो स्थानोंपर है जिनमें एक स्थान पर रामावतारके पूर्वके छह अवतारों की चर्चा है। रामावतार के उपरान्त-के कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, अवतारोंकी चर्चा नहीं। यदि होती तो यह गोस्वामीजी को कालक्रम की भूल होती। अतः तुलसीने इन चार अवतारों की चर्चा देवताओंसे नहीं करवाई। इसके उपरान्त ब्रह्मा और इन्द्र की स्तुति के बाद शंकरके द्वारा की गई स्तुति है। यह स्तुति राक्षस-वधके उपलक्ष्यमें है—उत्तर-काण्डमें राज्यारोहणके उपरान्त दो ही प्रमुख स्तुतियाँ हैं। पहली वेद-स्तुति और दूसरी भगवान् शंकरकृत स्तुति। देखा जाय तो वेद-स्तुतिके बाद पुनः शंकर-कृत स्तुतिका कोई अवसर नहीं। परन्तु गोस्वामीजीने लंकाकाण्डके वायदेको यहाँ पूरा करनेके लिए और शंकर की उपस्थितिके लिए ही इस स्तुति की अवतारणा की है। इस प्रकार संपूर्ण मानसमें शंकर आद्योपान्त छाए हुए हैं।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शिवापार्वती-संवादके संकेत रामचरितमानसके प्रत्येक काण्ड में है। किन्तु अयोध्याकाण्डमें कहीं भी शिव-पार्वती संवादका संकेत नहीं; न उमाको संबोधन ही है। लंकाकाण्डमें उमाको सर्वाधिक सम्बोधित किया गया है। लगता है लंकाकाण्डकी संहार-लीला शंकरने बड़े मनोयोगसे जमकर देखी है और पार्वतीसे कही है। किन्तु अयोध्याकाण्ड और विशेषकर भरत-चरितमें शंकर "गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं"के अनुसार प्रारंभसे अन्त-तक मौन व्याख्यानदाता हैं क्योंकि भरत चरित इतना अगाध और गहन हैं कि 'तहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को।" समग्र अयोध्याकाण्ड भगवान् शंकरकी समाधि भाषा है। लगता है शंकर समूचे अयोध्याकाण्डमें मौन व्याख्याता रहे हैं। भगवान् शंकरको गोस्वामीजीने अयोध्याकाण्डके लीलारस और भरत-चरितमें इतना डुबो दिया है कि वे कहीं प्रत्यक्ष होना नहीं चाहते। तापस रूपमें आकर वे राम-रूप पियूषको नयन-पुटसे निरन्तर पान करते रहे। इस प्रकार अयोध्याकाण्डकी लीलाके शंकर अप्रत्यक्ष वक्ता हैं। समूचे अयोध्याकाण्डमें वक्ताके रूपमें उनका नामोल्लेख तक नहीं। परन्तु शंकरकी प्रत्यक्ष उपस्थितिके बिना तुलसीको चैन भी नहीं अतः वे तापस रूपमें उपस्थित किये गए।

सनत्कुमार क्यों नहीं ?

आचार्य चतुर्वेदीजीने ये तापस 'सनत्कुमार' माने हैं। सनत्कुमार ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। वे चार भाई हैं और चारों ही सदैव एकत्र रहते हैं। "रूप धरे जनु चारिउ वेदा।"[1] किन्तु सनत्कुमार-के लिए तुलसीका मन शाश्वत पक्षपाती नहीं। फिर तुलसी उनको बिना पूर्वापर प्रसंगके अनावश्यक रहस्यके साथ इस रहस्यात्मक शैलीसे क्यों उपस्थित करते ? जहाँ सनत्कुमारादिको गोस्वामीजीको उपस्थित करना होता है, वहाँ उनको वे धड़ल्लेके साथ नाम-निर्देश पूर्वक ले जाते हैं।[2] किन्तु

१. उत्तरकाण्ड—दो ३१ २. जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए। दो० ३१

भगवान् रामके चोरीसे या छद्मवेशसे दर्शन करना, रूपामृतका पान करना शंकरका ही स्वभाव है,[1] सनत्कुमारादिका नहीं। जन्मसे लेकर किष्किंधाकाण्ड तक चार बार भगवान् शंकर सामने आये हैं। फिर ध्यान देनेकी बात है कि सनकादिक सदैव नग्न और बालक रूपमें रहते हैं।[2] अतः तुलसी उनको तापस न लिखकर 'तेहि अवसर इक बालक आवा' लिख सकते थे फिर सनकादिक को तुलसीने मुनि संज्ञा दी है।[3] तुलसी तापस, मुनि, साधु, उदासी आदि सभीमें पूरा-पूरा और गहरा अंतर करते हैं। अयोध्याकाण्डका तापस-मिलन स्थल प्रयाग और चित्रकूटके मध्य कहीं एकान्त स्थल है, जब कि सनकादिकका स्थान अगस्त्याश्रमके कहीं आस-पास है।[4] अयोध्याकाण्डमें तापसका आना तो दिखाया गया है किन्तु जाना नहीं। वह राम रूपका पियूष ही पीता रह जाता है, जब कि सनकादिकके आने और चले जानेकी विधिवत् चर्चा की जाती है।[5] आचार्य चतुर्वेदीजीने ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण खण्डके ८७वें अध्यायमें सनत्कुमारके अकेले आनेकी बात कही है। हाँ, वहाँ वे अकेले अवश्य आए हैं किन्तु मुख्यतः नन्दजी एवं मुनीश्वरोंकी संसदमें।

ब्रह्मवैवर्त पुराणके इस अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने बड़े-बड़े ऋषीश्वरों, मुनीश्वरोंको यह कहकर भ्रमित कर दिया कि वे (कृष्ण) भी साधारण जन प्राकृत शरीरधारी हैं। मुनीश्वरोंके इस भ्रमको दूर करनेके लिए ही सनत्कुमार वहाँ आए और उन्होंने सब देहधारी प्राकृत मुनियोंसे कुशल प्रश्न तो पूछे और भगवान् कृष्णके लिए कह दिया—

कृष्णस्य कुशल प्रश्नं शिवबीजस्य निष्फलम्। (८७।१९) ब्र० वै०

इतने पर भी भगवान्ने पुनः भ्रममें डालनेकी चेष्टा की—

यो यो विग्रहधारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः।
देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना॥
सांप्रतं वासुदेवोऽहं रक्त वीर्याश्रितं वपुः।

इसपर सनत्कुमारका उत्तर था—कथं न प्राकृतो विप्र। (८७।२४,२९)

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु।
तस्य देवः परब्रह्म वासुदेव इतीरितः॥ (८७।३०)

इस प्रकार कृष्ण अपनेको प्राकृत मानव सिद्ध करनेकी चेष्टा करते रहते हैं और सनत्कुमारकी चेष्टा रहती है उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम गोलोक-लीला-नायक परब्रह्म सिद्ध करनेकी। वहाँ एकत्र

---

१. (अ) औरउ एक कहउँ निज चोरी।
सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥ बाल०
(आ) मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ॥
(इ) यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥
(ई) हृदय विचारत जात हर केहि बिधि दरसन होइ।
२. आशावसन व्यसन यह तिनहीं। देखत बालक, बहुकालीना॥ उत्तर०
३. सुनि प्रभु वचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।
४. आसा बसन व्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं।
तहाँ रहे, सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी॥ उत्तर काण्ड दोहा ३१
५. सनकादिक बिधि लोक सिधाए। उ० का० दो० ३५।

ऋषीश्वरोंको भी वे यही समझाते हैं। इसके उपरान्त उन्हें जानेकी जल्दी है और ऋषिगण उन्हें रोककर श्रीकृष्ण-माहात्म्य सुनना चाहते हैं। ब्रह्मवैवर्तके उस प्रसंगसे स्पष्ट है कि सनत्कुमारका वहाँ आनेका लक्ष्य श्रीकृष्ण-दर्शन नहीं जितना कि ऋषियोंको उनकी (कृष्णकी) महिमासे अवगत कराना है। अतः स्पष्ट है कि एक महत्वपूर्ण प्रश्नके सुलझानेके लिए ही सनकादिक भाइयोंमेंसे तीसरे नम्बरके कुमारको यह भार सौंपा गया और उन्होंने उसे पूरा भी किया। भगवद्दर्शन और भगवत्-स्तुति आदिमें सदैव चारों ही भाई समुपस्थित रहते हैं। अतः ब्रह्मवैवर्तका उदाहरण यहाँ घटित नहीं होता। यहाँ तापसके छद्मवेशमें राम-रूपामृतका पान करनेवाले भगवान् शंकर ही हैं।

अग्नि भी नहीं

कुछ विद्वानोंने इस तापसको अग्नि सिद्ध करनेकी चेष्टा की है किन्तु यह भी अटकल मात्र ही है। अरण्यकाण्डकी अर्द्धाली "तुम पावक महँ करहु निवासा" इस अटकलकी कारणभूता रही है। परन्तु आगे पीछे इसके प्रमाण नहीं, न कोई परम्परामें यह कथन ठीक बैठता है। फिर अग्निको इस प्रकारके रहस्यात्मक ढंगसे गोस्वामीजी प्रस्तुत क्यों करते ? गोस्वामीजीको अग्निदेवसे उतना पक्ष-पात नहीं जितना भगवान् शंकरसे। फिर रामकथाकी वक्ता-श्रोतापरंपरासे अग्निदेवका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं। भगवान् राम अथवा रघुवंशसे अग्निदेवका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। अग्निको साक्षी देकर पत्नीका पाणिग्रहण होता है अतः अरण्यकाण्डमें, पवित्र अग्निदेवको सीता सौंपना तथा लंका-काण्डमें उनसे पुनर्ग्रहण भारतीय संस्कृतिकके अनुसार एक विशिष्ट मर्यादाका पालनमात्र है। अयोध्या-काण्डके इस स्थल पर तापस-प्रसंगसे उनका कोई प्रयोजन नहीं।

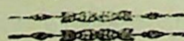
स्वयं गोस्वामीजी भी नहीं

कुछ विचारकोंने तापस-मिलन-स्थलके आधारपर तापसको स्वयं गोस्वामीजी मान लिया है, परन्तु यह केवल श्रद्धावश ही है एतदर्थ कोई प्रमाण नहीं मिलता। फिर स्वयं गोस्वामीजी जैसा कि उनका शील है अपने लिए 'तापस' लिखना कभी पसन्द नहीं करेंगे। तापस-प्रसंग प्रवहमान कथा-प्रसंगमें एक चंचल विद्युत्प्रकाशकी भाँति आता है और पाठकके मनपर एक श्रद्धामय प्रभाव छोड़ जाता है। गोस्वामीजी जैसा शालीन, विगतमान, विनम्र भक्त इस प्रकार कभी श्रद्धार्जन करनेकी चेष्टा नहीं करेगा। भगवल्लीला-चर्चामें किसी पार्थिव मानवकी ठूँस-ठाँस गोस्वामीजी जैसे भक्त कविसे नितान्त असंभव है। अतः श्रद्धालुओंकी यह अटकल भी नितांत असंगत है।

निष्कर्ष

तापसप्रसंगसे संबद्ध दोनों प्रश्नों—(क) यह अंश क्षेपक है अथवा मौलिक तथा (२) तापस कौन था—पर विचार करनेके उपरांत यही सिद्ध होता है कि यह प्रसंग अयोध्याकाण्डके कथा-प्रवाहके अन्तर्गत मूल प्रसंग है जो महाकाव्यकी पौराणिक शैलीके अन्तर्गत है और अनेक राम-रहस्योंके भीतर इस प्रसंगको भलीभाँति सन्निविष्ट किया जा सकता है।

साथ ही तापस स्वयं भगवान् शंकर थे जो लीला-वपुधारी अपने इष्टदेवसे मिलने आये और उनके पथिक वेषको देखकर मुग्ध हो गए। सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डमें उनकी अभिव्यक्तिका यही पावन स्थल है जहाँ वे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूपसे दुर्लभ राम-रूपपियूषका पान करते रहे जाते हैं और कथा-प्रवाह अपनी अविराम सरणिपर चलता चला जाता है।



हिन्दी रङ्गमंचके जनक गोस्वामी तुलसीदास

डा० छविनाथ पाण्डेय, एम्० ए०, डी० फिल्०

सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदासजीने परम्परागत ग्राम्य नाट्यका परिष्कार करके उसके बदले अपने रामचरित-मानसके आधारपर रंगमंचकी पूर्ण व्यवस्थाके साथ रामलीलाका प्रवर्तन किया और साथ ही ब्रजके किसी महात्मा द्वारा लिखे हुए ब्रज-विलास नामक काव्यके आधारपर कृष्णलीला (कालिय-दमन या नाग-नथैया लीला) का भी प्रचलन किया। कहते हैं कि पहले पूरी कृष्णलीला होती थी, पीछे चलकर केवल नागनथैया रह गई। कहा जाता है कि काशीके चित्रकूट नामक स्थान पर 'चित्रकूटको रामलीला' (नाटी इमलोकी रामलोला) वाल्मीकीय रामायणके आधारपर हुआ करती थी। उसके बदले गोस्वामीजीके मित्र मेघा भगतने तुलसीदासजीके रामचरितमानसके आधारपर रामलीला प्रचलित कर दी। काशीमें लाट भैरवकी रामलीला आदि लीला कहलाती है। प्रायः रामलीला तो अनन्त चतुर्दशीसे विजया-दशमी तक होती है किन्तु नाग-नथैया कार्तिक शुक्ला पंचमीको होती है।

गोस्वामी तुलसीदासने अपने रामचरित-मानसके आधारपर जिस रामलीलाकी प्रतिष्ठा की उसका रंगमंच किसी एक स्थानपर न होकर लीलामें वर्णित स्थानके अनुसार अलग-अलग स्थानोंपर बनाया जाता है। तदनुसार अयोध्याकी लीला अयोध्या नामक बने हुए स्थानपर और लंकाकी लीला लंका नामक स्थानपर। इसके लिये खुले मंचका प्रयोग किया जाता है। रामचरित-मानसपर आश्रित इस रामलीलाका इतना अधिक प्रचार हुआ कि उत्तर भारतमें सर्वत्र रामलीलाका प्रचलन हो गया। इनमेंसे कहीं तो खुले मैदानमें रामलीला होती है जहां अयोध्या, अशोक-वाटिका, जनकपुरी आदिके लिये अलग निर्धारित स्थान होते हैं, कहीं आधी लीला खुले मैदानमें और आधी विशेष रूपसे निर्मित रंगमंच पर होती है और कहीं-कहीं केवल मंडप-युक्त पारसी शैलीके मंचपर ही रामलीला होती है। इसे नाटक न कहकर रामलीला ही कहते हैं और उसके प्रयोगमें विशेष कर्मकाण्डका भी विधान होता है जिसमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता आदि स्वरूपोंका वरण और पूजन किया जाता है और जबतक रामलीला होती है तबतक उन्हें देवत्वभावसे समादृत किया जाता और उन्हें अलग रक्खा जाता है। इसी प्रकार हनुमान, अंगद, जामवंत आदिके मुखौटोंका भी पूजन होता है और जो अभिनेता उनका प्रयोग करते हैं उनका भी विधिवत् पूजन कर लिया जाता है तभी वे मुखौटा उठाते हैं (जिसे चेहरा उठाना कहते हैं)। लीला प्रारम्भ होनेसे पूर्व प्रतिदिन भगवान् रामकी वंदना होती है।

यही वास्तवमें हिन्दीकी मौलिक, व्यापक और व्यवस्थित लोक-रंगशाला है जिसके अनुसार प्रतिवर्ष प्रायः सभी नगरों और बड़े ग्रामोंमें कमसे कम दस दिन रामलीला की जाती है और नक्कटैया (शूर्पणखाकी नाक काटी जानेकी लीला) बड़ी धूमधामसे होती है। कहीं-कहीं रामका विवाह पूरे विवाहकी धूमधामके साथ होता है और बारात निकाली जाती है। इसी

प्रकार भरत-मिलाप और राजगद्दी भी विशेष उत्साह, साज-सज्जा और उल्लासके साथ मनाई जाती है जिसे देखनेके लिये सारा नगरका नगर उमड़ पड़ता है। काशीमें मेघा भगत द्वारा प्रवर्तित नाटी इमलीका भरत-मिलाप तो इतना प्रसिद्ध है कि लाखों पुरुष, स्त्री और बच्चे उसे देखनेके लिये आ जुटते हैं, सारी काशी वहाँ उलट पड़ती है।

कुछ लोगोंका मत है कि रामलीलाका प्रवर्तन सर्वप्रथम मेघा भगतने ही किया था किन्तु वे वाल्मीकीय रामायणके अनुसार ही लीला कराते थे। लीला या नाटकीय संवादके साथ व्यवस्थित रंगमंच पर रामकथाको प्रस्तुत करनेका श्रेय गोस्वामी तुलसीदासको ही है और रामलीलाके लिये ही उन्होंने अपने रामचरितमानसमें स्थान-स्थानपर संगत क्षेपकोंका प्रक्षेपण करके रामलीलाके संवादको अधिक पूर्णता प्रदान की। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने रामलीलाकी सारी व्यवस्था विशेष प्रकारके कर्मकांडसे सम्बद्ध कर दी और लोकरंजनके अव्यवस्थित और प्रायः अश्लील नाट्य-रूपकोंको अत्यंत उदात्त बनाकर उसका पूर्णतः संस्कार कर दिया। इस दृष्टिसे हिन्दीके साहित्यिक या औपचारिक रंगमंचके सर्वप्रथम संस्थापक, प्रवर्तक और व्यवस्थापक गोस्वामी तुलसीदास (१५५४–१६८०) ही हैं।

रामलीलाका रंगमंच

रामलीलाका रंगमंच पूर्णतः अव्यावसायिक रंगमंच है जिसमें समाजके उच्चकुलीन वर्गों और परिवारोंके लोग भी स्वतः रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि राक्षसों तथा सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि वानरों की विभिन्न भूमिकाएँ ग्रहण करना भी गौरवका विषय समझते हैं। इसमें स्त्रियोंका अभिनय भी सब पुरुष ही करते हैं यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी मूछोंवाले पुरुष भी लंबे घूँघट निकालकर कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मंथरा आदिका अभिनय कर लेते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता की भूमिका केवल ब्राह्मणोंके १४-१५ वर्ष तकके कुमार ही करते हैं और यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि दशरथ और जनककी भूमिका भी सदा ब्राह्मण अभिनेता ही ग्रहण करें।

गोस्वामी तुलसीदासका यह रंगमंच कई दृष्टियोंसे बड़े महत्त्वका है। सबसे विचित्र बात यह है कि जैसे यूनानके दिअनुसस देवताका रंगमंच एक ही स्थानपर था वैसे ही रामलीलाका रंगमंच एक स्थानपर न होकर उसमें आए हुए विभिन्न घटना-स्थलोंके अनुसार विभिन्न स्थानोंपर होता है जैसे अयोध्या, जनकपुरी, लंका, किष्किंधा आदि स्थानोंकी लीलाएँ उपर्युक्त नामोंवाले निर्दिष्ट तथा पूर्व-निर्मित स्थलोंपर होती हैं और इसी कारण काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके उत्तरमें समवस्थित टोला ही लंका कहलाने लगा है क्योंकि वहाँ एक निश्चित स्थानपर लंकाकी ही लीलाएँ होती हैं। इन लीला-स्थलोंमें राम, लक्ष्मण आदिके बैठनेके लिये सीढ़ीदार पक्का सिंहासन बना होता है जहाँसे उठकर वे बीचमें खुली समथल रंगस्थलीपर अथवा पक्के बने हुए चत्वरपर लीलाएँ करते हैं। जहाँ रामपक्ष और रावण-पक्ष दोनोंकी लीलाएँ साथ-साथ दिखाई जाती हैं वहाँ दोनों पक्षोंके लिये आमने सामने सिंहासन, मंच या वेदिकाएँ बनी होती हैं और बीचमें खुला हुआ मैदान या पक्का गलियारा होता है। कहीं-कहीं लकड़ीकी चौकियाँ लगाकर मंच बना लिया जाता है अथवा बहुतसे पहियोंसे युक्त ऊँची वेदिकावाले काष्ठके विमान (रथ) बना लिए जाते हैं जिन्हें धकेलकर लीला-स्थली तक पहुँचाकर समवस्थित कर दिया जाता है और लीला समाप्त होनेपर हटाकर यथा-स्थान खड़ा कर दिया जाता है।

विभिन्न समयकी लीलाएँ

बहुत स्थानोंपर ये लीलाएं कुछ दिनोंमें और कुछ रातोंमें होती हैं। दिनकी लीलाएँ राम-वनवासके पश्चात् खुले मैदानमें होती हैं जहाँ रामलीलाके ही लिये विशेष मैदान बने होते हैं जैसे दिल्लीमें रामलीलाका मैदान, जिसमें बीचमें युद्ध आदिकी लीलाओंके लिये स्थान छोड़ दिया जाता है और चारों ओर स्त्री और पुरुष दर्शकोंको बैठनेके लिये अलग-अलग वेदिकाएँ बनी होती हैं। इसी मैदानमें एक ओर अशोक-वाटिका बना ली जाती है। ये लीलाएं जनताके मनोरंजन और उन्हें रामके उदात्त चरित्रसे उपदेश प्रदान करनेके लिये निःशुल्क आयोजित की जाती हैं। इनकी व्यवस्था सम्पन्न नागरिकोंकी ओरसे की जाती है। रातकी लीलाएँ प्रायः शामियानोंके तले बने हुए विशेष मंचों पर, विशाल भवनोंमें या नाट्यशालाओंमें नाटकोंके समान की जाती हैं पर उनमें भी आमने सामने राम और रावण-पक्षकी वेदिकाएँ बनी रहती हैं। उन दोनों वेदिकाओंके बीच एक गलियारा लीलाके लिये छोड़ दिया जाता है और इस गलियारेके दोनों ओर आमने सामने मुँह करके दर्शक बैठे या खड़े होकर लीला देखते हैं।

रामलीलाकी व्यवस्था

इन लीलाओंका संचालन एक व्यास करते हैं। मंचके आगे एक ओर रामायण गानेवाले लोग ढोल, मजीरा, सारंगी, हारमोनियम आदि लेकर रामायणका एक-एक प्रसंग या प्रसंगका एक एक खंड या एक पात्रके संवादका अंश तदनुकूल भावके अनुसार रागोंमें मन्द या तीव्र लयसे गा देते हैं और तब व्यासजी अपने हाथमें रामचरितमानसकी पोथी लेकर विभिन्न पात्रोंको प्रेरणा दे-देकर (प्रौम्प्टिंग करके) पाठ कहलाते हैं। यह पाठ कहनेका ढंग पूर्णतः कृत्रिम, भावहीन और एक प्रकारके विशेष आरोहावरोहमें ढले हुए कथन-विशेषकी शैलीमें बँधा हुआ होती है जिसमें एक-एक शब्दके अंतिम अक्षरको लंबा करके लटकेके साथ कहा जाता है। किन्तु कहीं कहीं पूर्व-शिक्षित, अभ्यस्त अभिनेता समुचित नाटकीय संवादोंके समान व्यवस्थित और प्रभावशाली ढंगसे संवाद कहते और वाचिक अभिनय करते हैं। ये लीलाएँ परम्परानुसार कहीं एक महीने और कहीं दस दिनतक होती हैं।

काशीमें नक-कटैया लीला (शूर्णपखाकी नाक काटनेकी लीला) अनेक स्थानोंपर विभिन्न तिथियोंमें बहुत दिनोंतक बड़े धूमधामसे होती चलती है। उसी अवसरपर अनेक गुणी लोग अनेक प्रकारकी लागें बनाते हैं जिनमें रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराणकी कथाओंके साथ वर्तमान कालकी अनेक महत्वपूर्ण घटनाओंको भी अत्यंत कौशलपूर्ण झाँकियोंमें सजाते और प्रदर्शित करते हैं। दूसरी प्रसिद्ध लीला भरत-मिलापकी होती है जो विभिन्न तिथियों और स्थानोंपर प्रदर्शित की जाती है। इसमें कोई विशेष लीला नहीं होती। केवल एक ओरसे सीता और लक्ष्मणके साथ राम आते हैं और दूसरी ओर से भरत और शत्रुघ्न। किंतु इन दोनों परम त्यागी महापुरुषोंके उदात्त जीवन-चरित्रका भारतीय जीवनपर इतना अधिक प्रभाव है कि केवल इनके मिलन मात्रकी झाँकी पाने, उनका दर्शन करनेके लिये लाखों नर-नारी उमड़ पड़ते हैं।

यह रामलीलाका मंच ही हिन्दीका सबसे अधिक व्यवस्थित, अव्यावसायिक, सार्वजनिक, निःशुल्क, खुले मंचवाला, निश्चत समयपर सब प्रकारकी रुचियोंवाले लोगोंका एक मात्र मनोरंजन और समाराधन करनेवाला, लीला प्रदर्शित करनेवाला, शुद्ध, साहित्यिक रंगमंच है जिसका आधार

कोई नाटक न होकर महाकाव्य है और जिसपर निश्चित दिनोंमें अव्यावसायिक उच्च वर्गके लोग अपनी इच्छासे भूमिका ग्रहण करनेवाले नाट्य-शिक्षाहीन नटों द्वारा लीला की जाती है। कहीं-कहीं कुछ प्रतिभाशाली रामलीला व्यवस्थापकोंने रामलीलाके संवादोंको प्रत्येक लीलाके अनुसार लिपिबद्ध भी कर लिया है जिसके अनुसार वे अभिनेताओंको शिक्षा देते या उनसे पाठ कहलाते हैं। कहीं-कहीं रामलीलाको नाटकके रूपमें भी लिख लिया गया है और उसीके अनुसार लीला भी की जाती है किन्तु उसके धार्मिक कर्मकांडमें कोई अंतर नहीं आया।

व्यावसायिक रामलीला-मंडलियाँ

इस सार्वजनिक, अव्यावसायिक, निःशुल्क रामलीलाके अतिरिक्त कुछ व्यावसायिक रामलीला-मंडलियाँ भी हैं जो व्यावसायिक नाट्य-शिक्षित नटोंके द्वारा किसी राजा, महाराजा, या धनीके निमंत्रणपर रामलीला-सम्बन्धी नाटक खेलती हैं और निमंत्रण देनेवाले सज्जनोंसे पुरस्कार तथा शुल्क दोनों प्राप्त करती हैं किंतु उनके यहाँ भी स्वरूपोंका पूजन तथा रामलीला-सम्बन्धी धार्मिक कर्मकांड उसी प्रकार नियमित रूपसे होता है जैसा सार्वजनिक रामलीलामें, किंतु इन मंडलियोंका रंगमंच चित्रित पर्दे लगाकर बनाया जाता है जिनपर नाटकोंके पर्दोंके समान सड़क, राजभवन, उपवन, फुलवारी आदि चित्रित रहते हैं।

इस प्रकार हिन्दी रंगमंचके वास्तविक जनक गोस्वामी तुलसीदास ही हैं।



गीतावलीके क्षेपक

(मानस-तत्वान्वेषी पं० श्री रामकुमारदासजी रामायणी, मणिपर्वत, श्री अयोध्याजी)

कुछ लोग दन्तकथाओंको प्रामाणिक मानकर कह दिया करते हैं कि त्रेतामें मनुष्योंकी आयु दस हजार वर्षकी होती थी परन्तु दशरथकी अकाल मृत्यु नौ हज़ार वर्षकी अवस्थामें ही हो गई थी। उनका एक हज़ार वर्ष आयु-भोग शेष रह गया था। उसे भोग करनेके लिये श्रीरामजीने ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया अर्थात् दस हजार वर्ष अपना और एक हजार वर्ष पिताकी आयु शेषका। अतः पिताकी आयुभोग कालमें मर्यादा-पालनकी दृष्टिसे सीताका त्याग परमावश्यक था। एतदर्थ सीताका निष्कासन सर्वथा विहित है। इसी आशयके पद बनाकर गीतावलीमें भी क्षेपक बनाकर डाल दिए गए हैं।

उन विद्वानोंसे प्रश्न है कि आपके मतसे रामचन्द्रको तो पिताकी शेष आयुके कारण एक हजार वर्ष और भी जीनेका लाभ मिल सका था, परन्तु कौशल्यादि माताएँ किनकी आयुका शेष भाग लेकर श्रीरामके राज्यकाल-तक उनके साथ रहीं। क्या इसका अर्थ है कि त्रेतामें पुरुषोंकी आयु दस हजार वर्ष और स्त्रियोंकी आयु बीस इक्कीस हजार वर्षकी होती थी ? माना कि वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि तो तपोनिष्ठ थे अतः वे काल-विजयी हो सकते थे, परन्तु सिद्धार्थ, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र आदि मन्त्रीगण तो स्त्री नहीं थे तब वे क्यों इतने दिन तक जीवित रहे कि दशरथजीके शासन-कालके प्रारम्भसे ही मंत्रित्व करते रहे और श्रीरामजीका भी अन्ततक मंत्रित्व किया। जब माताओं, मंत्रियों, श्रीभरतादि भाइयों आदिको आयुका कोई नियम नहीं था तो भगवान् श्रीरामके ऊपर ही आयुका नियमित प्रतिबंध क्यों लगा दिया गया।

वस्तुतः आयुका नियम न कभी संख्याबद्ध रहा और न आज ही है। बात यह है कि जिस कालमें धार्मिक व्यवस्था जितनी ही उन्नत दशापर रहती है उस समयके आहार, जल, स्थान और वायुके उतने अधिक स्वच्छ एवं शुद्ध होनेसे उस कालमें आयुकी अधिकता तथा मानसिक एवं शारीरिक शक्तियोंकी प्रौढता बनी रहती थी। धर्मके ह्रासत्व कालमें आयुका ह्रास होना अनिवार्य है। यही तात्पर्य मनुके इस वाक्यका है—

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।"

परन्तु यह आयु तथा शक्तियोंकी व्यवस्था बद्ध जीवोंके लिये है, नित्य जीवों तथा ईश्वरके लिये नहीं। श्रीभरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न किसी प्रकारके जीव नहीं थे। वे तीनों भाई तो साक्षात् नारायण थे। ईश्वर कभी काल-कर्माधीन नहीं है, वह तो स्वेच्छाधीन है—

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै मनहिं करहु तुम सोई॥

वह चाहे किसी रूपमें कुछ क्षण रहे चाहे अनेकों युगों तक रहे।

शुक्ल यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके दूसरे मंत्रमें तथा अन्य श्रुतियोंमें भी कई बार

जिजीविषेच्छतं समाः। शतायुर्वै पुरुषः।
जीवेम शरदः शतात्। भूयश्च शरदः शतात्।

आदि कई जगह मनुष्यकी आयुके लिये शतम् शतम् ही आता है। यदि कोई शतम्का अर्थ केवल एक सौ वर्ष मान ले तो क्या उसे वेदकी मर्यादाकी रक्षा अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये एक सौ वर्षसे अधिक जीवित रहनेवालोंको किसी उपायसे मार डालना होगा? वेद क्या किसी एक युगके लिये हैं या सब युगोंके लिये। यदि वेद सभी युगवालोंके लिये हैं तो फिर त्रेतावाले मनुष्योंकी आयु शतम् अतिक्रमणकर दस हजार वर्ष कैसी? भला त्रेतामें तो मनुष्योंकी आयु दस सहस्र वर्ष निर्धारित कर दी गई परन्तु अन्य तीन युगोंकी मनुष्यायु क्या होगी? सत्ययुगमें तो बहुतोंकी आयुका लाखों वर्षोंसे भी अधिक होनेका महाभारत एवं पुराणोंमें उल्लेख है। त्रेतामें हैहयाधिपति सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुनका सत्तासी हजार वर्ष तक राज्य करना लिखा है। द्वापरमें मृत्यु-विजयी भीष्मका एक हजार वर्ष भी जीवित रहना नहीं पाया जाता। भगवान् श्रीकृष्ण तो अपने उसी चिन्मय विग्रहसे धराधामपर दो डेढ़ सौ वर्ष भी नहीं रहे। द्रोणाचार्यके लिये तो महाभारत युद्धके समयकी उनकी आयु प्रसिद्ध है कि—

युवावद्विचरद्द्रोणो शतपंचाशीति वार्षिकः।

बस केवल एक सौ पचीस वर्ष - तक ही द्रोणाचार्य जीवित रहे। दुर्योधनादि तो सौ वर्षके भीतर ही कराल कालके गालमें गमन कर गये। पर राजा भगदत्त कई युगों-तक जीवित रहा। आजकल कलियुगमें भी देखा जाता है कि जन्मते ही मर जानेवाले भी उत्पन्न होते हैं और सौ डेढ़ सौ वर्षसे अधिक आयुवाले भी इसी भारतवर्षमें मौजूद हैं। तब कोई कैसे कह सकता है कि किसी युगमें भी वेदके 'शरदः शतम्'का एक सौ अर्थ मानकर वैदिकीय नियमका पालन हुआ था या आज होता है। वास्तवमें वेदोंकी आज्ञा 'शतं समाः शरदः शतम्' आदिसे केवल एक सौ नहीं वरन् अनेक सौ वर्ष अर्थ है। क्योंकि नियम ऐसा है कि—

शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्तवाचकम्।
[शत-सहस्र-अयुत आदि शब्द अनन्तत्वके द्योतक हैं]—

इसका तात्पर्य यह है कि जहाँपर ये शब्द आवें वहाँ शतसे एक सौ, सहस्रसे एक हजार, अयुतसे एक अयुत—दशहजार और प्रयुत या लक्षसे एक लाख ही न मान लें प्रत्युत कई सौ, कई हजार, कई लाख आदि समझना चाहिये। जहाँ एककी ही अवधि बतानी होती है वहाँ एक शत, एक सहस्र एक अयुत आदि रहता है। जैसे बीते मनहु कल्प शत एका।

इसका कोई लिखित पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि त्रेतामें सभी मनुष्योंकी आयु पूरे दस हजार वर्षकी ही होती थी। कम या अधिककी नहीं और न यही प्रमाण है कि दशरथजी नौ हजार वर्ष तक ही जीवित रहे, उनकी शेष एक हजार वर्षकी आयु लेकर रामजीने अपनी आयुके ग्यारह हजार वर्ष पूरे किए। पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय १०६ श्लोक १९०-१९१ में लिखा है कि ताराने श्रीरामजीके पूछनेपर कहा कि—

षष्टिसहस्रवर्षादर्वाक् अशीततमे वर्षे। रक्षो युद्धे सुग्रीवेण राज्यमपहृतम्॥ १९०॥

पुनश्च वर्षान्तरे प्राहितः बालिना सुग्रीवः पलायितः ।
अपहृता तस्य च भार्या राज्यं च अपहृतम् । अस्मिन्नेव दिने भवतः पितुर्दशरथस्याभिषेकः ॥

अर्थात् बालिने अपनी मृत्यु आजसे साठ हजार अस्सी वर्ष पहिले मायावी दुंदुभी दानवको मारा था तथा उसी साल सुग्रीवको देश निकाला हुआ था। उसी साल आपके पिता महाराज दशरथजीका राज्याभिषेक हुआ था। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीदशरथजीने अपने मुखसे ही साठ हजार वर्षसे ऊपर तक अपना जीवित रहना विश्वामित्रजीसे कहा था—

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक। दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि ॥ १-२०-४०

इन प्रमाणोंसे श्रीदशरथजीका जीवित रहना साठ हजार वर्षसे कम किसी तरह सिद्ध नहीं होता। तब श्रीरामजी दस हजार वर्ष अपनी आयुका तथा एक हजार वर्ष पिताकी अवशिष्ट आयुका उपभोग करके कुल ग्यारह हजार वर्ष जीवित रहे यह कहना नितान्त भ्रामक है। श्रीभागवतके क्षेपकमें लव-कुशके विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेके बाद श्रीरामजीका तेरह हजार वर्ष और राज्य करना लिखा गया है।

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयेन्न जुहोत्प्रभुः। त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥

अब जो कोई दस हजार वर्षके बाद लव-कुशका जन्म मानते हों उनके हिसाबसे तो १०+१३=२३ तेईस हजार वर्ष तक श्रीरामजी राज करते रहे ऐसा सिद्ध होता है न कि ग्यारह हजार वर्ष तक ही। वा० रा०के उपोद्घातमें जो आया है कि—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

इसकी टीका करते हुए शिरोमणि टीकामें तैंतीस हजार वर्ष तक रामराज्यका काल सिद्ध किया गया है।

दशेतिदशवर्षसहस्राणि दशसंख्यागुणितानि वर्षसहस्राणि त्रिसहस्रसंख्यातवर्षाणीत्यर्थः। दशवर्षशतानि च दशसंख्यागुणितानि वर्षशतानि शतत्रयवर्षाणि सहस्रत्रयवर्षाणीत्यर्थः। एवं च त्रयस्त्रिंशतसहस्रवर्षाणि राज्यं रामो नित्यं रमणशीलः उपासित्वा कृत्वेत्यर्थः। बहुवचनान्तसहस्रशब्देन बहुवचनान्त शतशब्देन च सहस्रत्रय शतत्रय लाभः कपिंजलाधिकरणन्यायेनावगन्तव्यः। एकसहस्रैक शतार्थकत्वं तु तत्र नोपपद्यते, तयोर्बहुवचनान्तत्वात् विंशत्याद्याः सदैकत्वे इत्यनुशासने नैकशेषमन्तरा बहुवचनान्तत्वस्य दुर्लभत्वात्। अतएव त्रयोदशाब्दसाहस्रं ब्रह्मचर्यमखण्डितम्। इति भागवतं साऽनुकूलम् शतानि सहस्राणीत्यादौ द्वितीया "कालाध्वनो" इति सूत्रविहिता।··· ··· ··· त्रयस्त्रिंशतसहस्रवर्षाणीत्यर्थः। उपलक्षणमेतत् दशवर्षशतानिचेत्यस्येति वा। यागकालातिरिक्तकालबोधकत्वे तु न काप्यनुमतिरिति दिक्। अतो न विरोधः।"

व्याख्याका भाव ऊपर आ गया है श्रीरामजीके पिता श्रीदशरथजी साठ हजार वर्षसे भी अधिक राज्य भोग करके पुत्रवान् हुए थे और उन्हींके पुत्र चारों भाई श्रीराम यदि तैंतीस हजार वर्ष और विद्वानोंके मन्तव्यानुसार ग्यारह हजार वर्ष तक जीवित रहे तो इसमें आश्चर्य या शंका करनेका क्या कारण है ?

एक तो आर्ष प्रमाणाभावसे दूसरे सतर्कानुमोदित न होनेसे दशरथजीकी आयुषादिकी कल्पना सर्वथा अनुपयुक्त है।

सर्प, सिंह आदि हिंसक जन्तुओं द्वारा वध किया जाना, अकस्मात् आगमें जलकर मर जाना, पानीमें डूबकर मर जाना, वृक्षादिसे गिरकर मर जाना, दीवाल आदिके नीचे दबकर मर जाना ही

अकाल मृत्यु कहा जाता है। वैसा कुछ दशरथजीको नहीं हुआ था। मनुस्मृतिमें अकाल मृत्युकी बात बताते हुए कहा गया कि—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ।। ५-४

[जो वेदाभ्यास नहीं करते, जो सदाचार त्यागकर असदाचारी हो जाते हैं, जो कर्तव्य-कार्यमें आलस्य करते और दूषित अन्न खाते हैं उन्हीं द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) की अकाल मृत्यु होती है। विश्वकोष (कलकत्ता)-में किसी स्मृतिका प्रमाण देकर अकाल मृत्युके तीन कारण बताए गए हैं—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ।।

[विहितका त्याग, निन्दितका ग्रहण और इन्द्रियोंका अनिग्रह, इन्हीं तीन कारणोंसे मनुष्यकी अकाल मृत्यु होती है।] परम प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ सुश्रुत में एक सौ प्रकारकी अकाल मृत्यु कही गई है। उनमेंसे भी किसी प्रकारकी अकाल मृत्यु दशरथजीकी नहीं हुई थी तब आयु शेषकी कैसी बात ? और—

जौ बिनु अवसर अथव दिनेशू।

—की उत्प्रेक्षावाली जो बात है वह तो केवल इतने ही अंशोंमें ग्राह्य है कि दशरथजी बिना किसीका विधिवत् राज्याभिषेक किये ही मर गये जब कि राजधानीमें राजवंशका कोई भी पुरुष उपस्थित नहीं था। इससे प्रजामें विप्लव होनेका डर राजनीति-विशारदोंके हृदयमें उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। इसीसे कहा कि—

तौ केहि कहहु न होइ कलेशू।

अतः दशरथजी की आयु-शेष की कल्पना अनर्गल एवं महान् दोषावह है। इसी सिलसलेमें दशरथजीके कुछ पूर्वजोंकी आयुका लेखा-जोखा भी दर्शनीय है—

१—राजा सगर तो कुल तीस हजार वर्ष ही राज्य करके, बिना वन गये स्वर्ग चले गये। देखिये वा० रा० बालकांड

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ।। ४१।२९

२—राजा अंशुमान बत्तीस हजार वर्ष राज्य करके वन गये और कुछ दिन तप करके तब स्वर्ग गये—

द्वात्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणि सुमहायशः। तपोवन गतं राम ! लेभे स्वर्गं तपोधनः ।। ४२।४

३—राजा दिलीप प्रथमने भी बत्तीस हज़ार वर्ष राज्य करके बिना वन गये ही अयोध्यामें राज्य करते हुये ही रोगसे पीड़ित होकर शरीर छोड़ा—

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान्। द्वात्रिंशद्वर्षसाहस्रं राजा राज्यमकारयत् ।। ४२।८ ।।

व्याधिना नृपशार्दूलः कालधर्ममुपेयिवान् ।। ९ ।।

४—भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्व अध्याय १ में इक्ष्वाकुका ३६ हजार वर्ष करना लिखा है।

तच्छिक्ववतोऽभवत् पुत्र इक्ष्वाकुः स महीपतिः ।। ४ ।। ३ ।।

षट्त्रिंशच्च सहस्राणामब्दं राज्यं तदाऽकरोत् ।। ६ ।।

५—हरिश्चन्द्रने २० हजार वर्ष राज्य किया।

राज्यं विंशतिसाहस्रं च रोहितो नाम तत्सुतः ।। १।१।२४ ।।

५—सगर-पौत्र अंशुमान द्वितीयने ३० हजार वर्ष राज्य किया।

त्रिंशत्सहस्रवर्षं तद्राज्यं वै मुनिभिः स्मृतम् ।। ३० ।।

७--अम्बरीषके पुत्र शतहीनने १८ हजार वर्ष राज्य किया।

अम्बरीषेण भूतेन शतहीनं कृतम् पदम्। चतुर्थे चरणे तस्य चाष्टादशसहस्रकम्॥

अब्दे राज्यं शुभं ज्ञातं कर्मभूम्यां च भारते॥ ३६॥

८-९—हरिवर्माने तथा दशरथ प्रथमने २९७००वर्ष राज्य किया।

ऊनत्रिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च। हरिवर्माऽकरोद्राज्यं तस्माद्दशरथोऽभवत्॥

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं··· ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥ ४४॥

१०—खट्वांगने ३० हजार वर्ष राज्य किया॥ ४६,४८॥

११—दीर्घबाहुने २० ··· ,, ··· ॥ ४९॥

१२—सुदर्शनने १५ ··· ,, ··· ॥ ५२-१-२३॥

इत्यादि उपर्युक्त दशरथके पूर्वज राजाओंने जो ३० बत्तीस हजार वर्ष राज्य करके मृत्यु-का आलिंगन किया था उनमें किसीके लिये कहीं भी उनकी आयुशेषकी कल्पना नहीं की गई है। तब जिस पुरुषपुंगवने अपने मुखसे ही स्वीकार किया है कि—

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक॥ १८।१०

[मेरी साठ हजार वर्षकी आयु हो जानेके बाद मेरे पुत्र पैदा हुए हैं।] उसके लिये यह कष्ट कल्पना क्यों ? पद्मपुराणका प्रमाण तो आप इसी संदर्भमें अभी पढ़ते आ रहे हैं। अतः वाल्मीकि, व्यास आदि मंत्र-द्रष्टा ऋषियों और महाकवियोंने जब महाराज दशरथका जीवित रहना साठ हजार वर्षसे अधिक बतलाया है तब उनके लिये आयु शेषकी कल्पना अत्यन्त अनुपयुक्त है। पिताके आयु शेषको भोगनेके लिये श्रीरामजी द्वारा सीता-त्यागकी कल्पना करनेवाले बुद्धिमानोंने क्या कभी इस बातकी भी कल्पना की है कि जब दशरथजीकी आयु भोगनेके लिये सीताजीसे पत्नीत्व भाव रखना गर्हित समझकर सीता-त्याग करना समुचित जान पड़ा तो क्या दशरथजीकी आयु भोग कालमें कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदिके साथ भी मातृत्व संबंधके त्याग दिये जाने और उनके साथ दशरथके समान सम्बन्ध एवं तदनुकूल व्यवहारकी कल्पना नहीं की जा सकती ? और इस कल्पनाके बिना पिताके आयु-भोगार्थ सीता-त्यागकी कल्पना अधूरी ही रह जाती है।

अतः निश्चय ही वे बारह पद्य (उत्तरकांड २५ से ३६ तक पद्य) क्षेपक अथ च अमान्य हैं।

स्पष्ट है कि कुछ महानुभावोंने गंगावतरण, श्रवणोपाख्यान, रामेश्वर लिंग-स्थापन, सुलोचना सती, अहिरावण, नरान्तक वध एवं मणिमाल-भंजन आदि अनेक कथायें व्यास समास रूपसे रामचरितमानसमें मिला दी हैं। सूरके कई पद सूरके स्थानपर तुलसी, रघुबरके स्थानपर यदुबर, श्यामके स्थानपर राम रखकर गीतावली एवं कृष्णगीतावलीमें मिला दिए हैं। कहा जाता है कि भृंग कविके कई पद कहीं भंगके श्लेषसे ही और कहीं-कहीं तुलसी नाम रखकर कवितावलीमें संगृहीत कर दिए गए हैं। बहुतसे दोहे मिलाकर तुलसी सतसई रच दी गई है, दोहावलीमें अनेक दोहे मिलाये गये हैं। रामाज्ञा तथा नहछूमें कई पद निकाले गये और कई पद मिलाये गये हैं। जिन महानुभावोंने ऐसा किया है उन्हीं सज्जनोंकी संसृष्टि गीतावलीके उत्तरकाण्डके पचीसवें पदसे छत्तीसवें पद तककी है, एतदर्थ उनका कोई मूल्य नहीं होना चाहिये। गीतावलीमें वर्णित कथाओंका सूत्र कविने स्वयं गीतावलीके अन्तिम पदमें दे दिया है। उसमें सीता-त्यागका संकेत भी न होनेसे २५ से ३६ तक बारह पद स्वतः क्षेपक सिद्ध हो जाते हैं।

रामका वन-प्रवास और रामलीला

श्री इन्द्रचन्द्र नारंग, ६३ टैगोर नगर, प्रयाग

राजा दशरथने वसिष्ठ वामदेव आदि ब्राह्मणोंसे कहा—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः । यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम् ।। वा०रा०२,३,४।

[यह चैत्रका पुण्य मास है जिसमें वन फूले हुए हैं । रामचन्द्रके अभिषेककी सब सामग्रियाँ आप लोग एकत्र कीजिए ।]

फिर रामको बुलाकर कहा—

अद्य चन्द्रोऽभ्युपगतम् पुष्यात् पूर्वं पुनर्वसुम् । श्वपुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः ।।२।४।२१।।
तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम् । श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परन्तप ।।२,४,२२।।

[आज चन्द्रमा पुष्यसे पहलेके नक्षत्र पुनर्वसुमें आ गया है । कल पुष्य-योग निश्चित है ऐसा ज्योतिषीगण कहते हैं ।२१। उसी पुष्य नक्षत्रमें तुम अभिषेक कराओ ऐसा मेरा मन मुझे प्रेरणा दे रहा है । हे परन्तप ! कल मैं तुम्हारा यौवराज्य-पदपर अभिषेक करूँगा ।२२।]

चैत्र शुक्ला नवमीको पुनर्वसु नक्षत्रमें रामका जन्म हुआ था और चैत्र शुक्ला दशमीको पुष्य नक्षत्रमें भरतका । पुष्य नक्षत्र कभी चैत्र शुक्ला दशमीको आता है कभी नवमीको । जिस वर्ष रामका जन्म हुआ था उस वर्ष पुष्य नक्षत्र चैत्र शुक्ला दशमीको आया था । अब जब रामका अभिषेक होने लगा तो पुष्य नक्षत्र नवमीमें था—

उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतेऽहनि । लग्ने कर्कटके प्राप्ते जन्म रामस्य च स्थिते ।।२,१५,३।।
अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम् । काञ्चना जलकुम्भाश्च भद्रपीठं स्वलंकृतम् ।।२,१५,४।।

[निर्मल सूर्योदय होनेपर जब पुष्य नक्षत्रका योग आया तथा श्रीरामका जन्म दिन और कर्क लग्न उपस्थित हुआ, उस समय ।३। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने रामके अभिषेकके लिए जलसे भरे सुवर्णके घट लाकर रखे और भद्रपीठको अलंकृत किया ।४।]

यों रामके जन्मदिन ही उनके अभिषेककी तैयारी हुई और उसी दिन उन्होंने वनके लिए प्रस्थान किया ।

भरत रामको लौटा लानेकें लिए चित्रकूट गये । भरतके अनेक प्रकारसे अनुनय विनय करनेपर भी राम १४ वर्षकी अवधि वनमें बिताये बिना अयोध्या लौटनेको राजी न हुए । तब भरतने रामसे उनकी पादुकाएँ माँग लीं । पादुकाएँ लेकर—

'स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् । चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ।।२,११२,२३।।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन । तवागमनमाकांक्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ।।२,११२,२४।।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप । चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ।।२,११२,२५।।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ।।२,११२,२६।।
शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् । मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ।।२,११२,२७।।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन । इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्जह ।।२,११२,२८।।

[भरतने उन पादुकाओंको प्रणाम कर रामसे कहा— मैं भी चौदह वर्ष जटा और चीर धारण करूँगा, फल-मूल खाऊँगा और आपके लौटनेकी प्रतीक्षा करता हुआ नगरके बाहर रहूँगा

।२३-२४। ......चौदह वर्ष पूरे होनेपर अगले दिन यदि आपके दर्शन मुझे न मिले तो मैं अग्नि-प्रवेश करूँगा। ऐसा ही होगा—अर्थात् मैं चौदह वर्ष पूरे होते ही लौट आऊँगा—यह प्रतिज्ञा कर रामने भरतका आलिंगन किया ।२५-२६। और शत्रुघ्नका आलिंगन कर कहा—माँ कैकेयीपर क्रोध मत करना, उनकी रक्षा करना, तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है। यह कहकर रामने रोते-रोते भरतको विदा किया ।।२७-२८।।]

पिताके वचनको सत्य करनेके लिए रामको चौदह वर्ष वन-वास करना है और चौदह वर्ष जिस दिन पूरे हो जाएँगे उससे अगले दिन अयोध्या लौट आनेके लिए राम भरतसे प्रतिज्ञा-बद्ध और स्नेह-बद्ध हैं। अर्थात् ठीक चौदह वर्ष बाद चैत्र मासमें पुष्य नक्षत्रमें—भरतके जन्मदिनपर —रामको वनसे लौटकर अयोध्या पहुँच जाना है।

'रामो द्विर्नाभिभाषते'के अनुसार राम चैत्र मासमें पुष्य नक्षत्रमें अयोध्या लौटे। इसका विवरण वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रकार है—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणानुजः। भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ।।६,१२४,१।।

[चौदह वर्ष पूरे होनेपर पंचमी तिथिको रामने भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनिको प्रणाम किया।]

बातचीतके अन्तमें भरद्वाज मुनिने कहा—

अहमप्यद्य ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर। अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ।।६,१२४,१७।।

[शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राम ! मैं भी आज तुम्हें वर दूँगा। तुम मेरा अर्घ्य ग्रहण करो, कल अयोध्या जाना।] (चैत्र शुक्ला) पंचमीको राम भरद्वाज-आश्रममें पहुँचे। मुनिके आग्रहपर उस रात वहीं रहे। परन्तु उन्होंने हनुमानको उसी समय अयोध्या भेजा। हनुमानने भरतके पास जाकर रामका पूरा चरित भरतको सुनाकर कहा—

तां गंगां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ। अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ।।६,१२६,५४।।

[उस गंगा-तक फिर आकर (भरद्वाज) मुनिके पास ठहरे। कल पुष्य योगमें आप रामके निर्विघ्न दर्शन करेंगे।]

अयोध्यामें रामके स्वागतकी तैयारी हुई। अगले दिन—

कृत्स्नं तु नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत्। समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ।।६,१२७,२३।।
क्वचिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता। नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परन्तपम् ।।६,१२७,२४।।
क्वचिन्न चानुदृश्यन्ते कपयः कामरूपिणः। अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत् ।।६-१२७,२५।।
.................................। निःस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ।।६,१२७,२५।।
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम्। रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य सालवनं प्रति ।।६,१२७,२६।।
मन्ये सालवनं रम्यं तोलयन्ति प्लवंगमाः। तदेतत् दृश्यते दूरात् विमानं चंद्रसंनिभम् ।।

[सारा (अयोध्या) नगर नन्दिग्राममें आ गया। यह देखकर भरत हनुमानसे बोले।२३।— बानरोंका चित्त चंचल होता है। कहीं आपने वानरोंके उसी गुणका सेवन तो नहीं किया (आर्य रामके आनेकी झूठी खबर तो नहीं उड़ा दी ?) परन्तप आर्य राम मुझे कहीं दिखाई नहीं देते ।२४। और न कामरूपी वानर कहीं दिखाई देते हैं। भरतके ऐसा कहनेपर हनुमानने कहा ।२५। हर्षसे भरे वानरोंका भयंकर कोलाहल सुनाई देता है। ।२८। मैं समझता हूँ वानर-सेना गोमती

नदीको पार कर रही है। सालवनकी ओर उठी धूलकी वर्षाको देखिए। २६। मैं समझता हूँ वानर सालवृक्षोंको हिला रहे हैं और वह दूरसे चन्द्रमा जैसा विमान दिखाई दे रहा है।३०।

एतस्मिन् राघवौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ। सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ।।६,१२७,३३।।

ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत्। स्त्रीबालप्रवृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ।।६,१२७,३४

[इस (विमान) में वैदेहीके साथ दोनों वीर राघव बैठे हैं और महातेजस्वी सुग्रीव और राक्षस विभीषण भी हैं।३३। सब स्त्रियों, बालकों, युवाओं और वृद्धोंने हर्ष गद्गद स्वरसे कहा— ये राम आ रहे हैं। उनका वह तुमुल नाद स्वर्गलोक-तक गूँज उठा।]

× × ×

अब इस वन-वास-अवधिकी अन्य घटनाओंपर भी दृष्टिपात किया जाय।

चैत्र मासमें पुष्य नक्षत्रमें राम अयोध्यासे रथपर चले। पहली रात उन्होंने तमसाके उत्तर तटपर बिताई। दूसरे दिन प्रातः तमसा पारकर चल दिये। वेदश्रुति गोमती और स्यन्दिका नदियोंको पारकर शृंगवेरपुरके पास गंगाके उत्तर तटपर इंगुदी वृक्षके नीचे दूसरी रात बिताई। प्रातः रथ लौटाकर सुमन्तसे विदा ले गंगा पारकर वत्सदेशमें घुसे और पैदल चल दिये। गंगा-तक कोसलकी सीमामें वे केवल जल पीकर निराहार रहे थे। गंगा पारकर उन्होंने चार मृगोंको मारा और एक वृक्षके नीचे तीसरी रात बिताई। दो दिन निराहार रहनेके कारण तीसरे दिन बहुत चल न सके। चौथे दिन सूर्योदय होनेपर चल दिये और शाम तक गंगा-यमुना संगमपर भरद्वाज-आश्रममें जा पहुँचे। रामने भरद्वाजसे वन-वास-कालमें रहनेका स्थान पूछा। भरद्वाजने बताया—यहाँसे दस कोसपर भरद्वाज आश्रम है। आप लोग वहाँ जाकर रहिए। चौथी रात उन्होंने भरद्वाज-आश्रममें बिताई। पाँचवें प्रातः उठकर भरद्वाज मुनिसे चित्रकूटका रास्ता पूछकर राम चित्रकूटको चले। यमुना पारकर यमुनाके साथ-साथ उलटी (पश्चिमकी) ओर चल दिये। पाँचवीं रात उन्होंने यमुनाके दक्षिण तटपर बिताई। छठे दिन वहाँसे चले तो—

ततः सम्प्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह। सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ।।२,५६,५।।
आदीप्तानिह वैदेहि सर्वतः पुष्पितान् नगान्। स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्यये ।२।५६।६
पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्। फलपुष्पैरनतवान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ।।२,५६,७
एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति। रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंसारसंकटे ।।२,५६,६।।

उस समय लक्ष्मणके साथ प्रस्थित हुए रामने सीतासे कहा।५। वैदेहि ! इस वसन्त ऋतुमें सब ओरसे खिले हुए इन पलाश-वृक्षोंको देखो। ये अपने ही फूलोंसे मालाधारी प्रतीत होते हैं।६। और फूलों और फलोंके भारसे झुके हुए भिलावे और बेलके वृक्षोंको देखो। मनुष्योंने इनका सेवन नहीं किया। हम लोग निश्चय ही (इनसे) जीवन-निर्वाह कर सकेंगे। ७। पुष्पोंसे आच्छादित रमणीय वन-प्रदेशमें वह चातक पुकार रहा है और मोर उसके उत्तरमें कूक रहा है ।।६।।

इस वसन्त वर्णनसे इस बातकी पुष्टि हुई कि राम वसन्त ऋतु (चैत्र मास) में वनवासके लिए गये थे। उस (छठे) दिन शाम तक वे चित्रकूट पहुँच गये।

× × × ×

स राजा रजनीं रामे षष्ठीं प्रवाजिते वनम्। अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ।।२,६३,४।।

[उस राजा दशरथको रामके वन जानेके बाद छठी रातको (ठीक उसी रात जिस रात राम चित्रकूट पहुंचे) आधी रातके समय अपने दुष्कर्मका स्मरण हुआ।]

उसी रात पुत्र-शोकमें उन्होंने प्राण त्याग दिये। अगले दिन वसिष्ठने भरतको बुला लानेके लिए दूतोंको भेजते हुए कहा—

एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोक नन्दन। श्रूयतामितिकर्तव्यं सर्वानिव ब्रवीमि वः ॥२,६८,५॥
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः। त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद् भरतो मम ॥२,६८,६॥
पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः। त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥२,६८,७॥

[सिद्धार्थ ! विजय ! जयन्त ! अशोक ! नन्दन। तुम सब यहाँ आओ। तुम्हें जो काम करना है वह सुनो, मैं तुम सबसे कहता हूँ। ५। तुम लोग शीघ्रगामी घोड़ोंपर सवार होकर तुरन्त राजगृह नगर जाकर वहाँ शोकके भावको प्रकट न करते हुए मेरी आज्ञासे भरतसे कहो।६। पुरोहित और सब मन्त्रियोंने आपसे कुशल कहा है। आप तुरंत यहाँसे चलिए। आपसे वहाँ अत्यावश्यक काम है। ७।]

दूत तुरन्त चल दिये। जिस दिन शाम वे लोग राजगृह पहुँचे उससे अगले दिन प्रातः भरत नानासे विदा लेकर अयोध्याको रवाना हुए। अयोध्या पहुँचकर कैकेयीके पूछनेपर भरतने कहा—

अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः। अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे।२।७२।८।

[नानाके घरसे चले मुझे आज सातवीं रात है। नाना और युधाजित् मामा कुशल-मंगलसे हैं।]

भरत सात दिनमें राजगृहसे अयोध्या पहुँचे। दूतोंको अयोध्यासे राजगृह जानेमें भी लगभग इतने ही दिन लगे होंगे। यों दशरथकी मृत्युके पंद्रह सोलह दिन बाद और राम वन-गमनके इक्कसी-बाईस दिन बाद भरत ननिहालसे अयोध्या पहुँचे। भरतका वह दिन रोते और अपनेको निर्दोष बताते बीता। अगले दिन भरतने दशरथके शवका दाह-संस्कार किया। तदनन्तर दस रात्रियाँ भूमि-शयन करके बिताईं।

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥२,७७,२०॥

[भरतके साथ रानियों, मन्त्रियों और पुरोहितोंने भी राजा दशरथको जलांजलि दी। फिर सब आँसू बहाते हुए नगरमें आये। दस दिन भूमिपर सोते हुए उन्होंने दुःखमें बिताये।]

भरतने बारहवें दिन श्राद्ध और तेरहवें दिन अस्थि-निचय किया।

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे। समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥२,७९,१॥
गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः। रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम्।२,७९,२।
त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः। संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥२।७९।३॥

[तदन्तर चौदहवें दिन प्रातःकाल सब राजकर्त्ता (जो लोग राजाके चुनावमें मत देनेके अधिकारी थे) लोग मिलकर भरतसे इस प्रकार बोले।१। महाराज दशरथ, जो हमारे सर्वश्रेष्ठ गुरु थे, अपने ज्येष्ठ पुत्र राम और महाबली लक्ष्मणको वन भेजकर स्वर्ग चले गये। अब यह राज्य नायक (राजा) के बिना है। हे महायशस्वी राजपुत्र। आप हमारे राजा होइये। इसमें कुछ अपराध न होगा क्योंकि यह संगत बात है।]

भरतने रामको लौटा लानेकी बात कही। अगले (पंद्रहवें) दिन वसिष्ठने भरतका अभिषेक करना चाहा। भरतने अस्वीकार किया। रामको लौटा लानेके लिए बन चलनेकी तैयारीका पहले दिन दिया हुआ आदेश दोहराया। सोलहवें दिन भरत माताओं, मन्त्रियों और सेना-सहित राम-दर्शनके

लिए चल दिये। पहले दिन शृंगवेरपुरमें रुककर दूसरे दिन भरद्वाज-आश्रम पहुँच गये। वहाँसे चलकर दो-तीन दिनमें चित्रकूट।

रामके जानेके छह दिन बाद दशरथकी मृत्यु हुई। उसके पंद्रह सोलह दिन बाद भरत अयोध्या पहुँचे। पंद्रह दिन अयोध्यामें रहे। सोलहवें दिन चित्रकूटकी ओर चले। पाँच-छह दिनमें वहाँ जा पहुँचे। यों रामके वन-गमनके लगभग डेढ़ मास बाद भरत चित्रकूट पहुँचे। रामको तब चित्रकूट पहुँचे सवा महीना ही हुआ होगा। भरतके लौट जानेके कुछ ही दिन बाद (भरतकी सेनाके हाथी-घोड़ोंकी लीदें अभी चित्रकूट-वनमें पड़ी ही थीं) राम चित्रकूटसे चल दिये। यों राम लगभग दो मास चित्रकूटमें रहे, इससे अधिक नहीं।

चित्रकूटसे चलकर राम अत्रि मुनिके आश्रममें पहुँचे। वहाँसे चलकर एक रात रास्तेमें मुनियोंके आश्रममें रुककर अगले दिन उन्होंने विराधका वध किया। विराध-कुंडसे चलकर शरभंग-आश्रम आये। रामके वनमें रहने-योग्य स्थान पूछनेपर शरभंग मुनिने रामको सुतीक्ष्ण-आश्रममें जानेको कहा। राम सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें आये। सुतीक्ष्ण मुनिसे उन्होंने पूछा—मैं वन-वासके लिए कहाँ कुटी बनाऊँ? तो सुतीक्ष्णने कहा—आप यहीं रहिए। अगले दिन रामने सुतीक्ष्णसे कहा कि मैं दण्डकारण्यमें मुनियोंके सब आश्रमोंको देखना चाहता हूँ, मुझे बिदा दीजिए। सुतीक्ष्णने कहा—

पश्याश्रमपदे रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम्। एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥३,८,१२॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु। आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥३,८,१६॥

[वीर, तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले दण्डकारण्यवासी इन तपस्वी मुनियोंके रमणीक आश्रमोंका दर्शन कीजिये।१२। वत्स लक्ष्मण! तुम जाओ। राम! आप भी जाइये। दण्डकारण्यमें मुनियोंके आश्रमोंका दर्शन करके आप लोगोंको फिर इसी आश्रममें लौट आना चाहिए।]

राम वहाँसे चल दिये।

प्रविश्य सहवैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः। तदा तस्मिन् स काकुत्स्थः श्रीमत्याश्रममंडले ॥३,११,२२॥
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः। जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥३,११,२३॥
येषामुषितवान् पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित्। क्वचित् परिदशान् मासानेकसंवत्सरं क्वचित् ॥३,११,२४॥
क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्चषट् च परान् क्वचित्। अपरत्राधिकान् मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ॥३,११,२५॥
त्रीन् मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत् सुखम्। तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ॥ ३,११,२६ ॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश। परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ॥ ३,११,२७ ॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह। स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ॥ ३,११,२८ ॥
तत्रापि न्यवसद् रामः किंचित् कालमरिन्दमः।··· ··· ··· ··· ॥ ३।११।२९ ॥

[लक्ष्मण और सीताके साथ रामने उस आश्रममें प्रवेश करके सुखपूर्वक निवास किया। वहाँ महर्षियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। तदनन्तर राम उन सभी तपस्वी मुनियोंके आश्रमोंमें बारी-बारीसे गये।२२-२३। जिन तपस्वियोंके आश्रमोंमें वे पहले रह चुके थे उनके आश्रमोंमें फिर जाकर रहे—कहीं दस महीने, कहीं वर्ष भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच महीने, कहीं छह महीने, कहीं अधिक महीने, कहीं उससे भी अधिक ॥ २४-२५ ॥ कहीं तीन महीने और कहीं आठ महीने राम सुखसे रहे। इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंमें रहते हुए उनके दस वर्ष बीत

गये । सब ओर घूम फिरकर राम सीताके साथ फिर सुतीक्ष्णके आश्रमपर ही लौट आये । उस आश्रममें आकर मुनियोंसे पूजित होकर ॥ २६-२६ ॥ राम कुछ काल वहीं रहे……।२८।]

रामने चित्रकूटमें अपनी कुटी बनाई थी । चित्रकूटसे चले आनेके बाद इन दस वर्षोंमें उन्होंने अपनी कुटी नहीं बनाई; मुनियोंके आश्रमोंमें घूमते-फिरते और सुखसे रहते रहे ।

सुतीक्ष्ण-आश्रममें कुछ काल रहनेके बाद वे सुतीक्ष्ण मुनिसे अगस्त्याश्रमका मार्ग पूछकर चल दिये । अगस्त्याश्रम पहुँचकर अगस्त्यसे रहनेका स्थान पूछा । अगस्त्यने बताया—

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः । देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥ ३,१३,१३ ॥
तत्र गत्वाऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह । रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥ ३,१३,१४ ॥

[तात ! यहाँसे दो योजनकी दूरीपर पञ्चवटी नामसे विख्यात सुन्दर स्थान है । वहाँ फल, मूल और जलकी अधिकता है और मृग भी बहुत हैं । १३ । लक्ष्मणके साथ वहाँ जाकर आश्रम बनाकर पिताके आदेशका पालन करते हुए सुखपूर्वक रहिए ।१४। पञ्चवटी आकर राम अपना आश्रम बनाकर रहने लगे ।]

रामके पञ्चवटी आश्रमसे रावणने सीता-हरण किया । लंका पहुँचकर रावणने सीतासे विवाह-का प्रस्ताव किया । सीताके इनकार करनेपर रावणने कहा—

शृणु मैथिलि मद् वाक्यं मासान् द्वादश भामिनी । कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनी ।३,५६,२४
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥ ३,५६,२५ ॥

[चारुहासिनि मैथिलि ! मेरी बात सुनो । मैं तुम्हें बारह महीनेका समय देता हूँ । इस अवधिमें यदि तुम मेरे पास नहीं आओगी तो रसोइये मेरे कलेवेके लिए तुम्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे ।२४-२५।

रावणने अपना प्रस्ताव स्वीकार करनेकी एक वर्षकी अवधि सीताको दी ।

सीताको खोजते हुए पंपा सरोवरपर पहुँचकर रामने कहा —

सुखानिलोऽयं कालः प्रचुरमन्मथः । गंधवान् सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥ ४,१,१० ॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः । सीतया विप्रहीनस्य शोकसंदीपनो मम ॥ ४,१,२२ ॥
संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः । अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यन्तस्ततस्ततः ॥ ४,१,३६ ॥

[लक्ष्मण ! इस समय सुखदायी वायु चल रहा है जिससे कामोद्दीप्ति होती है । यह चैत्रका महीना है । वृक्षोंमें फूल फल आ गये हैं, चारों ओर सुगन्ध फैल रही है । १० । लक्ष्मण ! नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरवोंसे गूँजता हुआ यह वसन्तका समय सीतासे बिछुड़े हुए मेरे लिए शोक बढ़ानेवाला हो गया है । २२ । लक्ष्मण ! वनमें बहनेवाला चैत्र मासका वायु मुझे संताप दे रहा है । इधर-उधर नाचते हुए मोर शोभित हो रहे हैं । ३६ ।]

स्पष्ट है कि राम चैत्र मासमें पंपा-सरोवर पहुँचे । यों सीता-हरण चैत्रमें हुआ । रावणने सीताको एक वर्षकी अवधि दी । इस अवधिमें सीताका उद्धार होना चाहिए और जैसा हम आगे देखेंगे, हुआ भी । सीता-उद्धार होते ही रामको भागकर अयोध्या आना पड़ा—भरतको दिया वचन पूरा करनेके लिए । इसलिए यह वनवासका अन्तिम (चौदहवाँ) वर्ष था । १० वर्ष बिताकर राम पंचवटी आये थे, चौदहवाँ वर्ष लगते ही सीता-हरण हुआ । यों रामके अन्तिम वार सुतीक्ष्ण-आश्रम-निवाससे लेकर सीता-हरणसे पहले-तककी सब घटनाएँ ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें—इन तीन वर्षोंमें घटीं ।

बालि-वधके बाद रामने सुग्रीवसे कहा था—

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः । प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ।।४।२६।१४
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् । अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ।।४।२६।१५
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता । प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ।।४।२६।१६
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः । एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ।।४।२६।१७

[सौम्य ! वर्षाके चार मास आ गये हैं, उनका पहला महीना यह श्रावण है ।। १४ ।। यह उद्योग करनेका समय नहीं है, तुम अपनी नगरीमें प्रवेश करो, मैं इस पर्वतपर लक्ष्मणके साथ रहूँगा ।। १५ ।। पर्वतकी यह गुफा रमणीय है, विशाल है, इसमें हवा आती है, पर्याप्त जल और कमल हैं ।। १६ ।। कार्तिकका महीना लगनेपर तुम रावण-वधके लिए प्रयत्न करना··· ··· ···यह हम लोगोंका समय (ठहराव, क़रार) है; सौम्य ! इस समय तुम अपने घर जाओ ।१७।]

सुग्रीव अपने घर चला गया । राम-लक्ष्मणने पर्वत-गुफामें वर्षाके चार मास बिताये । इधर सुग्रीव राज्य-पत्नी रुमा और ताराको पाकर विलासमें पड़ गया । उसे चार महीने बीत जानेका ध्यान ही न रहा ।

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः । वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीडितः ।। ४।३०।१
पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् । शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ।। ३।३०।२
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् । दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ।। ४।३०।३

[सुग्रीवके घर जा बैठनेपर, आकाशके मेघोंसे मुक्त हो जानेपर, बरसातमें काम और शोकसे पीडित राम ।१। आकाशको साफ और चन्द्रमण्डलको विमल देखकर और ज्योत्स्ना छिटकी शरत्-की रातको देखकर ।२। सुग्रीवको कामासक्त और जानकीको खोई हुई देखकर तथा समयको बीतता देखकर बहुत दुखी हुए और मूर्छित हो गये ।]

संज्ञा प्राप्तकर बहुत विलाप करनेके बाद उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—

अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज । उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ।। ४।३०।६०
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज । न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ।। ४।३०।६१
चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः । मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ।। ४।३०।६४
वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः । व्यतीतांश्चतुरो मासान् विहरन्नावबुध्यते ।। ४।३०।७८

[राजपुत्र ! परस्पर वैर रखनेवाले और विजय चाहनेवाले राजाओंका उद्योग-काल आ गया है ।६०। राजाओंके यात्रारम्भका यही काल है परन्तु न तो सुग्रीव दिखाई पड़ता है और न उसका वैसा कुछ उद्योग ।६१। शोकसे पीडित मुझे सीताको देखे बिना सौ वर्षोंके समान दीर्घ बरसातके ये चार महीने बीत गये ।६४। सुग्रीवने वर्षा बीतते ही सीताको खोजनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु वर्षाके चार महीने बीत गये इस बातको विहारमें मस्त सुग्रीव जान नहीं पाया ।७८।]

उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वया वीर महाबल । मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनमिदं वचः ।। ४।३०।८०
न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः । समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ।। ४।३०।८१

[हे महावीर ! जाओ, सुग्रीवको मेरे क्रोधका रूप बताओ और उससे कहो ।८०। बाली मरकर जिस रास्तेसे गया था वह रास्ता बन्द नहीं हो गया । सुग्रीव ! अपने करारपर दृढ रहो, बालीके रास्तेपर (परलोक) मत जाओ । ८१ ।]

लक्ष्मणने किष्किन्धा जाकर सुग्रीवको धमकाया। फिर सुग्रीव और लक्ष्मण रामके पास आये। सुग्रीवने वानरोंको बुलाकर चारों दिशाओंमें सीताको खोजने भेजा। खोजकर वापिस आनेके लिए एक महीनेकी अवधि दी। अंगद, हनुमान, जाम्बवान् और नील आदि प्रधान वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा। इन लोगोंने दक्षिण जाकर विन्ध्य पर्वतको खोजना शुरू किया। खोजते-खोजते वे विन्ध्यकी दक्षिण-पश्चिमकी चोटीपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते एक महीनेकी अवधि बीत गई। वहाँ अत्यन्त पिपासाकुल होकर उन्हों जल-पूर्ण बिल देखा। वे उसमें घुस गये और भटक गये। वहाँसे निकल न सके। वहाँ भटकते-भटकते उन्हें धर्मचारिणी तापसी स्वयंप्रभा दिखाई दी। वानरोंने अपना दुखड़ा रोया। तापसीने उन्हें खिला-पिलाकर कहा—आँखे मूँद लो। वानरोंने आँखें मूँद लीं। तापसीने उन्हें बिलसे निकालकर कहा—

एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः। ४।५२।३१
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः। स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः ४।५२।३२

[अनेक वृक्षों और लताओंसे युक्त यह विन्ध्य पर्वत है।३१। यह प्रस्रवण पर्वत है और यह महोदधि सागर है। वानरश्रेष्ठो! तुम्हारा कल्याण हो, मैं अपने घर जाती हूँ। ३२।]

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम्। अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम्॥ ४।५३।१
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पितपादपे। उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा॥ ४।५३।३
ततः पुष्पातिभाराग्राँल्लताशतसमावृतान्। द्रुमान् वासन्तिकान्दृष्ट्वा बभूवुर्भयशंकिताः॥ ४।५३।४
ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिवेद्य परस्परम्। नष्टसंदेशकालार्था निपेतुर्धरणीतले॥ ४।५३।५

[तब उन वानरोंने वरुणके निवास-स्थान भयानक अपार गरजते हुए भयानक तरंगोंवाले सागरको देखा।१। पुष्पित वृक्षोंवाले विन्ध्य पर्वतके पाद-प्रदेशमें बैठे वे महात्मा लोग बड़े चिन्तित हुए।३। वसंतमें आनेवाले पुष्पोंके भारोंसे झुके हुए और लताओंसे आवेष्टित वृक्षोंको देखकर वे बड़े भयभीत हुए।४। वसन्त काल आ गया यह एक दूसरेसे कहकर (सुग्रीवकी दी हुई) अवधि बीत जानेसे वे जमीनपर गिर पड़े।]

यों जब हनूमानादि वानर विन्ध्यगिरिके पासमें स्थित सागरके तटपर पहुँचे तो वसन्त आ गया था। माघ शुक्ला पंचमीसे वसन्तारंभ माना जाय तो माघ शुक्ल पक्षमें वानर सागर-तटपर पहुँचे। यहीं उनकी संपातिसे भेंट हुई। उससे रावण और सीताका पता और लंका पहुँचनेका मार्ग जानकर हनुमान् लंका गये। लंकामें सीताको खोजते हुए हनुमान् अशोकवाटिकामें पहुँचे।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्यताम्। अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः॥ ५,१४,१॥
स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः। पुष्पिताग्रान् वसन्तादौ ददर्श विविधान् द्रुमान्॥ ५,१४,२॥

[महातेजस्वी हनुमान् मुहूर्तभर इस प्रकार सोचकर मन ही मन सीताका ध्यान कर रावणके महलसे कूद पड़े और अशोकवाटिकाके प्राचीरपर चढ़ गये॥ १॥ उस प्राचीरपर बैठे हुए हनुमान्के सारे शरीरमें हर्षजनित रोमांच हो आया। उन्होंने बहुतसे वृक्ष देखे जिनकी शाखाओंके अग्रभाग वसन्तारंभमें पुष्पोंके भारसे लदे थे॥ २॥]

स्पष्ट हो गया कि हनुमान् वसन्तारम्भमें (माघ शुक्ल पक्षमें) अशोकवाटिकामें पहुँच गये थे। वहाँ उन्होंने सीताको देखा। तभी उन्हें रावण आता दिखाई दिया। हनुमान् अशोक वृक्षपर चढ़कर छिप गये। रावणने फिर सीताको मनाना शुरू किया और कहा—

एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि। कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम्॥ ५,२०,६॥

[मैथिलि ! ऐसी अवस्थामें भी जबतक तुम मुझे चाहने न लगोगी मैं तुम्हें स्पर्श न करूँगा, भले ही कामदेव मेरे शरीरपर यथेच्छ अत्याचार करें ।]

सीताके न माननेपर रावणने अपनी धमकी दोहरायी—

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः । ततः शयनमारोह्य मम त्वं वरवर्णिनि ।। ५,२२,८ ।।
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् । मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खंडशः ।।५,२२,६।

[सुन्दरि ! मैंने तुम्हें जो अवधि (एक वर्ष) की दी है उसके अनुसार मुझे दो महीने प्रतीक्षा करनी है । तात्पश्चात् तुम्हें मेरे पलँगपर आना होगा ।। ८ ।। यदि दो महीनेके बाद भी तुम मुझे अपना पति बनाना न चाहोगी तो रसोइये मेरे कलेवेके लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे ।। ६ ।।]

रावणके चले जानेपर सीता-हनुमान्की बातचीत हुई । सीताने कहा—

द्वौ मासौ तेन मे व्यालो जीवितानुग्रहः कृतः । ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्षामि जीवितम् ।५,३३,३१

[उसने अनुग्रहपूर्वक मेरे जीवन-धारण करनेकी दो मासकी अवधि निश्चित कर दी है। उन दो मासोंके बाद मुझे प्राणोंका त्याग करना पड़ेगा ।]

अन्तमें सीताने रामके लिए सन्देश भेजा—

स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते । अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ।। ५,३७,७ ।।
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम । रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ।। ५,३७,८ ।।

[तुम जाकर मेरे पतिसे कहना—शीघ्रता करें । यह वर्ष जब-तक पूरा नहीं हो जाता तभी-तक मेरा जीवन है ।। ७ ।। निर्दयी रावणने मेरे जीवनकी जो अवधि निश्चित कर दी है उसका दसवाँ महीना बीत रहा है, अब दो ही महीने शेष हैं ।। ८ ।।]

सीता-हरण चैत्रमें हुआ । चैत्रसे दस महीने गिने जायँ तो भी माघमें सीता-हनुमान् भेंट हुई ।

बातचीत चलती रही । सीताने फिर कहा—

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः । जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।। ५,३८,६४ ।।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते । रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ।।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ।। ५,३८,६५ ।।

[मेरे पति शूरवीर रामसे बार-बार कहना—हे दशरथात्मज ! मैं महीने भर-तक जीवन धारण करूँगी ।। ६४ ।। मैं आपसे सत्यकी शपथ करके कहती हूँ कि मैं मासभरसे अधिक न जीऊँगी । वीर ! नीच पापी रावणने मुझे कैद कर रक्खा है । जैसे आपने पातालसे पृथ्वीका उद्धार किया था ऐसे ही आप रावणकी कैदसे मेरा उद्धार करो । ६५]

चूड़ामणि लेकर हनुमान् चलने लगे तो सीताने रामके लिए अन्तिम बार सन्देश दिया—

धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन । मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ।। ५, ४०,१० ।।

[मैं मासभर जीवन धारण करूँगी । तुम्हारे विना मैं मासभरसे अधिक न जीऊँगी ।]

लंका-दहनकर किष्किन्धा वापस पहुँचकर हनुमान्ने रामको सीताका सन्देश दिया —

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ।। ५,६५,२५ ।।

[दशरथनन्दन ! में मासभर जीवन धारण करूँगी । राक्षसोंकी कैदमें पड़ी मैं मासभरसे अधिक न जीऊँगी ।]

यों रामको मास भरमें सीताका उद्धार करना है। वानर-सैन्य बद्ध-परिकर था ही। हनुमान्‌के मार्ग-दर्शनमें लंकाकी ओर चल पड़ा। लंका पहुँचकर रामने दिनभर वानर सैन्य द्वारा लंकाको जा घेरा और शामको वे सुवेल पर्वतपर अपने शिविरमें लौट आये।

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः। पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत ॥ ६,३८,१९ ॥

[तब संध्याकी लालीसे रँगा हुआ सूर्य अस्त हो गया और पूर्ण चन्द्रसे प्रकाशित रात छा गई।]

माघ शुक्लपक्षमें सीताने मास भरका समय दिया। माघ पूर्णिमा-तक हनुमान्‌ने किष्किन्धा जाकर रामको सीताका सन्देश दिया। मासभर बाद फाल्गुन पूर्णिमाको रामने लंकाको घेर लिया। चैत्र शुक्लपक्षमें पुष्य नक्षत्रमें (नवमी या दशमी तिथिको) रामको अयोध्या पहुँचना है। यों रामके पास चैत्र कृष्णपक्षके पन्द्रह दिन और शुक्लपक्षके कुछ दिन ही हैं।

× × ×

रावणने लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वधका समाचार सुना।

स पुत्रवधसन्तप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः। समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥ ६,९२,३४ ॥

संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली। व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं विचुक्रुशुः ॥ ६,९२,४० ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्शुचिः ॥ ६,९२,६१ ॥

सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम्। निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६,९२,६२ ॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज। हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद् धर्ममपास्य च ॥ ६,९२,६३ ॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा। स्त्रियः कस्माद्वधं वीरमन्यसे राक्षसेश्वर ॥ ६,९२,६४ ॥

मैथिलीं रूपसंपन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव। तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥ ६,९२,६५ ॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी। कृत्वा निर्याह्यमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥ ६,९२,६६ ॥

[पुत्रके वधसे सन्तप्त क्रोधके वशीभूत हुआ रावण अपनी बुद्धिसे सोच-विचारकर सीताको मारनेको उद्यत हुआ ॥ ३४ ॥ अत्यन्त कुपित होकर खड्ग लेकर जहाँ सीता थी वहाँ जाने लगा। खड्ग लिये उसे जाते देखकर राक्षसोंने सिंहनाद किया ॥ ४० ॥ इसी बीच रावणके शीलवान् और शुद्ध आचार-विचारवाले अमात्य (६१) मेधावी सुपार्श्वने अन्य मन्त्रियोंसे रोके जानेपर भी राक्षसेश्वर रावणसे इस प्रकार कहा—(६२) महाराज दशग्रीव! आप साक्षात् कुबेरके भाई हैं। फिर क्रोधके कारण धर्मको तिलांजलि देकर सीताको कैसे मारना चाहते हैं? (६३) वीर राक्षसराज! आपने वेदविद्याका अध्ययन किया है और सदा अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। आप स्त्रीका वध कैसे करना चाहते हैं? (६४) पृथ्वीनाथ! इस रूपसंपन्न सीताको देखिए और हम लोगोंके साथ चलकर युद्धमें अपना क्रोध उतारिए ॥६५॥ आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है। आज तैयारी करके कल (अमावस्याको) आप सेना-सहित विजयके लिए प्रस्थान कीजिए ॥ ६६ ॥]

रावणने उसकी सलाह मान ली। चैत्र कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको मेघनाद-वध हुआ। अगले दिन अमावस्याको रावण रामसे युद्ध करनेके लिए ससैन्य चल पड़ा। कुछ देरमें उसने शक्तिसे लक्ष्मणको मूर्च्छित कर दिया, परन्तु स्वयं रामके बाणोंसे पीड़ित होकर डर कर भाग निकला। विधवा राक्षसियाँ उसे कहाँ टिकने देतीं। रो-धोकर उन्होंने उसे फिर रामको मारनेको भेजा। इधर लक्ष्मणके मूर्छित होनेपर राम विलाप करने लगे। थोड़ी ही देरमें सचेत होकर लक्ष्मणने कहा—

नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः । लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥६,१०१,५२ ॥
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ । वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥६,१०१,५३ ॥
अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः । यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥६,१०१,५५ ॥
यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये यदि च कृतां तवेऽच्छसि प्रतिज्ञाम् ।
यदि तव राजसुताभिलाष आर्य कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥ ६,१०१,५६ ॥

[सत्यवादी मनुष्य प्रतिज्ञाको झूठा नहीं होने देते । प्रतिज्ञाका पालन महत्त्वका लक्षण है । ५१ । हे निष्पाप वीर । मेरे लिए आपको इतना निराश नहीं होना चाहिए । आज रावणका वध करके आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिए । ५३ । दिन भरका भ्रमण कार्य पूरा करके जब तक सूर्य अस्त नहीं हो जाता उससे पहले जितना शीघ्र हो सके मैं इस दुरात्माका वध देखना चाहता हूँ । ५५ । आर्य ! यदि आप युद्धमें रावणका वध करना चाहते हैं, यदि अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करना चाहते हैं, यदि आपको सीताको पानेका अलिभाष है, तो मेरी बात आज शीघ्र पूरी कीजिए (रावणका आज ही जल्दी वध कीजिए । ५६ ।]

यों चैत्र अमावस्याको राम-रावण दोनों सूर्यास्तसे पहले एक दूसरेका वध करनेकी प्रोत्साहित किये गये हैं और कृत-संकल्प हैं । राम सफल होते हैं । चैत्र अमावस्याको रावण-वध करके राम सीताको ओरसे निश्चिन्त हो जाते हैं । अब उन्हें चिन्ता है पुष्य नक्षत्र-तक अयोध्या पहुँचे भरतको अग्नि-प्रवेशसे रोकनेकी । उसी दिन विभीषणका अभिषेक करवाकर वे अयोध्याकी ओर दौड़ पड़ते हैं और चैत्र शुक्ला पंचमीको भरद्वाज-आश्रम आ पहुँचते हैं ।

× × ×

पंजाब और हिन्दी-भाषी प्रदेशोंमें आश्विनके नवरात्रमें रामलीला होती है । दशमीको रावण-वध होता है । यह प्रचलित धारणा है कि दशहरे (आश्विन शुक्ला दशमी) के दिन रावण मारा गया; तदनन्तर राम अयोध्या आये और दीपावलीको रामका राज्याभिषेक हुआ । ये दोनों भ्रान्त धारणाएँ हैं । इस भ्रान्तिका प्रचलन कब और कैसे हुआ यह हम सटीक नहीं जानते, परन्तु संभव है शाक्तोंके प्रभावसे ऐसा हुआ हो ।

देवीभागवत-पुराणमें यह प्रसंग इस प्रकार दिया गया है—

हत्वा च बालिनं वीरं किष्किन्धाराज्यमुत्तमम् । सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः ॥३।२८।१८

[रामने वीर बालीको मारकर कार्य (सिद्धि) के लिए किष्किन्धाका उत्तम राज्य मित्र बने सुग्रीवको दिया ।]

तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः । चिन्तयन् जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम् ॥३।२८।१९

[रावण द्वारा हरी हुई प्रिया सीताका चित्तमें चिन्तन करते हुए राम लक्ष्मण-सहित वर्षाके महीनोंमें वहीं रहे ।]

लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः । सौमित्रे केकयसुता जाता पूर्णमनोरथा ॥ ३ । २८ । २०

[सीताके विरहसे पीडित रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! कैकेयीका मनोरथ पूर्ण हो गया ।]

न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना । न गमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनन्दिनीम् ॥३।२८।२१

[यदि सीता न मिली तो उसके बिना मैं जीता न रहूँगा । सीताके बिना मैं अयोध्या न जाऊँगा ।]

गतं राज्यं वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया । पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोग्रे किं करिष्यति ।। ३।२६।२२।

[राज्य गया, वनवास मिला, पिता चल बसे और जानकी हरी गई । वह दुरात्मा दैव मुझे दुःख देता हुआ आगे न जाने क्या करेगा ।]

दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भरतानुज । आवयोः का गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा ।। ३।२६।२३

[हे लक्ष्मण ! प्राणियोंका भवितव्य जाना नहीं जा सकता । हम दोनोंकी न जाने क्या दुःखदायी गति होगी ।]

प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल । वनेऽतिदुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च ।। ३।२६।२४

[हम दोनों राजपुत्र मनुके वंशमें जन्म पाकर भी पूर्व (जन्म) के कर्मोंके कारण वनमें अतिदुःखके भागी हुए ।]

त्यक्त्वा त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः । दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम् ।।३।२६।२५

[तुम भी (राज-) भोगोंको त्यागकर मेरे साथ निकल आये । अब दैवयोगसे असह्य दुःख भोगो ।]

न कोप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः । अकिंचनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति ।।३।२६।२६

[हमारे कुलमें मुझ जैसा दुःखभागी, अकिंचन और अक्षम न पहले कोई हुआ, न होगा ।]

किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे । न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल ।३।२६।२७

[हे लक्ष्मण ! मैं आज दुःख-सागरमें डूबा हुआ हूँ और मुझ असहायको तरनेका कोई उपाय नहीं है । मैं क्या करूँ ?]

न चित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः । कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेस्मिन्स्वकृतेऽनुज ।। ३ । २६ । २८

[भाई ! आज न मेरे पास धन है न सेना है; अकेले तुम मेरे साथी हो । अपने कियेके भोगमें मैं किसपर क्रोध करूँ ?]

गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिन्द्रसभोपमम् । वने वासस्तु संप्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम् ।। ३।२६।२६

[हाथमें आया हुआ इन्द्रके ऐसा राज्य क्षण भरमें छिन गया और वनवास प्राप्त हुआ । विधिके विधानको कौन जान सकता है ?]

बालभावाच्च वैदेही चलिता चावयोः सह । नीता दैवेन दुष्टेन श्यामां दुःखतरां दशाम् ।। ३।२६।३०

[बाल-चापल्यसे सीता भी हमारे साथ चली आई । दुष्ट दैवने उसे अत्यन्त दुःखदायी अवस्थामें पहुँचा दिया ।]

लंकेशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखं भविष्यति । पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम् ।। ३।२६।३१

[रावणके घरमें उसे कितना दुःख हो रहा होगा । वह पतिव्रता है, शीलवती है और मुझ-पर उसका बहुत प्रेम है ।]

न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत् । स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा ।। ३।२६।३२

[हे लक्ष्मण ! वह सीता उस (रावण) की वशवर्तिनी न होगी । भला जनककी पुत्री कुलटाका-सा आचरण कैसे कर सकती है ?]

त्यजेत् प्राणान्नियन्तृत्वे मैथिली भरतानुज । न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम् ।। ३।२६।३३

[यह निश्चित है कि जबरदस्ती करने पर मैथिली प्राण त्याग देगी पर रावणकी वशगा न होगी ।]

मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । मृता चेदसितापांगी किं मे देहेन लक्ष्मण ।। ३।२६।३४

[हे वीर ! यदि जानकी मर गई होगी तो मैं भी प्राणोंको छोड़ दूँगा, यह निश्चित है । यदि जानकी मर गई होगी तो मुझे देह धारण करनेसे क्या प्रयोजन है ?]

एवं विलपमानं तं रामं कमललोचनम् । लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सांत्वयन्ननृतया गिरा ।। ३।२६।३५

[इस प्रकार विलाप करते हुए कमललोचन रामको अनुकूल वाणीसे सांत्वना देते हुए धर्मात्मा लक्ष्मण बोले—]

धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह । आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम् ।। ३।२६।३६

[हे महाबाहो ! कातरताको छोड़कर धैर्य धारण करो । मैं उस राक्षसाधमको मारकर जानकीको ले आऊँगा ।]

आपदि संपदि तुल्या धैर्याद्भवन्ति ते धीराः । अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवन्ति विभवेऽपि ।।३।२६।३७

[आपत्ति और संपत्तिमें जो धैर्यसे एक-से रहते हैं वे ही धीर होते हैं । अल्प बुद्धिवाले तो विभवमें भी कष्टमें मग्न हो जाते हैं ।]

संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि । शोकस्तु कीदृशस्तत्र देहे नाऽत्मनि च क्वचित् ।। ३।२६।३८

[संयोग और वियोग ये दोनों दैवाधीन हैं । फिर इस आत्मा अथवा देहके लिए शोक कैसा ?]

राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा । तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति ।। ३।२६।३६

[जैसे राज्यसे वनवास मिला और जैसे जानकीका हरण हुआ, उसी प्रकार अच्छे दिन आनेपर संयोग भी होगा ।]

प्राप्तव्यं सुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित् । नान्यथा जानकी जाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना ।।३।२६।४०

[सुख-दुःखोंके भोगका अन्त कभी न कभी प्राप्त होता ही है । इससे उलटा नहीं होता (सुख और दुःख अनंत नहीं हैं) । इसलिए हे सीतापति ! तुम अब शोकको त्याग दो ।]

वानराः सन्ति भूयांसो गमिष्यन्ति चतुर्दिशम् । शुद्धिं जनकनन्दिन्या आनयिष्यन्ति ते किल ।।३।२६।४१

[वानर बहुत हैं, चारों दिशाओंमें जायेंगे और सीताकी अवश्य खोज ले आयेंगे ।]

ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र गत्वा कृत्वा पराक्रमम् । हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम् ।।३।२६।४२

[मार्गकी स्थितिको जानकर, वहाँ जाकर और पराक्रम करके रावणको मारकर मैं जानकीको ले आऊँगा ।]

ससैन्यं भरतं वाऽपि समाहूय सहानुजम् । हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाग्रज ।। ३।२६।४३

[अथवा सेनासहित भरत और शत्रुघ्नको बुलाकर हम शत्रुको मार डालेंगे । भैया ! तुम वृथा शोक क्यों करते हो ?]

रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा । तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव ।। ३ । २६ । ४४

[रघुने अकेले ही सब दिशाएँ जीती थीं । उसीके वंशज होकर हे राघव ! तुम शोक कैसे करते हो ?]

एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान् । किं पुनः ससहायो वै रावणं कुलपांसनम् ।। ३।२६।४५

[मैं अकेला ही सब सुरों और असुरोंको जीत सकता हूँ । फिर (तुम्हारी) सहायता-सहित होकर कुलकलंक रावणको जीतना क्या है ?]

जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन । हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकंटकम् ।। ४।१६।४६

[अथवा जनकको सहायताके लिए बुलाकर देवताओंके कंटक दुराचारी रावणको मैं मार डालूँगा ।]

सुखस्याऽनन्तरं दुःखं दुःखस्याऽनन्तरं सुखम् । चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन ।। ३।२६।४७

[पहियेकी हालके समान सुखके बाद दुःख आता है और दुःखके बाद सुख । हे राघव ! ये अकेले नहीं रहते ।]

मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखे समुद्भवे । स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन ।। ३ । २६ । ४८

[सुख या दुःखके प्राप्त होनेपर जिसका मन बहुत कातर हो जाता है वह शोकसागरमें डूब जाता है और कभी सुखी नहीं हो पाता ।]

इन्द्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन । नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे ।। ३।२६।४६

[किसी समय इन्द्रके भी बुरे दिन आये थे । सब देवताओंने मिलकर इन्द्रके स्थानपर नहुष-को प्रतिष्ठित किया था ।]

स्थितः पंकजमध्ये च बहुवर्षगणानपि । अज्ञातवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम् ।। ३।२६।५०

[इन्द्रने डरकर अपने पदको छोड़कर बहुत वर्ष कमलमें छिपकर अज्ञातवास किया ।]

पुनः प्राप्तं निजस्थानं काले विपरिवर्तिते । नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः ।। ३।२६।५१

[अच्छे दिन आनेपर उसने फिर अपना स्थान प्राप्त किया और नहुष शापसे अजगर होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ।]

इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमन्य च । अगस्तिकोपात् संजातः सर्पदेहो महीपतिः ।। ३।२६।५२

[राजा नहुष इन्द्राणीकी कामना और ब्राह्मणोंकी अवमानना करके अगस्त्यके कोपसे अजगर बन गया ।]

तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव । उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता ।।३।२६।५३

[हे राघव ! इसलिए बुद्धिमान् आदमीको बुरे दिन आनेपर शोक नहीं करना चाहिए, उसे उद्यमको चित्तमें धारण करके रहना चाहिए ।]

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते । किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि ।। ३।२६।५४

[हे महाभाग ! जगत्पति ! आप सर्वज्ञ हैं, और समर्थ हैं । फिर साधारण मनुष्यके समान इतना शोक क्यों करते हैं ?]

इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः । त्यक्त्वा शोकं तथात्यर्थं बभूव विगतज्वरः ।। ३।२६।५५

[इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा समझाये जानेपर राम महाशोकको त्यागकर स्वस्थ हो गये ।]

एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः । आजगाम तदाऽऽकाशान्नारदो भगवानृषिः ।। ३।३०।१

[वे दोनों इस प्रकार वार्तालाप करके ज्यों ही चुप हुए त्यों ही आकाशसे भगवान् नारद ऋषि आ गये ।]

रणयन् महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम् । गायन् बृहद्रथं साम तदा समुपतस्थिवान् ।। ३।३०।२

[सातों स्वरों और तीनों ग्रामोंसे विभूषित महती वीणाको बजाते और सामवेदके बृहद्रथ अंशको गाते हुए नारद आ पहुँचे ।]

दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम् । आसनं चार्घपाद्यं च कृतवानमितद्युतिः ।। ३।३०।३

[उन्हें देखकर अमितद्युति रामने खड़े होकर उन्हें पवित्र और शुभ आसन दिया और चरण धोकर उनकी पूजा की ।]

पूजां परमिकां कृत्वा कृतांजलिरुपस्थितः । उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः ॥ ३।३०।४

[बड़ी श्रद्धासे मुनिकी पूजा करके राम हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े रहे । तब मुनिसे आज्ञा प्राप्तकर उनके पास बैठ गये ।]

उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् । पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ॥ ३।३०।५

[तब लक्ष्मण-सहित दुखी मनसे बैठे रामसे मुनिश्रेष्ठ नारदने कुशल पूछी ।]

कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः । हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना ॥ ३।३०।६

[राघव ! आप साधारण मनुष्योंकी तरह शोकार्त क्यों हैं ? दुरात्मा रावणने सीता हर ली है यह मैं जानता हूँ ।]

सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवान् जनकात्मजाम् । पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता ॥ ३।३०।७

[मैंने देवलोकमें ही सुना था कि सीताको अपनी मृत्यु न जानते हुए मूर्खतासे रावण हर ले गया है ।]

तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै । मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप ॥ ३।३०।८

[हे राम ! आपका जन्म रावणको मारनेके लिए ही हुआ है और इसीलिए मैथिली-हरण भी हुआ है ।]

पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी । रावणेन वने दृष्टा तपस्यन्ती शुचिस्मिता ॥३।३०।९

[पूर्व जन्ममें सीता मुनिपुत्री थी । उस चारुहासिनीको रावणने वनमें तप करते हुए देखा ।]

प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव । तिरस्कृतस्तयाऽसौ वै जग्राह कवरं बलात् ॥३।३९।१०

[हे राम ! रावणने उससे प्रार्थना की कि तुम मेरी भार्या बनो । उससे तिरस्कृत होकर रावणने जबरदस्ती उसके केश पकड़ लिये ।]

शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम् । कुपिता त्यक्तुमिच्छन्ती देहं संस्पर्शदूषितम् ॥ ३।३०।११

[उस तापसीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तत्क्षण रावणको शाप दिया और उसके स्पर्शसे दूषित शरीरको त्याग देनेकी कामना की ।]

दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले । अयोनिजा वरा नारी त्यक्त्वा देहं जहावपि ॥३।३०।१२

[हे दुरात्मा ! तेरे नाशके लिए मैं इस देहको छोड़कर पृथ्वीपर अयोनिजा नारी होऊँगी । इतना कहकर उसने शरीर छोड़ भी दिया ।]

सेयं रमांशसंभूता गृहीता तेन रक्षसा । विनाशार्थं कुलस्यैव व्याली स्रगिव स भ्रमात् ॥ ३।३०।१३

[यह वही रमाके अंशसे प्रकट हुई है । राक्षस मालाके भ्रमसे उस सर्पिणीको अपने कुलके नाशके लिए ही हर ले गया है ।]

तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः । प्रार्थितस्य हरेरंशादजवंशेप्यजन्मनः ॥ ३।३० १४

[हे राम ! उसी राक्षसके विनाशके लिए देवताओंके माँगनेपर अजन्मा हरिके अंशसे अजके वंशमें आपका जन्म हुआ है ।]

कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा । सती धर्मरता सीता त्वां ध्यायन्ती दिवानिशम् ॥ ३।३०।१५

[हे महाबाहो ! आप धैर्य धरिये । वह सीता वहाँ अवश है । वह सती, धर्मरता तथा दिन-रात आपका ध्यान करती है ।]

कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम् । पानार्थं प्रेषितं तस्याः पीतं चैवामृतं तया ।। ३।३०।१६

[स्वयं इन्द्रने कामधेनुका दूध पात्रमें भरकर पीनेके लिए भेजा था । वह अमृत उसने पी लिया था ।]

सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता । जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया ।। ३।३०।१७

[कामधेनुका दूध पीनेसे वह भूख-प्यासके दुःखसे मुक्ति पा गई । मैंने उसे देखा है ।]

उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव । व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि साम्प्रतम् ।। ३।३०।१८

[हे राघव ! उस रावणको मारनेका उपाय मैं आज आपको बताता हूँ । आजकल आश्विन मासमें आप श्रद्धापूर्वक व्रत कीजिए ।]

नवरात्रोपवासं च भगवत्याः प्रपूजनम् । सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः ।। ३।३०।१९

[हे राम ! इस नवरात्रमें उपवास करना और जप होमके विधानसे भगवतीका पूजन करना सर्वसिद्धिप्रद है ।]

मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्वा विशंसितैः । दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि ।। ३।३०।२०

[बलिके लिए जिन पशुओंका विधान है उनको बलि देवीको देकर दशांश हवन करके आप समर्थ हो जायँगे ।]

विष्णुनाचरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा । तथा मघवताचीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै ।। ३।३०।२१

[विष्णुने, महादेवने और ब्रह्माने यह व्रत किया था । स्वर्गमें इन्द्रने भी यह व्रत किया था ।]

सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम् । विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै ।। ३।३०।२२

[हे राम ! सुखी मनुष्यको तो नवरात्रका यह शुभ व्रत करना ही चाहिये और कष्टमें पड़े मनुष्यको विशेषकर यह व्रत करना चाहिए ।]

विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः । भृगुणाऽथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च ।। ३।३०।२३

[हे राम ! निस्सन्देह विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ और कश्यपने भी यह व्रत किया था ।]

गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम् । तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च ।। ३।३०।२४

[बृहस्पतिने पत्नी हरी जानेपर यह महाव्रत किया था । इसलिए हे राजेन्द्र ! आप भी रावणको मारनेके लिए यह व्रत कीजिये ।]

इन्द्रेण वृत्रनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम् । त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुरा कृतम् ।। ३।३०।२५

[इन्द्रने वृत्रके नाशके लिए और शिवने त्रिपुरके नाशके लिए यह शुभ व्रत किया था ।]

हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते । विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतन्द्रितः ।। ३।३०।२६

[विष्णुने मधुके नाशके लिए मेरु पर्वतपर यह व्रत किया था । हे महामते, आप भी सावधान होकर विधिपूर्वक यह व्रत कीजिये ।]

का देवी किं प्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया । व्रतं किं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ।।३।३०।२७

[श्रीराम बोले—हे दयानिधे ! आप सर्वज्ञ हैं, आप मुझे विधिवत् बताइये, वह देवी कौन है ? वह कहाँसे पैदा हुई ? उनका क्या प्रभाव है ? उनका क्या नाम है ? और उनका व्रत क्या है ?]

३७

शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी । सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी ॥ ३।३०।२८

[राम ! सुनिये—यह सदा नित्या आद्या सनातनी है। वह देवी पूजित होनेपर सब कामनाओंको पूर्ण करने और दुःखोंका नाश करनेवाली है।]

कारणं सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनां रघूद्वह । तस्याः शक्तिं विना कोऽपि स्पन्दितुं न क्षमो भवेत् ॥३।३०।२९

[वह सब प्राणियों और ब्रह्मा आदिका कारण है। उसकी शक्तिके बिना कोई हिलडुल भी नहीं सकता।]

विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम । रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्यशक्तिः परा शिवा ।३।३०।३०

[विष्णुकी पालन-शक्ति वही है, मेरे पिता (ब्रह्मा) की कर्तृ शक्ति वही है, शिवकी नाशशक्ति भी वही है। वह अन्या शक्ति है, परा और शिवा है।]

यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद् भुवनत्रये । तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिः कुतो भवेत् ॥ ३।३०।३१

[तीनों लोकोंमें जहाँ कहीं भी जो कुछ भी सत् असत् वस्तु है उस सबकी जो शक्ति है उसकी उत्पत्ति भला कहाँसे होगी ?]

न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः । न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः ॥ ३।३।३२

तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै । संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुणा शिवा ॥ ३।३०।३३

[जब ब्रह्मा नहीं होते, विष्णु नहीं होते, रुद्र नहीं होते, सूर्य नहीं होता, इन्द्रादि देवता नहीं होते, पृथ्वी नहीं होती, पहाड़ नहीं होते तब वह निर्गुण पूर्ण शिव प्रकृति युगारंभमें परम पुरुषसे संयुक्त होकर विहार करती है।]

सा भूत्वा सगुणा पश्चात् करोति भुवनत्रयम् । पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन् दत्वा शक्तींश्च सर्वशः ॥३।३०।३४

[वह सगुण होकर पहले ब्रह्मा आदिको प्रकट करके और उन्हें सब प्रकारकी शक्तियाँ देकर तीनों लोकोंकी रचना करती है।]

तां ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् । सा विद्या परमा ज्ञेया वेदाद्या वेदकारिणी ॥ ३ ३०।३५

[उसे ही वेद-आद्या, वेदको बनानेवाली परम विद्या जानना चाहिये। उसे जानकर प्राणी जन्म और संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।]

असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल । गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥ ३।३०।३६

[ब्रह्मा आदिने उसके गुण-कर्म आदिके अनुसार उसके असंख्य नामों की कल्पना की है, मैं कहाँतक गिनाऊँ।]

अकारादिक्षकारान्तैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः । असंख्येयानि नामानि भवन्ति रघुनन्दन ॥ ३।३०।३७

[हे राम ! अकारसे लेकर क्षकार-तक स्वरों और वर्णोंको जोड़नेसे असंख्य नाम बन जाते हैं।]

विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः । करोम्यद्यैव श्रद्धावान् श्रीदेव्याः पूजनं तथा ॥ ३।३०।३८

[राम बोले—हे देवर्षे ! आप मुझे संक्षेपमें इस व्रतकी विधि बता दीजिये। मैं आज ही श्रद्धायुक्त होकर श्री देवीका पूजन करूँगा।]

पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदम्बिकाम् । उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः ॥ ३।३०।३९

[हे राम ! सम स्थानमें पीठ बनाकर उसपर जगदम्बिकाको स्थापितकर नौ दिन विधिपूर्वक उपवास कीजिये।]

आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्ययस्मिन्महीपते। देवकार्यविधानार्थमुत्साहं प्रकरोम्यहम् ॥ ३।३०।४०

[हे राजन् ! आपके इस शुभ कर्ममें मैं आचार्य बन जाऊँगा। देवताओंका कार्य संपन्न करानेका मुझे उत्साह है।]

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान्। कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाम्बिकां शुभाम्॥३।३०।४१
विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान् हरिः। संप्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन् गिरिवरे तदा ॥३।३०।४२

[नारदके उस वचनको सुनकर और उसे सत्य मानकर रामने आश्विन मास आनेपर उस (माल्यवान्) पर्वतपर शुभ पीठ बनवाकर उसपर शिवा अम्बिकाकी स्थापना करके व्रत करते हुए उसका विधिवत् पूजन किया।]

उपवासपरो रामः कृतवान् व्रतमुत्तमम्। होमं च विधिवत्तत्र बलिदानं च पूजनम् ॥ ३।३०।४३
भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसंमतम्। अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा ॥ ३।३०।४४

[रामने उपवास करते हुए उत्तम व्रत किया। दोनों भाइयोंने नारदकी सम्मतिसे प्रेमसे विधिपूर्वकर होम, बलिदान पूजन और व्रत किया।]

सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता। गिरिशृंगे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा ॥ ३।३०।४५
मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता। राम राम महाबाहो तुष्टास्म्यद्य व्रतेन ते ॥ ३।३०।४६

[इस प्रकार भक्तिभावसे पूजित देवी भगवतीने अष्टमीकी मध्य रात्रिमें सिंहासनारूढ होकर दर्शन दिये और भक्तिभावसे प्रसन्न होकर गिरिशृंगपर स्थित होकर मेघके समान गंभीर वाणीसे राम-लक्ष्मणसे कहा—]

प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते। नारायणांशसम्भूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे ॥ ३।३०।४७
रावणस्य वधार्थैव प्रार्थितस्त्वममरैरसि। पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा घोरं च राक्षसम् ॥६।३०।४८
त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता। भूत्वा कच्छपरूपस्तु घृतवान्मन्दरं गिरिम् ॥ ३।३०।४९

[हे महाबाहो राम ! मैं तुम्हारे व्रतसे आज संतुष्ट हो गई हूँ। तुम्हारे मनमें जो कामना हो उसका वर मुझसे माँग लो। तुम मनुके पवित्र वंशमें नारायणके अंशसे प्रकट हुए हो। रावणके वधके लिए ही देवताओंने तुमसे प्रार्थना की थी। पहले देवताओंका हित चाहते हुए तुमने मत्स्य शरीर धारणकर घोर राक्षसको मारकर वेदोंकी रक्षा की थी। कच्छप रूप होकर तुमने मन्दर पर्वतको धारण किया था।]

अकूपारं प्रमन्थानं कृत्वा देवानपोषयः। कोलरूपं पुरा कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम् ॥ ३।३०।५०
धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं जघान च। नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ ३ । ३० । ५१
प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव। वामनं वपुरास्थाय पुरा छलितवान् बलिम् ॥ ३ । ३० । ५२
भूत्वेन्द्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः। जमदग्निसुतस्त्वं वै विष्णोरंशेन संगतः ॥ ३ । ३० । ५३
कृत्वान्तं क्षत्रियाणां तु दानं भूमेरदाद्द्विजे। तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः ॥ ३।३०।५४
प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वैः रावणेनातिपीडितैः। कपयस्ते सहाया वै देवांशा बलवत्तराः ॥ ३ । ३० । ५५
भविष्यन्ति नरव्याघ्र मच्छक्तिसंयुता ह्यमी। शेषांशोप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः ॥ ३।३०।५६
भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्र त्वयानघ। वसन्ते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया ॥ ३।३०।५७

[और समुद्र-मंथन करवाकर देवताओंको पुष्ट किया। वराह रूप होकर दन्तकोटि पर पृथ्वी को धारण किया और हिरण्याक्षको मारा। नृसिह रूप होकर प्रह्लादकी रक्षाकर तुमने हिरण्यकशिपुको मारा। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिए इन्द्रके अनुज बनकर वामन रूप होकर तुमने बलिको छला। तुम्हीं विष्णुके अंशसे जमदग्निके पुत्र हुए और क्षत्रियोंका अंत कर तुमने ब्राह्मणोंको भूमिका दान दिया। रावणसे अतिपीडित देवताओंसे प्रार्थित होकर अब तुम दशरथके पुत्र होकर प्रकट हुए हो। वेदोंके अंश मेरी शक्तिसे युक्त ये महाबलवान् वानर तुम्हारे सहायक होंगे। शेषका अंश तुम्हारा यह भाई मेघनादको मारनेवाला होगा इसमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिए। वहाँ (लंकामें) फिर वसन्तमें अति श्रद्धासे सेवन करना।]

हत्वाऽथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम्। एकादशसहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले ॥ ३।३०।५८

[तब पापी रावणको मारकर सुखपूर्वक ग्यारह सहस्र वर्ष-तक पृथ्वीपर राज्य करो।]

कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गन्तासि त्रिदिवं पुनः। इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः ॥ ३।३०।५९
समाप्य तद्व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमी दिने। विजयापूजनं दत्वा दत्वा दानान्यनेकशः ॥ ३।३०।६०

[हे रघुश्रेष्ठ! (पृथ्वीपर ग्यारह हजार वर्ष) राज्य करके तुम फिर स्वर्गमें चले जाओगे। यह कह देवी अन्तर्धान हो गई और रामचन्द्रने प्रसन्न मनसे उस व्रतको समाप्तकर दशमीके दिन विजया-पूजन करके अनेक प्रकारके दान देकर (लंकाको) प्रयाण किया।]

कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च, प्रकटनरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः।
उदधितटगतोऽसौ सेतुबन्धं विधायात्यहनदमरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः ॥ ३।३०।६१

[सुग्रीवकी सेनासे युक्त, लक्ष्मण-सहित, प्रकट हुई परम शक्तिसे प्रेरित, पूर्णकाम रामचन्द्र सागर-तटपर गये। वहाँ सेतु बाँधकर उन्होंने देवताओंके शत्रु रावणको मारा और यशस्वी हुए।]

यों रामने माल्यवान् पर्वतपर आश्विन शुक्ला प्रतिपदासे देवीकी पूजा आरम्भ की। अष्टमी-की रातको देवी प्रकट हुईं। उन्होंने रामको वर देकर कहा—वसन्तमें फिर मेरी पूजा करके रावण-को मारना। आश्विन शुक्ला नवमीको देवीकी अंतिम पूजाकर दशमीको रामने विजयके लिए प्रस्थान किया, इसलिए वह दशमी विजया-दशमी कहलाई। वसन्त (चैत्र)-में रामने रावण-को मारा।

हनुमन्नाटककार भी यही बात कहता है—

अथ विजयदशम्यां आश्विने शुक्लपक्षे। दशमुख-निधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः ॥ ७। २

[आश्विनके शुक्लपक्षमें विजयादशमीके दिन रामचन्द्रने रावणको मारनेके लिए प्रस्थान किया।]

परन्तु देवीके व्रतका फल रामको छह महीने बाद मिला, यह कहना देवीके उपासकोंको देवीके प्रभावमें अविश्वास-सूचक-सा प्रतीत हुआ। उन्होंने देवीके व्रतका फल तुरन्त दिलवानेका आयोजन किया।

कालिका-पुराणमें देवीकी पूजाकी विधिके प्रसंगमें कहा गया है कि दशभुजावाली देवीका आवाहन आश्विन शुक्ला प्रतिपदाको होता है और विसर्जन दशमीको; षोडशभुजा देवीका आवाहन आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको और विसर्जन शुक्ला दशमीको; अष्टादशभुजा देवीका आवाहन शुक्ला अष्टमीको और विसर्जन शुक्ला दशमीको। इन सबकी पूजन-विधि बताकर आगे कहा है—

रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च। रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ॥ का० पु० ६०।२६

[रामपर कृपा करनेके लिए और रावणके वधके लिए ब्रह्माने रातमें ही महादेवीको बोधित किया था।]

ततस्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते। जगाम नगरीं लंका यत्रासीद् राघवः पुरा ॥ ६०। २७

[तब वह महादेवी आश्विन शुक्ला प्रतिपदाको निद्रा त्यागकर लंका नगरीको गई, जहाँ राम पहले ही पहुँचे हुए थे।]

यों ब्रह्माने दशभुजा देवीको बोधित किया होगा।

तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ। युद्धे नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ॥ ६०। २८

[तब महादेवीने वहाँ जाकर राम और रावणको युद्धमें नियुक्त किया और स्वयं प्रच्छन्न रहीं।]

राक्षसानां वानराणां च जग्ध्वा सा मांसशोणिते। रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत् ॥ ६०।२९

[राक्षसों और वानरोंके रक्त-मांसको खाकर उन्होंने सात दिन (द्वितीयासे अष्टमी तक) राम और रावणको युद्धमें नियोजित किये रक्खा।]

व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः। रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ॥ ६०। ३१

[(युद्धमें) सातवीं रात (अष्टमी) बीतनेपर नवमीको महादेवीने रामसे रावणको मरवाया।]

यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत। तावत्तु सप्तरात्रीणि सर्वैः देवैः सुपूजिता ॥ ६०। ३१
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः। विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ॥ ६०। ३२

[सात दिन जब देवी राम-रावणके युद्धको देखती रहीं तो सब देवता उनकी पूजा करते रहे। नवमीको वीर रावणके मारे जानेपर ब्रह्माने सब देवताओंके साथ देवीकी विशेष पूजा की।]

ततः संप्रेषिता देवी दशम्यां शाबरोत्सवैः।
... ... ६०।३१

[तब दशमीको शाबरोत्सवों (शैवोत्सवों) द्वारा देवीको विसर्जित कर दिया।]

इस आख्यानके अनुसार भी रामने रावणका वध आश्विन शुक्ला नवमीको किया, दशमीको नहीं। रावण-विजय (नवमी) के बाद उस विजयको मनानेकी देवीकी पूजा दशमीको की गई, इसलिए आश्विन शुक्ला दशमी विजयादशमी कही गई।

प्रयागमें दशहरेके दिनोंमें राम-दल निकाले जाते हैं। प्रत्येक मुहल्लेका दल विशेष तिथिको निकलता है। उस मुहल्लेके दलके अन्तिम दिनसे पहले दिन दलमें काली आती हैं। यों यदि उस

अन्तिम दिनको दशमीका प्रतीक माना जाय तो नवमीको काली प्रकट होती हैं। नवमीका मुख्य दल चौकसे उठता है और उस दिन वह काली-दल होता है। कालिका-पुराणके अनुसार देवी अष्टमी-तक प्रच्छन्न रही थीं और नवमीको राचण-वधके बाद प्रकट हुईं जब ब्रह्माने उनकी विशेष पूजा की। प्रयागके नवमीके दलमें कालिका-पुराणके आख्यानकी छाया स्पष्ट देखी जा सकती है।

यों चैत्रमें हुआ रावण-वध आश्विनमें जा पहुँचा। परन्तु यह हुआ तब जब वाल्मीकीय रामायणका पठन-पाठन उठ गया, राम भगवान् बन गये और स्वयं रावणको मारनेमें असमर्थ हो हो गये, उन्हें देवीकी सहायताकी अपेक्षा हुई। परन्तु जव वे भगवान् नहीं थे, मनुष्य थे, तब उन्हें देवीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं थी; तब उन्होंने अपने बाहु-बलसे चैत्र अमावस्याको रावणका वध किया था, क्योंकि

मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः।

मार्कंडेय पुराण ५५।६३

[मनुष्य वह कर .लेता है जो सुर असुर नहीं कर पाते।]



बिहारमें रामायणकी परंपरा

श्री रामनिरंजन परिमलेन्दु, वाराणसी कोठी, गायत्री घाट, गया

ईसाकी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीमें बिहारमें नव-नवीन रामायण-लेखनकी एक विशेष धारा प्रवाहित हुई जिसकी ओर हमारे विद्वानोंका ध्यान नहीं जा सका। यह रामकथाकी प्रबन्ध-काव्यधारा थी। इस धाराके अन्तर्गत जयरामदास, पण्डित हरिनाथ पाठक, पण्डित चतुर्भुज मिश्र, कान्हूलाल गुर्दा, घनारंग, कलट्ट भगत आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। रामायणके भाष्य-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें लखनजी परमहंस-कृत रामायणसार और मधुकवि कृत रामचरितमानस-बोध उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त, आभास रामायण और जगन्नाथ रामायण भी हैं। रामायणकी गद्य-परम्परामें संकटा प्रसादका उल्लेख आवश्यक है। ये साहित्यकार बिहारकी रामायणी धाराके अन्तर्गत हैं।

जयरामदास-रामायण

जयरामदासजी, जोगिया (क्वाथके निकट), शाहाबाद जिलेके निवासी और जगन्नाथ माहात्म्य, कार्तिक-माहात्म्य, कर्म-विपाक आदिके लेखक थे। ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें जयरामदासजी वर्तमान थे। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। बराँव पहाड़ीपर जयरामदासका चरण-चिह्न अबतक अंकित है जिसकी पूजा वर्षमें एक बार होती है और प्रत्येक साल वहाँ मेला लगता है। वे योगी थे—योगसाधनामें प्रवीण। विभिन्न कांडोंमें विभक्त जयरामदास-कृत रामायणके बालकांडकी दो हस्तलिखित खंडित प्रतियाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनामें सुरक्षित हैं। जयरामदास-कृत रामायण, सुन्दर कांडकी पूर्ण प्रति वहाँ प्राप्त है। इसका लिपिकाल विक्रमी संवत् १८३९ है। जयरामदास-कृत रामायण, उत्तर कांडकी एक खंडित प्रति भी मिली है जिसकी पत्र-संख्या ४३ है। रचनाकाल या लिपिकालका उल्लेख नहीं है।

अद्भुतरामायण

ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें ईचाक (हजारीबाग)-निवासी बेनीरामने 'अद्भुत रामायण'-की रचना की थी।

आल्हा रामायण

गयावासी पंडित चतुर्भुज मिश्र (श्री रामनवमी, विक्रमी संवत् १९०३ अर्थात् सन् १८४६ ई० से विक्रमी संवत् १९७५ अर्थात् सन् १९१८ ई०) अभिनव तुलसीदास ही थे। पुण्य तिथि श्रीराम नवमीको मिश्रजीका जन्म हुआ। श्रीरामनवमी जन्म तिथिकी प्रचुर सार्थकता मिश्रजीमें है।

---

* श्री ललित रामायणका विवरण आगे श्री डा० अमरनाथ सिन्हाके लेखमें दिया जा रहा है इसलिये इस लेखमेंसे वह अंश छोड़ दिया गया है।

ये राम भक्त ही नहीं, रामचरितके श्रेष्ठ गायक थे। उनका महत्त्व और सम्पूर्ण काव्य राममय है। सन् १८९० से ९५ ई० में मिश्रजी मौडल स्कूल, जोरी (हजारीबाग) में प्रधान पंडित थे। वे पलायनवादी सन्त या साधुवेशधारी सन्त नहीं, कर्मयोगी सन्त थे। शाकद्वीपीय कुलोद्भव कवि पंडित चतुर्भुज मिश्रने अपना परिचय पुस्तकमें स्वयं दिया है—

गया धाम है बास हमारो, जहँपर चरण विष्णु भगवान ।।
नाम चतुर्भुज मेरा जानो, औ नित फलगू के असनान ।।
शाकद्वीपी भेद हमारो, जाति ब्राह्मण को परमान ।।
मैं किंकर हूँ रघुनन्दनको, मोपँ दया कीन भगवान ।।

पंडित चतुर्भुज मिश्र कृत 'आल्हारामायण' सात कांडोंमें है—९२६ पृष्ठोंका महाकाव्य। प्रारम्भमें आल्हारामायणके विभिन्न कांडोंका क्रमिक प्रकाशन पृथक् पृथक् हुआ। प्रत्येक कांड एक स्वतंत्र पुस्तक। प्रारम्भमें इसके कुछ कांडोंका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना-द्वारा बाबू रामदीन सिंहके जीवनकालमें ही हुआ। सन् १८९५ ई० में आल्हारामायणके सातों कांडोंका पुस्तकाकार सम्मिलित बृहद् प्रकाशन हुआ। विक्रमी संवत १९८३ में श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बईने आल्हारामायणका नया संस्करण प्रकाशित किया। इस संस्करणमें सातो कांड हैं।

लगभग पाँच वर्षोंमें आल्हारामायणकी रचना हुई। रचनाकालके सम्बन्धमें कविने बालकांडमें स्पष्ट कर दिया है—

कृपादृष्टि भइ जब हनुमतकी, तब यह ग्रन्थ कीन निर्माण ।।
मुनि अरु वेद अंक औ चंदा, विक्रम संवतको परमान ।।
सावन शुक्ला भौम पंचमी, जा दिन नागजन्म भगवान ।।
चरित ललित श्रीरघुनन्दनको, मैंने निजमति कियो बखान ।।

आल्हा रामायण सन् १८९० ई० की रचना है।

आल्हारामायणमें रामकथाकी इतिवृत्तात्मकता ही नहीं, ज्ञान और भक्तिकी गंगा-यमुना भी हैं। आल्हारामायणके कथ्यपर चारों वेदों, छहों शास्त्रों और अठारहों पुराणोंका सम्यक् प्रभाव है। बाल्मीकीय रामायण, तुलसीदास, सूरदास आदिका भी प्रभाव 'आल्हारामायण' पर है।

आल्हारामायणका प्रत्येक कांड विभिन्न इतिवृत्तात्मक उपशीर्षकोंमें आबद्ध है।

मनोहर रामायण

विक्रमी संवत् १९७० (१९१४ ई०) में पण्डित चतुर्भुज मिश्र कृत 'मनोहर रामायण' का प्रकाशन हुआ। 'मनोहर रामायण' खड़ी बोलीका काव्य है। इसमें सात कांड हैं। चना बेचनेवालेके लटकेके ढंगपर इस रामायणकी रचना हुई है। इसके प्रत्येक कांडके अन्तमें रामभक्तिके उपदेश हैं। 'मनोहर रामामण' के अन्तिम पृष्ठ अर्थात् ६४ वें पृष्ठ पर कविने इसके रचनाकालका उल्लेख कर दिया है—

"नभ मुनि निधि पुनि चन्द्रमा, सम्बत विक्रम क्यार। भादो कृष्णा अष्टमी, ग्रन्थ भयो तइयार ।।

कवि चतुर्भुज मिश्र मूल गयाके निवासी थे। 'मनोहर रामायण' में कविका पता नौआगढ़ी मुहल्ला दिया गया है। और भी—

"अक्षयवट फलगू निकट, गयापुरी मा वास। नाम चतुर्भुज युगल भुज, रघुनन्दन-कर दास ॥"

गयावासी रामायण, सरोजरामायण

पंडित चतुर्भुज मिश्रने आल्हारामायण और 'मनोहर रामायण' के अतिरिक्त 'गयावासी रामायण', 'सरोज रामायण' और 'गयावासी भागवत' आदि काव्य-ग्रन्थोंकी भी रचना की थी।

संक्षेप रामायण

मुहल्ला काजीबाग, पटना-वासी कलट्टू भगतने सवैया, घनाक्षरी, भुजंगप्रयात, सोरठा, अन्यच्च, दोहा, आदि अनेक छन्दोंमें 'संक्षेप रामायण' नामक पुस्तककी रचना की। कलट्टू भगत-कृत संक्षेप रामायण काव्यग्रन्थका प्रथम संस्करण सन् १८९० ई० में बिहार-बन्धु छापाखाना, बाँकीपुर, पटनासे प्रकाशित हुआ था। भारतेन्दु युगके प्रख्यात विद्वान् लेखक और पटना कालेज, पटनाके संस्कृत प्राध्यापक पंडित बिहारीलाल चौबेने इसकी भाषाका परिष्कार किया था। भाषा अवधी है। यह चौंतीस पृष्ठोंका रामायण है। इसके रचनाकालके सम्बन्धमें कवि कलट्टू भगतने स्पष्ट कर दिया है—

'उन्निस सौ सैंतिस समत, कृष्णपक्ष बुधवार। श्रावण मास पवित्र तिथि, भा संक्षेप प्रचार ॥

कलट्टू भगतके संक्षेप रामायणमें काण्डोंकी व्यवस्था नहीं है। यहाँ कथा अति संक्षिप्त रखी गई है। लंकाविजय और विभीषणके लंका-राज्य-सिंहासनारोहणके बाद कवि कहता है—

"राम राज जेहि बिधि कियो, बालमीक कह गाय। हौं मानुष बुधि अलप है, केहि बिधि सकौं बताय ॥"

यहींपर कथा समाप्त हो जाती है।

श्रीमदानन्दसार रामायण

हिन्दी साहित्यको गयावाल पंडोंकी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कवि रामलाल भैयासे कविवर श्रीनारायण लाल कटरियार-तक गयावाल समाजमें साहित्य-साधनाकी सुपुष्ट, परिपक्व और परिष्कृत परम्परा रही है। पंडित कान्हूलाल गुरदा गयावाल इसी विशिष्ट परम्पराके गौरव हैं। 'कान्ह कवि' इनका उपनाम था। वे गयाके ही निवासी थे। पंडित कान्हू लाल गुरदाका जन्म विक्रमी संवत् १९२४ में हुआ था और ५ मार्गशीर्ष, विक्रमी संवत् १९८१ को उनका निधन हुआ। गुरदाजी बड़े बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्य-साधक थे। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकोंकी रचना की। 'श्रीमदा-नन्दसार रामायण' और 'श्री आनन्दसार रामायण' गुरदाजीकी अतिमहत्वपूर्ण कृति है। यहाँ श्री मद्वाल्मीकीय आनन्दरामायणानुसार परम पुनीत श्रीरामचरितका ललित वर्णन ब्रजभाषामें दोहे, चौपाइयों और अन्य छन्दोंमें है। 'श्रीमदानन्दसार रामायण' का रचनाकाल कविने स्वयं स्पष्ट कर दिया है—

'संवत विक्रम भूपकर, श्रुतिऋतु ग्रह अरु चन्द। शिव प्रिय श्रावण मास शुभ, पूरित भयो प्रबन्ध।'

किन्तु गुरदाजीके निधनके बाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सोना दाई सेन द्वारा १५ जनवरी, १९२८ ई० को इसका प्रथम संस्करण श्रीआनन्दसार रामायणमें रचनाकालका निर्देश, कविने इस प्रकार किया है—

'संवत उनइस सत उपर, अरसठ भादव मास । पूर्ण भयो यह ग्रंथ शुभ, तिथि तेरस शुभ रास ॥

सन् १९११ ई० में श्रीआनन्दसार रामायणकी रचना हुई । यह २५० पृष्ठोंका बहुमूल्य काव्य ग्रन्थ है । इन ग्रन्थोंका प्रकाशन आर्थिक या व्यावसायिक दृष्टिकोणसे नहीं किया गया था । अतः इनका मूल्य मात्र प्रेम और श्रद्धा है, रुपये नहीं ।

कान्हूलाल गुरदा-कृत रामायणोंके कांडोंकी व्यवस्था बाल्मीकीय रामायणके अनुसार है, तुलसीकृत रामायणकी तरह नहीं । यह वस्तुतः दो खंडोंका रामायण है—दो स्वतंत्र ग्रन्थोंकी तरह । किन्तु एक ही ग्रन्थके ये दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । श्रीआनन्दसार रामायण और श्रीमदानन्दसार रामायण वस्तुतः एक विशिष्ट कोटिका महाकाव्य है ।

श्रीमदानन्दसार रामायण वाल्मीकीय आनन्द रामायणानुकूल आदि कांड है । श्री आनन्दसार रामायण वाल्मीकीय रामायणानुकूल जन्मकांड है ।

मुख्यतः दोहे-चौपाईमें ही सम्पूर्ण रामायणकी रचना इन्होंने की है ।

कृष्णरामायण

घनगाई, सूर्यपुरा (शाहाबाद) के मूल निवासी कवि घनारंगने 'कृष्ण रामायण' की रचना की । इसमें कृष्णभक्तिसे सम्बद्ध विभिन्न रागोंमें गेय पद हैं । यह रामायणके समान कृष्ण सम्बन्धी कथा-काव्य ग्रन्थ है । कृष्ण-रामायणकी एक हस्तलिखित पोथी बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनामें सुरक्षित है । इसकी पृष्ठ सं० १६७ है । प्रत्येक पृष्ठपर लगभग २४ पंक्तियाँ हैं । कवि घनारंगका जन्म विक्रमी संवत् १८७६ और देहान्त विक्रमी संवत् १९४४ अर्थात् सन् १८८७ ई० में हुआ । कृष्ण रामायणका प्रकाशन सन् १८९४ ई० में रचयिताके देहान्तके बाद हुआ । पुस्तकका मुद्रक हरिप्रकाश यन्त्रालय, बनारस था । श्रीकृष्णके प्रति यशोदाके कथनके रूपमें 'कृष्ण रामायण' की रचना हुई ।

रामचरितमानस-बोध

पिलुई (सारन, बिहार) निवासी मधुकवि द्वारा विरचित 'रामचरित मानसबोध' का मुद्रण अभी नहीं हुआ है । इसकी कुछ खंडित, अखंडित प्रतियां बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनामें सुरक्षित हैं ।

रामलीला नाटकाकार रामायण

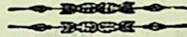
बिहारमें रामायणकी परम्पराने नाट्य-क्षेत्रमें भी प्रवेश किया । भारतेन्दु गोष्ठीके बिहार प्रवासी विशिष्ट साहित्यकार पण्डित दामोदर शास्त्री सप्रेने सात खण्डों या काण्डोंमें नाटकाकार रामायणकी रचना की । पण्डित दामोदर सास्त्री सप्रे कृत नाटकाकार-रामायण सातों कांड भरत-वाक्य-सहित, सात सौ पृष्ठोंसे ऊपरमें ही है । पण्डित दामोदर शास्त्री सप्रे कृत 'रामलीला-नाटकाकार रामायण'—बालकाण्डका प्रथम संस्करण सन् १८८२ ई०, आरण्यकाण्ड १८८४ ई०, किष्किधा काण्ड सन् १८८७ ई०, सुन्दर काण्ड सन् १८८७ ई०, युद्ध काण्ड सन् १८८७ ई०, उत्तरकाण्ड भरतवाक्य-समेत सन् १८८८ ई० में खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटनासे प्रकाशित हुए । दामोदर शास्त्री सप्रेजीके रामायणी नाटकोंका जनताने हार्दिक स्वागत किया । सन् १८८२ ई० में प्रकाशित 'रामलीला—नाटकाकार रामायण बालकाण्ड' का द्वितीय संस्करण सन् १८८३ ई० में प्रकाशित हुआ था ।

बालबोध-रामायण (अयोध्याकाण्ड)

पालीगंज विद्यालय, पालीगंज, जिला पटनाके प्रधानाध्यापक संकटाप्रसाद कृत 'बालबोध रामायण अयोध्याकाण्ड' का प्रकाशन सन् १८८७ ई० में हुआ। बाल्मीकि, अध्यात्म-रामायण, अग्निवेश और तुलसीकृत रामायणका आशय ग्रहणकर संकटा प्रसादने 'बालबोध रामायण अयोध्या-काण्ड' की रचना की है। यह सरल, सुबोध हिन्दी गद्यमें है। इसका तुकान्त गद्य-विधान मनोहर है।

बिहारमें रामायणकी विशिष्ट परम्पराके अनुरूप ही बिहारने ही हिन्दी संसारको सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदासकी बृहद् जीवनी दी। सन् १९१६ ई० में बाबू शिवनन्दन सहायने तुलसीदास जीवनी-लेखनका कार्य समाप्त किया और सन् १९१७ ई० में इसका पुस्तकाकार प्रकाशन हुआ।

बिहारमें रामायणकी एक विशिष्ट परम्परा रही है। इस परम्पराका अध्ययन-अनुशीलन अभी-तक हमारे विद्वानों द्वारा सम्भव नहीं हो सका है। यह एक विस्मयपूर्ण सत्य है कि प्रस्तुत निबन्धमें बिहारके जिन रामायण ग्रन्थोंका उल्लेख हुआ है, उनका उल्लेख अबतक किसी भी आलोचना-पुस्तक अथवा हिन्दी साहित्यके इतिहासमें नहीं हुआ है। मानस चतुःशताब्दीके पुण्य अवसरपर इसकी अनिवार्यता आज बढ़ गई है।



बिहारके कुछ रामायण और उनके कवि

डा० अमरनाथ सिन्हा, पी एच० डी०, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, बि० ने० कालेज, पटना-४

रामकी कथा इतनी लोक-प्रिय रही है कि अनेक कवियोंने समय-समयपर अपनी-अपनी भावनाके अनुसार रामका चरित्र अंकित करके अपनी लेखनी और अपनी बुद्धि पवित्र की है। उनमेंसे कुछका परिचय नीचे दिया जा रहा है—

श्रीललित रामायण

श्रीललित रामायण राम-भक्तिकी मधुर उपासना-परंपरासे संबद्ध है। कवि हैं श्री पं० हरिनाथ पाठक। ये गया जिलान्तर्गत पाठक बिगताके निवासी थे। इनके पिताका नाम श्री शिवराम पाठक था। श्री शिवप्रसाद पंडित इनके गुरु थे। गया जिलेके अहियापुर गाँव स्थित राधा-कृष्ण मन्दिरमें पं० हरिनाथ नित्य प्रति गायन किया करते थे। उसी राधा-कृष्ण भावको इन्होंने राम-चरित्रमें प्रस्तुत किया है।

इस ग्रन्थकी पूर्ति संवत् १९५० वि०, आषाढ़ कृष्ण पक्ष, तृतीया रविवारको हुई।

ग्रन्थमें गेय पदोंकी कुल संख्या ५०५ है। प्रत्येक कांडमें उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

बालकांड–१००, अयोध्याकांड–५१, अरण्यकांड–४४, किष्किंधाकांड–-३४, सुन्दरकांड—४१, युद्धकांड—९७, उत्तरकांड—१२८।

रसिकविलास रामायण

प्रस्तुत रामायणको भी रामभक्तिकी रसिक-परंपराके अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसके कवि श्री अक्षयकुमार हैं। सन् १९०१ में बिहार बन्धु प्रेस, बाँकीपुर, पटनासे इसका प्रथम संस्करण निकला था। द्वितीय संस्करण सन् १९३६ ई० में कविके पुत्र श्री कामताप्रसाद (तत्कालीन अध्यापक, भौतिकी-विभाग, सायंस कॉलेज पटनाने प्रकाशित करवाया, जिसकी भूमिका विश्रुत विद्वान् पांडेय रामावतार शर्माने लिखी है।

अक्षय कुमारका जन्म मिथिलाके बाथी (घी ?) गाँवमें सन् १८४३ ई० हुआ। सन् १९०१ में उनका स्वर्गवास हो गया। इनके पिताका नाम नन्दलाल सिंह था। अक्षय कुमारकी प्रारम्भिक शिक्षा पुराने ढंगसे हुई और वे अच्छे फ़ारसीदाँ थे। बादमें उन्होंने हाजीपुरकी मुन्सिफ़ी इजलासमें वकालत शुरू की, फिर अपने चचेरे भाईके स्टेटके मैनेजर हुए और मृत्युकाल तक वहीं रहे। वे बड़े धार्मिक वृत्तिके थे और स्वाध्यायसे उन्होंने संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। बावन वर्षकी आयुमें उन्होंने रसिकविलास रामायण लिखी।

यह ग्रन्थ सं० १९५४ वि० फाल्गुनमें रचा गया है। ग्रन्थमें अनेक छन्दोंका प्रयोग हुआ है, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय, दोहा, सवैया आदि।

इसमें सब कुछ सहज भावसे ही है, किसी सम्प्रदाय अथवा पद्धतिके आग्रह-विशेषके कारण नहीं, कविने प्रारम्भमें ही इसे स्पष्ट कर दिया है—

जो चरित्र जेहि भाँति मोहि, हिय अन्तर सरसात।
रघुपति आज्ञा जानिके, लिखउँ सत्य सोइ बात॥ —बालकांड

श्री सरल रामचरित्र

इसके कवि श्री रामेश्वर प्रसाद स्वयं अत्यंत सरल भगवद्भक्त थे। वृत्तिसे शिक्षक और प्रवृत्तिसे भक्त श्रीप्रसादका जन्म दिसम्बर, सन् १८९३ ई० में पुर्णिया, बिहारमें हुआ। इनके पिता मुंशी चिन्तामन लाल भी सरल स्वभावके व्यक्ति थे। श्री रामेश्वरजीकी शिक्षा बी० ए०, बी०एड्० स्तर तक हुई थी। ये बिहार राज्य, शिक्षा-विभागमें प्रधानाध्यापक पदसे सेवामुक्त हुए और 'रामदास' बन गये। इनकी मृत्यु हालहीमें, नवम्बर, १९६९ ई० में हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक उनका निजी प्रकाशन है जिसे उन्होंने सं० २०२१ में मुद्रित करवाया। पुस्तकमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, सिर्फ इतनाभर संकेत है कि पुस्तककी पूर्णाहुति उन्होंने आश्विन शुक्ल विजयादशमीको की। भूमिकामें प्रकाशन-तिथि रामनवमी सं० २०२१ वि० दिया गया है, अतः अनुमानतः पुस्तकका रचना काल सं० २०२० वि० है।

पुस्तक सिर्फ दो छंदों - दोहे और एक अन्य मिश्रित छंदमें लिखी गई है जिसे कविने चौपाई कहा है। पर तथाकथित 'चौपाई' वस्तुतः चौपाई नहीं है, उसकी मात्रा-योजना गीतिका (२६ मात्रा) के निकट है, लेकिन मात्रा-बंधका निश्चित निर्वाह नहीं मिलता है।

कुण्डलिया-रामायण

हिन्दी एकल छन्द-काव्य-परंपराकी दूसरी रचना, आधुनिक कालमें लिखित, पंडित बाल-गोविन्द मिश्र कृत 'कुंडलिया रामायण' है।

पंडित बालगोबिन्द मिश्र गया जिलान्तर्गत अरण्डी गाँवके निवासी थे। इनके पिताका नाम श्री तोताराम था। वे जातिके शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। इनके वंशज अभी भी अरण्डी गाँवमें रहते हैं। इन्होंने भाषा बाबू सीतारामसे सीखी थी और उन्हींके पौत्र बाबू अवध बिहारी लालके ये आश्रित कवि थे। बाबू अवधबिहारी लाल अपने समयके बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे। कलकत्ता विश्वविद्यालयसे उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की थी। वे अंग्रेजीके अच्छे कवि थे और अंग्रेजीमें कई काव्य-पुस्तकोंकी रचनाका श्रेय उन्हें प्राप्त है। इन तथ्योंका उल्लेख पंडित बालगोविन्द मिश्रने भी किया है। उन्हीं बाबू अवधबिहारी लालके निवेदन और आदेशपर कुंडलिया रामायणकी रचना की गई थी। पंडित बालगोविन्द मिश्रकी शिक्षा-दीक्षा बाबू सीताराम और पंडित तोतारामकी देखरेखमें हुई। शास्त्रों में उनकी अच्छी गति थी। धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन आदिका उन्हें अच्छा ज्ञान था। पं० मिश्रकी एक अन्य पुस्तक छन्दःशास्त्रपर भी उपलब्ध है, जिससे स्पष्ट है कि काव्यशास्त्रका भी उन्होंने विधिवत् अध्ययन किया था।

कुण्डलिया रामायणके प्रकाशनकी व्यवस्था बाबू अवधबिहारी लालने की थी। पुरानी गुदाम, गया स्थित सुलभ प्रेससे कुंडलिया रामायणका बालकांड संवत् १९५९ वि० में प्रकाशित भी हुआ

और क्रमशः शेष कांडोंकी प्रकाशन-योजना भी थी। पर दुर्भाग्यवश सिर्फ बालकांड ही संप्रति उपलब्ध है। अन्य कांड संभवतः प्रकाशित नहीं हो पाए—उनकी हस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध नहीं है। अतः प्रस्तुत ग्रंथ-परिचय मुद्रित बालकांडके आधारपर दिया जा रहा है।

ग्रंथकी रचना संवत् १९५६ वि०, कार्तिक शुक्लपक्ष एकादशी, गुरुवारको हुई और इसकी समाप्ति चैत्र शुक्ल एकादशी संवत् वि० को हुई।

ग्रंथमें कुल २४९५ कुंडलिया हैं, जिनका प्रतिकांड वर्गीकरण इस प्रकार है।

बालकांड—४२५। अयोध्याकांड—४८५। आरण्यकांड—२३३। किष्किधाकांड—१३३। सुन्दरकांड—५२९। लंकाकांड—५२९। उत्तरकांड—४३५। =२४९५

गुरुदास कवि-कृत कुंडलिया रामायण

एकल छंद-काव्यके लिए प्रायः दोहा, बरवै, सवैया, कवित्त और छप्पै ही स्वीकृत रहे। १८वीं शतीके प्रारंभमें गिरिधर कविराय और हज़ार ऐनशाहने कुंडलिया छंदको भी यह गौरव प्रदान किया।

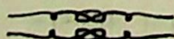
गुरुदास कविकी कुंडलिया रामायण, एकल-छन्द-काव्यकी प्रबन्ध-परंपराकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। उपलब्ध-सामग्रीके आधारपर गुरुदास कविके जन्म, मृत्यु तथा जीवनके क्रमिक विकासके संबंधमें कुछ नहीं कहा जा सकता। गुरुदास कविका जन्म एक प्रतिष्ठित काश्यपगोत्रीय कायस्थ परिवारमें हुआ था। इनके पिता बाबू सीताराम (संवत् १८५२–१९३१ वि०) अपने समयके बड़े जमीन्दारोंमेंसे थे। उनके संबंधमें गयाके कलक्टर डॉ० जार्ज ग्रियर्सनने 'भूगोल गया' और पं० शिवनारायण त्रिवेदीने 'गया भूगोल' में ऊँची राय प्रस्तुत की है। बाबू सीताराम बड़े भक्त-हृदय और काव्यप्रेमी थे। इनके आश्रयमें रहकर बैजनाथ द्विवेदीने आठ महत्त्वपूर्ण रीतिग्रन्थोंकी रचना की थी। गुरुदास कवि इन्हीं बाबू सीतारामके ज्येष्ठ पुत्र थे। ये आठ भाई थे। इनका निवास-स्थान गया जिलेके पूरबमें स्थित बकसंडा नामका एक विशाल गाँव है। गुरुदासका पूरा नाम गुरबख्श लाल था। इनके गुरु उसी क्षेत्रके प्रसिद्ध साधु संतदास थे। रामभक्ति इन्हें पितृपरंपरासे मिली थी। उनके 'भक्त' व्यक्तित्वके निर्माणमें उनके पिता बाबू सीताराम तथा गुरु संतदास जी और 'कवि' व्यक्तित्वके निर्माणमें ज़मीन्दारी दरबारका कवित्वपूर्ण वातावरण उत्तरदायी रहा। कुंडलिया रामायणके अध्ययनसे यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने कविरीति तथा भक्तिकाव्य, विशेषतः तुलसी-साहित्यको भली भाँति पढ़ा था।

गुरुदास कवि-रचित सिर्फ़ एक ग्रंथ कुंडलिया छंदमें लिखित 'रामायण' प्राप्त है। अन्य किसी ग्रंथकी सूचना किसी भी स्रोतसे नहीं मिलती।

ग्रंथका रचनाकाल कार्त्तिक शुक्ल एकादशी, संवत् १९२१ वि० सिद्ध है। ग्रंथकी रचना तुलसीकृत रामचरितमानसको आधार मानकर की गई है।

ग्रंथमें कुल ९६९ कुंडलिया हैं, जिनका प्रतिकांड वर्गीकरण इस प्रकार है—

बालकांड—१४४, अयोध्याकांड—१७७, आरण्यकांड—८२, किष्किन्धाकांड—५४, सुन्दर-कांड—९५, लंकाकांड—३०४, उत्तरकांड—११२।



तुलसी-द्वारा बाल-चेष्टाका वर्णन

डा० श्रीमती जयशीला पाण्डेय, एम० ए०, पी एच्० डी०,

बाल विश्वविद्यालय, प्रह्लाद घाट, काशी

बालक रामकी चेष्टाओंके सम्बन्धमें रामचरितमानसमें केवल एक ही बात कही गई है कि उन्होंने बहुत प्रकारसे बालचरित किया और भक्तोंको आनन्द दिया। वे दशरथके आँगनमें खेलते थे। राजा जब भोजनके लिये बुलाते तब भी वे बाल-समाज छोड़कर नहीं जाते थे। कौशल्या जब बुलाने लगती थीं तब वे ठुमुक-ठुमुककर भाग चलते थे। जब वे बाहरसे खेलकर धूलसे सने आते थे तो राजा हँसकर उन्हें अपनी गोदमें उठा बैठाते थे। भोजन करते समय वे चपलताके साथ अवसर पाते ही किलकारी मारते हुए मुँहमें दही और भात लपेटे भाग चलते थे। बस मानसमें तो गोस्वामीजीने रामकी इतनी ही बाल-चेष्टाका वर्णन किया है और प्रबन्ध काव्यके वर्णनानुपातकी दृष्टिसे इतना ही पर्याप्त भी है।

कवितावलीमें भी रामकी बाल-चेष्टाओंके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने जो वर्णन किया है वह भी बहुत संक्षिप्त है। राम अन्य बालकोंके साथ खेलने जाते हैं, किलकारी मारते हैं, बालविनोद करते हैं, कभी ताली बजाकर नाचते हैं, कभी अपनी परछाइँ देखकर डरते हैं। कभी हठ करके अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करनेके लिये मचल उठते हैं और लेकर छोड़ते हैं, कभी रूठ जाते हैं।

किन्तु तुलसीदासजीने गीतावलीमें बाल रामकी चेष्टाओंका वर्णन कुछ विस्तारसे किया है। वे लिखते हैं कि एक दिन राम प्रातःकालसे दूध नहीं रहे थे और गोदमें लेकर बैठने, खड़े होने और पालनेमें झुलानेपर भी रोते ही जा रहे थे। पर जब कुलगुरु वशिष्ठजीने आकर माथेपर हाथ रक्खा तो वे किलकारी मारने लगे। आगे चलकर उन्होंने दूसरोंके हँसनेपर हँसना, उदास होनेपर उदास होना, जागना, अलसाना आदि रामकी चेष्टाओंका वर्णन किया है। रामचन्द्रजी दूध पीते हैं, चारों भाई रोते-धोते हैं, क्रोध करते हैं, हँसते, खेलते, किलकारी मारते हैं। खिलौने देखकर किलकारी मारते हैं, पैर हाथ, नेत्र चंचलताके साथ चलाकर पालनेपर लटके हुये खिलौने देख-देखकर उन्हें लेनेको लपकते हैं। हाथसे अपना अँगूठा पकड़कर मुखके पास लाते हैं। बाल राम अब पालनेसे बाहर निकले हैं। कुछ बड़े होनेपर वे आँगनमें घुटनोंके बल चलने लगे हैं। उनके पैरोंको पैंजनी बज रही है। चारों भाई आँगनमें खेलते हैं, उठते हैं, चलते हैं, गिर-गिर पड़ते हैं उनका शरीर धूलसे सन जाता है, वे झुककर झाँकते हैं, अपनी परछाई देखते हैं, नटते हैं, हठ करके लड़ते हैं, तोतली बोली बोलते हैं और मनोहर दृष्टिसे देखते हैं। चारों भाई आँगनमें खेलते हुए ठुमुक-ठुमुककर चलते हैं, नाचते हैं, लड़खड़ाकर गिरते हैं, भागते, मिलते, रूठते, किलकारी मारते हैं, एक दूसरेकी ओर देखते हैं और तोतली बोलीमें बोलते हैं। चारों भाई जब आँगनमें खेलते हैं उस समय उनकी कटिमें बँधी घुंघरूदार किंकिणी और पैरकी पैंजनी बजने लगती है। वे मणिखम्भ पकड़कर डगमगाकर बढ़ चलते हैं, तोतले वचन बोलते हैं, किलकारी मारते हैं, प्रतिबिम्बमें झुककर झाँकते है और माता-पिताको परम सुख देते हैं। अपने सुन्दर स्वर्णके आँगनमें कौशल्या उन्हें उँगली पकड़कर चलना सिखाती है जिससे उनकी पैंजनी रुनझुन बज उठती है। छोटे-छोटे पैरों और छोटी छबीली उँगलियोंवाले राम ठुमुक-ठुमुककर आँगनमें चलते हैं

जिससे उनके पैरोंकी पैंजनी झुनुन-झुनुन बज उठती है और जब कौशल्या चुटकी बजाती हैं तो वे हँस उठते हैं, नाचते हैं और तोतले वचन बोलने लगते हैं।

माताके जगानेपर राम जागते हैं। सुन्दर कलेवा करके, वस्त्राभूषणसे सजकर अपने भाइयों और अन्य बालकोंके साथ धनुष-बाण-तूणीर लेकर मृगयाके लिये वनमें जा निकलते हैं। राम अयोध्याकी गलियोंमें अपने भाइयों और अनेक बच्चोंके साथ हाथमें धनुष, बाण और तूणीर लेकर घूमते हैं। चारों भाई धनुष-बाण और तूणीर लेकर चौहट्ट, हाट, गली और वाटिकाओंमें खेलते फिरते हैं। वे अपने पैरोंमें नन्हीं-नन्हीं पनहियाँ पहने पैंजनी और किंकिणी बजाते अवधकी गलियोंमें गोली, भौंरा, चकरी खेलते घूमते हैं। एक ओर राम-लक्ष्मण दूसरी ओर भरत-शत्रुघ्न अपने गुइयाँ बाँटकर घोड़ोंपर चढ़कर सरजूके तटपर चौगान खेलने पहुँच जाते हैं। चौगान खेल चुकनेपर सब उतर-उतरकर अपने-अपने घोड़ोंको पुचकारते हैं और राम अपने बंधु, सखा और सेवकोंकी सराहना और सम्मान करते हैं।

तुलसीदासजीने रामकी बाल-चेष्टाओंमें निरन्तर गंभीरताका आरोप करके उनमें उस प्रकारकी बाल-सुलभ चेष्टाओं और नटखटपनका सन्निवेश नहीं किया जो सूरने कृष्णमें किया है। इसलिये उनके बालवर्णनमें इतनी व्यापकता और सूक्ष्मता नहीं आ पाई जितनी सूरमें।

श्रीकृष्ण-गीतावलीमें तुलसीने जो कृष्णकी बाल-चेष्टाओंका वर्णन किया है वह भी बहुत विस्तृत नहीं है। कृष्ण तोतली बोलीमें मातासे बोलते हैं। वे मातासे कहते हैं कि मुझे छोटी-सी मोटी-सी मिस्सी रोटी (मिले हुए गेहूँ-चनेके आटेसे बनी) घी चुपड़कर अभी दे जिसे मैं स्वयं ही पूरी खा जाऊँगा, बलदाऊको नहीं दूँगा। वे बच्चोंको बुलाकर उन्हें चकमा देकर उनका मुँह बिराते हैं, रोटी दिखा-दिखाकर ललचाते हैं, माँगनेपर मुँह चिढ़ाते हैं और कूद-कूदकर किलक-किलककर खाते हैं। गोपियोंके द्वारा चोरीका दोष लगानेपर मातासे कहते हैं कि ये मुझे झूठे ही दोष लगाती हैं। इन्हें स्वयं दूसरोंके घर जानेका चसका लगा हुआ है इसलिये स्वयं यहाँ आनेकी युक्ति बनाया करती हैं। इनके लिये मैंने खेलना छोड़ा फिर भी मैं इनसे बच नहीं पा रहा हूँ। ये अपने घरका बर्तन फोड़कर मेरे हाथ दूध-दहीमें डुबोकर मुझे उपालंभ देने चली आती हैं। कभी अपने बच्चोंको स्वंय रुलाकर उलटे मेरे पास आकर बहाना करके उठ-उठकर पकड़ने दौड़ पड़ती हैं। करती तो ये स्वयं अपने आप हैं और दोष दूसरोंके सिर मढ़ती हैं। मैं तो सदा बलदाऊके संग खेलता हूँ। मुझे तो ऐसे साथी अच्छे ही नहीं लगते जो दूसरोंका अहित करें। कृष्ण अपनी मातासे कहते हैं कि देखिये अभी थोड़ी देर पहले जो गोपी उलाहना दे गयी थी वह फिर आ धमकी। तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि इसे तो लड़नेकी टेव पड़ी हुई है। ब्रजमें इतने लड़के हैं, उनमें क्या मैं ही एक अन्यायी बच गया हूँ। तुमने इन्हें इतना सिर चढ़ा लिया है इसीसे आ-आकर लड़ती हैं क्योंकि तुम्हें इन्होंने सीधा पा लिया है। हैं तो आखिर अहीरिन ही न। जब यशोदा छड़ी लेकर कृष्णको डाँटती है तब वे आँखोंमें आँसू भरे हुए, होठ फड़काते हुए भयका अभिनय करते हैं।

इस प्रकार तुलसीदासने श्रीकृष्णके चरित्रमें भी उनकी बाल-चेष्टाओंका जो वर्णन किया है वह भी बहुत संक्षिप्त और थोड़ा है। फिर भी जो कुछ उन्होंने बाल-वर्णन किया है वह उनकी गंभीर वृत्ति, मर्यादा-संरक्षण और सूक्ष्म दृष्टिका परिचायक है।

गोस्वामीजीकी जीवनी : नया सूत्र

ज्यो० श्री राधेश्याम द्विवेदी, भारती-अनुसन्धान भवन, मथुरा

भारतीय प्रकृतिको अद्यावधि दो महान् ग्रन्थोंने अधिक अनुप्राणित किया है। एक भगवान् व्यासके श्रीमद्भागवतने और दूसरे गो० तुलसीदासजीके 'रामचरितमानस' ने। दोनों ग्रन्थोंने भारतीय जनताके मन-मन्दिरमें ऐसा स्थान बना लिया है कि उनकी श्लाघा समर्थ वाणीसे परेकी बात है। जिन्होंने पुण्यसलिला भगवती भागीरथीके समान अव्याहत गतिसे धवल धारायुक्त धावमान काव्य-मन्दाकिनीके प्रवाह-द्वारा कोटि-कोटि मानवोंके कलुषित अन्तःकरणोंको पावन बना दिया उन प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीका जीवन-वृत्त और जन्म-स्थानका प्रामाणिक वास्तविक स्वरूप आज तक विद्वानोंके विवादका विषय बना हुआ है। अन्य भारतीय प्राचीन विद्वानोंकी भाँति ही तुलसीदासजीका पूर्ण जीवन-चरित्र अज्ञात है। बीसवीं शतीके विगत एक शतकमें इस सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री प्रकाशमें आयी है परन्तु उसकी प्रामाणिकतामें विद्वानोंमें मतभेद बना ही हुआ है।

गो० तुलसीदासजीके जीवन-चरितके विषयमें जो कुछ उपलब्धियाँ हैं उन्हें हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य। तुलसीदासजीने अपने ग्रन्थोंमें यत्रतत्र आत्म-चरित्रात्मक उल्लेख किए हैं। यद्यपि वे अत्यन्त सूक्ष्म तथा अपर्याप्त ही हैं तथापि जीवन और जन्मस्थानके प्रामाणिक आधार वे ही हैं। कविकी अनेक आत्मकथात्मक उक्तियोंके अर्थ भी विभिन्न आलोचकोंने अपनी-अपनी मति और रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न किये हैं। ऐसी अनेक उक्तियोंको भी आत्मचरितसे सम्बन्धित कर दिया गया है जो वास्तवमें आत्मपरिचय रहित हैं।

बहिस्साक्ष्यका अधिकांश भाग दन्तकथाओंपर आश्रित और अतिरंजनासे युक्त होनेके कारण संदिग्ध है। कुछ विद्वानोंने जो तुलसीदासजीके जीवन-चरित्र लिखे हैं उन रचनाओंमें उनके एक पक्षका वर्णन किया गया है। मन्दिर, पंचनामा आदि फुटकर आधार भी विद्यमान हैं। अनेक प्रचलित तथा लिपिबद्ध किंवदन्तियोंकी भी भरमार है। इन सबमें ऊहापोह, अतिरंजना और चमत्कार अधिक है। इनमेंसे वास्तविक तथ्योंका उद्घाटन अत्यन्त दुष्कर है। तुलसीदासजीका जीवनचरित्र लिखनेवालोंमें विशेष रूपसे निम्नलिखित महानुभावोंका नाम प्रमुख रूपसे लिया जाता है—

सर्वश्री रघुवरदास, वेणीमाधवदास, कृष्णदत्त मिश्र, अविनाशराय तथा तुलसी साहब। प्रथम दो अपनेको तुलसीदासके शिष्य मानते हैं। तीसरे मिश्रजीने अपनेको उनका गुरुभाई कहा है। चौथे अविनाशरायने उनके साथ-साथ सत्संग किया था। वे उनसे भली भाँति परिचित थे। तुलसी साहब अपने ही कथानानुसार पूर्वजन्ममें तुलसीदास ही थे। इन सभी विद्वानों-द्वारा लिखित तुलसीचरित्र कितना प्रामाणिक बन सका है यह तो प्रायः तुलसी-साहित्य-मर्मज्ञ जन स्वतः जानते हैं। यहांपर बाह्य एवं अन्तः दोनों साक्ष्योंके आधारपर सिंहावलोकन करते हुए तुलसीदासके जीवन-चरित्रका निरूपण करना समीचीन होगा।

जन्मकाल ।

गो० तुलसीदासजीके जन्म-संवत् और जन्मतिथिका निश्चित निर्धारण करनेमें विद्वान् एक मत नहीं हैं। उनकी अनेक जनश्रुतियाँ हैं तथा विद्वान् लेखकों भी भिन्न-भिन्न मत हैं। 'मूल गोसाईं चरित्र' में वेणीमाधवदासजीने तुलसीदासजीका जन्म संवत् १५५४ माना है। यही 'मानसमयंक' में भी जनश्रुतिसे माना गया है। परन्तु यह प्रामाणिक नहीं लगता। इस विषयमें डा० माताप्रसाद गुप्तके अनुसार "मूलगोसाईंचरित्रमें दिया गया तिथि-विस्तार गणनासे शुद्ध नहीं उतरता।"[1] अतः अमान्य है। श्री जगन्मोहन वर्माने "राममुक्तावली" के अनुसार तुलसीका जन्म सम्वत् १५६० माना है। परन्तु "राममुक्तावली" एक तो तुलसीकी रचना नहीं मानी जा सकती, दूसरे प्रस्तुत की गई पंक्तिसे वांछित अर्थ नहीं निकलता। वह पंक्ति इस प्रकार है:—"पवनतनय मो सन कह्यौ पाँच बीस औ बीस"। 'पाँच बीस औ बोस'से तुलसीदासजीके १२० वर्ष-तक जीवित रहनेकी बात कही जाती है अतः मृत्यु सं० १६८० वि० के आधारपर (१६८०—१२०)=१५६० संवत् हुआ। परन्तु इस पंक्तिका अर्थ १२० करनेमें सब एकमत नहीं हैं। कतिपय विद्वान् पाँच बीस और बीसका अर्थ ४५ अधिक समीचीन समझते हैं। दूसरे इससे निश्चित संवत् सिद्ध नहीं होता।

विल्सन तथा गासाँ द तासीके अनुसार तुलसीका जन्म संवत् १६०० है। यही श्रीकृष्णदत्त मिश्रने "गौतमचन्द्रिका" में माना है। लेकिन इसमें लेखक महोदयने सम्भवतः "संवत् सोरह सै असी असी गंगके तीर" का अर्थ करनेमें भ्रान्तिवश यह अर्थ किया है कि सं० १६८० में अस्सी वर्षकी आयुमें अस्सी गंगा तटपर तुलसीका शरीरान्त हुआ।" इससे उन्होंने १६०० उनका जन्म मान लिया है। विल्सनने कदाचित् "संवत् सोरह सौ इकतीसा" का तात्पर्य इकतीस वर्ष आयुमें रामचरितमानसका प्रारम्भ माना है। इस प्रकार यह मत भी सर्वथा भ्रान्त है।

'शिवसिंह-सरोजमें उनका जन्म सं० १५८३ मिलता है। इसके संदिग्ध माननेका सबसे बड़ा कारण यही है कि इसकी पुष्टि भी लिखित या मौखिक किसी स्रोत या जनश्रुति आदिसे नहीं होती।

'घट रामायनमें तुलसी साहबने सं० १५८९ माना है। उन्होंने सं० १५८९ भादों सुदी ११, मंगलवार तिथि दी है। डा० ग्रियर्सन भी इसी तिथिको अधिक ठीक मानते हैं। परन्तु इन दोनों विद्वानोंने भी उन स्रोतोंका उल्लेख नहीं किया जिनके आधारपर इस तिथि तथा संवत्को प्रामाणिक माना जाय। श्री सीतारामजी चतुर्वेदी-द्वारा सम्पादित तुलसी-ग्रन्थावलीके प्रथम खण्डमें श्रीचतुर्वेदीजी भी तुलसीदासजीका जन्म १५५४ वि० ही मानते हैं।

'तुलसी-प्रकाश' के रचियता श्री अविनाशराय ब्रह्म भट्टके अनुसार तुलसीकी जन्मतिथि तथा जन्म-संवत् इस प्रकार है—

राम राम सागर महीं, सक सित सावन मास।
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद, नषत विसाषा वास॥

॥ तु० प्र० दोहा० २५ ॥,

इसके अनुसार शक संवत् १४३३, श्रावण शुक्ला सप्तमी, शुक्रवार अर्थात् सं० १५६८ वि०-को तुलसीदासजीका जन्म हुआ था। इसके समर्थनमें विद्वानोंका मत है कि यह तिथि गणनाके

---

१. तुलसीदास पृ० ५१५

अनुसार सही बैठती है। इसके अनुसार तीन जन्म-कुण्डलियाँ बनती हैं जिनमेंसे एक तुलसीदासजीके जीवनकी घटनाओंपर भी सही उतरती है। इसी तथ्यको स्वीकार करके यह तिथि और संवत् मानना सर्वथा समीचीन होगा। इसे प्रामाणिक माननेमें एक और तथ्य सामने आता है कि "तुलसीप्रकाश" गो० तुलसीदासजीके समकालीन और उनके सत्संगी उनकी ननसाल तारीके निवासी अविनाशराय ब्रह्मभट्ट-द्वारा रचित है। (यह तुलसी-प्रकाश इस तुलसी-ग्रन्थावली, तृतीय खंडमें पृष्ठ १०४ से ११८ तक दिया गया है।)

जन्मस्थान :

गो० तुलसीदासजीके जीवनचरित्रमें जितना अन्य सभी समस्याओंपर अनुसंधानात्मक विवाद है उससे कहीं अधिक उनके जन्म-स्थानके विषयमें है। परन्तु इतने बुद्धि-विलास तथा धनके व्यय होनेपर भी समस्या हल नहीं हो पाई है। विभिन्न विद्वानोंने अपने-अपने रुचि-वैचित्र्यके अनुसार अवध, अयोध्या, काशी, हाजीपुर, हस्तिनापुर, राजापुर, तारी, सोरों, रामपुर आदि कई एक स्थानों-को उनका जन्म-स्थान होना बताया है। परन्तु तुलसीदासजीकी जन्मस्थलीके अधिक शक्तिशाली दावेदार राजापुर और सोरों हैं। ये दोनों स्थान उत्तर प्रदेशमें हैं। एक (राजापुर) बाँदा जिलेमें है और दूसरा (रामपुर) सोरोंके निकट एटा ज़िलेमें है।

राजापुर ज़िला बाँदामें यमुनाके तटपर एक क़स्बा है। शिवसिंहसरोज, मिश्रबन्धु, पं० रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, पं० रामबहोरी शुक्ल, पं० सीताराम चतुर्वेदी, डा० गोवर्धननाथ शुक्ल आदि विद्वान् उसे ही तुलसीदासजीका जन्म-स्थान मानते हैं। दूसरा भी प्रबल पक्ष है जो सोरोंको उनका जन्मस्थान मानता है। उसमें सूकरक्षेत्र-माहात्म्य भाषा, मुरलीधरके छप्पय रत्नावली-चरित्र, दोहा-रतनावली, भँवरगीतकी पुस्तिकाका वर्षफल, सेवारामकी टीका और 'तुलसी-प्रकाश' आदिके प्रमाण इसकी पूर्ण पुष्टि करते हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० दीनदयाल गुप्त, डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० राजाराम रस्तोगी आदि विद्वान् सोरों-सामग्रीको प्रामाणिक मानते हुए तुलसीदासजीकी जन्म-भूमि सोरों या सूकरखेतको मानते हैं।

राजापुरवाले पक्षका कथन है कि रामचरितमानसका द्वितीय सोपानका तापस - प्रसंग, अयोध्याकांडकी एक हस्तलिखित प्रति वहाँ होना, तीन सनदें, हनुमानकी मूर्ति, तुलसीदासजीका मकान, तुलसी-चरित्र, मूल गोसाई-चरित्र और घटरामायन आदि ऐसे प्रमाण हैं कि राजापुरको उनका जन्मस्थान माना जाना चाहिए। इस सम्बन्धमें जनश्रुति भी एक प्रकारसे साक्ष्य है क्योंकि उनमें भी कुछ न कुछ सत्यका अंश होता है। परन्तु इन सबकी आलोचना करके विद्वानोंने इसको अप्रमाणित करनेका भी प्रयास किया है। राजापुर-सम्बन्धी समग्र सामग्रीके पर्य्यालोचनसे तत्त्वतः इतना ही प्रमाणित होता है कि तुलसीदासजीने वहाँ निवास किया था। अतः राजापुरके पक्षमें ऐसा कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं है जिसके आधारपर उसे तुलसीदासजीका जन्म-स्थान मान लिया जाय। एक तर्क यह भी विचारणीय है कि राजापुरसे विरक्त होकर निकले हुए तुलसीदासजी फिर उसी गाँवमें आकर कैसे रह सकते थे। इससे अनुमान होता है कि उनका जन्मस्थान अन्यत्र होना चाहिए।

पं० रामनरेश त्रिपाठीने एक प्रश्न उठाकर कहा है कि किसीने भी इस शंकाका समाधान नहीं किया कि तुलसीदासजी जब बहुत बालक 'अति अबोध' थे तब सूकरखेत कैसे पहुँच गए। "मैं पुनि निज गुरु-सन सुनी कथा सो सूकरखेत" से निश्चित है कि तुलसीदासजीका जन्म-स्थान सोरों ही

है वहीं उन्होंने "समुझि परी नहिं बालपन, तब अति रहेउँ अचेत", बाल्यकालमें गुरुमुखसे रामकथाका श्रवण किया था। सूकरखेतका अर्थ केवल सोरों क़स्बेसे ही नहीं है, अपितु सोरोंके चारों ओर पाँच योजन-तकका क्षेत्र सूकरखेत माना जाता है। इस प्रकार सोरोंसे डेढ़-दो मील पूर्वकी ओरवाला रामपुर ग्राम भी सूकरक्षेत्रके अन्तर्गत आता है। "तुलसी प्रकाश" के आधारपर रामपुर ही उनका जन्मस्थान ठहरता है। कुछ विद्वान् सोरोंके योगमार्ग मुहल्लेको उनका जन्मस्थान मानते हैं। सोरोंसे कुछ दूर तारी ग्राममें उनकी ननिहाल थी। गंगापार बदरिया ग्राममें उनकी ससुराल थी। उनका बालपन सोरोंमें ही बीता। गृहस्थ होकर भी सोरोंमें रहे। इस सम्बन्धमें रामपुर, बदरिया, तारीगाँव, नरसिंह-मन्दिर तुलसीके गृहस्थान, सीताराम-मन्दिर, नरसिंह एवं नन्ददासके वंशज और कुछ प्रचलित जनश्रुतिके विचार ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं जो सोरोंको उनका जन्म-स्थान होनेका प्रबल समर्थन करते हैं।

'८४ तथा २५२ वैष्णवनकी वार्ताका हिन्दी गद्य-साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान है। इन वार्ता-ग्रन्थोंमें भी कुछ गोस्वामीजीके जन्मस्थान-सम्बन्धी निर्णय प्राप्त होते हैं। उनमें अष्टछाप-के महाकवि नन्ददासजीकी वार्ता है जिसमें प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

"सो वे तुलसीदासके भाई सनोढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे नन्ददासजी हते।" इससे नन्ददास तुलसीदासजीके भाई थे, यह बात स्पष्ट हो जाती है। श्री हरिरायजीकी टिप्पणीमें कहा गया है कि—

अतः श्री गुसाईंजीके सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुरमें रहते जिसके पद अष्टछापमें गाइयत हैं। तिनकी वार्ताको भाव कहत हैं।" इस प्रकार इस उल्लेखसे उनके रामपुर ग्रामका भी पता चलता है।

प्रियादास-रचित भक्तमाल टीका (सं० १८६४) पर लिखित भक्तिरस-बोधिनी टीकाके अनुसार (सं० १८६४) सेवादासने कहा है कि तुलसीदास भादोंकी अर्द्ध रात्रिमें अपनी पत्नी रत्नावलीसे मिलनेके लिए गंगा पार करके 'बदरी' गये थे।

नाभादासजीने स्वयं भक्तमालमें "प्रचुर पयध लौं सुजसु, रामपुर ग्राम-निवासी" वर्णनसे नन्ददासजीको रामपुरका कहा है। 'अष्टसखामृत' के अनुसार कृष्णभक्त नन्ददासजी राम-भक्त तुलसीदासजीके छोटे चचेरे भाई थे। वे सनाढ्य सुकुल तथा रामपुरके निवासी थे। उन्होंने रामपुर-का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था और स्वयं कृष्णभक्त हो गए थे। भारतेन्दुजीने भी नन्ददासजीको तुलसीदासजीका अनुज बताया है। इस प्रकार नन्ददासजीके रामपुरके होने पर तुलसीदासजी भी रामपुरके थे, यह स्वतःसिद्ध है।

इम्पीरियल गज़ेटियरका कथन है कि अकबरके शासन-कालमें तुलसीदासजी सोरों (परगना अलीगंज, ज़िला एटा) के निवासी थे। इनके अनुसार अकबरके शासन-कालमें तुलसीदासजीने सोरोंसे आकर राजापुरकी स्थापना की। बाँदा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरमें भी तुलसीदासजीको सोरोंका निवासी लिखा है। एस० एस० ग्राउसने लिखा है कि "तुलसीदासजीने सोरों (सूकरखेत) में शिक्षा पाई।"

इन सबसे पुष्ट प्रमाण 'तुलसी-प्रकाश' का है। उसमें उल्लेख दिया है कि तारी ग्रामके अयोध्यानाथजीने अपनी पुत्री हुलसीके विवाहयोग्य वर रामपुर निवासी आत्मारामको देखकर उनके साथ पुत्रीका पाणिग्रहण कराया।

पूत न कोउ जियौ दुहिता हुलसी बहु जतन भई।
ब्याहन जोग भई जबही वर ढूँढ़नमैं चित वृत्ति दई॥
सूकरखेत समीप तबैं वर रामपुर हि मधि देखि लयो।
आतमराम सुकुल्लहिके करमें हुलसी कर दान दयौ॥

इस पुस्तकमें तुलसीदासजीका पूरा जीवनचरित्र प्रामाणिक ढंगसे बिना किसी ऊहापोहके दिया गया है। इसके अनुसार तुलसीदासजीकी शिक्षा भी सोरोंमें नरहरिजीकी पाठशालामें (१५७६ वि०) में हुई तथा उनका विवाह रत्नावलीके साथ बदरी ग्राममें (का० शु० ११, गुरुवार १५८६ वि०) में हुआ। तुलसीदासजीने व्रजकी यात्रा माघ शु० ५, मंगलवार सं० १६२८ वि० में की थी और मथुरामें आये थे। इस प्रकार इन तर्कोंके आधारपर यह स्पष्ट है कि तुलसीदासजी व्रजक्षेत्रमें सोरोंके समीपस्थ रामपुर ग्रामके निवासी थे। उनकी जन्म-स्थली रामपुर थी। उनकी व्रजभाषा-प्रधान रचनाओंके द्वारा भी उनका सोरों-निवासी होना अधिक सुसंगत है।

जाति, गोत्र और वंशावली :

गो० तुलसीदासजीको यद्यपि किन्हीं विद्वानोंने सनाढ्य माना है तो किसीने सरयूपारीण और किसीने कान्यकुब्ज। किन्तु ब्राह्मण सभीने माना है। कुछ लोग तो उनके ब्राह्मण होनेमें भी सन्देह करते हैं जो सर्वथा ठीक नहीं हैं। इनके सनाढ्य ब्राह्मण होनेके कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—अविनाशराय ब्रह्मभट्ट-द्वारा लिखित "तुलसी-प्रकाश" (सम्वत् १६७७ वि०) में लिखा है—

कौंडिन मुनि गोती दुबे, तहाँ विप्र सिरमौरु।
बसत अजुध्यानाथ बुध, एहिसम गनकु न औरु॥ दोहा ७

छन्द

पूत न कोउ जियौ उनकी दुहिता हुलसी वहु जत्न भई।
ब्याहन जोग भई जबही वर ढूँढ़नमैं चितवृत्ति दई॥
सूकरखेत समीप तबैं वर रामपुर हि मधि देखि लयौ।
'आतमराम' सुकुल्लहिके करमें हुलसी कर दान दयौ॥

इस प्रकार सोरोंके समीपस्थ रामपुर ग्राम-निवासी आत्मारामजी सुकुल (शुक्ल) के साथ अपनी पुत्री हुलसीका विवाह ज्यो० पं० अयोध्यानाथ दुबेने कर दिया जो सोरोंके समीप तारी ग्रामके निवासी थे। आत्माराम और हुलसी देवीके तुलसीदास सुपुत्र हुए। क्योंकि हुलसी तुलसीकी पूजा करती थीं इससे तुलसीकी कृपाका प्रसाद समझकर बालकका नाम तुलसीदास रख दिया गया।

नित तुलसिहि सेवत रही, हुलसी हरिके हेत। तासौं तुलसीदास ही, किय सुत नाम सकेत॥

अब दूसरा प्रमाण गोस्वामी तुलसीदासके भतीजे कृष्णदास (नन्ददासके पुत्र) द्वारा लिखित वंशावलीको[1] लीजिये।

षेत बराह समीप शुचि गाम रामपुर एक। तहँ पंडित मण्डित बसत सुकुल वंश सविवेक॥१॥
पंडित नारायण सुकुल तासु पुरुष परधान। धार्यो सत्य सनाढ्यपद ह्वै तप बेद निधान॥२॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रोण समान। ब्रह्म रंध्र निज भेदि जिन पायौ पद निर्वान॥३

१. तुलसी ग्रन्थावली तृतीय खंड पृ० १३७।

तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि। पंडित श्रीधर शेषधर सनक सनातन चारि ।।४
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द। व्यास सरिस वक्ता तनय जासु सच्चिदानन्द ।।५
तेहि सुत आत्माराम बुध निगमागम परवीन। लघु सुत जीवाराम भे पंडित धरम धुरीन ।।६
पुत्र आतमारामके पंडित तुलसीदास। तिमि सुत जीवारामके नन्ददास चन्दहास ।।७
मथि मथि वेद पुराण सब काव्य शास्त्र इतिहास। रामचरितमानस रच्यो पंडित तुलसीदास ।।८
बल्लभकुल-ब्रल्लभ भये तासु अनुज नन्ददास। धरि बल्लभ आचार जिन रच्यौ भागवत रास ।।
नन्ददास सुत हौं भयौ कृष्णदास मतिमन्द। चन्दहास बुध सुत अहै चिरजीवी बृजचन्द ।।१०

कृष्णदास लिखित इस वंशावलीसे स्पष्ट विदित होता है कि सोरोंके समीप रामपुर ग्राममें वेदादि अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता पंडित नारायणजी शुक्ल रहते थे जो सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके चार विद्वान् पुत्र श्रीधर, शेषधर, सनक और सनातन थे, सनातनजीके पुत्र परमानन्दजी हुए, इनके पुत्र सच्चिदानन्दजी हुए और इनके दो पुत्र बड़े आत्माराम और छोटे जीवाराम हुए। आत्मारामजीके पुत्र तुलसीदासजी हुए जिन्होंने रामचरितमानस रचा और जीवारामजीके पुत्र नन्ददास और चन्द्रहास हुए। नन्ददासजीने भाषा भागवत, रास पंचाध्यायी ग्रंथ रचे और नन्ददासजीके पुत्र कृष्णदास हुए। पं० नारायणजी और उनके वंशज सभी निगमागमादि अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता और विद्वान् थे। इनकी उपमा द्रोण तथा व्याससे की गई है। यही कारण है कि तुलसीदासजीने अपने पूर्वजोंके संस्कार और घरकी विद्या प्राप्त की और गुरु नरहरिजीके यहाँ विद्या प्राप्तकर नाना-पुराण-निगमागम-के ज्ञाता हुए और फलतः रामचरितमानस जैसा अद्वितीय ग्रंथ तत्कालीन साहित्यिक भाषा-में रचा।

गो० तुलसीदासजीकी पत्नी रत्नावली बड़ी विदुषी और कवयित्री थीं। उनके रत्नावली-चरित्र[1]से भी ज्ञात होता है कि रत्नावली सुकुल वंशमें ब्याही गई थीं।

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयौ पिय श्याम। रतनावलि आभा गई, तुम बिन बन सम गाम ।।

गोस्वामीजीकी पत्नी रत्नावलीके पिता दीनबन्धु पाठक भी सनाढ्य ब्राह्मण थे और सोरोंके समीप बदरी ग्रामके निवासी थे।

जब रत्नावली बड़ी हो गई और उसके पिता दीनबन्धु पाठक उसके योग्य वरके लिये बड़ो चिन्तामें थे, तब उनके एक मित्रको सलाहसे वे गुरु नृसिंहजी (नरहरि) की पाठशालामें उनके पास अपनी चिन्ता-निवृत्तिको आये। वहींका यह प्रसंग है कि उस पाठशालामें—

तहाँ रामपुरके सनाढ्य। सुकुल वंशधर द्वै गुनाढ्य।
तुलसिदास अरु नन्ददास। पढ़त करत बिद्या बिलास।
एक पितामह पौत्र दोउ। चन्दहास लघु उपर सोउ।
तुलसी आतमराम पूत। उदर हुलासीके प्रसूत।
बसत जोग - मारग समीप। विप्रवंस कर दिव्य दीप।

इससे स्पष्ट है कि तुलसीदासजीके पितृवंश, ननसाल तथा ससुरालवाले सब सनाढ्य ब्राह्मण थे। पितृवंश भारद्वाज-गोत्रीय था। मातृवंशके कौंडिन्य और ससुरालवाले वशिष्ठ गोत्रीय थे। ये गोत्र सनाढ्य ब्राह्मण जातिमें हैं। वार्ता-साहित्य, २५२ वैष्णवोंकी नन्ददासजीकी वार्तामें तथा गो०

१. तुलसी ग्रन्थावली तृतीय खंड पृ० १३१ से १३७।

हरिरायजीकी टिप्पणीसे भी यही सिद्ध होता है कि गो० तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(वार्ता) "सो वे तुलसीदासके भाई सनौढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे नन्दादस हते।" (टिप्पणी) "अतः श्री गोसाइँजीके सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुरमें रहते जिनके पद अष्टछापमें गाइअत हैं तिनकी वार्ताको भाव कहियत हैं।" यह पहले भी लिखा जा चुका है।

अन्तःसाक्ष्यसे भी गोस्वामी तुलसीदासजी ब्राह्मण ही सिद्ध होते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारिको।
यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति विषफल फली।

(२) ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यौं ही तिहारे ऐन हितैहौं। कवितावली ७,१०२

एक स्थानपर तुलसीदासजीने अपने मनमें स्थित कुछ प्रतिष्ठा या ऊँची जातिकी भावनाके घटनेकी ओर संकेत करते हुए लिखा है—

रटत रटत लट्यो जाति पाँति भाँति घट्यो जूठनको लालची, चहौं न दूध नह्यो हौं॥
विनयपत्रिका २६०,३

इस पंक्तिसे स्पष्ट होता है कि तुलसीदासजी उच्च जातिमें उत्पन्न हुए थे और ज्यों-ज्यों राम-भक्तिके आधिक्यसे, दास्य भावनाके प्रभावसे वे अतिशय नम्र होते गए, उच्च कुलका गर्व-भी शमित होता गया। जिन पंक्तियोंका संदर्भ देकर उन्हें निम्न वर्णमें उत्पन्न हुआ बताकर कुछ लोग संगति बैठानेका कुप्रयास करते हैं वे इस प्रकार हैं—

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि भयो परिताप-पाप जननी जनकको।

यहाँ सारी भ्रान्ति इस पंक्तिमें अर्द्धविरामके प्रयोगको लेकर हुई है। यदि अर्द्ध विराम 'कुल मंगन' के बादकी अपेक्षा 'सुनि' के बाद लगाया जाय तो न केवल 'बजायो' और 'सुनि' क्रियाओंकी यथोचित संगति बैठ जाती है बल्कि यति-भंग दोषका परिहार भी हो जाता है। इस प्रकार जैसा कि डा० उदयभानुसिंहने माना है। प्रथम पंक्तिका पदान्वय इस प्रकार होगा—

जायो सुनि, मंगन-कुल बधावनो बजायो।

अर्थात् तुलसीके जन्मका समाचार सुनकर कुलक्रमागत 'पौनी' कोटिके मँगतोंने बाजा बजाया। 'पाप' का अर्थ भी कुछ लोगोंने भ्रान्तिपूर्ण ही किया है। वराहमिहिरके अनुसार ज्योतिषमें 'पाप' का अर्थ अशुभ या अमंगल-सूचक है। यह अर्थ ग्रहण करनेपर निचली पंक्तिकी व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है किन्हीं कारणोंसे पुत्रजन्मपर अमंगलकी आशंकासे माता-पिताको दुःख हुआ। तुलसीदासजीके माता-पिताने कोई पाप नहीं किया था, जिसका उन्हें पश्चात्ताप होता। वे पापी नहीं थे अन्यथा तुलसीदासजी विनय-पत्रिकामें सरस्वती, गणेश और गुरुके साथ अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी वन्दना न करते—

मातु पिता गुरु गनपति सारद। सिवा-समेत संभु सुक नारद।
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु राम-पद-नेह-निबाहू।

गोस्वामी शब्द :

जहाँतक तुलसीदासजीकी गोस्वामी (गोसाईं) उपाधिका प्रश्न है वे बचपनसे ही गोस्वामी नहीं थे। उन्होंने हनुमानबाहुकमें लिखा भी है—

तुलसी गोसाईं भयो भौंड़े दिन भूल गयो ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।।

इसके अतिरिक्त डा० माताप्रसाद गुप्तने प्रमाण देकर बताया है कि काशीमें लौलार्क कुण्ड-पर तुलसीदासका मठ था जो सं० १७६७ तक अवश्य विद्यमान था। उस मठके महन्तोंकी उपाधि गोसाईं थीं। तुलसीदासजी भी कभी उस मठके गोसाईं रहे थे। इसलिए गोसाइं कहलाए। इसके अतिरिक्त 'गो' का अर्थ वाणी भी होता है। 'वाणी' के स्वामी अर्थात् पण्डित भी गोस्वामी कहलाते हैं। अतः तुलसीके गोसाइं [मंगन जाति) जातिमें उत्पन्न होनेका मत हास्यास्पद ही सिद्ध होता होता है। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। अतः पं० चम्पाराम मिश्र और पं० रजनीकान्त शास्त्री जैसे महानुभावोंके पुराने तर्क तुलसी-साहित्यके अन्तःसाक्ष्योंके तथ्योंके समक्ष बुद्धिगम्य नहीं होते।

शिक्षा, दीक्षा और सम्प्रदाय :

विभिन्न लेखक विद्वानोंके अनुसार तुलसीदासजीके गुरु कई बताये गये हैं—राघवानन्द, शेषसनातन, नरसिंहदास, आदि-आदि। उनके कथनके अनुसार ही गुरुका होना अधिक प्रामाणिक मानना सुसंगत होगा, न कि विभिन्न किंवदन्तियोंके आधारपर माना जाना। उन्होंने "बन्दौं गुरु पद कंज कृपासिंधु नर-रूप हरि" के द्वारा नरहरिदास या नरहर्यानन्द आदिके गुरु होनेका उल्लेख किया है तथा उन्हीं अपने गुरुसे सूकरखेतमें शिक्षा पानेकी बात भी कही है। 'तुलसी-प्रकाश" में कहा गया है कि रामबोला (जो गो० तुलसीदासजीका बाल्यावस्थाका नाम था) को गाँवमें भीख माँगते हुए देखकर गुरु नरहरिजीने उनके भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध किया तथा पढ़ाया। उनके साथ नन्ददासजीने भी विद्याध्ययन किया था। थोड़े ही समयमें वे व्याकरण, कोष, काव्य, गणित, संगीत, इतिहास, पुराण, दर्शन आदिके प्रकांड पण्डित हो गये थे। इस प्रकार तुलसीदासजीकी शिक्षा-दीक्षा गुरु नरहरिजीकी पाठशालामें ही हुई। वहींपर बदरी गाँवके निवासी श्री दीनबन्धु पाठकने उन्हें देखकर रत्नावलीको देनेका निर्णय किया था।

तुलसीदासजी स्मार्त वैष्णव सन्त थे। उनको एक सम्प्रदायमें दीक्षित बताना उचित न होगा। डा० ग्रियर्सन आदि उन्हें रामानन्दी सम्प्रदायका बताते हैं। कुछ उन्हें शैव मतका भी बताते हैं। सोरों सामग्रीके अनुसार तुलसीके गुरु स्मार्त वैष्णव थे। वे भी राम और हनुमानजीके भक्त थे। अतः तुलसीदासजी भी श्रीराम और हनुमानजीके भक्त हुए। वस्तुतः तुलसीदासजीने अनेक आस्तिक सम्प्रदायोंसे इच्छानुसार ग्राह्य सिद्धान्त ग्रहण किए हैं। इसका कारण उनकी सम्प्रदाय-मुक्तता ही थी। इसलिए उन्हें किसी भी सम्प्रदायमें दीक्षित मानना उचित नहीं है। इसका एक प्रधान प्रमाण उनकी कृष्ण-पदावली (श्रीकृष्ण-गीतावली) है। वे राम-भक्त थे परन्तु शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश, गंगा, सरस्वती, गौरी आदि सभीको श्रद्धासे मानकर चले थे। उनका तो उद्घोष ही 'सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी" था। इस प्रकार वे किसी भी सम्प्रदायके न होकर केवल श्रीरामके अनन्य उपासक ही थे, ऐसा ही मानना उचित होगा।

साकेत-वास-तिथि

तुलसीदासजीकी मृत्युके सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक या ठोस प्रमाण नहीं मिलता।[1] परन्तु लिखित तथा मौखिक जनश्रुतियोंके जितने भी साक्ष्य उपलब्ध होते हैं उन सबमें १६८० वि० ही उनका मृत्यु-सम्वत् माना गया है। यह निरपवादिता स्वतः अपनेमें प्रमाणित है। मतभेद केवल उनकी मृत्यु-तिथिका रह गया है। इसमें दो प्रकारके मत मिलते हैं :—

एक जनश्रुतिके अनुसार श्रावण शुक्ला सप्तमी है, जो इस प्रकार है—

संवत सोरह सै असी असी गंगके तीर। स्रावन सुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर॥

श्रीवेणी(बेनी)माधवदास तथा अविनाशराय ब्रह्मभट्ट दोनों इसीको प्रामाणिक मानते हैं क्योंकि यह सर्वाधिक प्रचलित है। इनके अनुसार जन्म और मृत्युकी तिथियाँ एक ही हैं। इसी जनश्रुति के अनुसार—

संवत सोरह सै असी असी गंगके तीर। सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यौ सरीर॥

गणनासे यह तिथि अशुद्ध ठहरती है। उक्त तीजको शनि न होकर शुक्र था। बा० श्यामसुन्दर दास इसे ही ठीक मानते हैं। गौतमचन्द्रिकामें अशुद्धिका परिहार करके शनिका लोप हो गया है।

सोरह अनु गुन असी वय तुलसी सहित हुलास। राम राम कहि बिदा भे असी गंग किन वास।

उसमें सावन बदी तीजको तुलसीकी वर्षी बताई है। तुलसीदासजीके मित्र टोडरमलके उत्तराधिकारी इसी दिन तुलसीकी वर्षीके लिए सोधा बाँटते हैं। यह परम्परा विश्वसनीय लगती है। परन्तु डा० भारद्वाज इस मतके विपक्षमें हैं। वे श्रावण शुक्ला सप्तमी मानते हैं क्योंकि यही जनश्रुति अधिक लोकप्रिय है। वह बहुतसे लोगोंकी जिह्वापर विराज रही है। डा० माताप्रसाद गुप्त श्रावण कृष्णा तीजको सम्भाव्य तिथि मानते हैं। उनके कथनानुनार "श्रावण शुक्ला सप्तमी" घाघ और भड्डरी-की कहावतोंमें बहुत आता है अतः सम्भव है जनश्रुतिने 'श्रावण कृष्णा तीज' की जगह सावन शुक्ला सप्तमी जोड़ दी हो। उनकी सम्मतिमें सावन शुक्ला सप्तमी पंचोंकी रायके अलावा कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त परवर्ती लेखकोंके द्वारा लिखित तथा टोडरमलकी वंश-परम्परामें प्रचलित श्रावण कृष्णा तीजमें बल अधिक है परन्तु श्रावण शुक्ला सप्तमी ही उनकी मृत्यु-तिथि अधिक संगत लगती है।



---

१. तुलसी-ग्रन्थावलीके प्रथम खंडकी भूमिका पृ० ड पर चिन्तामणि भट्टद्वारा दिया हुआ ठोस प्रमाण देखिए। —संपादक

रामचरितमानस



संसारके साहित्योंमें रामचरितमानसकी जोड़का दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें गोस्वामीजीने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, नीति, आदर्श, समाज और राज्य-व्यवस्था सबका निचोड़ ला भरा है। अपनी कविताकी परिभाषाके अनुसार गोस्वामीजीने इसकी भाषा इतनी सरल रक्खी है कि अशिक्षित तथा अल्प-शिक्षित व्यक्ति भी पूरा ग्रन्थ समझकर उसका रस ले सकता है। इसमें साहित्यिक प्रौढता भी इस उच्च कोटिकी है कि जो जितना बड़ा विद्वान् है वह इसमें उतना ही अधिक रस प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि रचे जानेके अनन्तरसे ही यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय होकर विद्वान् और अशिक्षित सभीका कण्ठहार होता चला आया और जैसे-जैसे समय बीतता चलता है वैसे-वैसे इसकी कीर्तिलता भी बढ़ती जाती है। गोस्वामीजीकी इस रचनाने भारतके न जाने कितने अन्य भाषा-भाषी प्रदेशोंके निवासियों-तकको हिन्दीकी ओर आकृष्ट किया और संस्कृत, फारसी, बँगला आदिमें मानसके पद्यानुवादके अतिरिक्त आज तो भारतके बाहर भी इस ग्रन्थरत्नका इतना व्यापक प्रचार हो चला है कि संसारकी अधिकांश प्रमुख भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं तथा नित्य होते जा रहे हैं।

रचनाका उद्देश्य

बालकाण्डके मंगलाचरणमें गोस्वामीजीने मानसकी रचनाका उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें लिख दिया है—स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

[अपने अन्तःकरणके सुखके लिये श्रीरघुनाथकी अत्यन्त सुन्दर कथाको भाषामें बाँधकर तुलसी लिख रहा है।]

परन्तु 'भाषा' में लिखनेका उद्देश्य केवल अपने ही सुखके लिये नहीं था। जिस समय गोस्वामीजी मानसकी रचनाकी ओर प्रवृत्त हुए उस समय देशकी और हिन्दू जातिकी दशा इतनी अधिक दयनीय थी कि हिन्दू समाज सब कुछ खोकर आदर्शहीन और लक्ष्य-भ्रष्ट हो चला था। बौद्धोंके उत्कर्षके कारण हमारी प्राचीन मान्यताओं और व्यवस्थाओंका ह्रास हो गया था। आगे चलकर बौद्धोंके भी उदात्त विचार समाप्त हो चले और वामाचारने उनका स्थान ले लिया। शंकराचार्यके प्रयत्नों तथा स्वयं कुरीतियोंमें फँसनेके कारण बौद्ध मत तो उन्मूलित हो गया किन्तु उसने धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें जो अराजकता उत्पन्न कर दी थी उससे हिन्दुओंकी सभी प्रकारकी उदात्त भावनाएँ, उच्च आदर्श, शौर्य और पराक्रमके भाव नष्ट हो गए थे। इसी समय भारतपर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ जिनका उद्देश्य ही यह था कि 'भारतीय' विशेषतः 'हिन्दू' कही जाने-वाली कोई वस्तु बची न रह जाय और इस्लाम सब कुछ आत्मसात् कर ले। इसी बीच नाथ सम्प्रदाय भी चल पड़ा था। इन सबने मिलकर तो हिन्दू समाजको जर्जर कर ही दिया था, उसपर निर्गुणी सन्तोंने अपने उलटे-सीधे उपदेशोंसे सभी प्रकारकी सामाजिक व्यवस्था विशृंखल करनेमें कोई कमी न

छोड़ी। शंकरके मायावादसे भी अवस्था सुधर नहीं पाई। रामानुजने बाह्याचारको मुख्यता प्रदान करनेवाली विधिका विधान करके वैकुण्ठविहारी लक्ष्मीनारायणकी उपासनाका जो मंगल प्रचार किया उससे जनसाधारण वर्गमें लक्ष्मीनारायणके प्रति कुछ श्रद्धा और भक्तिका भाव तो अवश्य उत्पन्न हुआ परन्तु सामाजिक जीवनको प्रभावित करनेवाले तत्त्वका उसमें भी पूर्ण अभाव था। इसके कुछ ही पीछे जयदेवने राधा-माधवकी जिस 'केलिकला' का प्रचार किया उसके अनुकरणपर चलनेवाले भक्तोंने कृष्ण-चरितका वही अंश सामने रक्खा जो अपने माधुर्यसे लोगोंको रसाप्यायित भर कर सकता था। कृष्णका लोकमंगल तथा लोकसंग्रही रूप उन्होंने अपनी रचनाओंके द्वारा उपस्थित ही नहीं किया। अतएव जनसमाजके समक्ष जीवनका आदर्श इनके द्वारा भी नहीं आ पाया। यह कार्य गोस्वामीजीने रामका मर्यादापूर्ण चरित्र उपस्थित करके सम्पन्न किया। उन्होंने अनुभव किया कि इस समय हिन्दू समाजको ऐसे आदर्शकी आवश्यकता है जिसे सामने रखकर वह अपनेको सुसंघटित और सुव्यवस्थित कर सके। भगवान्‌के विविध अवतारोंमें रामका ही स्वरूप ऐसा था जो मानवमात्रके लिये पूर्ण रूपसे आदर्श बन सकता था। इसीलिये रामकी इस गाथामें ऐसे चरित्रोंका समावेश किया गया जो समाजके सभी वर्गोंके सब पदोंके लिये आदर्श हो सकें तथा प्रत्येक मनुष्यके लिये सभी परिस्थितियोंका सामना करने और उनका समाधान ढूँढ लेनेके उपायोंका भी निर्देश कर सकें। इसीलिये गोस्वामीजीने रघुनाथकी गाथा 'भाषा' में उपस्थित करनेकी आवश्यकता समझी और अपने इस ग्रन्थमें उन्होंने यह कार्य पूरी सफलताके साथ सम्पन्न भी किया : अतः, गोस्वामीने 'स्वान्तःसुखाय' लिखकर भले ही अपनी शालीनताका परिचय दिया हो किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह ग्रन्थ उन्होंने 'सर्वान्तःसुखाय' ही लिखा।

यह 'स्वान्तःसुखाय' रचनाका उद्देश्य किस प्रकार व्यापक 'सर्वान्तःसुखाय' था इसका स्पष्टीकरण स्वयं गोस्वामीजीने रामचरितमानसके प्रारम्भमें कर दिया है—

कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि-सम सबकर हित होई॥
जे एहि कथहिं सनेह-समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरन अनुरागी। कलिमल-रहित सुमंगल भागी॥
एहि बिधि निज गुन-दोष कहि, सबहिं बहुरि सिर नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जस, सुनि कलि-कलुष नसाइ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल-हारी॥
राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। हरत सकल कलि-कलुष गलानी॥
भवश्रम सोषक, तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥
काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किएतें। मिटहिं पाप परिताप हिएतें॥

इससे स्पष्ट हो गया कि उन्होंने 'सबकर हित' के लिये, सबको 'कलिमल-रहित' करने, 'कलि-कलुष' नष्ट करनेके लिये, 'भवश्रम' का शोषण करनेवाले, 'दुरित, दुःख, दारिद्रय और दोषका शमन' करनेवाले, 'काम, क्रोध, मद, मोह' का नाश करनेवाले तथा 'विमल विवेक और विराग' बढ़ानेवाले उस मानस-जलकी सृष्टि की जिसमें सादर स्नान करने और जिसका सादर पान करनेसे हृदयका पाप और परिताप मिट जाय। रामचरितमानसकी रचनाका यही उद्देश्य है—

मंगलकरनि, कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथकी।

इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिख दिया है कि मैंने मानसकी रचना इसलिये की—'मेरे मन प्रबोध जेहि होई।'

मूल सामग्रीका स्रोत

रामकथाका उद्गम वस्तुतः आदिकवि वाल्मीकि-प्रणीत रामायण ही है। जिसने भी राम-कथाका गान किया है उसने मुख्यतः आदिकवि प्राचेतसकी रचनाका ही आश्रय लिया है। उनके लिये किसी कविने कहा है—

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविता-शाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्॥

[कविता-रूपी वल्लरीकी शाखापर बैठकर मधुर अक्षरवाले राम-राम शब्दोंको बड़ी मधुरताके साथ कूकनेवाले वाल्मीकि-रूपी कोकिलको प्रणाम करता हूँ।]

इसीलिये गोस्वामीजीने ग्रन्थके आरम्भमें ही उनकी वन्दना की है—

सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्य-विहारिणौ। वन्दे विशुद्ध-विज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ॥

इसके आगे तो और भी स्पष्ट रूपसे वे लिखते हैं—

बंदउँ मुनि-पद-कंज, रामायन जेहि निरमयउ।

किन्तु 'भाषा' में रामचरितका वर्णन करनेके लिये गोस्वामीजीने केवल वाल्मीकिका ही अनुगमन नहीं किया। वे तो निश्छल भावसे कहते हैं—

मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई॥
व्यास, आदिकवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरिचरित बखाना॥
चरन-कमल बन्दौं तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे॥
कलिके कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा॥

इतना ही नहीं—

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउँ सबन्हि कपट सब त्यागे॥

इस प्रकार गोस्वामीजीने कुछ छिपाया नहीं। आरम्भमें ही 'नानापुराण-निगम-आगम-सम्मत' लिखकर ही उन्होंने बता दिया है कि इसमें किसी एक स्थानसे सामग्री नहीं ली गई है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि 'मानस' में जो अनेक कथाएँ आई हैं उनके लिये यह बात लिखी गई है, वरन् यह तो कथाके आधारके लिये भी कही गई है। इसलिये मूल कथाका आधार आदिकविकी रचना होते हुए भी अनेक स्थलोंपर मानसकी कथासे भिन्न है।

वस्तुतः मानसपर अध्यात्मरामायणका जितना प्रभाव है उतना और किसी ग्रन्थका नहीं। अध्यात्मरामायण कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। यह ब्रह्माण्डपुराणका अंश है। इसमें सम्पूर्ण रामकथा उमा-महेश्वरसंवादके रूपमें कही गई है। तुलसीदासजीने भी इसी प्रणालीका आश्रय लेकर तीन वक्ताओं एवं तीन श्रोताओंके स्पष्ट माध्यमसे तथा चौथे स्वयं वक्ता और स्वयं श्रोताके माध्यमसे रामकी पूरी कथा कह डाली है और बीच-बीचमें बराबर पाठकके मनमें यह बात बैठाते रहनेका प्रयत्न किया है कि मैं जो कथा कह रहा हूँ वह वही है जिसे शिवने उमा और भुशंडिको सुनाया, भुशुण्डिने गरुडको सुनाता और याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाया। अध्यात्मरामायणसे गोस्वामजीने

संवाद-प्रणाली तो ग्रहण की ही, साथ ही सबसे बड़ी बात उन्होंने उससे यह ली कि 'राम पूर्ण परात्पर ब्रह्म' के अवतार हैं।

तात रामकहँ नर जनि मानहु। निर्गुण ब्रह्म अजित अज जानहु॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर-महि-गो-द्विज-लागि। सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सुख त्यागि॥

इतना ही नहीं, रामको ब्रह्म माननेमें आना-कानी करनेवालोंके प्रति गोस्वामीजीका रोष चरम सीमातक पहुँच जाता है—

राम मनुज कस रे सठ बंगा!

अध्यात्मरामायणमें भगवद्भक्तिकी प्राप्तिके लिये सत्संगको आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बतलाया गया है। गोस्वामीजी भी कहते हैं—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग। तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

भक्ति सुतंत्र सकल सुखखानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य-पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता। सतसंगति संसृति कर अन्ता॥

इसी प्रकार रामने शबरीको नवधा भक्तिका जो उपदेश किया है वह दोनों ग्रन्थोंमें एक-सा ही है। दोनोंमें ही हरिको सत्कर्म समर्पण कर देनेकी बात कही गई है और दोनोंमें स्पष्ट कहा गया है कि शिवके प्रति द्वेष-बुद्धि रखनेवालेको रामकी भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती और न रामको भजे बिना शंकरकी भक्ति मिल सकती है। गोस्वामीजीने तो स्पष्ट शब्दोंमें श्रीरामसे ही कहला दिया है—

संकर भजन बिना नर, भगति न पावहि मोरि।

वैसे अनेक स्थलोंपर गोस्वामीजीने अध्यात्म-रामायणसे मतवैभिन्य भी प्रकट किया है किन्तु उन्होंने उससे गृहीत कथावस्तुमें अनेक संशोधन तथा परिवर्द्धन करके, उसे अत्यन्त कलापूर्ण बनाकर, उन्हीं उक्तियों और विवरणोंमें काव्यका जो उत्कर्ष दिखाया है वह अध्यात्मरामायणमें नहीं है। उसके वर्णन, वर्णन मात्र हैं।

महाभारत तथा अनेक पुराणोंमें जहाँ-जहाँ रामकथा आई है उन सबका भी गोस्वामीजीने प्रयोग किया है। भागवतकी तो अनेक उक्तियाँ गोस्वामीजीने अनेक स्थलोंपर ज्योंकी त्यों ले ली हैं। कलिधर्म-निरूपणका पूरा प्रसंग उन्होंने भागवतके आधारपर लिखा है। इनके अतिरिक्त अनेक अभ्यन्तर-कथाएँ भी मानसमें भागवतसे ली गई हैं क्योंकि वे स्वयं श्रीमद्भागवतके पंडित और व्याख्याता (कथावाचक) थे।

संस्कृतके जिन अनेक काव्यों और नाटकोंसे उन्होंने सामग्री ली है उनमें मुख्य हैं रघुवंश, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक। रघुवंशका प्रभाव मानसपर बहुत थोड़ा है। गीतावलीके सीता-निर्वासन आदि विषयक विवरणोंपर यह प्रभाव विशेष परिलक्षित होता है। किन्तु उपर्यंकित दोनों नाटकोंकी सरस उक्तियाँ गोस्वामीजीने अनेक स्थलोंपर ज्योंकी त्यों ग्रहण कर ली हैं। इतना ही नहीं, इनसे अपनी कथाके अनेक अंश भी गोस्वामीजीने चमत्कारपूर्ण बना लिए हैं। मानसमें जनक-वाटिकामें रामसीताके प्रथम मिलनका जो कथांश आया है या परशुरामके आगमनपर लक्ष्मणके साथ उनका जो संवाद हुआ है उसके वर्णनका आधार प्रसन्नराघव नाटक ही है। परन्तु गोस्वामीजीने उसमें यथेच्छ काटछाँट तथा अभिवर्द्धन भी किया है। संवादोंमें अधिकतर हनुमन्नाटकका क्रम रक्खा

गया है। इन सब आधारोंसे उक्तियाँ, कथांश और विवरण लेकर गोस्वामीजीने उन्हें इस कौशलसे सजा दिया है कि मूलकी अपेक्षा इस सुसम्पादित कथामें अधिक काव्यत्व और चमत्कार आ गया है। इनके संयोगसे उन्होंने रामचरितमानसको ऐसा पूर्ण कर दिया कि उनके मानसके समकक्ष कोई भी ग्रन्थ टिक नहीं पाता। यह व्यापक पूर्णता स्वयं आदिकविमें भी नहीं है फिर औरोंकी तो बात ही क्या, जिन्होंने केवल संक्षिप्त या एकपक्षीय विवरण ही उपस्थित किए हैं।

कुछ लोगोंने 'बार अनेक भाँति बहु बरनी'से यह समझानेका प्रयत्न किया है कि गोस्वामीजीने केवल संकलन किया है इसलिये मानसको उनकी स्वतन्त्र और मौलिक रचना नहीं माना जाना चाहिए। किन्तु यदि गोस्वामीजी यह संकलन-कार्य न करते तो मानस 'छहों सास्त्र सब ग्रन्थनको रस' हो ही कैसे पाता? निश्चय ही रामचरितका गान सर्वप्रथम आदिकविने किया किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसके पश्चात् जिस-जिसने रामचरितका गान किया वह अमौलिक रहा। रामकी कथा औपन्यासिक कथाओंकी भाँति कोई मनगढ़न्त तो है नहीं, इसलिये मूल कथा तो सबकी वही रहेगी ही। जहाँतक मौलिकताकी बात है वह केवल कथा-संचयमें नहीं वरन् कथाके क्रम, शैली, गुम्फन, रचना-कौशल सभीमें हो सकती हैं। एक ही बातको नवीन प्रकारसे कह देना भी तो बड़ा भारी कवि-कौशल है। वही गोस्वामीजीने किया। अतः, गोस्वामीजीकी मौलिकताका अर्थ है प्राप्त सामग्रीको इस प्रकार संघटित और व्यवस्थित करके सजा रखना कि वह निखर आए, चमत्कृत हो जाय और उसकी ओर लोग इस प्रकार आकृष्ट हों कि निरन्तर उसका रस लेते रहनेपर भी उससे तृप्त न हों। रामचरित-मानसकी यह विशेषता सर्वविदित है कि गोस्वामीजीने अनेक नूतन कथा-प्रसंगोंका समावेश करके उसकी कथाको बहुत ही रुचिकर बना दिया है--'कथा-प्रबन्ध बिचित्र बनाई।' फिर गोस्वामीजीकी तो यह धारणा ही है कि उनका यह ग्रन्थ तभी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है जब यह सब शास्त्रों और ग्रन्थोंसे पुष्ट हो। इस दृष्टिसे गोस्वामीजीकी यह रचना मौलिक और पूर्ण है। इसमें उन्होंने जो कुछ जहाँसे भी लिया है उसे सुन्दरतर रूपमें ला उपस्थित किया है, चाहे वह कथानक हो, उक्ति हो, वर्णन हो या कोई सिद्धान्त हो।

कथामें परिवर्तन कहाँ और क्यों?

ऊपर बताया जा चुका है कि वाल्मीकि-कृत रामायण ही रामकी कथाका मूल आधार, राम-कथाका आदि स्रोत है। किन्तु गोस्वामीजीने रामकथाका उद्गम दूसरे ढंगसे बताया है। वे कहते हैं—

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक मुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

और वही कथा—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत।

इसी कथाको—

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

इसका अर्थ यह हुआ कि गोस्वामीजीने वाल्मीकिके प्रति आभार अवश्य प्रकट किया है किन्तु कथा उन्होंने वाल्मीकिकी न लेकर वह पुरातन कथा ली है जो शिवने उमा और कागभुसुंडिको, कागभुसुंडिने गरुड़को और याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाई थी। वही कथा गोस्वामीजीने अपने गुरुसे सुनी तथा अपने मनको प्रबोध देनेके लिये उसे भाषाबद्ध किया। ऐसी अवस्थामें वाल्मीकिकी रामकथा और गोस्वामीजीकी रामकथामें अन्तर होना अनिवार्य था।

वाल्मीकि-रामायण और मानस

वाल्मीकिने रामको विष्णुका अवतार पुरुषोत्तम माना है किन्तु तुलसीदासने रामका स्थान ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंसे ऊँचे माना है। इन त्रिदेवोंकी श्रेणी रामसे कहीं नीचे मानी गई है—

रामहिं भजहिं बिष्नु सिव धाता। नर पाँवर-कर केतिक बाता॥

दूसरी बात यह है कि ग्रन्थका उपक्रम और उपसंहार दोनोंमें यह वाल्मीकीय रामायणसे सर्वथा भिन्न है। वाल्मीकिने नारदसे जिज्ञासा की—

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥

[आजकल संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढव्रत कौन है ?]

इसपर नारदने जब रामका परिचय दिया उसके कुछ ही समय पश्चात् क्रौञ्चवधवाली घटना घटी जिसके अनन्तर ब्रह्माके आदेशसे वाल्मीकिने उस नूतन लौकिक छन्दमें रामकी सारी कथा कह डाली जो क्रौञ्चको बाण मारनेवाले व्याधको शाप देते समय उनके मुँहसे फूट पड़ा था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं अगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

और जिसपर उन्हें आश्चर्य भी हुआ था—नूतनश्छन्दसामवतारः। (अरे! यह तो नया छन्द बन गया।)

किन्तु गोस्वामीजी लिखते हैं कि भरद्वाजने याज्ञवल्क्यसे जिज्ञासा की—

राम कवन पूछउँ प्रभु तोहीं। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं।

और तब याज्ञवल्क्य कहते हैं—

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

वही कथा—

कहउँ सो मति अनुहार अब, उमासंभु संवाद। भयउ समय जेहि, हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटइ विषाद॥

और इसके पश्चात् सती-उमा-प्रसंग कहकर उन्होंने रामजन्मके-कारण और रामजन्मकी कथा आरम्भ कर दी।

गोस्वामीजीने रामके अवतारके चार कारण दिए हैं—नारद-शाप, मनु-शतरूपाको वरदान, जय विजयको सनकादिकका शाप और जलन्धरकी पत्नीका शाप। ये चारों अवतार चार कल्पोंके हैं। इसीलिये प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीने चार कल्पोंकी कथा एक साथ कह दी है। योगवाशिष्ठके प्रारंभमें रामके अवतारके जो तीन कारण दिए गए हैं वे सर्वथा भिन्न हैं। योगवसिष्ठके अनुसार—

(१) एक बार ब्रह्मपुरीमें अपने पिता ब्रह्माके पास सनत्कुमार भी बैठे थे। इसी बीच वहाँ विष्णु भगवान् आ पहुँचे। वहाँ जितने देवता और मुनि बैठे हुए थे उस सबने उठकर विष्णुका स्वागत

और पूजन किया पर सनत्कुमार अपने स्थानपर ज्योंके त्यों बैठे रहे। इसपर विष्णुने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें अपनी निष्कामताका अभिमान है तो तुम अत्यन्त कामातुर राजा होओगे और तुम्हारा नाम स्वामिकार्त्तिक होगा (शिवके पुत्र नहीं)। यह सुनकर सनत्कुमारने भी उलटकर विष्णुको शाप दिया कि—आपको अपनी सर्वज्ञताका बड़ा अभिमान है तो कुछ कालतक आपकी भी सर्वज्ञता लुप्त हो रहेगी और आप (सीताहरणके समय) अज्ञानीके समान आचरण करेंगे।

(२) एक बार महर्षि भृगु बैठे अपनी पत्नीकी मृत्युपर शोक कर रहे थे। भगवान् विष्णु वहाँ आए तो उनकी यह व्याकुल दशा देखकर हँस दिए। इस व्यवहारपर खीझकर महर्षि भृगुने शाप दिया कि जाओ ! तुम भी इसी प्रकार स्त्री (सीता)-के विरहमें बैठकर रोओगे।

(३) एक बार गंगातटपर देवशर्माकी स्त्रीको विष्णु अपना नृसिंह रूप दिखाकर ऐसे भयानक रूपसे अट्टहास करके गरजे कि उसने डरके मारे प्राण छोड़ दिए। इसपर देवशर्माने उन्हें शाप दिया कि जैसा मैं इस समय स्त्रीके वियोगमें दुखी हूँ वैसे ही आप भी स्त्री (सीता)-के वियोमें दुखी होओगे।

वाल्मीकिने या तुलसीने रामावतारके ऐसे कोई कारण नहीं बताए हैं।

वाल्मीकिने लिखा है कि वृद्ध हो जानेपर भी जब दशरथके कोई सन्तान नहीं हुई तब वशिष्ठके परामर्शसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और तब उनकी तीनों रानियोंसे समय पाकर चार पुत्र हुए। गोस्वामीजीने पुत्रेष्टि यज्ञकी बात तो संक्षेपमें अवश्य लिखी है किन्तु उन्होंनेइससे पूर्व, राक्षसोंके उपद्रवसे त्रस्त धराका ब्रह्माके पास जाने, सब देवताओं-द्वारा विष्णुकी स्तुति करने एवं विष्णुका दशरथके पुत्रके रूपमें अवतार लेकर राक्षसोंका विनाश करनेकी प्रतिज्ञाकी बात विस्तारसे लिखी है जो औरोंने नहीं लिखी है। इसी प्रकार विश्वामित्रके साथ जाते समय रामको विश्वामित्रने जो अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किए और अनेक प्रकारके युद्धकौशल सिखाए उनके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने संक्षेपमें लिख दिया है—

'बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्हीं ।।'
'जाते लाग न छुधा पिपासा।' 'अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ।।'
'आयुध सर्व समर्पिकै, प्रभु निज आस्रम आनि।'

अहल्यावाले प्रकरणमें दोनोंके वर्णनोंमें भेद है। धनुर्भङ्गके पूर्व फुलवारीमें राम-सीताके परस्पर अवलोकनवाला प्रसंग तो वाल्मीकिमें है ही नहीं, साथ ही अन्य विववरण भी संक्षेपमें ही दिए गए हैं किन्तु गोस्वामीजीने इनका वर्णन बहुत ही सहृदयतासे किया है। सबसे बड़ा अन्तर परशुरामवाले प्रसंगमें है। वाल्मीकिने परशुरामका आगमन तब दिखाया है जब बारात लौट रही है। गोस्वामीजीने धनुर्भङ्ग होते ही परशुरामको उपस्थित कर दिया है। परशुरामसे सभी राजा डरते थे। परशुरामके उस समय आने और रामद्वारा पराभूत हो जानेसे रामका महत्त्व और शौर्य बढ़ गया जिससे राजाओंके उपद्रव शान्त हो गए। इसीलिये सम्भवतः गोस्वामीजीने इसके लिये उपयुक्त स्थल यही समझा। काव्यमें नाटकीय कुतूहल और प्रभाव उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे यह सर्वथा उचित ही किया गया।

रामके वनगमनके प्रसंगमें भी यद्यपि मूल कथा एक ही है कि कैकेयीकी दुर्नीतिसे रामका निर्वासन हुआ तथापि दोनोंमें बड़ा भारी अन्तर है। वाल्मीकिके अनुसार दशरथ गुप्त रूपसे रामसे

कहते हैं कि मैं तुम्हें कल यौवराज्य-पदपर अभिषिक्त कर दूँगा जिससे आगे चलकर कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो जाय। किन्तु गोस्वामीजीने यह सूचना वशिष्ठसे रामको दिलाते हुए कहलाया है—'राम करहु सब संजम आजू। जौ बिधि कुसल निबाहै काजू॥'

मन्थरावाले प्रसंगमें भी दोनोंमें अन्तर है। गोस्वामीजीने मन्थराकी बुद्धि सरस्वती-द्वारा भ्रष्ट कराई है और वाल्मीकिका कहना है कि उसने स्वयं अपनी कुटिल बुद्धिसे सब किया। इसी प्रकार कौशल्या, सीता, लक्ष्मणवाले वर्णनोंमें भी दोनोंमें अन्तर है।

लक्ष्मण और निषादकी वार्त्तावाला प्रसंग तथा भरत और निषादवाला वृत्तान्त भी दोनोंमें दो प्रकारसे मिलता है।

जयन्तवाली कथामें तो दोनोंमें बहुत ही अन्तर है। वाल्मीकिने लिखा है कि जयन्तने सीताजीके स्तनपर प्रहार किया किन्तु गोस्वामीजीने चरणोंपर चंचु-प्रहारकी बात लिखी है। शूर्पणखाके लिये वाल्मीकिने लिखा है कि वह भयानक और कुरूप वेशमें रामके यहाँ गई किन्तु गोस्वामीजीने 'रुचिर रूप' धरकर जानेकी बात लिखी है। शबरीवाले प्रसंगमें भी दोनोंके वर्णनोंमें अन्तर है। माया सीताकी बात भी वाल्मीकि रामायणमें नहीं आई है।

हनुमान् और रामके मिलनकी कथा भी दोनोंमें भिन्न प्रकारसे दी गई है। वाल्मीकिने हनुमान्‌जीको भिक्षुके रूपमें दिखाया है किन्तु गोस्वामीजीने बटुके रूपमें। दोनोंके वार्त्तालापमें तो बहुत अन्तर है ही। वाल्मीकिके अनुसार बालिने प्राण छोड़ते समय अंगदको सुग्रीवकी शरणमें छोड़ा है किन्तु गोस्वामीजीके अनुसार उसने अंगदको रामके हाथ सौंपा है।

सीताकी खोजके प्रसङ्गमें वाल्मीकिने अशोक-वनमें हनुमान्‌के स्वयमेव जानेकी बात कही है किन्तु तुलसीदासने विभीषणके बतानेपर उनके यहाँ जानेकी बात कही है। मुद्रिकावाला वर्णन भी दोनोंमें एक-सा नहीं है। वाटिकाका विध्वंस करनेके लिये हनुमान्‌जीका जाना तो दोनोंमें है किन्तु गोस्वामीजीने लिखा है कि वे सीताजीसे पूछकर गए और फल खाकर यों ही उसे नष्ट करने लगे। परन्तु वाल्मीकिने सीताकी अनुमतिका उल्लेख ही नहीं किया है। वहाँ जाकर ध्वंस करनेका कारण भी यह लिखा है कि रावणका भेद जाननेके लिये उन्होंने यह युक्ति निकाली। रामेश्वरका लिंग स्थापित करनेका कोई प्रसंग वाल्मीकिमें नहीं आया है।

अंगदके दौत्यका वर्णन तो दोनोंने किया है परन्तु किरीट फेंकने और पैर रोपनेकी बात वाल्मीकिमें नहीं है। राम-रावण-युद्ध और दोनों सैन्यदलोंके युद्धका वर्णन वाल्मीकिमें अत्यन्त विस्तृत है।

रामके लौटनेपर उनके राज्यारोहणके अनन्तर रामराज्यका वर्णन करनेके पश्चात् गोस्वामीजीने राम-द्वारा सीताके त्याग, लवकुशका विवरण, रामाश्वमेध और रामके स्वर्ग-गमनका कोई उल्लेख नहीं किया है। ग्रन्थका उपसंहार भी उन्होंने सर्वथा दूसरे ढंगसे किया है।

अध्यात्म-रामायण और मानस

मानसपर अध्यात्म-रामायणका रंग गहरा होते हुए भी अनेक विवरणोंमें मानसकी पद्धति निराली है। सबसे बड़ा अन्तर तो यही है कि अध्यात्म-रामायण तो केवल शंभु-उमाके संवादके रूपमें है किन्तु मानसमें चार वक्ता और चार श्रोता हैं और यह साधारण काव्य-कौशलकी बात

नहीं है कि यह क्रम कहीं भंग नहीं होने पाया है। कितनी ही घटनाएँ मानसमें ऐसी हैं जिनका उल्लेख-तक अध्यात्म-रामायणमें नहीं है। कितनी ही घटनाओंमें गोस्वामीजीने इतना अधिक फेरफार कर दिया है कि कथाकी मार्मिकता, सुन्दरता, सरसता तथा आकर्षकता बढ़ गई है। अध्यात्मरामायणके उत्तरकाण्डकी कथा तो मानसमें आई ही नहीं है।

इन परिवर्तनोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं है। गोस्वामीजीने मानसकी कथामें मुख्यतः दो ग्रन्थोंसे सहायता ली है—वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्म-रामायणसे। अतः, इन दो ग्रन्थोंके साथ रामचरितमानसकी रचनाका उद्देश्य स्पष्ट हो जानेपर तो अन्तरका कारण भली-भाँति समझमें आ जाता है। वाल्मीकि-रामायणको ही लीजिए। वाल्मीकि आदिकवि हैं। उनके समयमें समाजकी अवस्था गोस्वामीजीके समयकी अवस्थासे पूर्णतः भिन्न थी। उस युगमें आवश्यकताएँ भिन्न थीं। आर्य-संस्कृति उस समय उत्कर्षोन्मुख थी। अतः, उस सांस्कृतिक सन्दर्भमें रामको मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें दिखाकर ही समाजको निश्चित आदर्शकी ओर प्रवृत्त किया जा सकता था। इसके लिये यह परम आवश्यक था कि आर्योंकी सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक सभी अवस्थाओंका विशेष विवेचन और वर्णन किया जाय तथा रीति-नीति सबकी व्याख्या की जाय। इसके साथ ही वाल्मीकिको सूर्यवंशका इतिवृत्त भी प्रस्तुत करना था इसीलिये उन्होंने राम-विवाहके समय वंशावली देकर यह कार्य भी किया है। इसी क्रममें उन्होंने अपने युगकी आवश्यकताएँ ध्यानमें रखकर युद्ध आदिका भी पूर्ण वर्णन कर दिया है। तात्पर्य यह है कि रामकथाके माध्यमसे उन्होंने आर्य-संस्कृति और सभ्यताका चरम उत्कर्ष और आदर्श रूप उपस्थित करनेका जो अपना लक्ष्य निर्धारित कर रक्खा था उससे उनका सम्पूर्ण काव्य परिपूर्ण है।

अब अध्यात्मरामायणको लीजिए। यह तो निर्विवाद है कि रामायणकी रचनाके पश्चात् पुराणोंकी रचना हुई। दोनोंके रचना-कालमें वर्षोंका नहीं, शताब्दियोंका अन्तर है। इस बीच सामाजिक आदर्श, राजनीतिक अवस्थाएँ, धार्मिक और दार्शनिक वृत्तियाँ सब बदल चुकी थीं। अतः, जिस समय अध्यात्मरामायणकी, या यों कहिए कि पुराणोंकी, रचना हुई उस समय भारतवर्षका आर्य अथवा हिन्दू समाज वैदिक देवताओंकी उपासना-पद्धतिको मानते हुए भी पौराणिक देवताओंकी उपासनाकी ओर वेगसे झुक चला था। बहुदेववादकी स्पष्ट रूपसे स्थापना हो चुकी थी। साकार उपासनाके पथपर समाज आगे बढ़ चुका था शिव और विष्णुकी आराधनाका मार्ग पुराणोंने पूर्ण प्रशस्त कर दिया था। शैव और वैष्णव-प्रधान कहे जानेवाले सभी पुराणोंमें दोनों देवोंकी उपासनाको महत्त्व प्रदान किया जा चुका था। राम और कृष्ण दोनों, विष्णुके अवतारके रूपमें प्रतिष्ठित हो चुके थे इसलिये इन दोनोंको भी विष्णुके रूपमें ही सम्मान मिल गया था। यही कारण है कि अध्यात्मरामायणमें सर्वत्र रामको विष्णुका अवतार मानकर उनकी स्तुति हुई है। अध्यात्मरामायणमें इसी आधारपर रामकी कथा वर्णित है। ब्रह्म, जीव और मायाके सम्बन्धमें अध्यात्मरामायणके वर्णन ठीक वे ही हैं जो समस्त पुराण-साहित्यको मान्य हैं। पुराणोंमें भगवद्भक्तिका विशद विवेचन करके भी उसे ज्ञान-प्राप्तिका साधन बताया गया है और ज्ञानको सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। अध्यात्मरामायणका भी प्रतिपाद्य यही है। इसी प्रकार साधकको अपने स्वरूपमें स्थित होनेके लिये रामने यही धारणा करनेका आदेश दिया—

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीवनिर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैर्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥ (५,४३-४४)

[मैं प्रकाश-रूप हूँ, अजन्मा हूँ, मेरे समान कोई दूसरा नहीं है और सदा चमकते रहनेसे अत्यन्त स्वच्छ हूँ। मैं विशुद्ध विज्ञानमय, विकार-रहित, पूर्ण, आनन्दमय और निष्क्रिय हूँ।

मैं सदा ही मुक्त हूँ, अचिन्त्य शक्तिवाला हूँ, इन्द्रियों-द्वारा न ग्रहण किए जा सकने-योग्य ज्ञानके स्वरूपवाला हूँ, मुझमें कोई विकार नहीं होता और ज्ञानवान् वेदवादी लोग हृदयमें दिन-रात मेरा ही ध्यान करते हैं।]

अध्यात्मरामायणमें रामका यही स्वरूप व्यापक रूपसे सर्वत्र भरा पड़ा है। फिर भी उसमें लिखा है कि वही पुराणपुरुष परमात्म-स्वरूप राम संसारपर अनुग्रह करनेके लिये मायारूप धारण कर लेते हैं। माया ही परम शक्ति है जिसकी शक्तिसे त्रिदेव शक्तिशाली होकर अपने-अपने कार्योंका सम्पादन करते हैं।

इन विचारोंसे स्पष्ट हो जाता है कि अध्यात्मरामायण मूलतः इतिहासका ग्रन्थ नहीं है। पुराणोंमें इतिहास अवश्य है किन्तु उनकी रचना इतिवृत्तात्मक ढंगसे नहीं हुई है। उनका प्रतिपाद्य वस्तुतः सर्ग, उपसर्ग, मन्वन्तर और वंशानुचरितका वर्णन ही है जिसे परिपुष्ट करनेके लिये कहीं-कहीं प्राचीन इतिहासका यत्र-तत्र उल्लेख कर दिया गया है। अध्यात्मरामायणकी रामकथाको भी इसी ढंगसे देखना चाहिए।

रामचरित-मानस

अब रामचरितमानसपर विचार कीजिए। मानस उद्देश्यके सम्बन्धमें बताया जा चुका है कि गोस्वामीजीने यद्यपि 'स्वान्तःसुखाय' और 'मोरे मन प्रबोध जेहि होइ' कहकर कथाकी रचना की तथापि उनका विचार वस्तुतः यह था कि हिन्दू-मात्रको इस कथासे प्रबोध हो और वह भगवान्‌की भक्तिकी ओर प्रवृत्त होकर उनसे अपने दुःखादिकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना करे, क्योंकि भगवान्‌का वचन है—

'आए सरन तजहुँ नहिं ताही'।

अतएव उनकी शरण ग्रहण करनेसे ही समाजका लाभ सम्भव है। इसीके साथ उन्होंने रामकथाके माध्यमसे समाजके सम्मुख ऐसा आदर्श भी उपस्थित किया जिसे लक्ष्य मानकर चलनेसे हिन्दू जाति पुनः उत्कर्ष प्राप्त कर सके। गोस्वामीजीके समयमें इतने मत-मतान्तर थे कि समाजके सामने कोई निश्चित आदर्श रह नहीं गया था। लोग पथविमूढ हो चले थे। इसलिये उन्हें यह भ्रमजाल भी तोड़ फेंकना था जिससे लोगोंको स्पष्ट मार्ग मिल सके। इन सभी परिस्थितियोंके समाधानके लिये रचना करते समय निश्चय ही वे रामका इतिवृत्त मात्र प्रस्तुत करके सफल नहीं हो सकते थे। यही कारण है कि आदिकविकी कथामें उन्हें ऐसे अनेक परिवर्तन करने पड़े जिनसे कथा, युगके अनुकूल बनकर लोगोंको रुचिकर हो और उनका हित साधन कर सके। अध्यात्मरामायणकारको भी परिस्थितियोंके अनुसार ही अनेक स्थलोंपर कथामें परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकताका इसीलिये अनुभव हुआ। इस प्रकार वाल्मीकिने केवल मर्यादापुरुषोत्तम रामका इतिवृत्त प्रस्तुत किया और अध्यात्मरामायणकारने केवल रामभक्तिका प्रचार किया। किन्तु गोस्वामीजीको दोनोंके समन्वयकी आवश्यकता थी और साथ ही ऐसा ग्रंथ प्रस्तुत करना था जो इतिहास, पुराण, नीति, धर्म सबका काम दे सके। अतः, मानसमें उन्होंने इन सबका समावेश किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि

अध्यात्मरामायणकारने अपनी रचनामें काव्यतत्त्वकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। गोस्वामीजीकी रचना अन्य बातोंके साथ-साथ महाकाव्यका भी उत्कृष्ट उदाहरण है। इसीलिये उसमें श्रुतिके समान गुरु-सम्मित और स्मृतिके समास सुहृत्सम्मित विवेचन नहीं किया जा सकता था। काव्यतत्त्वको दृष्टिमें रखकर उसकी रचना कान्ता-सम्मित उपदेशके अनुसार ही ठीक हो सकती थी। अतः, साहित्य-शास्त्रमें महाकाव्यकी जो परिभाषा दी हुई है उसका पूरा ध्यान रखकर ही गोस्वामीजीने मानसकी रचना की है। काव्यमें कथा और घटनाके संयोजनका औचित्य, उनका अनुपात, मार्मिक स्थलोंका चित्रण, रस तथा अलंकार आदिकी उचित योजना, चरित्रनिर्वाह, संवाद-योजना तथा कथा-प्रवाह आदिका जैसा समुचित प्रयोग रामचरितमानसमें है वैसा हिन्दीके किसी दूसरे महाकाव्यमें नहीं मिलता। इसीलिये उन महाकाव्योंकी अपेक्षा 'मानस' के वर्णनोंमें अधिक स्वाभाविकता और रस है।

अप्रस्तुत-विधान

प्रस्तुत तथा वर्णनीय विषयकी तीव्रतम और शीघ्रतम अनुभूति करानेके लिये तथा प्रस्तुतको भली भाँति हृदयंगम और स्पष्ट करनेके लिये अप्रस्तुतका संयोजन करना ही अप्रस्तुत-विधान या अलंकार-विधान कहलाता है। 'मुख सुन्दर है' कहनेसे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि मुखके सौन्दर्यकी विशेषताएँ क्या-क्या हैं। किन्तु जब यह कहा जाय कि 'मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है' तो स्पष्ट हो जाता है कि मुखमें चन्द्रमाका आकार, प्रकाश, शीतलता, मनोहरता, सुधोपम आनन्द, चमक तथा आह्लादकारिता विद्यमान है। इस अप्रस्तुत उपमानसे मुखके सौन्दर्यका भाव स्पष्ट समझमें आ जाता है। इसीको अप्रस्तुत-विधान कहते हैं।

तुलसीदासने अपने वर्ण्य विषयको हृदयंगम करानेके लिये जिन उपमानों, कल्पनाओं और प्रतीकोंका आश्रय लिया है वे हमारे जीवनमें बराबर आनेवाले पदार्थ हैं। इससे वर्ण्य विषयका बोध होनेमें अत्यन्त सुविधा हो जाती है। एक उदाहरण लीजिए—

नगर ब्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

रामके वनगमनकी बात किस वेगसे नगरमें फैल गई इसका यथार्थ बोध बिच्छूके विष-संचरणसे भली प्रकार हो जाता है। बिच्छूका विष जैसे लहर लेकर पीडा दे उठता है वैसे ही राम-वनगमनकी बात अयोध्याके निवासियोंके लिये पीडाकारक सिद्ध हुई।

दूसरा उदाहरण लीजिए। जनकजी चित्रकूट आ रहे हैं। रामने सुना और वे दौड़ चले। जनक राजा हैं। वे सेनाके साथ पूरे राजसी ठाट-बाटसे आए हैं। उन्हें साथ लेकर राम आश्रमकी ओर चले। यहाँ गोस्वामीजीने जिस सांग रूपकका आश्रय लिया है उससे इस विषयका स्पष्ट बोध हो जाता है कि यह सम्पूर्ण समाज रघुनन्दनके वनवास और दशरथके निधनसे कितना शोकसन्तप्त है। गोस्वामीजीके लिये लाला भगवानदीनजीने कहा है कि 'वे रूपकोंके बादशाह थे।' इसमें सन्देह नहीं कि रूपकोंके माध्यमसे उन्होंने विषयका बोध करानेमें अद्भुत कला प्रदर्शित की है। यदि उनके रूपकोंका आनन्द लेना हो तो निम्नांकित स्थलोंके रूपक देखिए—

सर्वप्रथम मानसका रूपक लीजिए जो—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥

से प्रारम्भ होकर—

राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥

तक अथवा—

तृषित निरखि रविकर भ्रम बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

तक चलता है। यह सबसे बड़ा साङ्ग रूपक है। इसके पश्चात् दूसरा रूपक वह है जहाँ कैकेयी दोनों वर माँगकर राजा दशरथके आगे खड़ी है। वहाँ गोस्वामीजीने कई रूपकोंका प्रयोग किया है—

बिपति बीज बरखा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी।
पाइ कपट जल अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

आगे चलकर उत्प्रेक्षा और रूपक दोनोंको मिलाकर कैकेयीका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहिं निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निवारई॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम-कौतुक लेखई॥

आगे इसी प्रकार उत्प्रेक्षाके साथ रूपक बाँधते हुए कैकेयीका ही वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष-तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रकट भइ सोई। भरी क्रोधजल जाइ न जोई॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

इस प्रकार आदिसे अन्त-तक एकसे एक सुन्दर रूपक रामचरितमानसमें स्थान-स्थानपर जड़े पड़े हैं।

जिस समय राम धनुष उठानेके लिये—

'सब मंचनतें मंच एक सुन्दर बिसद बिसाल'

पर पहुँचते हैं उस समय वहाँ बैठे हुए त्रिविध प्रकारके लोगोंने रामको विविध रूपोंमें देखा और नवों रस उल्लेख अलंकारके साथ रामके स्वरूपमें उसी समय मूर्तिमान हो उठे—

जिन्हके रही भावना जैसी। प्रभु मूरत तिन्ह देखी तैसी॥
देखहिं रूप महारन-धीरा। मनहुँ बीर रस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरखि हिय, निज-निज रुचि अनुरूप। जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

हरि-भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।।
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेह रस नहिं कथनीया।।

संस्कृतके कवियोंमें कालिदास अपनी उपमाओंके लिये प्रसिद्ध हैं। किन्तु गोस्वामीजीने अपने काव्योंमें परम्परागत उपमानोंके साथ-साथ जो अनेक उपमान ठेठ लोक-जीवनसे चुने हैं उनसे भावकी तीव्रताका सहज ही अनुभव हो जाता है। विन्सेन्ट स्मिथका तो यहाँतक कहना है कि गोस्वामीजीकी कुछ उपमाएँ तो कालिदासकी उपमाओंसे भी बढ़कर हैं। उदाहरण लीजिए—

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर-पात सरिस मन डोला।।

पीपलका पत्ता एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। चलदल उसका नाम ही है। राजा भी कुछ स्थिर नहीं कर पा रहे हैं। उनका मन तर्क-वितर्कमें उलझा हुआ है। यहाँ पीपलके पत्तेकी उपमासे विषयका स्पष्ट बोध हो जाता है।

सीताके रूप-वर्णनमें कविने जिस कौशलसे काम लिया है, वह अद्भुत है। जितने संभव उपमान हो सकते थे सबका विवरण देकर अन्तमें वे कहते हैं—

सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरिय बिदेह-कुमारी।।

चन्द्रमा उपमानके लिये तो उन्होंने स्पष्ट कह डाला—

जनम सिन्धु, पुनि बन्धु बिष, दिन मलीन, सकलंक। सियमुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक।।

सभी उपमानोंका निराकरण करके उन्होंने सीताजीके रूपका उपमान ढूँढ़नेके लिये एक प्रयोग बताया है। वह यदि सिद्ध किया जा सके तब सीताजीका उपमान बन सकता है, पर वह भी कुछ-कुछ—

जौं छबि-सुधा-पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि-पंकज निज मारू।।
एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल। तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल।।

गोस्वामीजीने उत्प्रेक्षाएँ भी कम सुन्दर नहीं ढूँढी हैं। एक उदाहरण लीजिए। राम और लक्ष्मण जनककी वाटिकामें लताभवनसे सहसा किस प्रकार प्रकट होते हैं—

लता-भवनतें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाय। निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद-पटल बिलगाय।।

मुनि विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण अपने गुरुजीके लिये फूल संग्रह करनेको जनककी फुलवारीमें पहुँचकर लताकुञ्जकी ओटमें फूल चुनने लगे। जिस समय गिरिजाजीकी पूजा करनेके लिये जानकी उस उपवनके मन्दिरमें आई, उसी समय राम और लक्ष्मण दोनों ही लताकुञ्जकी लटकती हुई लताओंको हटाकर जानकीके सामने इस प्रकार प्रकट हो गए मानो सुन्दर, स्वच्छ, बिना कलङ्कवाले दो चन्द्रमा सहसा बादलका पर्दा हटाकर आगे निकल आए हों। भावार्थ यह है कि जिस समय सीताजी अपने उपवनमें अपनी सखियोंके साथ गिरिजाके पूजनके लिये पहुँचीं उसी समय राम और लक्ष्मण भी लताकुञ्जकी ओटसे लटकती हुई लताओंको हटाकर इस प्रकार सहसा प्रकट होकर सुन्दर लगने लगे जैसे बादलको फाड़कर एकके बदले दो निष्कलङ्क चन्द्रमा निकलकर खिल उठे हों।

इस परिस्थितिको इस प्रकार समझनेका प्रयत्न करना चाहिए। राजा जनकका निमन्त्रण पाकर राम-लक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्रजी जनकपुर पहुँचे। वहाँ एक दिन प्रातःकाल

विश्वामित्रजीकी आज्ञासे राम और लक्ष्मण दोनों उनके पूजनेके लिये फूल लेनेको जानकीकी फुलवारीमें जा पहुँचे। उसी समय संयोगसे सीता भी उस उपवनके मन्दिरमें गिरिजाका पूजन करनेके लिये आई हुई थीं। किन्तु राम और सीताके बीचमें एक लता-मण्डप पड़ता था जिसपर छाई हुई लताएँ नीचे तक लटककर ऐसी परदेके समान बन गई थीं कि जबतक उन लताओंको हटाकर ही कोई दूसरी ओर न जाय तबतक उसके आर-पार कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उस उपवनमें जानेका मार्ग भी वही लता-मण्डप था इसलिये एक ओरसे जब सीताजी अपनी सखियोंके साथ चली आ रही थीं उसी समय दूसरी ओरसे लता-मण्डपपर छाई हुई लताएँ हटाकर राम और लक्ष्मण दूसरी ओर निकल आए। रामने दाहिने हाथसे और लक्ष्मणने बाएँ हाथसे जब लताएँ हटाईं और वे लता-मण्डपसे निकले तो ऐसा जान पड़ा मानो दो चन्द्रमाओंने अपने आगे छाए बादलोंको हटा दिया हो और वे बाहर निकलकर इस प्रकार चमकने लगे हों मानो बादलोंके आगे दो चन्द्रमा निकल आए हों। इस दोहेमें कविने उत्प्रेक्षा अलंकारसे जो विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह यह है कि बादलोंमें छिपा चन्द्रमा तबतक नहीं दिखाई दे सकता जबतक बादल उसके आगेसे हट न जायँ और पीछे खुला आकाश न दिखाई पड़ने लगे। किन्तु यहाँ कई विलक्षण बातें हैं। यहाँ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। यद्यपि अन्य ग्रहोंमेंसे मंगलपर २, बृहस्पतिपर १२, शनिपर १० और वरुण (यूरेनस) पर ४ चन्द्रमा हैं तथापि पृथ्वीपर तो एक ही चन्द्रमा है और वह भी सकलङ्क है। यदि मंगलपर दो चन्द्रमा निकलनेकी बात कही गई होती तो उसमें कोई चमत्कार न होता। किन्तु चमत्कार यह है कि पृथ्वीपर एक साथ एकके बदले दो-दो चन्द्रमा निकल आए हैं। वे चन्द्रमा भी ऐसे निराले कि उनपर कलङ्क नहीं, और ऐसे प्रतापी कि बादलको हटाकर निकले, और निकलकर भी बादलोंसे आगे बढ़ आए। चित्र-विज्ञानके अनुसार श्वेत या उजले रंगके पीछे जितनी अधिक कालिमा होगी उतना ही अधिक श्वेत या उजला रंग चमकेगा। अतः, लता-मण्डपकी लताओंको हटाकर राम और लक्ष्मणने ज्योंही उन्हें छोड़ा त्यों ही वे उनके पीछे गहरे नीले बादलके समान गहरे नीले रंगकी चादर बनकर ऐसी लटक गईं कि आगे राम और लक्ष्मणका सुन्दर रूप और भी सुन्दर बनकर निखर आया। गोस्वामीजीके कहनेका यही तात्पर्य है कि लता-भवनसे निकलकर ज्योंही राम और लक्ष्मण आगे खड़े हुए त्योंही वे लता-मण्डपकी लताओंकी नीलिमा और गहन हरीतिमाके आगे और भी अधिक सुन्दर लगने लगे।

इस दोहेमें राम और लक्ष्मण दोनोंको चन्द्रमा माना गया है। पर रामका रंग तो नीलाम्बुज-श्याम (नीले कमलके समान साँवला) या दूर्वादलश्याम (दूबके पत्तेके रंगके समान साँवला) है और केवल लक्ष्मणका रंग गोरा है। ऐसी-स्थितिमें केवल लक्ष्मण ही चन्द्रके समान दिखाई देने चाहिए थे क्योंकि रामका साँवला रंग तो लताके रंगमें मिलकर छिप जाना चाहिए था। किन्तु गोस्वामीजी-ने यही चमत्कार दिखाया है कि दूबादल, नील कमल और नवघनके समान श्यामल होनेपर भी उनके साँवले रंगमें इतना तेज था कि लता-भवनकी लताओंके आगे खड़े होकर भी वे उससे भिन्न, प्रकाश-मान और दीप्तिमान् प्रतीत हो रहे थे। जिस समय सीताजी अपने उपवनमें गिरिजाका पूजन करने गईं उस समय उनकी एक सखी उधर निकल गई थी जिधर राम और लक्ष्मण गुरुजीके लिये सुमन-संग्रह कर रहे थे। उन्हें देखकर इन दोनों भाइयोंकी शोभाका वर्णन करते हुए उस सखीने भी कहा था—

'स्याम-गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन, बिनु बानी ।।

तब प्रश्न यह है कि यदि वे इतने तेजस्वी थे तो तुलसीदासजीने उनकी उपमा सूर्यसे क्यों नहीं दी ? इसलिये नहीं दी कि सूर्यसे आँखें चौंधिया जाती हैं, वह देखनेमें सुखद नहीं होता। रहीमने कहा भी है—

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जु होय। कहा बापुरो भानु है, तप्यौ तरैयनु खोय ॥

स्वयं गोस्वामीजीने भी कहा है—

संत-उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥

राम तो उस तमारि चन्द्रमाके समान उदित हुए जो आँखोंको भी अच्छे लगें और अन्धकार भी दूर कर दें। इस साँवले रंगका विचित्र चमत्कार है कि वह साँवला होता हुआ भी चन्द्रमाके समान सुखद और अन्धकार दूर करनेवाला है। यदि न विश्वास हो तो बिहारीका दोहा देखिए—

आ अनुरागी चित्तकी, गति समुझै नहिं कोय। ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्वल होय ॥

जिस श्याम रंगमें डूबनेवाला उज्ज्वल हो जाता है वह रंग स्वयं कितना उज्ज्वल होगा ! उस साँवलेपनमें भी कुछ विचित्र चमक और उजलापन है किन्तु उसे देख वही पाता हैं जो उसे हृदयकी आँखोंसे देखे। फिर तो साँवला रंग लुप्त हो जाता है और अखंड प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है, जिसका साक्षात् दर्शन सीताजीने और उस सखीने किया था जो उनका साथ छोड़कर फुलवारी देखने चली गई थी—

एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई ॥

और जब वहाँसे लौटी तो तब सुध-बुध भूलकर लौटी क्योंकि उसे साक्षात् परम ज्योतिके दर्शन हो गए थे। इसीलिये गोस्वामीजीने इन्हें चन्द्र कहा है।

हमें जो चन्द्रमा दिखाई पड़ता है वह गोल है, उसमें कलङ्क है। उसके हाथ-पैर नहीं है। किन्तु गोस्वामीजीने जो दो चन्द्रमा लताभवनसे प्रकट कराए हैं उनकी यह भी विशेषता है कि बादल उनपर तभीतक छाए रह सकते हैं जबतक वे चाहें और जब उनकी इच्छा प्रकट होनेकी हो तब झट अपने हाथसे बादल हटाकर प्रकट हो जायँ और बादल भी लताओंके समान दोनों ओर हट-बढ़कर पीछे पड़ जायँ।

आध्यात्मिक व्याख्या

राम साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। उन्हींकी मायासे यह सृष्टि उत्पन्न होती है, उसका पोषण और लय होता है। यह माया जबतक जीवपर व्याप्त रहती है तबतक ब्रह्मका दर्शन नहीं होता। उस ब्रह्मका साक्षात्कार तभी हो सकता है जब जीव स्वयं ज्ञान प्राप्त कर ले या तब हो सकता है जब स्वयं भगवान् अपने इष्टपर कृपा करके स्वयं अज्ञानका, मोहका, मायाका आवरण हटाकर स्वयं प्रकट हो जायँ। सीताजी तो रामकी परा-शक्ति हैं, मायास्वरूपिणी हैं। उसी रामका रूप उन्हें सखियोंने लताकी ओटसे दिखा दिया। देखते ही वे योगस्थ और तन्मय हो गईं—

लोचन-मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक-कपाट सयानी ॥

इसी एकात्मताके समय मायाका पट दूर हो गया क्योंकि—

प्रीति पुरातन लखइ न कोई।

स्वयं ब्रह्म राम अपने भक्तके पास उसे स्वीकार करनेके लिये मायापट हटाकर प्रकट हो गए। जीव और ब्रह्मका मिलन हो गया।

बिन्दुमें सिन्धु समान, यह अचरज कासों कहौं। हेरनिहार हेरान, रहिमन आपुहि आपुमैं ॥

[बूँदमें समुद्र समा गया, ढूँढ़नेवाला स्वयं अपनेमें खो गया, यह आश्चर्यकी बात मैं कहूँ तो किससे कहूँ ? (कौन मेरी बात मानेगा) ।]

तभी तो स्वयं पार्वतीजीने उनका समर्थन किया—

मन जाहि राच्यो मिलिहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो ।

और इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने लता-भवनसे इन दो चन्द्रमाओंका उदय कराकर एक भव्य आध्यात्मिक सौन्दर्यका विलक्षण दृश्य उपस्थित कर दिया ।

इस प्रकार मानसमें कविने स्थान-स्थानपर जिस अप्रस्तुतका विधान किया है उससे यह समझनेमें तनिक भी देर नहीं लगती कि गोस्वामीजी बड़े अद्भुत कवि थे ।

भावानुकूल शब्दयोजना

गोस्वामीजी-जैसे उच्च कोटिके महाकविकी काव्य-रचनामें भावानुकूल शब्द-योजनापर विचार करनेकी बात ही नहीं उठनी चाहिए। वे शास्त्र-पारंगत विद्वान्, अत्यन्त निपुण कवि, सहृदय, गुणी और पतनोन्मुख हिन्दू-समाजके उद्धार-कार्यमें प्रवृत्त महात्मा थे। व्युत्पत्ति (अनेक विषयोंका ज्ञान) और लोकका अनुभव भी उन्हें पर्याप्त था। प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त कष्टमय होनेके कारण उनके मनमें सर्वसाधारणके प्रति सहानुभूतिका भाव भी अधिक था। इसलिये रस, भाव, घटना और वर्णन आदिके अनुकूल शब्दयोजना होना उनको रचनाओंमें स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि इस अमित प्रतिभासम्पन्न शब्दशिल्पीने अपनी 'ग्राम्य गिरा'के माध्यमसे अपने सूक्ष्म विचारों और व्यापक सिद्धान्तोंको व्यक्त करनेमें अद्भुत कौशल दिखाया।

गोस्वामीजीने अपना सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख महाकाव्य कोशलेन्द्रके सर्वातिप्रिय साकेत धाममें उस समय बोली जानेवाली अवधी भाषामें लिखनेका निश्चय किया। यह वस्तुतः कविकी परिचित बोली भी थी और इसीलिये उन्होंने अपने कथाकाव्यके लिये उस समय प्रचलित दोहे-चौपाईवाली पद्धति भी ग्रहण की। किन्तु भाषाके आदर्शके सम्बन्धमें उन्होंने अपना मत भिन्न रक्खा। अवधीमें कथा-काव्यकी रचना करनेवालोंने सर्वत्र एक-सी ठेठ अवधी शब्दावलीका प्रयोग किया है। उनकी शब्द-योजना सभी प्रकारके वर्णनों और संवादोंमें एक ढंगपर चली है। अतः उनमें भाषाका कोई चमत्कार नहीं आ पाया। वही रचना, वास्तवमें श्रेष्ठ रचना है जिसमें शब्दोंका प्रयोग इस ढंगसे किया जाय कि पाठक उसे पढ़ते ही रसमग्न हो जाय। जबतक रचना पढ़ते समय पाठक उसमें तन्मय न हो जाय, तबतक रचना सफल नहीं कही जा सकती। और यह सारा कार्य तभी सम्भव है जब उसमें इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग किया गया हो कि वर्ण्य विषयका पूरा चित्र खड़ा हो जाय। इसीलिये सफल कवियोंकी रचनाओंमें शब्दयोजना सरल और सजीव पाई जाती है। गोस्वामीजीने श्रेष्ठ कविताका लक्षण स्वयं बताया है—

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान। सहज बैर बिसराइ रिपु, सादर करहिं बखान ॥

महान् शब्दशिल्पी गोस्वामीजीके मानससे इस प्रकारके कुछ उदाहरण लीजिए—

१. दार्शनिक भावोंकी अभिव्यक्तिमें गोस्वामीजीने संस्कृत समासबहुला शब्दावलीका प्रचुर प्रयोग किया है और इस बातका सदा प्रयत्न किया है कि वह स्थल दार्शनिक भावोंके अनुरूप गम्भीर बना रहे। उदाहरण लीजिए—

१. बुध बिस्राम सकल जन-रंजनि । रामकथा कलि-कलुष-विभंजनि ।।
रामकथा कलि-पन्नग-भरनी । पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ।।
२. सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा ।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ।।
३. अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभवगम्य अखंड अनूपा ।।
भव गोतीत अमल अविनासी । निर्विकार निरवधि सुखरासी ।।

२. इतिवृत्तात्मक वर्णनोंके लिये जिस भाषाका प्रयोग हुआ है उसमें शब्द-योजना अत्यन्त साधारण बोलचालकी रक्खी गई है—

१. भैया कहहु कुसल दुइ बारे । तुम नीके निज नयन निहारे ।।
जा दिनतें मुनि गए लिवाई । तबते आजु साँच सुधि पाई ।।
२. आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यमूक परबत नियराई ।।

३. संवादोंमें जिस समय जिस प्रकारकी भाषा अपेक्षित हुई है वहाँ उसी प्रकारकी शब्दावली-का प्रयोग हुआ हैं—

(क) रावण-अंगद संवादमें जब रामको निन्दा रावण करता है तब अंगद रोषपूर्ण वाणीमें कहते हैं—

राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी काम, नदी पुनि गंगा ।।

(ख) इसी प्रकार जब परशुरामको बनानेकी पारी आती है तब लक्ष्मण कैसी व्यंग्यपूर्ण शब्दावलीका प्रयोग करते हैं—

अपने मुँह तुम आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ।।
नहिं संतोष त पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ।।

अंगद भी रावणसे इसी प्रकारकी व्यंग्य शब्दावलीका प्रयोग करते हैं—

धर्मसीलता तव जग जागी । पावा हमहुँ दरस बड़भागी ।।

(ग) राम-भरत-संवादके अवसरपर गोस्वामीजीने अत्यन्त नम्रताभरी प्रसादगुणयुक्त शब्दावली-का आश्रय लिया है—

महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ।।

(घ) प्रेम-पूर्ण शृङ्गारिक वर्णनोंमें पदावली सहसा श्रुतिमधुर हो जाती है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।

५. बीभत्स, भयानक और अद्भुत भावोंके वर्णनमें आई हुई शब्दावली शिवजीकी बारातका पूरा चित्र उतार देती है—

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ।।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना । रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना ।।
तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे ।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन वेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।।

६. युद्ध-वर्णनके प्रसंगमें आई हुई शब्दावली भी देखिए—

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा । बहुतक बीर होहिं सतखंडा ।।
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं । उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ।।

वीरोंके कटने, गिरने तथा उठकर लड़नेका पूरा चित्र सामने उपस्थित हो जाता है ।

मानसमें जो नाटकत्व आ गया है वह इस प्रकारकी भावानुकूल शब्द-योजनाके कारण ही ।

पात्रों और घटनाओंकी योजना

गोस्वामीजीकी सबसे बड़ी विशेषता घटनाओं और पात्रोंकी उपयुक्त योजना है । उपयुक्त योजनाका अर्थ यह है कि एक तो, घटनाओंको दृष्टिसे पात्र उसके उपयुक्त हों; दूसरे, घटनाएँ सर्वत्र स्वाभाविक प्रतीत हों । ऐसा न हो कि वे कारण विशेषसे ठूँस दी गई हों और उनका सन्निवेश असंगत प्रतीत होता हो । यही बात पात्रोंके सम्बन्धमें भी है । अनावश्यक पात्रोंकी सृष्टि करके कथाका व्यर्थ विस्तार करनेसे काव्यका रस नष्ट हो जाता है । किन्तु मानसके सभी पात्र स्वाभाविक रूपसे आए हैं । उसमें न तो किसी पात्रको व्यर्थ ही अनवसर बीच-बीचमें उपस्थित किया गया न किसी पात्रसे आवश्यकतासे अधिक काम ही लिया गया ।

महत्त्वकी बात है घटनाओंके अनुरूप पात्रोंकी सृष्टि । मानसकी कथा वाल्मीकि और अध्यात्मरामायणोंसे अनेक स्थलोंपर भिन्न है । बहुत-सी ऐसी घटनाएँ, जिनका उनमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, मानसमें संक्षिप्त रूपमें आई हैं या उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है । दूसरी ओर, मानसमें ऐसी अनेक घटनाएँ कविने दी हैं जिनका उन रामायणोंमें नाम-तक नहीं है । इसका मुख्य कारण ग्रन्थकारोंका लक्ष्य-भेद है । लक्ष्यभेदके कारण ही गोस्वामीजीको घटनाओंका संकोच, प्रसारण, त्याग और सर्जन करना पड़ा है और इससे मानसका काव्यत्व भी अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट हो गया है । भानुप्रतापकी ही कथा ले लीजिए । इस घटनाका उल्लेख किसी अन्य रामायणमें कहीं नहीं है । यह उपाख्यान गोस्वामीजी अपनी ओरसे ले आए हैं । किन्तु इससे उन परिस्थितियोंमें चमत्कार आ जाता है जिनके कारण रामका अवतार हुआ । इसीसे गोस्वामीजीने कहा भी है—

सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा बिचित्र प्रबन्ध बनाई ।।

प्रबन्धको विचित्र बनानेका अभिप्राय ही यह होता है कि उसमें घटनाओंका संयोजन करके उसे अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया जाय । घटनाकी योजनाका एक उदाहरण हनुमानके द्वारा सीताको मुद्रिका देना भी है । इसी प्रकार पात्रोंकी योजनामें उन्होंने स्वतन्त्रतासे काम लिया है और उन्हें वे उसी अंशतक लाए हैं जहाँतक उचित हो और कोई यह न कह सके कि गोस्वामीजीने अपनी ओरसे जोड़-घटाकर कथाका मूल रूप ही बदल डाला है अथवा अमुक अंश या घटना कल्पित लाकर गोस्वामीजीने किसी प्रकारका व्यतिक्रम उपस्थित कर दिया है ।

शील-निदर्शन

प्रबन्ध-काव्य, उपन्यास या कहानीके लिये कवि जिन पात्रोंकी उद्‌भावना करता है उनमें या तो अपनी रचनाके उद्दिष्ट परिणामकी दृष्टिसे उनमें किसी विशेष स्वभावका आरोप करता है या कोई विशेष आदर्श उपस्थित करनेके लिये उनमें किसी विशेष गुण या शीलकी प्रतिष्ठा करता है । कभी-कभी

निर्दिष्ट परिणाम प्रकट करनेके लिये वह कुछ विरोधी पात्रोंकी सृष्टि करके ऐसा संघर्ष भी उत्पन्न करता है जिससे इच्छित परिणाम निकल आवे। किन्तु गोस्वामीजीके सभी पात्र दैवी हैं, जिनके चरित्र और उद्देश्य शुद्ध हैं। वे केवल दैवके हाथमें पड़कर कोई बुरा कर्म करते हैं, अपनी भावना या इच्छासे नहीं।

राम, भरत, दशरथ, लक्ष्मण, हनुनान्, सीता, कौशल्या और सुमित्राके चरित्रके सम्बन्धमें तो बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। रामचरितमानस इनके उदात्त भावोंसे आद्यन्त परिपूर्ण है किन्तु जिन पात्रोंकी साधारणतः लोग निन्दा करते हैं और उन्हें खल-नायक या दुष्ट चरित्र कहते हैं उन्हें भी गोस्वामीजीने माँजकर उदात्त बना दिया है।

रामको बन भेजनेका सारा दोष कैकेयी और उसकी कुबड़ी दासी मन्थरापर थोपा जाता है। किन्तु गोस्वामीजीने कहा है कि सरस्वतीने उसकी बुद्धि फेरकर उसे अपयशकी पिटारी बना डाला था—

नाम मंथरा मंदमति, चेरी कैकयि केरि। अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥

इसमें मंथराका कोई दोष ही नहीं है। वह देवताओंके हाथकी कठपुतली बनकर यह सब कुचक्र रच रही है।

और कैकेयी? कैकेयीने तो जैसे ही मंथरासे सुना कि रामको युवराज बनाया जा रहा है वैसे ही वह कहती है—

सुदिन सुमंगलदायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
राम-तिलक जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मनभावत आली॥
प्रानतें अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्हकें तिलक छोभ कस तोरे॥

इस प्रकार रामके प्रति स्नेह रखनेवाली कैकेयी भी मन्थराके कपट-प्रबोधके कारण झट इतनी बदल जाती है कि वह उस कुबड़ीसे कहने लगती है—

तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भएसि अधारा।

और इसके पश्चात् कठोर होकर कैकेयी रामके वनवासका, दशरथके मरणका और भरतकी ग्लानिका कारण बन जाती है। किन्तु जब वह चित्रकूटपर पहुँचती है तब वह पश्चात्तापकी प्रतिमा बन जाती है—

प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभायँ भगति मति भेयी॥
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल-करम-बिधि-सिर धरु खोरी॥

उस समय तीनों माताएँ कैसी थीं—

देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि-अवली हिममारीं॥

और जब राम वनसे लौटे तब लाजके मारे कैकेयी मिलने-तक नहीं आई इसलिये—

प्रभु जानी कैकयी लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥

यह सब पढ़कर कौन कहेगा कि कैकेयी हृदयसे कुटिल और कपटी थी।

रावणको लीजिए। उसने भी क्या सचमुच रामसे द्रोह किया था और क्या दुर्भावनासे सीताजीका हरण किया था? नहीं। जिस समय शूर्पणखा अपने भाई खर, दूषण और त्रिशिराके वधका समाचार लेकर पहुँचती है उस समय रावण उसे तो समझा-बुझाकर धैर्य दे देता है किन्तु स्वयं यह विचार करने लगता है—

खर-दूषन मोहि सम बलवन्ता। तिन्हहिंको मारइ बिनु भगवन्ता ॥
सुर-रंजन भंजन महिभारा। जौ भगवन्त लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु-सर प्रान तजे भव तरऊँ ॥

इतना ही नहीं, जब वह सीताजीका हरण करनेको उद्यत होता है उस समय प्रत्यक्ष रूपसे तो—

सुनत बचन दससीस रिसाना।

किंतु—

मन-महँ चरन बंदि सुख माना।

इस एक अर्धालीसे रावणका चरित्र निर्मल स्फटिक हो जाता है।

और कुम्भकर्ण भी जब जागता है तब पहले रावणको समझाता है—

सुनि दसकंधर बचन तब, कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब, सठ चाहसि कल्यान ॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना ॥
अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई। लोचन सफल करौं मैं जाई ॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन ॥

इतना ही नहीं—

राम रूप गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक।

इसके पश्चात् जब वह युद्धक्षेत्रमें विभीषणसे मिलता है तब गद्गद होकर कहता है—

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा-सुख-सागर ॥

यह सब पढ़कर कौन कहेगा कि कुम्भकर्ण रामका भक्त नहीं था? इन चरित्रोंको पढ़कर उन कथाओंका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है जो रामके जन्मका कारण बतलानेके लिये गोस्वामीजीने प्रारम्भमें दी हैं।

मानसकी कथाके नायक राम हैं। रामको सदा मर्यादापुरुषोत्तम कहा गया है। अध्यात्मरामायणने उनमें विष्णुत्वका पूर्ण रूपसे आरोप कर दिया है। किन्तु गोस्वामीजीके राम तो त्रिदेवसे भी श्रेष्ठ पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं। इस ब्रह्म रामने यद्यपि कई स्थानोंपर अलौकिक कार्य भी किए किन्तु उन्होंने सर्वत्र सामाजिक मर्यादाका ध्यान अवश्य रक्खा। रामका चरित्र युद्धमें, प्रेममें, मातृ-पितृ-गुरुभक्तिमें, भ्रातृ-स्नेहमें, शरणागत-वत्सलतामें सदैव मर्य्यादापूर्ण रहा है। सीताको वाटिकामें देखनेपर और उनकी ओर सहज ही आकृष्ट होनेपर भी रामने पूर्ण मर्यादाका ध्यान रक्खा है। युद्धमें उन्होंने किसी प्रकारका ऐसा कार्य न तो होने दिया न स्वयं किया जो धर्मयुद्धके नियमके प्रतिकूल हो। शरणागत-वत्सलताका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तो शत्रुके भाईके प्रति किए हुए व्यवहारमें ही दिखाई पड़ जाता है। कैकेयीके इतना सब कुछ करनेपर भी रामके मनमें उसके प्रति कोई विकार नहीं होता और न पितासे ही वे कुछ कहते हैं। उलटे वे कहते हैं—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर।

भरतके प्रति उनके स्नेहभावकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। चित्रकूटमें भरतपर लक्ष्मणका रोष देखकर राम कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि-प्रपंच महँ सुना न दीसा।।

ऐसे आदर्श चरित्रोंकी सृष्टि करके ही गोस्वामीजी अपने काव्यमें यह चमत्कृति ला सके हैं कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है उसका भाव बढ़ता जाता है।

गोस्वामीजीके शील-निदर्शनकी एक विशेषता यह भी है कि सभी मुख्य पात्रोंका चारित्र्यिक परिचय उन्होंने ग्रन्थके उपक्रममें ही करा दिया है और आदिसे अन्ततक सभी पात्रोंकी ठीक वही विशेषता मिलती है, कहीं किसी प्रकारका अन्तर नहीं आने पाया है। भरतका उदाहरण लीजिए। ग्रन्थारम्भमें ही गोस्वामीजी कहते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम-चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।।

भरतके चरित्रका यह वैशिष्ट्य मानस भरमें व्याप्त मिलेगा। राज्य मिलनेपर भरतके मनमें कोई उत्साह नहीं होता। वे राज्यपर रामका अधिकार समझते हैं और अपनेको उनका एक लघु सेवक—

मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।

हनुमानजी जब भरतसे पहली बार मिलते हैं तो वे कहते हैं—

जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति रामपद-कमल अमाया।।
तौ कपि होउ बिगत स्रम-सूला। जो मोपर रघुपति अनुकूला।।

और अन्तमें—

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोहिं राम पिरीते।।

भरतके चरित्रका चित्रण करनेमें गोस्वामीजीने जो अद्भुत भाव-निबन्धन कौशल दिखाया वह संसार-भरके काव्योंमें अद्वितीय है। सारा अयोध्याकाण्ड भरतके उज्ज्वल चरित्रकी मूर्तिमती गाथासे पूर्ण है। भरतके अतिरिक्त लक्ष्मण, हनुमान् सभी अद्भुत हैं, स्पृहणीय हैं, वन्दनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

पर दशरथको भी हम भूल नहीं सकते जिसने सत्यकी रक्षाके लिये रामको वनवास दिया और प्रेमकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे डाले। गोस्वामीजीने एक ही सोरठेमें उनका पूरा चरित्र खोलकर रख दिया—

बन्दउँ अवध-भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृनु इव परिहरेउ।।
जियन-मरन फल दसरथ पावा। अण्ड अनेक अमल जस छावा।।
जियत राम बिधु-बदन निहारा। राम-बिरह करि मरन सँवारा।।

रामकी माता कौशल्या और लक्ष्मणकी माता सुमित्राका कम महत्त्व नहीं है। वनवासके लिये जाते समय धीर, वीर, गंभीर कौशल्याने रामसे कहा—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जौं पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

क्या कोई साधारण माता इस धैर्य और तेजके साथ अपने पुत्रको ऐसा आदेश दे सकती है?

लक्ष्मणकी माता सुमित्रा भी किसी प्रकार कम नहीं है। ज्यों ही लक्ष्मणने आकर कहा कि राम वनको जा रहे हैं और मैं भी उनके साथ जाना चाहता हूँ त्यों ही बिना कुछ सोचे-बिचारे उस तेजस्विनी क्षत्राणीने, प्रतापी दशरथकी पत्नी और वीर लक्ष्मणकी माताने—

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै राम सीय बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँते। सब मानिअहिं रामके नाते॥
तुम्हरेहिं भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

सीताजीका चरित्र तो कोई मनुष्य वर्णन कर नहीं सकता, गोस्वामीजीने भी नहीं वर्णन किया। वे केवल जगदम्बाको स्मरण करके ही मौन रह जाते हैं—

जगदम्बा जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी॥
ताके जुगपद कमल मनावौं। जासु कृपा निरमल मति पावौं॥

इस प्रकार मानसमें अपने सभी पात्रोंका चित्रण करनेमें उन्होंने उन पात्रोंमें सद्गुणोंका आरोप इस प्रकार किया है कि इससे काव्यमें कहीं भी अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं आने पाई। विचित्र बात यही है कि मानसके सभी पात्र रामकी भक्ति करते हैं यहाँतक कि रावण भी और कुम्भकर्ण भी। भक्ति-रसप्रधान इस काव्यमें इसीलिये उनके चरित्रचित्रणमें आदर्शका वह रूप निखर आया है जिस आदर्शकी आवश्यकता किसी एक समय या देशके लिये नहीं वरन् सभी युगों, सभी देशों और सभी परिस्थितियोंके लिये समान हैं।

सामाजिक तथा राष्ट्रिय आदर्श

रामराज्यका जो वर्णन गोस्वामीजीने किया है उसमें जिस उदात्त सामाजिक व्यवस्थाका स्वरूप प्रकट हुआ है वह किसी भी राज्य-व्यवस्थाके लिये स्पृहणीय है। उसी व्यवस्थामें यह सम्भव हो सकता है कि लोगोंका चारित्र्यिक विकास हो और सब लोग विषमता तथा वैमनस्यके भाव खोकर परस्पर प्रेम और सौहार्दका जीवन बिताएँ। सामाजिक मर्यादाका ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है और यह सब इसलिये सम्भव हुआ कि रामने स्वयं अपने जीवनको ऐसा मर्यादापूर्ण और आदर्शमय बना लिया था कि लोग सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हो गए, किसीपर किसी प्रकारका दबाव डालनेको कोई आवश्यकता न पड़ी।

घटनाओंमें स्वाभाविकता

पीछे बताया जा चुका है कि कविकी कला और उसका कौशल इसीमें है कि वह अपने काव्यमें जिन अनेक घटनाओंकी सृष्टि करे वे कहींसे उखड़ी हुई या भरतीकी न लगें। काव्यमें एक प्रकारका प्रवाह होता है। यदि उसमें बीच-बीचमें ऐसी घटनाएँ आ जायँ कि कथाके प्रवाहमें उनके कारण व्याघात उपस्थित हो या उनके रहनेसे काव्य चमक न उठे तो उनका सन्निवेश व्यर्थ है।

मानसकी रचनाका उद्देश्य ही यह है कि मुमूर्षु हिन्दू जाति सम्बल पाकर खड़ी हो जाय और उसमें उल्लिखित आदर्शोंपर चलकर अपनेको पूर्ण कृतकार्य बना ले। मानसकारका विश्वास है कि पूर्ण

परात्पर ब्रह्म ही भक्तोंका कष्ट निवारण करनेके लिये समय-समयपर, उनकी पुकारपर अवतरित होता है और दुष्टोंका उन्मूलन करके भक्तोंका हित साधन करता है।

मानसकी सारी कथा या उसमें आई हुई सारी घटनाएँ इसी कीलीपर घूमती हैं। सबसे पहली घटना लीजिए सतीका व्यामोह और उमामंगल। रामकी कथासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु इस कथा या घटनाका समावेश गोस्वामीजीने केवल यही दिखानेके लिये किया है कि मायाका चक्र ऐसा है कि उसमें सती तककी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या। इस घटनाके समावेशसे पाठकके मनमें रामका महत्त्व आरम्भसे ही घर कर लेता है। उमाको समझाते हुए शंकर कहते हैं—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख जग जोई। भगत प्रेम बस प्रगट सो होई॥

यदि इस कथाका उल्लेख न किया जाता तो रामके ठीक स्वरूपका बोध सुगमतासे हो ही न पाता। इसलिये रामकथाके प्रसंगमें रामका महत्त्व प्रतिपादित करनेके लिये ही यह कथा यहाँ रक्खी गई है और यह इस ढंगसे बैठाई गई है कि यह भी मूल कथाका आवश्यक अंग बन जाय। ठीक इसी प्रकार नारदमोह, मनु-शतरूपा और प्रतापभानुकी कथाएँ भी मूल कथाका उत्कर्ष ही साधन करती हैं।

मानसमें और भी बहुत-सी जिन प्रासंगिक घटनाओंकी चर्चा आई है या जिनका उल्लेख कविने किया है वे सबकी सब अपने स्वाभाविक रूपमें आती गई हैं। यदि उन्हें वहाँसे हटा दिया जाय तो कथाका रस नष्ट हो जाय तथा ग्रन्थकारके उद्देश्यकी पूर्ति न हो पावे।

वर्णनोंमें स्वाभाविकता

जो अवस्था घटनाओंके समावेशकी है वही वर्णनोंकी है। गोस्वामीजीके वर्णन कहीं भी अनावश्यक रूपसे न तो इतने विस्तृत हो पाए न इतने संक्षिप्त कि उनसे काव्यके चमत्कारमें कमी आ सके। जहाँ जितने वर्णनकी आवश्यकता प्रतीत हुई उससे अधिक कविकी लेखनी नहीं चली है। हनुमान्-मिलनका ही प्रसंग लीजिए। वाल्मीकिने हनुमानसे जिस ललित, लच्छेदार देववाणीका प्रयोग कराया है उससे राम उनकी विद्या, भाषण-शुद्धता और स्वरमाधुर्यसे प्रभावित होकर लक्ष्मणसे उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें इसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उनके राम और हनुमान्की बातें संक्षेपमें होती हैं और हनुमान तुरन्त—

'जगकारन तारन भव, भंजन धरनी भार'

—स्वरूप रामको पहचान लेते हैं और उनके चरणोंपर गिरकर कहते हैं—

मोर न्याउ मैं पूछा साइँ। तुम कस पूछहु नरकी नाइँ॥

वस्तुतः बहुत लम्बे और ब्यौरेवार वर्णनकी यहाँ कोई आवश्यकता भी नहीं थी। जितना वर्णन गोस्वामीजीने किया है उतना ही आवश्यक है और इसलिये वह स्वाभाविक भी लगता है।

दूसरा उदाहरण लीजिए। रावणको विभीषण अनेक प्रकारसे समझाता है कि सीताको लौटा दो नहीं तो आपका अहित होगा। किन्तु गोस्वामीजीने जहाँ यह लिखा है कि विभीषणके बार-बार समझानेपर रावण क्रुद्ध होकर विभीषणको लात मारकर निकाल देता है वहाँ वाल्मीकिके अनुसार रावणके कतिपय दुर्वचन सुनकर ही विभीषण चल देते हैं। उन जैसे सत्पुरुषके लिये, जिसे शूर्पणखा

भी 'धर्मात्मा' बता चुकी है, यह कदापि शोभा नहीं देता कि वे दुर्वचन मात्रपर भाईका साथ छोड़ दें। इधर गोस्वामीजीने जिस ढंगसे वर्णन किया है उससे विभीषणकी सज्जनता और साधुता और भी निखर आती है तथा उनका रावणको छोड़कर चला आना अनुचित नहीं प्रतीत होता। वर्णनकी इस स्वाभाविकताने गोस्वामीजीके काव्यमें जो चमत्कार ला उपस्थित किया है वह वाल्मीकिके वर्णन-में भी नहीं मिलता।

मानसके संवाद

संवादोंका वास्तविक क्षेत्र तो नाटक है। नाटकमें ही संवादोंका महत्त्व भी है। संवादोंके ही कारण नाटक बनते या बिगड़ते हैं। काव्य, उपन्यास या कहानीमें संवाद या कथोपकथनका साधारण महत्त्व होता है, फिर भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि किसी कथा-काव्यमें बीच-बीचमें संवादोंकी योजना की जाय तो उसमें जीवन आ जाता है। केवल वर्णन करते जानेसे या कथा लिखते जानेसे रचनामें कोई चमत्कार नहीं आ पाता, वह मनको लुभा नहीं पाती। नाटकोंका स्थान सभी रचनाओंमें इसीलिये सर्वोत्तम माना गया है कि उनमें संवादोंके प्राधान्यके कारण विशेष रोचकताकी सृष्टि हो जाती है, पात्रोंका चरित्र निखर उठता है।

रामचरित-मानस तो प्रकृतितः संवाद-काव्य है। यह पूरा काव्य ही उमा-महेश संवाद, काग-भुशुण्डि-गरुड संवाद और भरद्वाज-याज्ञवल्क्य-संवाद है। किन्तु 'संवाद' से हमारा तात्पर्य कथाके पात्रों-द्वारा कथाकी धारामें जोड़-तोड़के उत्तरसे है। इस प्रकारका अत्यन्त सुन्दर संवाद कालिदासके कुमार-संभवमें वहाँ है जहाँ उमा और बटु-रूप शिवने शंकरके रूप-गुण-स्वभावके सम्बन्धमें अत्यन्त युक्तियुक्त उत्तर-प्रत्युत्तर दिए हैं।

रामचरितमानसका प्रयोग आरम्भसे ही (गोस्वामीजीके समयसे ही) नाटकके रूपमें होता आया है। आज भी रामलीलाओंमें सर्वत्र मानसके ही संवाद पात्रोंसे कहलाए जाते हैं। उनमें न तो कभी फेरफार करनेकी ही आवश्यकता समझी गई और न उन संवादोंके कारण लीलाओंकी रोचकतामें कभी कोई कमी आई। यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि मानसकी संवादयोजना नाटकीय दृष्टिसे की गई है। इसी कारण उसके संवादोंमें स्वाभाविकता, जोड़-तोड़के उत्तर-प्रत्युतरके चमत्कार तथा ओजका भी समावेश हो पाया। तुलसीदासजीकी एक दूसरी विशेषता यह है कि संवादों या वर्णनोंमें उन्होंने जिन उक्तियोंका प्रयोग किया है वे केवल कवि-समाजमें प्रचलित उपमान मात्र नहीं हैं वरन् उनमें जीवनके व्यापक क्षेत्रमें आए हुए लोक-तत्त्व भी विद्यमान हैं। इससे उनकी उक्तियाँ अधिक सजीव हो उठी हैं और इनके कारण काव्य भी चमक उठा है। संवादोंमें जहाँ-जहाँ ऐसे अवसर आए हैं वहाँ-वहाँ संवाद प्राणवान् हो गए हैं।

संवादोंके माध्यमसे उन्होंने मानव-वृत्तिका कैसा अनुपम उद्घाटन किया है यह कैकेयी-मन्थरा संवादसे प्रकट हो जाता है। मन्थराकी यह व्यंग्य-वाणी देखिए—

रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहिं जनेस देइ जुवराजू॥

मन्थराको कैकेयी डाँटती है फिर भी वह उसके चक्करमें आ ही जाती है। उसकी व्यग्रता देखिए—

भरत सपथ तोहि, सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिस्मय करसि, कारन मोहिं सुनाउ॥

मन्थरा-कैकेयी, कैकेयी-दशरथ, लक्ष्मण-परशुराम, हनुमान-रावण तथा अंगद-रावण संवादोंमें कविने जो शैली अपनाई है उससे संवादोंमें जीवन आ गया है। यह जीवन लानेके लिये ही उन्होंने प्रसन्न-राघव और हनुमन्नाटक आदि नाटकोंसे ये संवाद लेकर उन्हें और भी अधिक सशक्त बनाकर अपने काव्यमें समाविष्ट कर लिया है।

अनुपातका ध्यान

प्रबन्ध-काव्योंके कवियोंमें यह व्यापक दोष पाया जाता है कि वे जब किसी घटनाका वर्णन करने लगते हैं, किसी वर्ण्य विषयका ब्यौरा देने लगते हैं या संवादकी योजना करने लगते हैं तो उसीमें उलझकर प्रकृत विषयसे इतनी दूर चले जाते हैं कि उसका सारा आनन्द ही जाता रहता है। ऐसे कवि विरल ही हैं जो अपने काव्योंमें अनुपातका ध्यान रखते हैं। जिस प्रबन्ध-काव्यमें अनुपातका ध्यान नहीं रक्खा जाता उसकी मूल कथा ही नष्ट हो जाती है और कथाका प्रवाह ऐसा कुण्ठित हो जाता है कि वह आनन्द देनेके बदले नीरस प्रतीत होने लगता है। जायसीकी गणना हिन्दीके महाकवियोंमें की जाने लगी है। पर उन्होंने अपने पदमावतमें अनुपातका कितना ध्यान रक्खा है यह उनके लम्बे वर्णनोंसे प्रकट हो जाता है। भोजनका प्रसंग आया तो हलवाईकी दूकानकी सारी वस्तुओंके नाम गिना दिए। इस बातका भी उन्होंने ध्यान न रक्खा कि विरुद्ध पदार्थ भी एक साथ खाए जा सकते हैं या नहीं। लड़ाईका अवसर आया तो घोड़ों, तलवारों और भालोंके नाम ही गिना डाले। जब सूरदासजी-जैसे महाकवियोंमें यह प्रवृत्ति पाई जाती है तब सूदन आदिकी तो बात ही क्या? इन लोगोंने यह कभी सोचा तक नहीं कि इससे कथाके स्वाभाविक प्रवाहमें क्या बाधा पड़ती है। घटनाएँ उपस्थित करने लगे तो एकके पश्चात् एककी लड़ी जोड़ दी चाहे मूल कथासे उसका सम्बन्ध हो या न हो। संवाद कराने लगे तो उसीको सब कुछ समझ लिया और उसे हनुमानजीकी पूँछ बनाकर बढ़ा दिया। इस प्रकार कथा अस्तव्यस्त हो जाती है और उसकी मार्मिकता एवं भावव्यंजकता समाप्त हो जाती है। मानसमें इस प्रकारकी एक भी घटना, वर्ण्य विषयका एक भी विस्तार अथवा संवादोंका कहीं भी अनावश्यक प्रस्तार न मिलेगा जिससे उनके गौरव और गाम्भीर्यपर आँच आ सके।

मार्मिक स्थलोंका चित्रण

सफल कवि वही है जो हृत्तलको स्पर्श करनेवाले मार्मिक प्रसंगोंका सहृदयता-पूर्वक वर्णन कर सके। मर्मको स्पर्श करनेवाले वर्णन यदि कविने चलते कर दिए या उनका वर्णन सहृदयता-पूर्वक न किया तो उसका काव्य रसपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उससे न तो पाठकको कोई आनन्द प्राप्त हो सकता न उसका हृदयपर प्रभाव पड़ सकता है। भावकत्व और रस-मर्मज्ञत्व कवि बननेके लिये अनिवार्य गुण है। हिन्दीके अनेक प्रमुख कवियोंमें इस गुणका अभाव पाया जाता है। महाकवि केशवदासको ही लीजिए। जिस महिलाका इकलौता पुत्र वन चला जा रहा हो उसकी मनःस्थितिकी कल्पना तो कीजिए। उस समय सत्पुत्रके लिये यही शोभा देता है कि वह माताको ढाढ़स बँधावे और कहे कि आप चिन्ता न कीजिए, मैं शीघ्र ही आकर आपकी सेवा करूँगा। केशवदासने ऐसे स्थलपर जहाँ रामसे कौशल्याको पातिव्रत्यका उपदेश दिलाकर अपनी फूहड़ और भद्दी रुचिका परिचय दिया है वहाँ गोस्वामीजीने इस स्थलका वर्णन कैसा सुन्दर किया है—

१. कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्हि मातु परितोष ॥
२. लगे मातुपद आसिष पाई। बेगि प्रजा दुख मेटब आई॥

३. लखि सनेह-कातर महतारी। बचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना ॥

इसी प्रसंगमें राम और सीताका संवाद देखिए जिसे कविने इतना मार्मिक बना दिया है कि कठोरसे कठोर-हृदय व्यक्ति भी छाती फाड़कर रो उठे।

रामके वनवासका समाचार सुनकर सीता भी वहीं कौशल्याके पास पहुँच गईं जहाँ राम बैठे थे और यह सोचने लगीं कि मेरे जीवन-नाथ तो वन जा रहे हैं, अब किस पुण्यके बलपर मेरा-उनका साथ हो। इसी बीच उनकी आँखोंसे आँसुओंके मोती ढुलकते देखकर कौशल्याने सीताके उच्च कुल और उनकी सुकुमारताका वर्णन करते हुए कह डाला—

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र- लिखित कपि देखि डेराती ॥
सुरसर सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोग कि हंस-कुमारी ॥

माताकी आज्ञासे रामने भी सीताको समझाना प्रारंभ किया। उन्होंने पहले सीताको सासकी सेवा करने, सास-ससुरका पद पूजने और पुरानी कथा कह-कहकर उनका जी बहलानेका आदेश दिया तथा हठ करनेका कुपरिणाम बताया कि किस प्रकार गालव और नहुषको हठके कारण संकट उठाने पड़े। फिर ढाढ़स बँधाते हुए उन्होंने समझाया—

दिवस जात नहिं लागहि बारा। सुन्दरि ! सिखवन सुनहु हमारा।

इसके पश्चात् उन्होंने वनकी भयंकरता, गर्मी, सर्दी और वर्षा, कुश, कंटक और कंकड़से भरे हुए मार्ग-पर पैदल चलनेका कष्ट, ऊबड़-खाबड़ मार्ग, बड़े-बड़े पर्वत, भयावनी कन्दराएँ, अगम नदी, नद और नाले, भालू, बाघ, भेड़िए और हाथी-जैसे जंगली जीवोंके घोर शब्द, भूमिपर सोना, वल्कल पहनना, कभी-कभी मिल जानेपर कन्द-फल-मूल खाना, मनुष्योंको खा जानेवाले राक्षसोंका कपट वेष धारण करके घूमना, पहाड़का लगानेवाला पानी, भयंकर सर्प, घोर जंगल, मनुष्यको चुरा ले जानेवाले राक्षस आदि सबका भय बताकर यही कहा—

हंस-गवनि तुम नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहिं देइहिं लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥

यह सब सुनकर सीताजीको—

सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चन्द निसि जैसे ॥

और उसके पश्चात् उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान। तुम बिन रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥

अपना पक्ष समझाते हुए सीताने कहा कि माता, पिता, बहन, भाई, प्रिय, परिवार, मित्र, सास, ससुर, गुरु, पुत्र आदि जितने सम्बन्ध हैं, वे सब पतिके बिना सूर्यसे भी अधिक ताप देनेवाले लगते हैं। शरीर, धन, भवन, पृथ्वी, पुर और राज्य सब बिना पतिके शोक-समाज है। इसके पश्चात् उन्होंने यहाँतक कह दिया—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

रामकी बताई हुई सब विभीषिकाओंका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे ।।
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ।।
को प्रभु सँग मोहिं चितवनहारा। सिंह-बधुहिं जिमि ससक सिआरा ।
मैं सुकुमार ? नाथ बन जोगू ? तुम्हहिं उचित तप ? मो कहँ भोगू ?
ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान। तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहिहइँ पाँवर प्रान ।।

इस वचनसे हारकर रामको कहना पड़ा—

परिहरि सोच चलउ बन साथा ।

और वह चित्रमें बने हुए बन्दरसे डरनेवाली सीता, भूमिपर पैर न रखनेवाली सीता, आँखोंकी पुतलीके समान पाली हुई सीता, निर्भय होकर वनकी ओर चल दी। उन्हें देखकर ग्राम-वधुओंने ठीक ही कहा था—

आँखिनमें सखि राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ।

युवक राम अपनी सुन्दरी पत्नीको साथ-साथ लिए वन चले जा रहे हैं। अपने अंगोंमें चक्रवर्त्ती राजाके सभी लक्षण धारण किए हुए भी वे वन जा रहे हैं। ऐसी अवस्थामें बटोहियोंका, मार्गमें पड़नेवाले गाँवोंके निवासियोंका और स्त्रियोंका उनके प्रति भाव क्या है इसका जैसा सरस चित्रण गोस्वामीजीने किया है वैसा रामकी कथा कहनेवाला कोई भी कवि नहीं कर सका है। एक उदाहरण लीजिए—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ।।
राम लखन सिय रूप निहारी। होहिं सनेह - बिकल नरनारी ।।

मेघनादकी शक्तिके आघातसे लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं। हनुमान उन्हें रामके पास उठा लाते हैं। फिर सुषेणके ओषधि बतलानेपर वे उसे लाने चल देते हैं। आधी रात-तक भी वे लौटते नहीं। रामकी चिन्ता बढ़ जाती है। वे सोचते हैं कि कहीं सबेरा हो गया तो लक्ष्मण न मिल सकेंगे। वे घबराकर विलाप करने लगते हैं। यह विलाप कितना स्वाभाविक, कितना हृदय-मन्थनकारी है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

इसके अतिरिक्त मानसके मुख्य मार्मिक अंश ये हैं—फुलवारीमें राम-सीताका परस्पर प्रथम दर्शन, धनुभंगके पूर्व और पश्चात् सीताकी मनःस्थिति, रामका-वनगमन, चित्रकूटपर राम-भरत-मिलन, लक्ष्मणको शक्ति लगना, रामके लौटनेपर भरत और हनुमान-मिलन। इन प्रसंगोंका गोस्वामीजीने जैसा सरस निर्वाह किया है उनसे मन बरबस उधर खिंच जाता है। रामके लौटनेके ठीक पूर्व भरतकी मनःस्थितिका अवलोकन कीजिए—

जो करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी ।।
गुन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ।।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे स्थलोंके वर्णनमें गोस्वामीजीने अद्वितीय कौशल दिखलाया है। उनके पूर्व या पश्चात्का कोई कवि उनकी जोड़का ऐसा वर्णन कर नहीं सका है।

गोस्वामीजीकी छन्दोयोजना

गोस्वामीजीने अपने ग्रन्थोंमें छन्दोंका भी प्रयोग बड़ी सटीकताके साथ किया है। उनके ग्रन्थोंमें प्रायः सभी प्रचलित छन्दोंका प्रयोग प्रसंग या अवसरके अनुकूल ही हुआ है। रामचरितमानसमें

प्रयुक्त छन्दोंपर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि मानसमें आठ मात्रिक और ग्यारह वर्णिक छन्दोंका प्रयोग हुआ है। भाषा-रचनामें मात्रिक छन्द और मंगलाचरणके सब श्लोकोंमें वर्णवृत्तोंका प्रयोग हुआ है—

मात्रिक छन्द

१. चौपाई— सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी॥

२. दोहा— जथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान॥

३. सोरठा— जेहि सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर-बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि-रासि सुभ गुन सदन॥

४. डिल्ला— मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत वर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महाघन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुररंजन॥

५. हरिगीतिका— सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरतको।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसीसे सठहि हठि राम सनमुख करत को॥

६. चौपैया— माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु-लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

७. तोमर— जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बैताल भूत पिसाच। कर धरे धनुष नराच॥

८. त्रिभंगी— ब्रह्माण्ड निकाया, निर्मित माया, रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी, यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

वर्णवृत्त

१. अनुष्टुप्— वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ॥

२. इन्द्रवज्रा— नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपित-वामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

३. भुजङ्गप्रयात—
नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद-स्वरूपम्।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

४. वसन्ततिलका—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादि-दोषरहितं कुरु मानसं च ।।

५. स्रग्धरा— केकीकण्ठाभनीलं सुखवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।।

६. शार्दूलविक्रीडित—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।

७. वंशस्थ— प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दस्य मे सदास्तु सा मंजुममङ्गलप्रदा ।।

८. रथोद्धता— कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम् ।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम् ।।

९. मालिनी—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ।।

१०. नगस्वरूपिणी— नमामि भक्तवत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।।
भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।

११. तोटक— जयराम रमारमनं समनं । भवतापभयाकुल पाहि जनं ।।
अवधेश सुरेश रमेश विभो । शरणागत माँगत पाहि प्रभो ।।

वर्णवृत्तोंका प्रयोग स्तोत्रोंमें ही हुआ है । अतः उनपर विचार करनेका प्रश्न उपस्थित नहीं होता । मानस मूलतः मात्रिक छन्दोंमें लिखा गया है । इसलिये गोस्वामीजीकी छन्दोयोजनापर विचार करते समय मात्रिक छन्दोंके प्रयोगपर ही विचार करना आवश्यक है ।

रामचरितमानस कथा-काव्य है और उसकी भाषा अवधी है । उस समय अवधीमें कथाकाव्यकी रचना करनेवाले कवियोंने दोहे-चौपाईकी पद्धति चला दी थी जो कथाकी प्रवाहपूर्ण गतिके लिये व्यापक रूपसे लोकप्रिय हो चुकी थीं । सवैयों और कवित्तोंकी प्रकृति मुक्तकके लिये तो ठीक है किन्तु कथाके लिये अपेक्षित प्रवाह उनमें नहीं मिल पाता । यही कारण है कि गोस्वामीजीने भी मानसके लिये दोहे-चौपाईका ही आश्रय लिया । किन्तु मानसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें दोहे और चौपाईका प्रयोग भी एक निश्चित योजनाके अनुसार किया गया है । प्रायः सर्वत्र आठ अर्धालियोंपर एक दोहा रक्खा गया है । प्रत्येक काण्डके अन्तमें एक हरिगीतिका छन्द देकर तब दोहा या सोरठा लिखकर काण्ड समाप्त किया गया है । अयोध्याकाण्डमें तो इस नियमका पालन और भी कड़ाईसे हुआ है । वहाँ प्रत्येक पच्चीस दोहेके पश्चात् एक हरिगीतिका छन्द दिया गया है । दोहेके पश्चात् सोरठोंकी ही संख्या अधिक है । डिल्ला छन्दका प्रयोग लंकाकाण्डमें एक स्थानपर स्तोत्रके लिये हुआ है । त्रिभंगी और चौपैयेका प्रयोग भी स्तोत्रके लिये बालकाण्डमें ही आया है । तोमरका प्रयोग खर-

दूषण एवं रामके युद्धमें तथा राम-रावणके युद्धमें तो हुआ ही है, लंकाकाण्डमें इन्द्रकृत रामकी स्तुतिमें भी हुआ है।

छन्दोंका विश्लेषण करनेसे प्रतीत होता है कि जहाँ वर्णनोंको पुष्ट करना आवश्यक हुआ है वहीं हरिगीतिका छन्दका प्रयोग किया गया है। दोहे और सोरठोंके प्रयोगमें यही अन्तर है कि जहाँ कोई विशेष चमत्कारकी बात कहनी हुई वहीं सोरठेका प्रयोग किया गया—

संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल। बूड़ेसि सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोहबस ॥

युद्धमें प्रचंड गति होती है इसीलिये युद्धोंके वर्णनोंमें तोमर जैसे वेगशील छन्दका प्रयोग हुआ है। वर्णन सबके सब चौपाइयों और दोहोंमें है। प्रयुक्त छन्दोंके संख्या-क्रमसे देखा जाय तो पहला स्थान चौपाईका, दूसरा दोहेका, तीसरा सोरठेका और चौथा हरिगीतिकाका है।

रस-विधान

गोस्वामीजीका रामचरित-मानस महाकाव्य है। शास्त्रकारोंने महाकाव्यके जो भी लक्षण बताएँ हैं वे मानसपर पूर्ण रूपसे घटते हैं।

साहित्यशास्त्रके मनीषियोंने बताया है कि महाकाव्यमें शान्त, वीर और शृंगारमेंसे कोई रस प्रधान होना चाहिए तथा अन्य रस उसमें गौण रूपसे आने चाहिएँ। मानस भक्ति प्रधान ग्रन्थ है इसलिये इसका प्रधान रस शान्त ही है। अतः रामभक्ति-रूपी सुरसरिकी धारा तो ग्रंथ भरमें प्रवाहित है किन्तु अन्य आठ रस भी यथास्थान आ गए हैं।

शृङ्गारको रसराज माना गया है किन्तु रसराजका निर्वाह करनेमें वहुतसे कवि चूक जाते हैं। गोस्वामजीने भी शृंगारका बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन किया है परन्तु इस बातकी ओर उनका ध्यान बराबर रहा है कि शील और मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले शृंगारिक वर्णन ग्रन्थमें कहीं भी न आने पावें। इतना होनेपर भी उनके वर्णनोंमें शृङ्गारकी ऐसी उदात्त भूमिकाएँ प्राप्त होती हैं कि पाठक उनमें रसमग्न हो जाता है। राम और सीताके मिलनका वर्णंन शुद्ध शृङ्गारमय है किन्तु उसमें कहीं एक भी छन्द ऐसा नहीं आने दिया गया है कि कोई उँगली उठा सके। देखिए—

लता ओट तब सखिन लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन चलचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुबर छबि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरि निमेखे ॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥

सीता प्रेम-विह्वल हो जाती हैं। किन्तु वर्णन इतना मर्यादापूर्ण है कि यहाँ न फूहड़ उछल-कूद है, न कोई विकृत हाव-भाव हैं, न आँखोंके संकेत हैं। इसी प्रकार अरण्यकाण्डमें रामका विरहजन्य विलाप श्लील विप्रलंभका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस वर्णनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संयोग और विप्रलंभ शृंगार दोनों रामकी ओरसे भी और सीताकी ओरसे भी फुलवारीमें मिलनेके समयसे लेकर धनुर्भङ्गतक एकरस होकर चलते हुए अपने समस्त अनुभावों और संचारी भावोंके साथ पराकाष्ठातक पहुँच गए हैं।

वीर रसका वर्णन तो अनेक स्थलोंपर हुआ है। जनकपुरीमें जब लक्ष्मणको अनुभव होता है कि विदेहकी अनुचित वाणीसे रघुवंशविभूषणके वीरत्वका अपमान किया गया है तो वे क्रोधसे तिल-मिला उठते हैं और बोल उठते हैं—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू।
जो राउर अनुसासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥

करुण रसका उद्रेक करनेवाले प्रसंग मानसमें बहुत आए हैं। अतिशय दुःखकी अवस्थामें मनमें करुण रसका संचार होता है। जिस समय राम अयोध्यासे वनकी ओर जा रहे हैं उस समयका दृश्य देखिए—

शोक-विकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर-घर रुदन करहिं पुरवासी॥

हास्य रसका उत्तम परिपाक शिवजीकी बारात और नारदमोहके प्रसंगमें हुआ है। नारदकी अवस्थाकी ओर तनिक दृष्टि-निक्षेप कीजिए—

काहु न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृप-कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। तेहि दिसि सो न बिलोकेउ भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं॥

रौद्र रसका प्रयोग क्रोधावेगकी दशा प्रकट करनेके लिये होता है। भरतके ससैन्य चित्रकूट आनेका समाचार जानकर लक्ष्मणकी मनोदशा कैसी हो जाती है इसका उदाहरण लीजिए—

छत्रि ज ति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जानि। लातहु मारे चढ़त सिर, नीचको धूरि समान॥
आजु राम सेवक जस लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥

भयानक रसका वर्णन यों तो दो-चार ही स्थलोंपर ही आया है किन्तु रसका पूर्ण परिपाक इन स्थलोंपर दिखाई पड़ता है—

भरे भुवन घोर कठोर रव रवि-बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि नर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

अद्भुत रसके भी कुछ अच्छे उदाहरण मानसमें पर्याप्त रूपसे मिल जाते हैं। व्यामोह-ग्रस्त सतीको रामने अपना जो रूप दिखाया है वह अद्भुत रसका अच्छा उदाहरण है—

सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुंदर बेषा।
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥

बीभत्स रसका वर्णन प्राचीन काव्योंमें केवल युद्ध अथवा श्मशानोंके प्रसंगमें आया है। आजकल तो ऐसे अनेक स्थान देखनेमें आते हैं जो बीभत्स रसका उद्रेक करनेके साधन बन सकते हैं, जैसे—अस्पताल, पशुवधालय, नगरोंकी सड़कोंपर एकत्र कूड़ेके ढेर। आजकलके आधुनिक सुरुचि (?)-सम्पन्न लेखकों और कवियोंने इनका वर्णन भी किया है। रामचरितमानसमें इस रसका वर्णन दो ही स्थलोंपर हुआ है—राम-खर-दूषण युद्धमें और राम-रावण युद्धमें। देखिए—

बेताला। केलि करहिं योगिनी कराला।
उड़ाहीं। एकते एक छीनि धरि खाहीं॥
ाट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥

। पढ़कर स्पष्ट हो जायगा कि गोस्वामीजीने अवसरके अनुकूल
खलाया है। शान्त रसके उदाहरण तो प्रत्येक पृष्ठपर उपस्थित
त होता।

ाकी योजना तो अधिकांश कवि कर देते हैं किन्तु सुकविका
ा भी पूर्ण रूपसे निर्वाह कर सके अर्थात् वह न तो विरोधी
ी करे कि उसमें रसदोष आ जायँ।

विरोधी रस-सांकर्यकी अवस्था नहीं आने पाई है और जिन
व्यक्तियोंके लिये वर्णित होनेके कारण रसदोषसे मुक्त हो गई

ोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

विरोधी हैं। किन्तु दोनोंका प्रयोग दो भिन्न विरोधी लोगोंके

शान्ति, भावशवलता, रसाभास आदिके भी उदाहरण मानसमें
तो दोषपूर्ण अवश्य हैं किन्तु इतने बड़े ग्रन्थमें रसविषयक
ात होती। अतएव रस-विषयक इन नगण्य दोषोंके कारण
ता।

गोस्वामीजीके काव्य (मानस)-में प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षा,
... चर्चा की जा चुकी है। यद्यपि काव्यका पूर्ण सौष्ठव रस-सिद्धिमें ही है तथापि अलंकारोंके कारण उसमें चमत्कार तो आ ही जाता है। इसलिये घोर रसवादियोंको भी अपनी रचनाओंमें अलंकारोंका आश्रय लेना पड़ा है। किन्तु अलंकार कविताके लिये होना चाहिए, कविता अलंकारके लिये नहीं अर्थात् अलंकारका प्रयोग रसोत्कर्षके लिये ही होना चाहिए केवल अलंकारकी गिनती करानेके लिये नहीं।

गोस्वामीजीने उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षापर तो असाधारण अधिकार सिद्ध किया ही है किन्तु अन्य अलंकारोंके प्रयोगमें भी वे बहुत ही सावधान रहे हैं। अनुप्रास-प्रियता भी गोस्वामीजीमें पर्याप्त है। हाँ, एक बात अवश्य है कि अन्य हिन्दी कवियोंकी भाँति उन्होंने अनुप्रासिक चमत्कारके लिये व्यर्थके शब्दोंकी सेना नहीं खड़ी की है। वे जानते थे कि अनुप्रास कहाँ किस ढंगसे लाना चाहिए। देखिए—

(१) खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कल कंठ कठोरा।
(२) धर्मधुरीन धीर नय नागर। सील सनेह सत्य सुख सागर॥

(३) काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि, पुनि चेरि,कहि, भरत-मातु मुसुकानि ।।

इन उदाहरणोंमें एक भी शब्द ऐसा नहीं मिलेगा जो केवल अनुप्रासका चमत्कार दिखानेके लिये लाकर ठूँसा गया हो।

यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि शब्दालंकारोंका प्रयोग भी इसी ढंगसे किया गया है कि वे सब वर्णनके प्रसंगमें स्वाभाविक रूपसे आते और खपते गए हैं—

हरन मोह तम दिनकर कर-से । सेवक सालि पाल जलधर-से ।। (यमक)
रावन-सिर-सरोज-बनचारी । चलि रघुवीर सिलीमुख धारी ।। (श्लेष)
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ।। (काकु-वक्रोक्ति)

अर्थालंकारोंमें गोस्वामीजीको उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा ही अधिक प्रिय हैं जिनकी विस्तृत मीमांसा पीछे की जा चुकी है। उत्प्रेक्षाओंका तो ग्रंथ भरमें जाल बिछा पड़ा है। किष्किन्धाकाण्डमें आए हुए वर्षा और शरद्के वर्णन केवल प्रकृति-नटीकी लीलाओंके चित्रण मात्र नहीं है वरन् कविने उन्हें माध्यम बनाकर उनके द्वारा उपदेश भी दिए हैं। इसलिये उत्प्रेक्षाओंकी सहायता वहाँ नितान्त आवश्यक प्रतीत हुई है।

इनके अतिरिक्त मानसमें अपह्नुति, प्रतीप, भ्रान्ति, सन्देह, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंका भी यथास्थान प्रयोग हुआ है जिनसे रसके उत्कर्षमें बड़ी सहायता मिली है और काव्यके सौष्ठवमें वृद्धि हुई है।

मानसका रचना-कौशल

रामचरितमानसकी रचना करते समय गोस्वामीजी यह अवश्य चाहते थे कि जैसे पंडितोंको सभी लौकिक-पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानकी उपलब्धि करानेवाले वेद-शास्त्र-पुराण हैं वैसे ही साधारण जनके लिये भी 'जन-भाषा' में एक ऐसा ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिया जाय जो उन्हें सारे ज्ञानका बोध करा सके। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन्होंने रामके लोकपावन चरित्रका आश्रय लेकर उन्हींकी कथाके माध्यमसे साहित्य, संगीत, कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, कर्म, राजनीति, समाजनीति, इतिहास सबका वर्णन इस एक ही ग्रन्थमें इस कौशलके साथ किया कि यदि ठीक ढंगसे मानसकी शिक्षा दी जाय तो फिर भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें कुछ जानना शेष न रह जाय।

संस्कृतमें जितने महाकाव्य रचे गए हैं उन सबकी प्रायः यही पद्धति रही है कि कविने आख्यानकार या द्रष्टा होकर घटनाओं या कथाका वर्णन किया है। भागवतमें प्रश्नोत्तर-प्रणालीसे विष्णुके विभिन्न अवतारोंका अत्यन्त सरस काव्यात्मक वर्णन कराया गया है। इसीलिये बहुतसे लोग उसे पुराण न मानकर महाकाव्य ही मानते हैं और कहते हैं—

विद्यावतां भागवते परीक्षा।

[विद्वानोंकी परीक्षा भागवतमें ही होती है।]

प्रायः सभी महाकाव्योंमें ईश-वन्दना, इष्टदेवकी स्तुति, मंगलाचरण अथवा वस्तु-निर्देश करके सीधे मुख्य नायककी कथा प्रारंभ कर दी गई है। यद्यपि महाकवि कालिदासने रघुवंशमें इच्छा

तो की है रघुवंशका वर्णन करनेकी किन्तु उन्होंने भी कथा दिलीपसे ही प्रारंभ की है और यह कहकर प्रारम्भ की है कि रघुवंशियोंके गुणोंने कानमें पड़कर मुझे काव्य-रचना करनेकी ढिठाई करनेको उकसाया—

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।

अपने कुमारसंभवमें उन्होंने पहले हिमालयका वर्णन किया है और उस प्राकृतिक दिव्य पृष्ठभूमिमें उमाका अवतार कराकर उन्होंने कथा चला दी है। सभी महाकाव्योंकी प्रायः यही पद्धति रही है कि उसमें मुख्य नायक या नायिकाके जन्मसे कथा प्रारंभ कर दी जाती है। वाल्मीकिने भी रामायणका प्रारंभ इसी प्रकार किया है। किन्तु गोस्वामीजीका रामचरितमानस बड़े विलक्षण कौशलसे प्रारंभ हुआ है।

मानसशास्त्रके पण्डितोंका कहना है कि यदि कुतूहलके साथ रुचि उत्पन्न करके कोई कथा कही जाय तो वह अधिक आकर्षक होती है। सहसा सीधे कथा कह देनेसे उसे पढ़नेका कुतूहल कम हो जाता है। गोस्वामीजीने उस कुतूहलका निर्वाह करनेके लिये प्रारंभमें गुरुका माहात्म्य बताकर सन्तों और दुष्टोंका चरित्र समझाया है और स्वभावतः कविके रूपमें अपना दैन्य प्रकट करके इस विश्वासके साथ डंकेकी चोट अपना काव्य प्रारंभ किया है कि —

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान-श्रुति-सारा।

और 'मति अनुरूप रामगुन' गानेकी ही बात कही है। उसके पश्चात् रामचरितमानसके पात्रोंके चरित्रका विश्लेषण करके उन्होंने सबकी वन्दना की है। फिर रामनाम और ब्रह्म राम तथा 'भक्तोंके हित' सगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्मका परिचय देकर उन्होंने रामनामका माहात्म्य बताया है और उसके पश्चात् रामायणके जन्मकी कथा बताई कि किस प्रकार शंभुने यह कथा उमा और कागभुशुण्डिको सुनाई, कागभुशुण्डिने गरुडको सुनाई, याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाई और उसी कथाका वर्णन अपने गुरुसे सुनकर मैंने (तुलसीदासजीने) किया। उसके पश्चात् उन्होंने मानसका वह विशिष्ट रूपक खड़ा किया है जो संसारके साहित्यमें अद्वितीय और भव्य है। इसके पश्चात् उन्होंने शिव-पार्वतीकी कथा कहकर यह समझाया है कि शिवने क्यों उमाको रामकी कथा सुनाई और उसके पश्चात् फिर उन्होंने नारदके मोहकी, स्वायंभुव मनु और शतरूपाकी तथा प्रतापभानुकी कथा कहकर बताया है कि किस प्रकार, क्यों रावण और कुम्भकर्णका जन्म हुआ और क्यों भक्तोंके कारण तथा संसारका क्लेश हरण करने और भूमिका भार दूर करनेके लिये भगवान् अवतरित हुए।

इतना रूपक बाँधनेकी आवश्यकता इसलिये पड़ी कि अन्य काव्योंके जो नायक होते हैं वे साधारण रूपसे मनुष्य योनिमें उत्पन्न होते हैं और अपने किन्हीं विशेष गुणोंके कारण प्रसिद्धि पाकर काव्यके नायक बन जाते हैं। किन्तु रामका अवतार तो विशेष कारणोंसे हुआ। स्वयं ब्रह्मने सोच-समझकर त्रिगुणात्मिका सृष्टिकी विषमता दूर करनेके लिये सगुण रूप धारण किया। इसलिये यह आवश्यक ही था कि उन कारणोंका स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय जिनके कारण भगवान्-को अवतार लेना पड़ा, दशरथके घर राम बनकर आना पड़ा। यही कारण है कि गोस्वामीजीने बार-बार रामको ब्रह्म कहा है।

गोस्वामीजीने अन्य रामायणोंमें आई हुई सीताके वनवासकी कथा छोड़ दी है। उसका स्पष्ट कारण यही है कि वे उस रामचरितमानसकी रचना कर रहे थे जिसके पढ़नेसे 'काक होहिं पिक, बकहु

मराला ।' उसके लिये यह आवश्यकता ही नहीं थी कि अन्तमें अत्यन्त करुण रसका परिपाक करके कथाका अन्त किया जाता। वाल्मीकिका रामायण करुण काव्य है । उनके समय-तक काव्य-शास्त्रियोंने 'मधुरेण समापयेत्' वाला निर्देश कवियोंके लिये दिया नहीं था क्योंकि वे तो स्वयं आदि कवि थे। किन्तु गोस्वामीजीके समयतक तो यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया था कि काव्यका अन्त सुखमय होना ही चाहिए। इसीलिये गोस्वामीजीने रामराज्यका वर्णन करके ग्रन्थ पूर्ण कर दिया है ।

गोस्वामी तुलसीदासजीके रचना-कौशलकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मानससे सब प्रकारके पाठकोंको समान रूपसे आह्लाद और आनन्द मिलता है। सारस्वत काव्यकी यही परिभाषा भी है। गोस्वामीजीने स्वयं कहा है कि यह निबन्ध तो 'नाना-पुराण-निगमागम-संमत' तथा 'क्वचिदन्यतोऽपि' (और स्थानोंसे भी) एकत्र सामग्रीसे बनाया गया है ।

मानसका प्रभाव और उसके कारण

मानसके प्रचार एवं प्रभावकी व्यापकता कुछ तो उसके धर्मग्रन्थ होनेके कारण है किन्तु बहुत कुछ लोक-भाषामें रामकी कथा होनेके कारण। यहाँतक कि चार सौ वर्ष पूर्वतक उत्तर भारतीय समाजमें जहाँ वाल्मीकीय रामायणकी घटनाओंके अनुसार राम-कथाका संस्कार बना हुआ था उसके बदले पूर्णतः मानसके अनुसार ही राम-कथा प्रामाणिक मानी जाने लगी। उत्तर भारतमें शिक्षित हिन्दुओंके ऐसे कम घर होंगे जहाँ रामचरितमानसकी प्रतियाँ न हों और उनका पाठ न होता हो। जो लोग स्वयं पाठ नहीं कर सकते वे दूसरोंसे सुनकर उसका रस प्राप्त करते हैं क्योंकि गोस्वामीने उसमें बराबर रामनामकी महिमा और रामकथाके माहात्म्यका उल्लेख करते हुए कहा है—

रामकथा गिरिजा मैं बरनी। कलिमल-समनि मनोमल-हरनी ॥
संसृति रोग सजीवन मूरी। रामकथा गावहिं श्रुति सूरी ॥
मनकामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥

सुखमय भविष्यकी कामना सभी करते हैं। गोस्वामीजीने लोक-भाषामें सभी प्रकारके सुखोंकी उपलब्धिका यह सरल-सा उपाय बता धरा। फिर कौन उसे प्रयोगमें नहीं लायगा ? मानसके प्रचारका एक कारण तो यह है। दूसरा कारण है रामलीलाएँ। गोस्वामीजीने स्वयं रामलीलाका प्रवर्त्तन करके रामचरित-मानसको लोक-प्रिय और व्यापक बना दिया क्योंकि उनकी देखा-देखी सारे उत्तर भारतमें स्थान-स्थानपर रामलीलाएँ प्रारम्भ हो गईं। इन रामलीलाओंमें रामचरितमानसका पाठ होता है और पाठके अनुसार रामलीला तथा उसके संवाद होते हैं। नाटकका प्रभाव जनतापर यों भी अधिक पड़ता है। अतः, नाट्यमय रामलीलाके कारण मानसका प्रचार सहसा बढ़ चला।

तीसरा प्रमुख कारण यह है कि अनेक रामायणियों, व्यासों और कथावाचकोंने कथा कह-कहकर इसका इतना अधिक प्रचारकर दिया कि स्थान-स्थानपर होनेवाले रामायण-सम्मेलनों तथा अखंड और नवाह पाठोंके कारण धर्मप्राण जनता इसकी ओर इतनी अधिक आकृष्ट हुई कि वाल्मीकिको भूल गई।

लोक-भाषामें लिखे हुए इस रामचरित-मानसका व्यापक प्रचार होनेका एक यह भी कारण है कि इसमें लोक-भाषामें रामकी कथा है। वाल्मीकि-रामायणको लोग समझते भले ही न रहे हों

किन्तु रामकी कथा व्यापक रूपसे हिन्दू समाजमें श्रद्धा, भक्ति और आस्थाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण बनी रही है। इसलिये जब रामकी कथा रामलीला बनकर नाट्य रूपमें और लोक-भाषाके श्रव्य काव्यके रूपमें प्रस्तुत हुई तब लोगोंकी श्रद्धाको ऐसा संबल मिला कि वह सहसा उद्बुद्ध हो उठी।

ग्रन्थका व्यापक प्रचार और प्रसार हो जानेसे प्रत्येक वर्गके लोग उसका पाठ, अध्ययन और अनुशीलन करने लगे। इसका फल यह हुआ कि जहाँ एक ओर निरक्षर श्रोता भी अपनी बुद्धिके अनुसार उसका अर्थ लगाने लगे वहाँ सुधी-समाज भी उसमें रस लेने लगा और ज्यों-ज्यों वह उस मानसरोवरमें डुबकी लगाकर गहराईमें जाने लगा त्यों-त्यों उसमेंसे केवल मोती ही नहीं, और भी नये-नये रत्न पाने लगा। साहित्य-रसिक तो इन नये रत्नोंकी आभासे ही चौंधिया गए।

रामायणकी सरल भाषा (ग्राम्य गिरा) भी रामचरितमानसके प्रचारमें अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। अपनी सरलताके कारण वह घर-घरमें पढ़ी जाने लगी यहाँतक कि स्त्रियोंके लिये तो इतनी ही शिक्षा पर्याप्त समझी जाती थी कि वे रामायण बाँच लें। इस भाषा-सरलताके कारण गाँव-गाँवमें केवल नागरी अक्षरोंसे परिचित लोग भी रामायणका पाठ करने लगे और निरक्षर लोगोंको भी सुन-सुनकर सैकड़ों दोहे-चौपाई कंठस्थ हो गए।

मानसकी गेयता अर्थात् गा सके जानेकी योग्यताके कारण भी रामायण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। स्थान-स्थानपर झाँझ और ढोलकके साथ अनेक रागोंमें अनेक प्रकारकी टेक दे-देकर मानसका व्यापक गायन होने लगा और प्रत्येक व्यक्ति अपने घरमें ही अवकाशके समय अपने बाल-बच्चोंके साथ अथवा अपने इष्ट-मित्रोंके साथ बैठकर रामायण गाने लगा। फिर तो आगे चलकर इतनी रामायण-मंडलियाँ बन गईं कि वे घूम-घूमकर मेलों, उत्सवों और पर्वोंपर रामचरित-मानस गा-गाकर उसके प्रचारमें प्रबल सहायक सिद्ध हुईं।

मानसका सबसे अधिक प्रचार रामायणके व्यासोंने किया। यद्यपि उन्होंने मानसके बड़े विचित्र, अशुद्ध, भ्रामक और चमत्कारपूर्ण अर्थ करके अर्थका अनर्थ भी किया तथापि उसका एक अच्छा परिणाम यह भी हुआ कि साधारण जनताके साथ विद्वान् लोग भी मानसकी ओर प्रवृत्त होने लगे। व्यासोंके इस प्रयासका यह भी अच्छा परिणाम हुआ कि आर्यसमाज, ईसाई पादरियों, मुल्लाओं तथा वर्तमान वैज्ञानिक और बुद्धिवादी लोगोंकी ओरसे मानसके चरित्रों और कथा-प्रसंगोंपर जो टीका-टिप्पणी और शंकाएँ की जाने लगी थीं उनका समाधान होने लगा। इस धारामें बहुत-सी निराधार शंकाएँ भी उठाई जाने लगीं और साधारण जन-समाज भी आपसमें बैठकर नई-नई शंकाएँ उपस्थित करके मानसकी चौपाइयों और दोहोंके आधारपर उन शंकाओंका पांडित्यपूर्ण समाधान करने लगा।

मानसमें यह आस्था इतनी बढ़ी कि लोग अपना मनोरथ पूर्ण करनेके निमित्त पूरे मानस या केवल सुन्दरकांडका पाठ करने लगे और रामायण केवल काव्य न रहकर स्तोत्र बन गया जिसका पारायण लोग विशेष प्रकारके भौतिक लाभके लिये, अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ टालनेके लिये करने लगे, यहाँतक कि भवसागर पार करनेके इच्छुक मुमुक्षु महात्मा भी इसी उद्देश्यसे मानसकी ओर प्रवृत्त होने लगे। इन अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियों और क्रियाओंने मानसके प्रचारमें इतना सबल योग

दिया कि आज रामचरितमानस भारतके प्रत्येक घरमें ही नहीं विश्व-भरमें सामान्यतः प्रमुख काव्य-ग्रन्थ समझा जाने लगा है।

मानसकी भाषा अवधी है। उस समय तक अवधीमें जितने कवियोंने कथाकाव्य लिखे उनमें ईश्वरदासको छोड़कर सब मुसलमान थे, जिन्होंने सूफ़ी मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही अपने ग्रन्थोंका प्रणयन किया। एक तो वे लोग अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, दूसरे उन्हें अपने मतका प्रचार करना था। अतएव उन्होंने अपने-अपने क्षेत्रोंकी बोल-चालकी भाषाका प्रयोग किया। भाषाकी शुद्धता-की ओर उनका ध्यान ही नहीं था। किन्तु गोस्वामीजीने मानसके अतिरिक्त भी जो ग्रन्थ अवधीमें लिखे उनमें ठेठ बोलचालकी भाषाका प्रयोग करते हुए भी भाषाकी शुद्धिकी ओर बराबर ध्यान रक्खा। मानसमें अधिकतर संस्कृतनिष्ठ कोमल-कान्त-पदावलीका प्रयोग हुआ है, फिर भी अधिकांश स्थल ऐसे अवश्य हैं जहाँकी भाषा अत्यन्त सरल हैं। विषयके अनुरूप भाषाका प्रयोग करनेसे यह काव्य अत्यन्त सुन्दर हो गया है। गोस्वामीजीने भाषाकी शुद्धता और प्रौढताका जो मार्ग निकाला था उसपर यदि हिन्दीके कवि आगे चलते तो भूषण आदि कवियोंको शब्दोंका रूप विकृत करनेका साहस न होता। फिर भी मानसके प्रभावका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कुछ कवियोंने आगे चलकर साधु भाषा-का प्रयोग किया ही।

गोस्वामीजीके पूर्व पर्याप्त परिमाणमें कृष्ण-काव्य रचा जा चुका था। जयदेवसे प्रभावित इन कृष्ण-काव्योंमें राधा-माधवका ऐसा स्वरूप सामने आता जा रहा था जो सामाजिक मर्यादा और सामाजिक हितकी दृष्टिसे साधु नहीं कहा जा सकता था। गोस्वामीजीने रामका मर्यादापूर्ण जीवन उपस्थित करके काव्यकी उच्छृङ्खल वृत्ति रोककर एक आदर्श सामने रक्खा। यद्यपि आगे-के कवियोंने भी उच्छृङ्खलताकी यह वृत्ति रीति-काव्योंमें बराबर दिखाई है तथापि आदर्शसे प्रभावित बहुतसे लोगोंने अपनी रचनाओंमें इसका ध्यान रक्खा है और कितने ही कवियोंने अपने पात्रोंके चरित्र भी उदात्त दिखाए हैं। उस युगमें थोड़े-बहुत भी इस प्रकारके जो काव्य रचे जा सके वे मानस-के ही प्रभावसे। मानसको रचनाका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह पड़ा कि फिर उसकी टक्करका दूसरा राम-काव्य लिखनेका किसीको साहस न हुआ और जिसने प्रयत्न भी किया उसे सफलता नहीं मिल पाई।

गोस्वामीजीका शास्त्र-ज्ञान

गोस्वामीजीने श्रीशेषसनातनसे पन्द्रह वर्षोंतक सब शास्त्रोंकी कितनी प्रौढ और व्यापक शिक्षा प्राप्त की थी इसका प्रमाण है मानसकी रचना। मानसमें धर्म, कर्म, इतिहास, राजनीति, दर्शन, साहित्य, शास्त्र, ज्योतिष सब विषय इस प्रकार लाए गए हैं कि कविका ज्ञान सुनी-सुनाई बातोंपर आश्रित न होकर गम्भीर अध्ययन और अनुशीलनका परिणाम प्रकट होता है। बहुत-सी ऐतिहासिक (पौराणिक) कथाओंका समावेश और उल्लेख करके उन्होंने अपने इतिहास-ज्ञानका पूरा परिचय दिया है। पुराण वस्तुतः इतिहास ही हैं। यह दूसरी बात है कि उनमें आया हुआ इतिहास आज-कलकी कालक्रम-पद्धतिपर न लिखा गया हो। इसका स्पष्ट कारण भी यह है कि जब दस-पाँच सहस्र वर्षका इतिहास भी इस रूपमें प्रस्तुत करना कठिन है तब लाखों वर्षोंका इतिहास इस रूपमें कहाँ-तक लिखा जा सकता था।

गीताके कर्म-योगका गोस्वामीजीको पूरा ज्ञान था। रावणसे शूर्पणखा कहती है—

राज नीति-बिनु, धन बिनु-धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा ॥

कर्म तो मनुष्यको करना ही है। उससे छुटकारा नहीं मिल सकता। परन्तु कर्म-फलकी इच्छा छोड़कर उसे भगवान्‌को अर्पण कर देना ही सबसे बड़ा योग है। निश्चय ही यह बात लिखते समय गोस्वामीजी-का ध्यान गीताके इस श्लोककी ओर था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

राजनीति और राजधर्मका जैसा उत्तम स्वरूप भरतको उपदेशके समय इस दोहेमें बताया गया है उसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता—

मुखिया सुखसों चाहिए, खान-पानसों एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित बिवेक ॥
राजधरम सरबस एतनाई ॥

और अपनी इस परिकल्पनाके अनुसार ही उन्होंने जिस रामराज्यका वर्णन किया उसके जोड़की राज्य-व्यवस्था संसारमें कभी सुनी-तक नहीं गई। मानस भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। उसमें सर्वत्र भक्तिकी महिमा गाई गई है। भक्तिका प्राधान्य दिखाना ही कविका उद्देश्य रहा है किन्तु इस प्रसंगमें उन्होंने ज्ञान और भक्तिका जो तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामीजीको सभी दर्शन-शास्त्रों तथा अपने समयमें प्रचलित मत-मतान्तरोंका विस्तृत ज्ञान था। कलिकालमें 'जल्पहिं पन्थ अनेक' कहकर उन्होंने उनकी खिल्ली भी उड़ाई है।

मानसमें ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिनसे उनके ज्योतिष-ज्ञानका परिचय भी मिलता है। लंका-काण्डका पहला दोहा ही इस बातका प्रमाण है कि कविको काल-गणनाके पारिभाषिक शब्दोंका पूर्ण ज्ञान था। प्राचीन पद्धतिके शिक्षणमें इन सारे विषयोंका परिज्ञान गुरुजन यों ही करा डालते थे। जो व्यक्ति पन्द्रह वर्षतक श्रेष्ठ विद्वानोंके यहाँ शिक्षा प्राप्त करता रहा हो उसके सम्बन्धमें यह प्रश्न ही व्यर्थ है कि वह किन-किन शास्त्रोंका ज्ञाता रहा। फिर तुलसी-जैसे अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान्‌का तो कहना ही क्या ?

क्या रामचरितमानस पुराण है ?

इधर कुछ लोगोंने रामचरितमानसको महाकाव्यकी श्रेणीसे हटाकर पुराणकी श्रेणीमें ला रखनेका बीड़ा उठाया है। वे संभवतः पुराणका यह लक्षण नहीं जानते—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

(१) सर्ग या सृष्टिका विज्ञान, (२) प्रतिसर्ग या सृष्टिका विस्तार, लय और पुनः सृष्टि, (३) सृष्टिकी आदि वंशावली, (४) मन्वन्तरोंके विवरण तथा (५) वंशानुचरित अर्थात् सूर्य और चन्द्र आदि वंशोंका वर्णन, ये ही पाँच विषय पुराणोंमें वर्णित किए जाते हैं। पुराणकी इस परिभाषाके अनुसार रामचरितमानसपर इनमेंसे एक भी लक्षण नहीं घटता। इस परिभाषाके अनुसार किसी ग्रन्थको पुराण कहे जानेके लिये जितने लक्षण अपेक्षित हैं उनमें एक भी लक्षण मानसमें है नहीं। इसलिये मानसको पुराण कहना भयंकर अज्ञान और प्रचंड दुस्साहस है।

गोस्वामीजीने पुराणोंकी अनेक कथाएँ रामकी काव्यमयी कथाके क्रममें इस प्रकार ढाल दी हैं कि पुराणोंकी लगभग सारी बातें कलात्मक ढंगसे मानसमें आ गई हैं। काव्यमें कुछ लक्षण वर्तमान होनेसे किसी पुराणको काव्य नहीं कह सकते। किन्तु मानस तो पूर्ण रूपसे महाकाव्य है। उसमें गोस्वामीजीने लिखा है कि मैं कवि नहीं हूँ, न काव्य-रचना जानता हूँ पर रामकी कथा कह रहा हुँ। यहाँ उन्होंने अपनी विनम्रता और शालीनता दिखाकर कविता करनेका ही संकेत किया है और स्पष्ट कहा भी है कि मैं 'नाना-पुराण सम्मत' निबन्ध (काव्य) रच रहा हूँ, पुराण नहीं; क्योंकि मानसमें न तो पुराणके क्रमसे सर्गका वर्णन है, न प्रतिसर्गका, न वंशका, न मन्वन्तरका। वंशानुचरितमें भी केवल सूर्यवंशका वर्णन आया है और वह भी केवल उतना ही जितना रामसे सम्बद्ध है।

गोस्वामीजीका दार्शनिक मत

गोस्वामीजी भक्त थे। उनका किसी प्रकारके दार्शनिक वितण्डावादसे कोई सम्बन्ध न था। उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है—

करउँ कथा हरिपद धरि सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

अपने मनको प्रबोध देनेवाले इस मानसकी रचना समाप्त करते हुए वे कहते हैं—

मो सम दीन न दीन-हित तुम्ह समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भवभीर॥

यह बात केवल भक्त ही कह सकता है, सम्प्रदायवादी नहीं। गरुडसे कागभुशुण्डि कहते हैं—

स्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी॥

ऐसी अवस्थामें भक्तको किसी दार्शनिक वादके चक्करमें पड़नेका अवकाश ही कहाँ रहता है? भक्त तो अपने प्रभुमें इतना तल्लीन हुआ रहता है कि उसके सामने केवल उसके प्रभु ही रह जाते हैं। वह अपनेको भूल जाता है। गोस्वामीजीने भक्तकी इस दशाका वर्णन विनयपत्रिका आदिमें बहुत किया है किन्तु मानस तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी अपने प्रभुका गोस्वामीजीने जो स्थान-स्थानपर वर्णन किया या उनके माहात्म्यके सम्बन्धमें विचार प्रकट किए उनसे उनके दार्शनिक मतके सम्बन्धमें सन्देह-की बात उठती ही नहीं है।

भारतीय दर्शनके दस आस्तिक रूपोंमें केवल वेदान्त-दर्शन ही आगे चलकर सर्वाधिक मान्य हुआ और शंकरसे लेकर वल्लभतक सबने ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) पर अपनी सूझके अनुसार भाष्य करके अपने-अपने दार्शनिक मत प्रतिष्ठित किए। वेदान्त-दर्शनकारने मोटे रूपसे बतलाया है कि 'उद्भव-स्थिति-लय-कर्ता' एक ही शक्ति है जिसे ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्मके इस लक्षणको स्वीकार करके भी आचार्योंने अलग-अलग मत प्रकट किए और उसीका फल है कि शंकरने केवलाद्वैत, रामानुजने विशिष्टाद्वैत, मध्वने द्वैत, निम्बार्कने द्वैताद्वैत और वल्लभने शुद्धाद्वैत चलाया।

शंकरके अद्वैत मतके अनुसार एक ही सत्ता है, जो निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म है। वही चेतन है। यह दृश्य जगत् केवल नामरूपात्मक है। यह उससे भिन्न नहीं वरन् उसीमें अध्यस्त है। इस नाम और रूपको प्रतीतिका कारण वह माया है जो है तो अनादि और अनिर्वचनीय किन्तु ज्ञानके द्वारा जिसका अन्त भी हो जाता है।

रामानुजके विशिष्टाद्वैत मतमें बताया गया है कि ब्रह्मके चेतन अंशसे जीव और अचेतन अंशसे प्रकृति उत्पन्न हुई है। इस जगत्के निमित्त एवं उपादान कारण ब्रह्म ही हैं अर्थात् वे ही अपनेको

जगत् रूपमें प्रकट करके अनेक प्रकारकी लीलाओंका विस्तार और संवरण करते हैं। वे ही जीवको भी अपने सामर्थ्यसे प्रकट करते हैं तथा सृष्टिकी समाप्तिके अनन्तर मकड़ीके जालेकी भाँति सबको समेट लेते हैं। मोक्षका सर्वोत्तम साधन प्रपत्ति अर्थात् भगवान्‌की शरणमें जाना ही है। यह मत प्रपत्तिको ही मुख्य मानता है।

द्वैतवादके प्रवर्त्तक मध्वाचार्यका मत है कि जीव और ब्रह्म दोनोंकी नित्य और पृथक् सत्ताएँ हैं। जीव अणु एवं दास है तथा ब्रह्म सगुण, सविशेष एवं स्वतन्त्र है। जीवका परमार्थ यही है कि वह सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य और सार्ष्टिमेंसे कोई एक मुक्ति प्राप्त कर ले।[1]

अन्य मतोंके विवेचनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है क्योंकि समीक्षकोंका कथन है कि गोस्वामी-जी इनमेंसे ही किसी एक मतके माननेवाले रहे। किन्तु ये विचारक भूल जाते हैं कि गोस्वामीजी किसी मत-विशेषकी डोरीमें बँधकर चलनेवाले नहीं रहे। उन्होंने जिस डोरीसे अपनेको बाँध रक्खा था वह तो इस प्रकारका था —

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी॥

वे एकमात्र राघवेन्द्रके भक्त थे, उनको ही 'अशेषकारणपर' मानते थे और उन्हींके लिये उन्होंने कहा है—'वन्दे रामाख्यमीशं हरिम्'।

रामचरितमानस शुद्ध भक्तिकाव्य है। सिद्धान्त रूपसे भी उसमें भक्तिका ही प्रतिपादन है। उमासे महेश कहते हैं—

जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥

ग्रन्थके अन्तमें कविका कहना है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

और फलस्तुतिमें कहा गया है—

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

इसलिये गोस्वामीजीका दार्शनिक मत तो एकमात्र भक्तिवाद है जिसके पाँच (दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त और मधुर) भेदोंमेंसे वे दास्यभावकी भक्ति मानते थे।

अपने प्रभुका स्वरूप व्यक्त करते समय उन्होंने ब्रह्म, जीव और मायाके साथ त्रिदेवके सम्बन्धमें भी कुछ न कुछ विचार प्रकट किए हैं जो सब उनके अपने हैं। जिन दार्शनिक मतोंका ऊपर परिचय दिया गया है उनमेंसे किसी एकसे तुलसीदासजीका एकात्म सम्बन्ध नहीं था क्योंकि मानसके अनेक वचनोंसे सभी मतोंका समर्थन मिल जाता है। इसी आधारपर कुछ लोग उन्हें समन्वयवादी बताते हुए कहते हैं कि विष्णु और शिवका अभेद दिखाकर उन्होंने काशीको शिवकाञ्ची और विष्णु-काञ्ची बननेसे बचा लिया।

---

१. सालोक्य = अपने इष्टदेवके लोकमें पहुँचना; २. सायुज्य = जीवका परमात्मामें लीन हो जाना; ३. सामीप्य = इष्टदेवके पास बने रहना; ४. सारूप्य = इष्टदेवका रूप प्राप्त करना; ५. सार्ष्टि = इष्टदेवके समान पद और अधिकार प्राप्त कर लेना।

ब्रह्म—

अद्वैतवादियोंकी भाँति गोस्वामीजीने भी यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म ही एकमात्र नित्य, सत्य और शाश्वत सत्ता है। यह नामरूपात्मक जगत् मिथ्या है तथा इसमें जो कुछ सत्यकी भाँति भासित हो रहा है वह सब मायाके कारण ही हो रहा है। किन्तु गोस्वामीजीका मत है कि माया तो प्रभुकी दासी है और वे प्रभु या ब्रह्म साक्षात् श्रीराम हैं—

झूठेउ सत्य चाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

और वह ज्ञेय कौन है ?

......सोइ रामू।

उमाने शिवसे पूछा कि—

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं रामकहँ ब्रह्म अनादी॥

वह—

जौ नृपतनय त ब्रह्म किमि ?

और शिवने उत्तर दिया—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह-निसा लवलेसा॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

इस प्रकार राम ही साक्षात् सच्चिदानन्दघन परम तत्त्व हैं। जामवन्तने भी अंगदसे रामका परिचय देते हुए कहा है—

तात राम कहँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। सन्तत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥

इस विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मको अनीह, अनन्त, अरूप, अज, सच्चिदानन्द, परम धाम, व्यापक, विश्वरूप मानते हुए भी गोस्वामीजीका मत है कि वे 'परम कृपाल प्रनत अनुरागी भगवान्' 'भगतन हित लागी' देह धरकर अनेक चरित करते हैं जिससे लोग उनका यश गाकर भव-सागर पार कर जायँ। इसी ब्रह्म रामकी कथा गोस्वामीने मानसमें गाई है।

मुक्ति और भक्ति

जीवके सम्बन्धमें लक्ष्मणसे भगवान्ने कहा है—

माया ईस न आपु कहँ, जानि कहिय सो जीव।

आगे चलकर भुशुण्डि कहते हैं—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

किन्तु यही जीव 'मायावस' होनेसे 'कीर-मरकटकी नाईं' बँध जाता है। यह बन्धन ऐसा बँधता है कि या तो ज्ञानसे कट पाता है या भक्तिसे। किन्तु 'ग्यान पन्थ कृपानकै धारा' है जिससे 'परत होइ नहिं बारा।' अतः—

जे चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हिं करइ चैतन्य। अस समर्थ रघुनाथ कहँ, भजहिं जीव ते धन्य।
इसका कारण यह है कि—

सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ॥

जीवका परम पुरुषार्थ यही है कि वह अज्ञान और मायाके बन्धनसे मुक्त हो जाय। यह बात गोस्वामीजी भी मानते हैं। रामने लक्ष्मणसे कहा है—

धर्मतें बिरति जोगतें ग्याना। ग्यान मोक्षप्रद वेद बखाना ॥

यह तो ठीक है परन्तु—

जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

यह कहकर रामने भक्तिका प्राधान्य बताया है क्योंकि—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृतिमूल अविद्या नासा ॥

इसी बातको ध्यानमें रखकर—

……हरिभगत सयाने। मुकुति निरादर, भगति लुभाने ॥

इस विवरणसे ज्ञात होता है कि यद्यपि गोस्वामीजी मोक्षको जीवका परम पुरुषार्थ तो मानते हैं तथापि भक्तिका स्थान उनकी दृष्टिमें उससे भी ऊँचा है।

जीव—

जीवके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने दो मत प्रकट किए हैं। एक स्थानपर वे लिखते हैं कि जीव ईश्वरका अंश है—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी ॥

परन्तु दूसरे स्थानपर वे लिखते हैं—

जौ अस हिसिषा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान। परहिं कलपभर नरक-महँ, जीव कि ईस समान ? ॥

ऐसी अवस्थामें 'ईश्वर-अंश' का अर्थ यहाँ यही करना पड़ेगा कि जीव भी ईश्वरके समान ही नित्य है और मायाका फन्दा टूट जानेपर वह 'चेतन, अमल, सहज, सुखरासी' हो जाता है। किन्तु वह ईश्वरका अंश उस प्रकार नहीं है जैसे आमका एक टुकड़ा काटकर हम कहते हैं कि यह उस पूरे आमका एक अंश है। यह बात भगवान्‌के इस कथनसे भी पुष्ट होती है कि—'जो अपने स्वरूपको, मायाको और ईश्वरको नहीं समझता वही जीव है'—

माया, ईस, न आपु कहँ जान, कहिय सो जीव।

पर जहाँ गोस्वामीजी कहते हैं कि—

जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान। परहिं कलप भर नरक-महँ जीव कि ईस समान ॥

वहाँ निश्चय ही रामानुजका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त बोलता है।

माया—

मायाके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो-गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥

इस मायाके दो भेद हैं—विद्यामाया और अविद्यामाया। विद्यामायासे तो उद्भव, स्थिति और लय होता है तथा अविद्यामायासे दुःख आदि बढ़ते हैं। दोनों ही जीवको बन्धनमें डालनेवाली हैं।

भक्तोंपर अविद्या मायाका तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु विद्यामायाका प्रभाव पड़ सकता है और उससे केवल महा-मायापति (श्रीराम) ही बचा पाते हैं अन्यथा—

सिव बिरंचि कहँ मोहई, को है बपुरा आन ?

अविद्या माया भी शठोंको ज्ञानहीन तो कर ही देती है साथ ही उन्हें दुराचारकी ओर प्रवृत्त करके उन्हें और खड्डमें भी गिरा देती है ।

मायाका यह बन्धन तभी कट सकता है जब मायापतिका अनुग्रह प्राप्त हो । यद्यपि इसके लिये ज्ञानका मार्ग भी ग्रहण किया जा सकता है तथापि भुशुण्डिसे भगवान् कहते हैं—

तिन्हतें पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसर आसा ।।
पुनि पुनि सत्य कहहुँ तोहि पाहीं । मोहिं सेवकसम प्रिय कोउ नाहीं ।।

जगत्—

जगत्का स्वरूप क्या है इस सम्बन्धमें तो उनका यह पद्य ही प्रसिद्ध है—

केसव कहि न जाइ का कहिए ।
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।
सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु-बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ।।
रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकर-रूप तेहि माँहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहचानै ।।

[हे अव्यक्त विष्णुरूप ब्रह्म ! हम क्या कहें ! आपकी अत्यन्त रंग-बिरंगी सृष्टिकी रचना देखकर कुछ कहते नहीं बनता । मन ही मन समझकर चुप रह जाना पड़ता है, क्योंकि ऐसी रचना तो न कहीं देखी गई न सुनी गई । समझमें ही नहीं आता कि यह बनी कैसे ? यह नाम और रूपसे भरा हुआ रंग-बिरंगा अनोखा संसार-रूपी चित्र बिना किसी आधार-फलकके सूनी भीतपर आकाशमें ही कैसे बन गया है ? अनेक प्रकारके फूलों, पत्तियों, जीवों और तितलियोंके पंखोंमें अनेक प्रकारके लाल, पीले, हरे, नीले, बैंगनी, गुलाबी, आसमानी, उन्नावी, भूरे, काले रंग कहाँसे आ गए ? बिना रंगके यह रंग-बिरंगा संसार बन कैसे गया । फिर इस संसारको बनानेवाला ब्रह्म भी तो बिना शरीरवाला ही है । उसने बिना शरीरके, बिना हाथ-पैरके ही यह संसार बना कैसे डाला ?

संसारमें जो चित्र बनाए जाते हैं उनका बनानेवाला कोई शरीरधारी होता है किन्तु इस संसाररूपी चित्रको बनानेवाला तो त्रिगुणातीत, नाम-रूपसे परे, अलख, निरंजन ब्रह्म है । फिर संसारके चित्रोंपर यदि पानी डाल दिया जाय तो मिट जायँ और जिस फलकपर (लकड़ी, कागज, कपड़े या भीतपर) वे बने हों वे नष्ट भी किए जा सकते हैं किन्तु इस रंग-बिरंगी सृष्टिका चित्र तो ऐसा निराला है कि लाख धोनेपर भी नहीं मिट पाता । संसारमें जो चित्र बनते हैं उन्हें देखनेसे सुख मिलता है किन्तु आपके इस चित्रकी ओर देखनेसे सुखके बदले दुःख मिलता है ।

एक और भी विचित्र बात है कि आपकी यह सृष्टि सब झूठी है, मृगमरीचिका है, जिसके जलमें रूपका अत्यन्त भयंकर मगर घुसा बैठा हुआ है । यह रूपका मगर भी विचित्र है कि इसके मुख ही नहीं है, फिर भी जो लोग वहाँ जल पीने आते हैं उन्हें वह निगल जाता है ।

तुलसीदासजीके कहनेका अभिप्राय यही है कि जब कोई साधारण चित्रकार चित्र बनाता है तो वह शरीरवान् होता है। वह रंग लेकर किसी प्रत्यक्ष काष्ठ-फलक, भित्ति, वस्त्र अथवा कागजपर चित्र बनाता है। चित्र बनानेके लिये वह रंग एकत्र करता है, अनेक प्रकारसे रंग मिलाता है। यदि कोई चाहे तो पानी डालकर या खुरचकर उस चित्रको मिटा भी सकता है और जिस आधार या फलकपर वह चित्र बना हो उस आधार या भीतको नष्ट भी कर सकता है। चित्रकार जो चित्र बनाता है वह इसलिये कि उसे देखकर लोग प्रसन्न हों। यदि वह किसी भयानक दृश्यका भी चित्र बनाता है तब भी देखनेवाले लोग कहते हैं—'वाह ! कितना सुन्दर चित्र बनाया है।' वह चित्र देखकर सबको आनन्द तो मिलता ही है, साथ ही लोग यह भी चाहते हैं कि यह चित्र सदा हमारे पास रहे, हम इसे निरंतर देखते रहें। उस चित्रको देखनेसे उन्हें सात्त्विक आनन्द मिलता है, प्रेरणा मिलती है। किन्तु भगवान्‌ने जो यह संसार-रूपी चित्र बनाया है यह सब बातोंमें उपर्युक्त चित्रसे भिन्न है। इसे बनानेवाला ब्रह्म शरीर-रहित है। यह संसार बना है आधार-रहित शून्यमें। इसमें न कोई रंग लगा है, न यह धोनेसे मिट पा सकता है, न इसका आधार ही नष्ट हो पा सकता है और न इसकी ओर देखनेसे सुख ही प्राप्त होता है। सबसे भयंकर बात तो यह है कि जो इसकी सुन्दरतापर आकृष्ट होकर इसमें रमता है उसे यह खा जाता है, समाप्त कर डालता है।

आपके इस संसार-रूपी चित्रको विचित्रताके कारण ही बड़े-बड़े आचार्योंतकको इसके स्वरूपके सम्बन्धमें ऐसा भ्रम हो गया कि किसीने कहा यह सत्य है, किसीने कहा यह झूठ है और किसीने कहा यह सत्य भी है, झूठ भी है।

तुलसीदासजीका मत है कि मनुष्य अपनेको तभी पहचान सकता है जब वह संसारको न सत्य समझे, न झूठ समझे, न यही समझे कि यह सत्य भी है झूठ भी है।]

तुलसीदासजीका यह संकेत है कि यह संसार 'सदसद्-विलक्षण' है अर्थात् यह सत्य और झूठ दोनोंसे निराला है। अपने इस मतका आभास उन्होंने रामचरितमानसके प्रारम्भमें दे भी दिया है—

यन्मायावशवर्त्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

[जिनकी मायाके वशमें सारा विश्व, ब्रह्मा आदि देवता और असुर पड़े हुए हैं, जिनकी सत्तासे ही सारा दृश्य जगत् उसी प्रकार सत्य प्रतीत होता है जैसे रस्सीको देखकर सर्पका भ्रम होता है, जिसका चरण ही भवसागर तरनेकी इच्छा करनेवालोंके लिये एकमात्र नाव है, उन, सब प्रकारके कारणोंसे परे अर्थात् सबकी रचना करनेवाले, सब कारणोंके कारण राम नामवाले भगवान् हरिकी मैं वन्दना करता हूँ।]

इस श्लोकमें गोस्वामीजीने बताया कि यह संसार वास्तवमें वह नहीं है जो हमें दिखाई पड़ता है। जैसे रस्सीको देखकर साँपका भ्रम हो जाता है और हम उसे सत्य मानकर उससे वैसे ही डरते हैं जैसे साँपसे डरते हैं, उसी प्रकार संसारका ठीक स्वरूप न जाननेके कारण हम उसे देखकर

दुःख पाते हैं। अर्थात् यह दुःख भ्रमके कारण है और यह भ्रम तभी दूर हो सकता है जब हम समझ लें कि यह संसार 'है और नहींसे विलक्षण' (सत्-असत् विलक्षण) है। यह 'है' क्योंकि प्रत्यक्ष तो साँप दिखाई पड़ता है पर जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है यह रस्सीका भ्रमात्मक स्वरूप है। अतः, उसका वास्तविक स्वरूप इस 'है' और 'नहीं' से कुछ निराला है। क्योंकि जो है वह तो रस्सी है, जो नहीं है वह सर्प है। किन्तु जो वह नहीं है, उसीके कारण अर्थात् सर्पके भ्रमके कारण ही हम उससे डरते, घबराते, भागते और कष्ट पाते हैं। अतः, हमें समझना चाहिए कि जो है और जो नहीं है, उससे कुछ विचित्र ही यह संसार है। अतः, जिन्हें यह भान हो जाय कि संसार सत्य और झूठसे निराला है, न सत्य है, न झूठ है और न सत्य और झूठ दोनों है, वही ठीक अपने आपको पहचान सकता है, आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। जबतक बुद्धिमें भ्रान्ति रहेगी तबतक आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता और यह आत्मज्ञान भगवत्कृपाके बिना संभव नहीं है। यह बुद्धिका भ्रम केवल भगवद्भक्तिसे ही दूर हो सकता है, क्योंकि वही इस मायामय जगत्में आत्मसाक्षात्कार करा सकती है।

गोस्वामीजीने संसारको निराधार चित्रके रूपमें जो वर्णित किया है यही भाव वेणी-संहार नाटकके निम्नांकित श्लोकमें व्यक्त किया गया है—

निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते। जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने॥

[बनानेकी किसी सामग्रीके बिना और भीत-रूपी किसी आधारके बिना भी यह संसार-रूपी चित्र खींचनेवाले उस अद्भुत कलाकार त्रिशूलधारी भगवान् (शंकर) को हमारा प्रणाम है।] चित्रकार तो तूलिका लेकर चित्र खींचता है किन्तु चित्रकार शंकर तो बिना आधारकी भीतपर बिना किसी सामग्रीके ही सृष्टि-रूपी चित्र बना देते हैं। वाह रे अनोखे कलाकर !]

इसीलिये कहा गया—

केसव ! कहि न जाइ का कहिए !

वास्तविकता यह है कि ग्रन्थ भरमें गोस्वामीजीने भक्तिका माहात्म्य ही बताया है। यह ग्रन्थ ही भक्तिरस-प्रधान है। गोस्वामीजी राम और राम-नामके अनन्य भक्त थे। रामको ही वे परब्रह्म मानते थे जो भक्तोंके कल्याणके लिये समय-समयपर अवतरित होते रहते हैं और जिनकी लीला गाकर मनुष्य चौरासी लाख योनियोंके चक्रसे छुटकारा पा जा सकता है। इसके अतिरिक्त न तो वे किसी दार्शनिक वादके फेरमें पड़े और न किसी वादके प्रचारसे उनका कोई सम्बन्ध रहा। भक्तिकी प्रधानता दिखानेके प्रसंगमें यदि कहीं कोई वाक्य ऐसा आगया हो जिससे किसी विशेष सिद्धान्तका समर्थन होता हो और दूसरे किसी वाक्यसे किसी अन्य सिद्धान्तका पोषण होता हो तो लोग अपनी इच्छानुसार भले ही उनमें वाद और सिद्धान्त ढूँढ़ा करें।

उनका दार्शनिक सिद्धान्त कवितावलीके निम्नाङ्कित सवैयोंसे स्पष्ट हो जाता है—

राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगि सखा सुत स्वामि सनेही।
रामकी सौंह भरोसो है रामको राम-रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम मरे पुनि राम सदा गति रामहिंकी इक जेही।
सोइ जियै जगमें तुलसी, न तु डोलत और मुए धरि देही॥
सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन - मीननको जलु है।
स्रुति रामकथा मुख रामको नाम हिए पुनि रामहिंको थलु है॥

मति रामहिंसों, गति रामहिंसों, रति रामसों, रामहिंको बलु है।
सबकी न कहैं तुलसीके मते इतनो जग जीवनको फलु है ॥

निम्नांकित दोहा भी उनका वास्तविक मत प्रकट करनेके लिये पर्याप्त है—

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास। एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

साम्प्रदायिक सौमनस्य

पौराणिक कालके पश्चात् भारतमें उपासनाके मुख्य दो ही सम्प्रदाय रह गए—शैव और वैष्णव। प्रायः समस्त पुराण-साहित्यमें शिव और विष्णुका अभेद दिखाया गया है। वैष्णव कहे जानेवाले पुराणोंमें शिवकी पूजा-अर्चाकी विधि एवं उनका माहात्म्य दिखाया गया है और शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुके सम्बन्धमें भी ऐसा ही उल्लेख है। किन्तु आगे चलकर समन्वयकी यह बुद्धि नहीं रह पाई। पुराणोंमें आस्था रखनेपर भी शैवोंने शिवको और वैष्णवोंने विष्णुको प्रधान देवता माना और अपने-अपने उपास्यको श्रेष्ठ सिद्ध करते-करते ये लोग इस सीमा-तक जा पहुँचे कि एक दूसरेके प्रति द्वेष-बुद्धि रखने लगे। उत्तर भारतमें भी यह अवस्था उत्पन्न हो ही चली थी कि गोस्वामीजी सहसा अवतरित हो गए। उन्होंने अनुभव किया कि यदि तत्काल इस प्रवृत्तिपर अंकुश न लगाया गया तो इससे पारस्परिक वैमनस्य बढ़ेगा और इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दुओंकी शक्ति व्यर्थके संघर्षमें पड़कर और भी क्षीण हो जायगी। अतएव उन्होंने शिव और विष्णु (या राम)-में उस अभेद भावकी स्थापनाका निश्चय किया जो पुराणोंमें आ चुका था और जो कालक्रमसे लुप्त हो चुका था। रामचरित-मानसके द्वारा उन्होंने यह अत्यन्त गुरुतर कार्य सम्पन्न भी कर दिया।

गोस्वामीजी वैष्णव थे किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थमें शिवको भी समाहित कर लिया और मानसमें यह प्रतिपादित किया कि सबसे बड़े वैष्णव तो शिव हैं जिनकी कृपाके बिना रामकी भक्ति प्राप्त ही नहीं हो सकती। राघवेन्द्र स्वयं कहते हैं—

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास। ते नर करहिं कलपभर, घोर नरक-महँ बास ॥

रामके कथनानुसार दोनोंकी ही उपासना आवश्यक है। एकको त्यागकर दूसरेको नहीं पाया जा सकता। रामचरितका गान आरम्भ करनेसे पूर्व गोस्वामीजी कहते हैं—

सपनेहुँ साँचेहु मोहिंपर, जो हर-गौरि पसाउ। तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ॥

और इसका कारण यही है कि शिवसे बढ़कर रामभक्त दूसरा कोई है ही नहीं, यहाँतक कि रामकथाके उद्गम भी वे ही हैं—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाषा ॥

और वे ही एक हैं जिनके सम्बन्धमें श्रीरामने स्पष्ट कहा है—

संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि ॥

इस प्रकार गोस्वामीजीने राम और शिव या विष्णु और शिवमें अभेद भावकी स्थापना करके उस समय व्याप्त साम्पदायिक वैमनस्यपर अंकुश लगाकर कमसे कम उत्तर भारतको दो विरोधी शिविरोंमें बंटनेसे बचा ही लिया। इसी भावनाकी प्रतिष्ठाके लिये उन्होंने मानसमें समुद्रपर रामेश्वर शिवलिंगकी स्थापनाका विधान किया जिसकी कोई चर्चा वाल्मीकीय रामायणमें नहीं है।

वर्णाश्रम-व्यवस्थाके प्रति आस्था

भुशुण्डिने कलिधर्मनिरूपणके प्रसंगमें जो कुछ भी कहा है वह इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि भगवद्भक्तिके लिये गोस्वामीजी यह आवश्यक नहीं समझते थे कि लोग गृह त्यागकर संन्यासी हो जायँ। गोस्वामीजीने अपनी रचनाओंमें आचरणकी शुद्धतापर बड़ा बल देनेके साथ ही—

'हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा'

कहकर कर्मयोगका प्रतिपादन किया और ज्ञानमार्गकी कठिनाइयोंकी चर्चा करके भक्तिमतका पोषण किया। इसके लिये गृहत्यागी संन्यासी बननेकी उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। कलिधर्म-निरूपणके प्रसंगमें वे स्पष्ट कहते हैं—

नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥

इस प्रकार अनधिकारी रूपसे संन्यासी हो जानेकी वे निन्दा करते हैं। वे संन्यास धर्मके निन्दक नहीं थे पर अधिकारीका भेद वे अवश्य मानते थे। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें प्रत्येक व्यक्तिको वैसा ही कर्म करना चाहिए जैसा उसके लिये शास्त्रोंमें बतलाया गया है। शास्त्र-विरोधी आचरण करने-वालोंका उन्होंने कसकर विरोध किया है—

स्रुति-संमत हरि भक्ति पथ, संजुत बिरति बिवेक। तेहि न चलहिं नर मोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

मनुष्य-समाजके लिये निर्धारित श्रुतिमार्ग वर्णाश्रम-धर्म है। गोस्वामीजी इसे कितना आवश्यक समझते थे यह कलिमें व्याप्त अनाचारको देखकर उत्पन्न उनकी दुःखमयी वाणीमें सुनिए—

बरन धर्म नहिं आस्रम चारी। स्रुति विरोध-रत सब नरनारी॥

आगे चलिए—

सब लोग बियोग बिसोक हुए। बरनास्रम धर्म अचार गए॥

इससे स्पष्ट हो जायगा कि गोस्वामीजी शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमधर्मको आवश्यक मानते थे और इसके विरुद्ध—

मिथ्यारम्भ दंभ कर जोई। ता-कहँ सन्त कहइ सब कोई॥

को वे सामाजिक जीवनके लिये घोर अभिशाप मानते थे। रामको उन्होंने 'श्रुतिसेतुपालक' कहा है क्योंकि रामका ही चरित्र ऐसा मर्यादापूर्ण है कि उन्होंने वर्णाश्रम-धर्मकी सभी मर्यादाओंका पालन किया। गोस्वामीजीकी दृष्टिमें सामाजिक मर्यादाके लिये वर्णाश्रमधर्म कितना आवश्यक है यह इसीसे प्रकट हो जाता है कि गोस्वामीजीने सर्वत्र मर्यादावादकी प्रशंसा ही की है।

भारतीय सांस्कृतिक जीवनका चित्रण

कलिधर्म-निरूपणके प्रसंगमें जो कुछ लिखा गया है उसपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृतिका आदर्श क्या है। कलिमें सभी प्रकारकी सामाजिक मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, लोग आचारहीन हो जाते हैं तथा 'निगमका अनुशासन' नहीं मानते। इस प्रसंगमें कलिकालके लोगोंके भ्रष्ट आचारोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है उसका ठीक उलटा स्वरूप श्रेष्ठ और आचार-सम्मत है तथा वही भारतीय सांस्कृतिक जीवनका प्रतीक है। वह आदर्शमय जीवन कैसा होना चाहिए इसका ही पूरा चित्रण रामचरितमानसमें किया गया है।

गोस्वामीजीने राम, भरत और लक्ष्मणके उदात्त चरित्रोंके माध्यमसे दिखलाया है कि भाइयों-का आदर्श व्यवहार किस प्रकारका होनाचाहिए। दशरथके चरित्रमें सत्यप्रिय राजा तथा आदर्श पिताका, कौशल्या और सुमित्राके रूपमें आदर्श माताका, सीताके रूपमें आदर्श पत्नीका, हनुमानके रूपमें आदर्श सेवकका तथा सुग्रीव और विभीषणके रूपमें आदर्श मित्रका वर्णन किया गया है। राम तो हमारे सामने कई रूपोंमें आते हैं। वे आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श मित्र और शरणागतवत्सलके रूपमें हमारे सामने आते हैं। हमारे सांस्कृतिक जीवनके आधार ये ही आदर्श तो हैं। जिस भारतीय संस्कृतिको अमर कहा गया है, जिसका गुण-गान करते आज विदेशी लोग भी अघाते नहीं, जिसकी ओर आज संसारकी आँखें लगी हुई हैं और जिसके कारण भारत आज भी जगद्गुरु बना हुआ है उसके तत्त्व हमारे इस आदर्शपूर्ण एवं मर्यादित जीवनमें ही तो हैं। इसका जैसा उदात्त चित्रण मानसमें हुआ है वैसा संसारके किसी एक ग्रन्थमें एक साथ नहीं मिल सकता। यही रामचरितमानसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

मानव-जातिको सन्देश

गोस्वामीजीने मानसकी रचना 'स्वान्तःसुखाय' और 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' के उद्देश्यसे की किन्तु इस 'स्व' का अर्थ बड़ा व्यापक है। 'ईश्वर अंश जीव अबिनासी' की धारणाके अनुसार देखिए तो यह सम्पूर्ण विश्व उस विराट् विभुका ही स्वरूप है। इसलिये 'स्वान्तःसुखाय' का अर्थ हुआ 'सबके सुखके लिये' अर्थात् मानवके ही नहीं, प्राणिमात्रके सुखके लिये, चर-अचर सबके सुखके लिये। गोस्वामीजीने सबके सुखका ध्यान करके ही इस रामकथाकी रचना की और इसमें सन्देह नहीं कि जहाँ पूर्ण श्रद्धा और भक्तिके साथ रामका गुणगान होता है वहाँके सभी जीवधारियोंपर उसका प्रभाव पड़ता है, चाहे हम उसे समझ पायँ या न समझ पायँ। गोस्वामीजीने रामकी कथा रचकर, उसमें भक्तिका प्रतिपादन करके, कर्मयोगकी शिक्षा देकर, कल्पित मतों और पन्थोंका खंडन करके, सन्तों और खलोंका स्वरूप प्रकट करके मनुष्यको बताया कि क्या उसका लक्ष्य है, कैसा उसका आचार होना चाहिए, किस धर्मका उसे पालन करना चाहिए, एक दूसरेके साथ किस प्रकारका सम्बन्ध रखना चाहिए, छोटोंका बड़ोंके प्रति और बड़ोंका छोटोंके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए, सामाजिक व्यवस्थाएं कैसी होनी चाहिएँ, राज्य-व्यवस्था कौन-सी उत्तम है तथा मनुष्यका श्रेय और प्रेय क्या है। वैशेषिक दर्शनमें कणादने धर्मका लक्षण बताया है—

यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः ॥

[जिससे इस लोकमें अभ्युदय अर्थात् लौकिक सुख तथा निःश्रेयस (मुक्ति) प्राप्त हो वही धर्म है।]

व्यासजी कहते हैं—

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः। कर्मणा मनसा वाचा स धर्मः वेद जाजले ॥

[जो मन, वचन और कर्मसे सबका सदा मित्र है और सदा सबके हितमें लगा रहता है वही धर्म है।]

इसी धर्मकी विस्तृत व्याख्या अनेक चरित्रों तथा उन अनेक उपदेशोंके द्वारा मानसमें की गई है जिसे अपने जीवनमें ढालकर मनुष्य सरलतासे इहलौकिक और पारलौकिक रस प्राप्त कर सकता है।

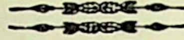
अतः, मानव जातिके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीका संदेश वही है जो व्यासजीने बताया था–

अष्टादश-पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् । परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

इसीको गोस्वामीजीने इस अर्धालीमें बाँध दिया है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहि अधमाई ॥

और इसी उद्देश्यसे उन्होंने ग्राम्य गिरामें 'सरल कबित कीरति बिमल' लेकर उस रचनाको जन्म दिया जिससे 'सुरसरि-सम सब कहँ हित होई ।' मानव जातिको और विश्वके कवियोंको इससे बड़ा दूसरा कौन-सा संदेश मिल सकता है ?





मानसकी तिथि-तालिका

मानस-राजहंस पंडित विजयानन्द त्रिपाठी, काशी

भूमिका

श्रीमद्रामचरितमानसके प्रेमियोंके मनमें मानसकी घटनाओंका समय जाननेकी आकांक्षा स्वाभाविक है। उसका निर्धारण यदि मानससे ही हो सके तो सर्वोत्तम, नहीं तो अन्य प्रामाणिक ग्रन्थोंसे तथा ऐतिह्य प्रमाणोंसे सहायता लेना उचित है जो मानसके अनुकूल पड़ते हों।

श्रीरामचरितमानसकी तीन घटनाओंका समय तो लोकप्रसिद्ध है—(१) चैत्र शुक्ला नवमीको रामजन्म, (२) अगहन सुदि पञ्चमीको रामका ब्याह और (३) आश्विन सुदि दशमीको विजयोत्सव।[1] गोस्वामीजीने तिथिका उल्लेख तो केवल राम-जन्ममें ही किया है, पर स्थान-स्थानपर ऐसे सङ्केत हैं, जिनके अनुसार अनुसन्धान करनेसे प्रायेण सभी घटनाओंका समय-निर्धारण किया जा सकता है। यथा—

बालकाण्ड

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सियमुख सरिस देखि मुख पावा॥

इस अर्धालीसे इतना पता तो चल ही जाता है कि उस दिन शरत् पूर्णिमा या चतुर्दशी थी। दूसरे दिन धनुष-यज्ञका वर्णन है, जिसके लिये प्रतिपद् अनुकूल तिथि नहीं है। अतः कहना होगा कि फुलवारीके दिन चतुर्दशी थी और धनुष-यज्ञके दिन शरत्पूर्णिमा थी। इसीसे यह भी अनुमित होता है कि विश्वामित्रजीका यज्ञ आश्विनके नवरात्रमें हुआ और सम्भवतः वह चण्डो-याग था।

इतना पता लग जानेपर अयोध्यासे दोनों भाइयोंके प्रस्थानसे लेकर विवाह-तककी सब घटनाओंकी तिथियाँ निकाल ली जा सकती हैं। बारातके टिकने तथा वधू-प्रवेशका समय ऐतिह्य प्रमाणोंमें निश्चित किया जा सकता है। विवाहके बाद बारह वर्ष अयोध्यामें निवास लोक-प्रसिद्ध है, और 'आये ब्याहि राम घर जब ते। बसे अनंद अवध सब तब ते॥' से लेकर 'जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥' तक बारह पंक्तियाँ लिखकर गोस्वामीजी भी इसी बातका सङ्केत करते हैं।

अयोध्याकाण्ड—

झलका झलकत पाँयन कैसे। पंकज कोष ओसकन जैसे॥

---

१. आश्विन सुदि दशमीको विजयोत्सवके संबंधमें श्रीइन्द्रचन्द्र नारंग 'रामकाका वन-प्रवास' लेख देखिए।

इस अर्धालीसे अयोध्याकाण्डकी सब घटनाओंकी तिथियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। शृङ्गवेरपुरसे भरतजी रामजीको मनाने नंगे पाँव चले, तो पहिले ही दिन पाँवोंमें छाले पड़ आये। इससे स्पष्ट है कि महीना ज्येष्ठका था। रामजीके वनवासके बाद, चक्रवर्तीजीके देहावसानपर, कैकयदेश दूत भेजने, भरतजीके आने, और्ध्वदैहिक क्रिया आदि करने तथा भरतजीके अभिषेकके लिए सभा करनेमें निश्चय ही एक महीनेसे अधिक समय लगा होगा। अतः राम-वन-वास चैत्रमें होना सिद्ध है। 'एक समय सब सहित समाजा। राज सभा रघुराज बिराजा॥' कहनेसे यह अन्दाज लगता है कि यह दरबार रामजीकी २७ सत्ताइसवीं वर्ष-गाँठके उपलक्ष्यमें रामनवमीको हुआ। दूसरे दिन रामजी वन गये। अतः वन-वासके लिये दशमीको प्रस्थान किया। जिस दिन अभिषेक होनेवाला था, उसी दिन वन गये।

इस अनुमानकी पुष्टि वाल्मीकीयसे होती है। वहाँ कहा गया है कि चैत्रके पुष्य नक्षत्रमें जब कि उनका अभिषेक होनेवाला था, रामजी वन गये। रामनवमीको प्रायेण पुनर्वसु नक्षत्र रहता है, अतः पुष्यका दशमीमें पड़ना सर्वथा प्राप्त है। वन-वासकी तिथिका निश्चय हो जानेसे सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डकी घटनाओंकी तिथियाँ निकाल लेनी कठिन नहीं हैं। अब यह निश्चितरूपेण कहा जा सकता है कि वन-वास चैत्र सुदि दशमीको हुआ, क्योंकि चैत्रमें पुष्य नवमी, दशमी या एकादशीको ही पड़ता है। नवमी-एकादशी अभिषेक योग्य तिथियाँ नहीं हैं, अतः दशमीको ही अभिषेक होनेवाला था।

आरण्यकाण्ड—

एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहिं पहिराएउ प्रभु सादर।

इससे पता चलता है कि उस दिन वसन्तोत्सव था। उसी दिन जयन्तका नेत्रभङ्ग भी हुआ।

'बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहि मोहिं जाना॥
सकल मुनिन्हसन बिदा कराई। सीता सहित चले दोउ भाई॥'

इस चौपाईसे पता चलता है कि सरकार (राम) का चित्रकूट-निवास लगभग एक साल-तक रहा। इसके बाद अत्रिजीके यहाँ जाकर बिदा हुए। दण्डक-वनमें प्रवेश करते ही विराध-वध हुआ। शरभङ्गजीके आश्रममें गये। तत्पश्चात् अस्थि-समूह देखकर पृथ्वीको 'निशिचरहीन' करनेकी प्रतिज्ञा की। 'सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥' इस पदसे पता चलता है कि वनवासका अधिक काल आश्रम-मण्डलोंमें निवास करते बीता। वाल्मीकिजी कहते हैं कि—

'तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै। रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश॥'
[मुनिमण्डलमें रहते दश वर्ष बीत गये।]

इसके बाद सुतीक्ष्णजी तथा अगस्त्यजीसे मिलते हुए उन्होंने पञ्चवटीमें निवास किया। वहीं सीता-हरण हुआ। सीताजीको खोजते हुए दोनों भाई चले। रास्तेमें वसन्तका वर्णन है। इससे पता चलता है कि शूर्पणखा-विरूपीकरण, खरदूषण-वध तथा सीताहरण शिशिरमें हुआ। श्रीरामचन्द्रके शूर्पणखाके साथ परिहास करनेसे यह कहा जा सकता है कि वे सब घटनाएँ वसन्त-पञ्चमीके बाद हुईं। सीताहरण होते ही सरकार खोजने चल पड़े। अतः कहा जा सकता है कि सीताहरण फाल्गुनमें हुआ।

किष्किन्धाकाण्ड—

गत ग्रीषम वरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैलपर छाई ॥

इस अर्धालीसे यह पता चलता है कि हनुमत-मिलन, सुग्रीव-मिताई, बालि-वध, सुग्रीवकी राजगद्दी ज्येष्ठके अन्तमें हुई। इससे यह भी सिद्ध होता है कि नासिकसे ऋष्यमूक आनेमें रामजीको तीन महीने लगे। प्रवर्षण गिरिपर निवास करते हुए, शरद्-वर्णनमें रामजी कहते हैं कि—

'चले हरखि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥'

इससे पता चलता है कि उस दिन सर्वदिग् यात्रा योग्य तिथि विजयादशमी थी। फिर भी सुग्रीव नहीं आये। एकादशीको रामजी निश्चय करते हैं कि 'सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।' हनुमानजी भी इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि 'राम काज सुग्रीव बिसारा।' अतः जाकर सुग्रीवको समझाया। इस तिथिके निश्चय हो जानेपर लङ्काकाण्डमें सरकार (राम) के सुबेल-निवास तककी सब तिथियोंका पता चल जाता है।

लङ्काकाण्ड—

रहे दसो दिसि सायक छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई ॥

इस अर्धालीसे यह पता चलता है कि मेघनाद-वध भाद्रपदमें हुआ। विजयोत्सवके लिये विजयादशमी प्रख्यात है, और ठीक है; पर रावण-वध नवमीको ही हो गया, दशमीको श्रीरामजीने चण्डिकाके शान्त्यर्थ बलिनीराजन किया। यथा, कालिकापुराणे—

"व्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्यां रावणं ततः। रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी।
ततस्तु श्रवणे नाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम्। विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलिनीराजनं हरिः ॥"

उपर्य्युक्त सभी बातें वाल्मीकि रामायणकी रामाभिरामी टीकासे मेल खाती हैं। अतः उसीके तिथि-निर्णयको प्रमाण माना।

उत्तरकाण्ड—

रावणवधके बाद रामजीको अयोध्या पहुँचनेकी जल्दी पड़ी, क्योंकि चौदह वर्ष पूरा हुआ चाहता था और भरतजीकी प्रतिज्ञा थी कि—

'तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जौ रघुबीर न अइहौ।
तौ प्रभुचरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पइहौ ॥'

अतः पुष्पक विमान-द्वारा सरकार भरद्वाजके आश्रमपर पहुँच गये। वाल्मीकिजी कहते हैं कि उस दिन पञ्चमी थी और उसी दिन चौदह वर्षकी अवधि पूरी हो गई। आश्विन सुदि दशमीसे कार्त्तिक बदि पञ्चमी तक चौदह वर्ष पूरे होनेमें बारह तिथिबद्ध मासोंका वर्ष मानना पड़ेगा, और अधिक मासोंकी भी गणना करनी पड़ेगी, जैसा कि आजतक व्यवहारमें किया जाता है। लेन-देनमें तिथिबद्ध मास माना जाता है, और अधिमासका भी सूद किराया आदि लिया जाता है। यही मत रामाभिरामी टीकाका है। दूसरे किसी तरहसे हिसाब नहीं बैठता। महाराज युधिष्ठिरके वनवासमें भी बारह तिथिबद्ध मासोंका वर्ष माना गया और अधिक मासोंकी भी गणना मानी गई। अतः यही ठीक है।[1] षष्ठीको सरकार (राम) के

१. सौर वर्ष तिथिबद्ध मासके वर्षसे १२ दिन बड़ा होता है। अतः चौदह वर्षोंमें १४ × १२ = १६८ दिनोंका अन्तर पड़ता है। अतः कार्त्तिक कृष्ण पञ्चमीको ही अवधि पूरी हो गई।

आगमनका समाचार भरतजीको मिला, सप्तमीको भरत-मिलाप और अष्टमीको पुष्य नक्षत्रमें रामराज्याभिषेक हुआ।

तिथि-तालिका

बालकाण्ड—

१. मानसकी रचना (शिवजी द्वारा)	—इस कल्पसे २७ कल्प पहिले।
२. रावणजन्म	— वैवस्वत मन्वन्तरकी उन्नीसवीं चतुर्युगीमें।
३. रामजन्म	— चौबीसवीं चतुर्युगीके त्रेतामें, चैत्र सुदि नवमीको।
४. विश्वामित्रजीका अयोध्या आगमन	— रामजन्मके चौदह वर्ष बाद
५. यज्ञ-रक्षाके लिए रामजीका प्रस्थान	— आश्विन कृष्ण द्वादशीको
६. गङ्गा-संगम-निवास	— ,, ,, त्रयोदशीको
७. ताड़का वध	— ,, ,, चतुर्दशीको
८. सिद्धाश्रम पधारे	— ,, ,, अमावस्याको
९. यागारम्भ	— ,, शुक्ल प्रतिपद्को
१०. सुबाहु मारीच पराभव	— आश्विन शुक्ल षष्ठीको
११. जनकपुरके लिये प्रस्थान	— ,, ,, दशमीको
१२. जनकपुर पधारे	— ,, ,, त्रयोदशीको
१३. फुलवारीमें सीताजीका दर्शन	— ,, ,, चतुर्दशीको
१४. धनुष भङ्ग	— ,, ,, पूर्णिमाको
१५. जनक-दूत अयोध्या पहुँचे	— कार्तिक कृष्ण पञ्चमीको
१६. जनकपुर बारात पहुँची	— ,, ,, धनतेरसको
१७. श्रीराम-जानकी विवाह	— अगहन (मार्गशीर्ष) सुदि पञ्चमीको
१८. बारातकी बिदाई	— पूस (पोष) सुदि सप्तमीको

अयोध्याकाण्ड

१. श्रीराम-सीताका अवध-निवास	— बारह वर्ष
२. रामजीके सत्ताइसवें जन्मोत्सवका दरबार	— चैत्र शुक्ल नवमीको
३. वनवास	— ,, ,, दशमीको
४. श्रृङ्गवेरपुर निवास	— ,, ,, एकादशीको
५. गङ्गापार करके मार्गमें पेड़ तले निवास	— ,, ,, द्वादशीको
६. भरद्वाजके आश्रममें निवास	— ,, ,, त्रयोदशीको
७. यमुना पार करके मार्गमें निवास	— ,, ,, चतुर्दशीको
८. वाल्मीकि मिलन, चित्रकूट निवास	— ,, ,, पूर्णिमाको
९. चक्रवर्त्ती दशरथजीका देहावसान	— ,, ,, ,,
१०. दशरथजीके शवको तेल भरी नावमें रखना	— वैशाख कृष्ण प्रतिपद्को
११. कैकय देश दूत भेजे गये	— ,, ,, द्वितीयाको
१२- भरतजी अयोध्या पहुँचे	— ,, शुक्ल प्रतिपद्को

१३. चक्रवर्त्तीजीकी ऑर्ध्वदैहिक क्रिया	— ,, ,, द्वितीयाको
१४. भरतजीके अभिषेकार्थ सभा	— ,, ,, पूर्णिमाको
१५. भरतजीका चित्रकूटके लिये प्रस्थान	— ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपद्को
१६. गोमती तीर-निवास	— ,, ,, द्वितीयाको
१७. स्यन्दिका तीर-निवास	— ज्येष्ठ कृष्ण तृतीयाको
१८. शृङ्गवेरपर पहुँचे	— ,, ,, चतुर्थीको
१९. भरद्वाजाश्रम निवास	— ,, ,, षष्ठीको
२०. मार्गमें निवास	— ,, ,, सप्तमीको
२१. यमुना-तीर निवास	— ,, ,, अष्टमीको
२२. मार्गमें निवास	— ,, ,, नवमीको
२३. चित्रकूट दर्शन	— ,, ,, दशमीको
२४. रामजीसे भेंट	— ,, ,, एकादशीको
२५. श्रीरामजीका शुद्ध होना	— ,, ,, चतुर्दशीको
२६. भरत सभा (पहिली)	— ,, शुल्क द्वितीयाको
२७. जनकजी चित्रकूट आये	— ,, ,, तृतीयाको
२८. भरत सभा (दूसरी)	— ,, ,, सप्तमीको
२९, भरतजीकी बिदाई	— ,, ,, त्रयोदशीको
३०. भरतजी अवध पहुँचे	— आषाढ़ कृष्ण प्रतिपद्को
३१. जनकजीका तिरहुत प्रस्थान	— ,, ,, पञ्चमीको
३२. रामजीका चित्रकूट-निवास	— एक साल

आरण्यकाण्ड—

१. जयन्त नेत्र-भङ्ग	— चैत्र कृष्ण प्रतिपद्को
२. अत्रि मुनिसे बिदाई तथा विराध-वध	— चैत्र शुक्ल एकादशीको
३. शरभङ्ग मुनिसे भेंट	— ,, ,, द्वादशीको
४. आश्रम-मण्डलीमें निवास	— दश वर्ष-तक
५. सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य मुनिसे मिलते हुए पञ्चवटी निवास	— हेमन्त ऋतु-तक
६. शूर्पणखा विरूपीकरण	— माघ शुक्ल त्रयोदशीको
७. खरदूषण वध (तीन दिन युद्धके बाद)	— फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीको
८. सीताहरण (वनवासके तेरहवें वर्षमें)	— ,, ,, अष्टमीको

किष्किन्धाकाण्ड—

१. बालि-बध, सुग्रीवको तिलक	— ज्येष्ठके अन्तमें
२. प्रवर्षण गिरि निवास	— पूरा चातुर्मास
३. हनुमानजी द्वारा सुग्रीव प्रबोध	— आश्विन शुक्ल एकादशीको
४. सुग्रीवका रामजीके पास जाना तथा सीतान्वेषणके लिये दूत भेजना	— कार्तिक कृष्ण एकादशीको

सुन्दरकाण्ड

१. हनुमानजी द्वारा समुद्रोल्लंघन	— अगहन बदी एकादशीको
२. सीतादर्शन	— ,, ,, द्वादशीको
३. लङ्कादाह	— ,, ,, त्रयोदशीको
४. रामजीको समाचार देना	— अगहन सुदि सप्तमीको
५. विजय-यात्रा	— ,, ,, अष्टमीको
६. समुद्रतट सेना-निवास	— ,, पूर्णिमाको
७. विभीषण शरणागति	— पौष कृष्ण चतुर्थीको
८. रामजी द्वारा समुद्रसे विनय	— ,, ,, षष्ठीको
९. समुद्रका शरणमें आना	— ,, ,, नवमीको

लङ्काकाण्ड—

१. सेतु बन्ध (चार दिनों-तक होता रहा)	— पौष कृष्ण त्रयोदशीतक
२. रामजीका लङ्का-प्रयाण	— ,, शुक्ल द्वादशीको
३. सुबेल पर्वतपर उतरना	— ,, ,, पूर्णिमाको
४. अङ्गद दूत बनाकर लङ्का भेजे गये	— माघ कृष्ण प्रतिपद्को
५. युद्धारम्भ	— ,, ,, द्वितीयाको
६. चारों फाटककी लड़ाई	— श्रावण कृष्ण अमावस्या तक
७. लक्ष्मणजीको शक्ति लगी	— ,, शुक्ल प्रतिपद्को
८. कुम्भकर्ण वध (सात दिन युद्धके बाद)	— ,, ,, पूर्णिमाको
९. मेघनाद वध	— भाद्रपद कृष्ण द्वादशीको
१०. रावण युद्धके लिये निकले	— भाद्रपद कृष्ण अमावस्याको
११. दूसरी बार युद्धके लिये निकले	— आश्विन शुक्ल प्रतिपद्को
१२. रावण-वध	— ,, ,, नवमीको
१३. विजयोत्सव	— ,, ,, दशमीको
१४. विभीषण राज्याभिषेक	— ,, ,, त्रयोदशीको
१५. सीता-मिलन	— ,, ,, चतुर्दशीको
१६. अयोध्याको प्रस्थान	— कार्तिक कृष्ण द्वितीयाको

उत्तरकाण्ड—

१. भरद्वाजके आश्रममें पहुँचना	— कार्तिक कृष्ण पञ्चमीको
२. हनुमानजी द्वारा भरतजीको समाचार मिलना	— ,, ,, षष्ठीको
३. भरतमिलाप	— ,, ,, सप्तमीको
४. रामराज्याभिषेक	— ,, ,, अष्टमीको

हरिः ॐ तत्सत्

८

विजय-दोहावली

गोस्वामी तुलसीदास कृत[1] (?)

दो०— सोरह सै पैंतीसको, सम्वत है सुखरास । रामविजय दोहावली, बरनी तुलसीदास ।।
राम विजय दोहावली, जानै जे नर कोइ । गुप्त अर्थ रामायन, प्रगट कीजिये सोइ ।।
सो०— मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन । जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन ।।
दो०— नहीं मेघकर कण्ठगति, नहीं अरुनके पाइ । बास करे आकाशमें, रविरथ चढ़ि गये धाइ ।।
चौ०— नाम रूप दुइ ईश उपाधी । अकथ अनादि सु सामुझि साधी ।।
दो०— नाम जपत शंकर थके, शेष न पाया पार । सब प्रकार सो अकथ हैं, महिमा अगम अपार ।।
चौ०— भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दश दिशिहू ।।
दो०— भावसहित शंकर जप्यो, कहि कुभाव मुनिबाल । कुम्भकरन आलस जप्यो, अनख जप्यो दशभाल ।।
दो०— उभय घरी सुरलोकमें, ब्रह्मलोक द्वै दण्ड । रह्यो भुवनमें दिवसनिशि, व्यापो मदन प्रचंड ।।
सो०— धरा न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे । जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि कालमें ।।
छं०— हनूमान पुनि बच्यो हरे लछिमन जल खंडचो । स्वामिकारतिक बच्यो मोर बाहन घर विंडचो ।।
लोमस मुनि पुनि बच्यो जासुके निकट न धस्यो । तुलसी बल रघुनाथ मदन इनकहँ नहिं डस्यो ।।
चौ०— एक बेर कुबेर पर धावा । पुष्पक यान जीति लै आवा ।।
दो०—कीन्ह यज्ञ जब रघु नृपति, दीन्ह्यो अद्भुत दान । यांच्यो आय कुबेर तब, दोन्हों पुहुप विमान ।।
गुन समस्त बहु समुझिकै, जान लीन्ह परसंध । सो बर आद्री जाइके, छीन लीन्ह दशकंध ।।
कीन्ही अरज कुबेर तब, सुनो अवध-अवनीस । आपने दीन्ही दच्छिना, छीन लीन्ह दशशीश ।।
कीन्ह क्रोध तब रघुनृपति दशहू शर-संधान । ठाढ़ भये सोइ कोट पर, हरौं दशोकै प्रान ।।

---

१. यह तथाकथित तुलसी-कृत ग्रन्थ तुलसी-ग्रन्थावली द्वितीय खंड छपनेके अनन्तर मिला है इसलिये इस खण्डमें दिया जा रहा है। इसका बहुत-सा अंश मानससे लिया गया है अतः यह किसी अन्य सज्जन-द्वारा संगृहीत ग्रन्थ मात्र है क्योंकि इसमें मानसके दोहे-चौपाइयोंके अतिरिक्त जो रचनाएं हैं वे अत्यन्त निम्न कोटिकी हैं और सब असम्बद्ध हैं।

तब ब्रह्मा समुझाइयो, सुनो अवध-अवनीश । राम हाथ ये शर चलैं, तब मरिहै दशशीश ।।
सुनि ब्रह्माके बचन तब धरि राख्यो महिपाल । राम सो ह्वै हैं बंशमें, तब हनि हैं दशभाल ।।
सकल कथा अवनीश तब, लिखि राखी यहि बान। दीजै फेर कुबेरको, महादान अनुमान ।।
दो०— निज दुख सुख सब गुरुहि सुनाये । कहि बशिष्ठ बहु बिधि समुझाये ।।
दो०— पूरबही बर जो मिल्यो, रह्यो अंध ऋषि शाप । तुलसी गुरुहि सुनाइयो, देवनकी संताप ।।
चौ०— अवधपुरी सोहै इहि भाँती । प्रभुहि मिलन आई जनु राती ।।
दो०— दिवस रहो रस बीचमें, निसा सो मंदिर माहिं । है सुरपतिको अप्सरा, शाप रह्यो उरमाहिं ।।
द्वै कन्या गंधर्वको, शोभा प्रभारु हेम । तुलसी ते स्यानी भई, चाहैं यों मन प्रेम ।।
एक समय कैलासको, गई सो दोनों बैन । सेवा कर जब शंभुकी, शाप भयो तब ऐन ।।
तब हेमांत्र अरु सो प्रभा, ठाढ़ि भई कर जोर । तब महेश उपदेश किय, जाइ रहौ मग ओर ।।
केसर कुंकुम अरगजा, अष्टादस करपूर । रहो भूपके भवनमें, यहि सुगंध भरपूर ।।
चौ०— कौशल्या जब बोलन जाहीं । ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहि पराहीं ।।
दो०— कौशल्या प्रभु कर गहै, मगन प्रेम भरपूर । लै आई भूपति ढिगहि, पोंछन लागी धूर ।।
चौ०— गौर किशोर बेष बर काछे । कर शर चाप राम के पाछे ।।
लछिमन नाम राम लघु भ्राता । सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।।
दो०— अवधपुरी ब्याही हती, जनकपुरीकी आइ । जाति तमोलिनको रहै, पान देन नित जाइ ।।
चौ०— जनक - भवनकी शोभा जैसी । गृहगृह प्रतिपुर देखिय तैसी ।।
दो०— आदिसखी जे सीयकी, सङ्ग लीन्ह अवतार । आदि सखा जे बिष्णुके, अवधपुरी ब्यवहार ।।
चौ०— कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचि रजनी जुग जाम सिरानी ।।
दो०—गई जामिनी जाम, जुग, तहँ कर परसन कीन्ह । धन्य भामिनी गुरु जननि, राममंत्र मोहि दीन्ह ।।
चौ०— नव पल्लव फल सुमन सुहाये । निज संपति सुरतरुहिं लजाये ।।
दो०— ये बिरवा कैलासके, और सकल सुरसाग । औरहु सकल सुमेरुके, धरे भूप निज बाग ।।
चौ०— तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ।।
दो०—जानि समय तब मातने, सिय पठई तेहि ठौर । सङ्ग सखी चातुर चलीं, पूजनको गनगौर ।।
चौ०— सर समीप गिरिजा गृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मन मोहा ।।
दो०— रह्यो भूपके बागमें, शुभ आश्रम बहुजान । सीता केरो आवनो, देवीको बरदान ।।
चौ०— कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सो राम हृदय गुनि ।।
दो०— कही अनुज सो सब कथा, काल काल अनुसार । यह महिमा कछु मम नहीं, जनकलली बिस्तार ।।
चौ०— एक सखी सिय सङ्ग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ।।
दो०— नाम सुशीला अनुचरी, निपुन नीति गुणधाम । सियको सङ्ग बिहाइके, गई रहै जहँ राम ।।
चौ०— विनय प्रेमबस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुक्यानी ।।
दो०— अर्द्धाङ्गी जो देवता, अरु गिरिनन्दिनि जानि । बाम अङ्ग माला धरी, तब मूरति मुसुक्यानि ।।
रमा रुक्मिनी राधिका, तुम्हरे बंहुतक नाँव । सुरति करत गोलोककी ताते छुवत न पाँव ।।
चौ०— घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई । ग्रसै राहु निज सन्धिहिं पाई ।
दो०— नृप दधीच राजा भये. कन्या साठि हजार । अष्टोत्तरसै सोमको ब्याही हती कुमार ।।
पति अभावसो बाल सब, आईं पितुके गेह । तब नृपके मनमें भयो, देखत हो सन्देह ।।

तब कन्यनसों नृपतिने, पूछा बारहिं बार। कौन काज आई इहाँ, कहो सुसत्य विचार।
पिता क्रोध मन समुझिके, कहि कन्यन यह बात। पतिने त्यागा जब हमैं, त्यहिंते आई बात॥
राजा रघुने सुनत ही, चन्द्रहिं पकरि बुलाय। मय दैंते कन्या दई, गयो सो तुरत लेवाय॥
कछु दिन राख्यो प्रेमसों, फिरि अभाव सोइ कीन्ह। परित्याग विचारिके, देह भस्म तेहि कीन्ह॥
राजा रघुने जब सुनी, कन्यक तजे शरीर। तब द्वै गन पैदा किये, सुनहु गरुड मतिधीर॥
तिनसों नृपने या कही, करहु सो बेगि उपाय। सोरहु कला समेत तुम, चन्द्रहिं लीलो जाय॥
चन्द्र लीलि जबहीं लियो, सोरहु कला समेत। तब नृपसों बिनती करी, देवन आय निकेत॥
महाराज समरत्थ हौ, यह वर माँगे देहु। देहु चन्द मोहिं उगिलकै, यह जगमें जस लेहु॥
शुक्ल पच्छ परिवा लगे, पन्द्रह तिथिलों सोय। कलन कलन बहु चन्द्रको, उगिलत हैं गण दोय॥
कृष्ण पच्छ याही बिधिहि, लीलि चन्द्रको लेइ। घटत बढ़त तुलसी कहो, यहि प्रकार बिधि सोइ॥

सो०—शङ्कर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल। बूड़े सकल समाज, चढ़े जो प्रथमैं मोहबस॥

दो०—तीन लाख मन अस्थिको, बनी पनच अस रार। गजबेली रोदा लगो, गासा लगे हजार॥
जे अभिमानी नृपति हैं, नहि बिचार कछु चित्त। तिन्हको बल पौरुष महा, बूड़ो जानो मित्त॥
सीता मन अनुमान कर, कच बाँसुरी बजाय। मोहे अबिके बाहनै, राम मनोहर गाय॥

चौ०—बहु धनुही तोरी लरिकाई। कबहुँ न अस रिस कीन्ह गोसाईं॥

दो०—दस हजारके शिशु हते, गंधर्वनके पुत्र। तिनकी धनुही छीनिके, तोरि हती सौमित्र॥

चौ०—राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुक्याने॥

दो०—प्रभु चितये मुसक्याय के, बैठ रहे कहुँ अन्त। लखन बताओ भृगुपतिहिं, चार नारिको कंत॥

चौ०—हँसत देख नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

दो०—यह कुजाति है जनमको, डसत प्रान हरि लेत। ऐसे पापी अधमको, राम संग तुम लेत॥
तुमसे पापी हम नहीं, बधी न अपनी माइ। तुलसी ते जगमें फिरो, मुँहलग सबहिं बताइ॥

चौ०—देव एक गुन धनुष हमारे। नौ गुन परम पुनीत तुम्हारे॥

श्लोक०—ऋजुस्तपस्वी सन्तुष्टो दया च मधुरा च वाक्। दाता ज्ञानी दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणैः॥

दो० —राम कहा भृगुनाथ सो, धनुष हमारो देहु। नौ गुन अपना जानिके, सो तुम अपने लेहु॥

चौ०—विप्रवंशकी यह प्रभुताई। अभय होय सो तुमहिं डराई।

दो०—राम कहा भृगुनाथसों, कह असि नायो माथ। अभय होय तुमको डरै, धरै चरनपर हाथ॥

चौ०—राम रमापति कर धनु लेहु। खैंचहु चाप मिटहि सन्देहू॥

दो०—अदिशक्ति तुम आदि हो, माया अपरम्पार। हौ द्विज हौ प्रभु आस हो, देत असीस अपार॥
जय जय जय भ्राता-सहित जय रघुबंश कुमार। परशुराम तब वन गये, दई अशीष अपार॥

चौ०—सोह नवल तन सुन्दर सारी। जगत-जननि अतुलित छबि भारी॥

दो० —चन्द्र भानु बहु किरनको, धूरि कपूर समान। जगत-जननिके तन लसै, सो सारी परवान॥
तीन लोक सोभा लसै, जाके पगकी धूर। जगत-जननिके तन लसै, सो सारी भरपूर॥

चौ०—पहिचानो तो कह्यो सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि-पुनि कह राऊ॥

दो० —प्रथम सुजस कहु रामको, पुनि कहु लखन सुभाव। दूत निकट बैठारिकै, पुनि-पुनि पूछत राव।

चौ०—राम लखनकी करवर चोठी। रह गये कहत न खाटी मीठी॥

दो०—स्रवन-भेदको पाप है, दीन्ह अन्ध ऋषि शाप। सो दसरथ बाहर रहे, जनक न निबते आप॥
स्वयं ब्रह्म अवतरे जहँ, सब बिधि पूरन आप। तुलसी विनय विदेहकी, चूक पाछिली माफ॥
चौ०—आवत जानि भानु-कुलकेतू। सरितन जनक बँधाये सेतू॥
दो०—जेठ दशहरा सुभग दिन, मेघ बरन भवहेतु। आई सरित अपार मिलि, जनक बँधाये सेतु॥
चौ०—महा भीर भूपतिकै द्वारे। रज होइ जात पषान पवाँरे॥
दो०—लागी भूपति भुवनमें, सुंठि एक सै एक। महाभीर राजत जहाँ, पूरन धूर अनेक॥
लगन शोध ब्रह्मा दई, राम लखनके कर्म। सोई शोधी जनकपुर आदिशक्तिके धर्म॥
प्रथमहि जेठे जनक हैं, लहुरे हैं कुसकेतु। तिनके कन्या तीस हैं, रहे दुरामें हेतु॥
प्रथमहि जेठि सरस्वती, पूरब योगनि जान। दूसरि है सिरोमनी, तिजी सुलोचन मान॥
चौ०—शुक सारिक जानकी जिवाये। कनक पींजरन राखि पढ़ाये॥
दो०—कहै सुवा सुनु सारिका, यहि भूपतिको अंग। तोरे चाप बिवाहु है, संत कहौं परसङ्ग॥
तब सीता पकराइयो, सुवा सारिका दोय। बालमीकिके आश्रमहि, कथा सुनायो सोय॥
चौ०—तब ब्रह्मा धरनो समुझावा। अभय भई भरोस तब आवा॥
दो०—सुनि ब्रह्माके बचन महि, तब मन कीन्ह विचार। द्वापर दीन्हों पाछे त्रेता कियो अगार॥
चौ०—राम कथा सुन्दर करतारी। संसय बिहंग उड़ावनहारी॥
दो०—एक समय बहु बधिक गो, लेन चिरइया सोई। तुलसो ताको देखिकै, आश्रम त्यागो दोइ॥
चौ०—ऐसी पीर बिहँसि उर गोई। चोर नारि जिमि प्रकट न रोई॥
दो०—भुजा चिन्ह रघुनाथके, कहै कैकयी बैन। जो चाहौ सो लेहु सुत, खोलि देहु द्वै नैन॥
भरतहिं गद्दी दीजिये, मोहिं तपोधन राज। अहो मात बरदान यह, होइ सकल सुर काज॥
देहु मात बरदान इहि, तुमहि न व्यापी पीर। राम बचन चोरी करी, रोई रानि अधीर॥
चौ०—समाचार सब लछमन पाये। व्याकुल बदन बिलखि उठि धाये॥
दो०—भ्राता जेठे बन चले, तात संग तुम जाइ। रानी खबर सुनाइयो, लषनसे व्याकुल धाइ॥
चौ०—गुरु पितु मातु न जानौ काहू। कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू॥
दो०—रहौ तात पातालमैं, धरे सकल महिभार। नाथ कृपा तुम तन धर्यो, महिमा देखि बिचार॥
मही रहौं बैकुण्ठमें, धरे पवनकी ओट। साधन हित जो तन धरैं, गिरि जिमि तृनकी ओट॥
बारेते हिय हेतु है, राम सिया सङ्ग तात। मेघनादको मारियो, काज न दूसर जात॥
सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करुणाऐन, चितै जानकी लषन तन॥
दो०—भोर होत नृपने कही, श्याम चिरइया लेन। अब ना मिलै तो जात मैं, सागर प्राणहि देन॥
नारदको सङ्कट परो, चले बुलावन आप। बीच पंथमें बिधि मिले, तिहि कहि निज संताप॥
स्वंभू मनुको वर दियो, किये उचित उपदेश। तुम केवट गृह होउगे, मोहे अवध नरेश॥
तात बचन अरु मात हित, आन मिल्यो तव देश। तेरे साखी सङ्ग हैं, आदि शक्ति अरु शेष॥
आदि शक्ति अरु शेषकी ब्रह्म दई जब साखि। बार-बार सिर नाइ कै, चला हृदयमें राखि॥
चौ०—पुनि कछु लषन कही कटु बानी। बरजि राम बड़ अनुचित जानी॥
दो०—नहीं राम नहिं लषन कछु, नहिं कौशला सुमित्र। नृपकै रानी केकयी भरत शत्रुहन पुत्र॥
चौ०—सुनि सुमित्र सिय शीतल बानी। भई बिकल जिमि फणि मणिहानी॥

दो०—सिय उतारि गहनो दयो औचक कह्यो संदेश । तुलसी आगम सनुझिकै, रह्यो न मिल्लन देश ।।
सो सुमित्र बाँध्यो तबै, राम रजायसु पाइ । दशरथ आगे जा धरयो, धुनै शीश पछिताइ ।।
चौ०— राम चले बन प्राण न जाहीं । क्यहि सुख लागि रहे तन माहीं ।।
दो०—कहि आये का कहत हौं, कहा क्षेत्र कह देह । अब कछु ऐसी कर चलौं, रघुबर चरन सनेह ।।
चौ०—तेहि औसर इक तापस आवा । तेजपुञ्ज लघु बयस सुहावा ।।
दो०—चित्रकूट अस श्रवण सुनि, यमुन तीर भगवान । बय किशोर बटु रूप धरि लेन गयो अगवान ।।
चौ०—सुनि स्वरूप बुझहिं कुशलाई । अब लगि गये कहाँ लगि भाई ।।
दो०—ग्राम त्रिया छबि देखिकै, सुख सुन्दर दोउ बीर । पूछैं एकहिं एकते, भए सुनि सकल अधीर ।।
चौ०—प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरहिं चरण मग चलहिं सभीता ।।
दो०—भ्रमित चित्त मारग चलै, चाकु लीक मिटि जाय । तुलसी प्रभु महिमा अमित, दोई पाँय दुराय ।।
चौ०—राम सिया पद अङ्क बचाये । लषन चलहिं मग दाहिन बाँये ।।
दो०—राम सिया बन गमन सुनि, लषन कीन्ह अनुमान । दहनौरा मग पवनको, कला शेषकी आन ।।
चौ०—कनक बिन्दु दो चारक देखे । राखै शीश सिया सम लेखे ।।
दो०—सुरमन उर रघुनाथके, बसत सियाकें चित्त । छं मासे बहु सोबरन, सो उगलत है नित्त ।।
औरौ सकल अभार महि, ब्रह्म दयो उपदेश । नारद भाई आइकै, कहि भामिनि संदेश ।।
नीति धरम कहि सेवकन, मात सकल परिवार । मेरो कह्यो सुनाइहो, अवगुण अवधि अधार ।।
चौ०—भरत महा महिमा अमित, ज्यों सागरको नीर । तहाँ मुनिनकी मति थकी, शेष शारदा तीर ।।
शशिवदनी रजनी तजी, बसी दगासी त्याग । तुलसी भरत सुशील गुण, रामचरण अनुराग ।।
नहिं सीताकी सत कठिन, नहीं भरतको भाव । नहीं लखन सेवा कठिन, नहि मम निकस प्रभाव ।।
नाम चतुर गुण पंचयुत, द्विगुणित वसु हृत शेश । रम्यो राम सब जगतमें तुलसी पूरण लेश ।।
मिलित राहु जिमि चन्द्रमें, अस प्रसङ्ग जब होय । बिछुरे राज कृशाँगते, मुक्त दुहनकी होय ।।
साठ पाँव सो आगरे, सिर सोरा चौबीस । ता बिच हमको राखिये, यही धड़ी बकशीश ।।
नख दिक दशन इकत्र करि, दिन एकादशि टारि । सदा तासु बिच राखिये, माया सहित खरारि ।।
चौ०—भ्राता पिता पुत्र उरगारो । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।
दो०—कै भ्राता कै सुत पिता, जानत नहीं प्रभाव । मन अनुमानत निशिचरी निरखत लषन सुभाव ।।
चौ०—सीता सभय देखि रघुराई । कह्यो लषनसों सैन बुझाई ।।
दो०—रघुबर चितये बाणतन, पुनि प्रभु चितै अकास । अनुज राम मनको लखी, ठाढ़े भये हुलास ।
अँगुरिन बात बतायके, चितते तबै अकास । लक्ष्मण तुरत निपात किय, काटी श्रुति अरु नास ।।
चौ०—उभय प्रकार दुहूँ दिशि मरणा । तब ताकेसि रघुनायक शरणा ।।
दो०—तब मारीच अनुमान किय, इहि मारैमोहि नीच । स्वइ रघुपतिको शरण तकि हरषि चल्यो खल नीच ।।
क्रोधवंत तब रावण, लीन्हेंसि रथ बैठाय । चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाय ।।
आधो जेठ अमावस, सिया हरी दशशीश । सात घरी दिन चढ़त ही, ताकी साख गिरीश ।।
निज सीता रहि माइके छाय हरी दशशीश । तुलसी पुरी त्रियाकी, करन कई अभिषीश ।।
अविरल भक्ति माँगि वर, गीध गयो निज धाम । त्यहिकी क्रिया यथोचित, निज कर कीन्हीं राम ।।
[illegible]नुका शीश तब, अरुरानीको व्यापु । लख्यो जटायू कोख तहँ, उड़ि आयो तब आपु ।।

अनिल जोर घन संग हैं, आनन न्याये दोइ। तुलसी छूटे शोश तब, कहौ जटायू सोइ ॥
महीं रहौं तुम संगमें, करिहौं सेवा जान। तुलसी मन इच्छा भई, मोहिं मिलैं भगवान ॥
विष्णु कह्यो तब नृपतिसो, माँगो तुम बरदान। पुलकि उठे द्वउ तुरतही, तुमसे पुत्रहि दान ॥
दयो विष्णु बरदान यह, और दूसरा कोइ। स्वंभू मनु तुव गेहमें, हमहीं अइहैं सोइ ॥
तबै जटायू या कही, मोहिं कछू महराज। दशरथके सुत होहुँगो, पञ्चवटी तव काज ॥
गयो विष्णु सुरलोकको, देह तजो बहुराज। तुलसी ते दशरथ भये अवधपुरी शिरताज ॥
गयो जटायु सुमेरुपुर, बसत रह्यो तिहि ठाँव। तुलसी निज मनमें रहैं, जपत रामको नाँव ॥
सुरपतिसो जब युद्ध भइ, और अवधके राज। रथ बिचलत जान्यो तबै, आइ जटायू काज ॥
लैकर गयो सुमेर पुर, राजहि कियो सचेत। तब दशरथ चीन्हों वहै, कही मित्रको हेत ॥
अवधपुरी रथ लै गयो, राजहिं कहि यह बात। रामचन्द्र अवतारमें पञ्चबटी वन जात ॥
क्रिया करी बहु गीधकी, पितुते दशगुण राम। तुलसिदास गीधहि दियो मुनिको दुर्लभ धाम ॥
राजा बड़े जो इन्द्र हैं देव रहत हैं पास। तुलसी मति अभिमानको गुरुकी पाई शाप ॥

चौ०—मास दिवस तहँ रह्यो खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥
बालिहि हति मोहि मारिहि आई। शिला द्वार दै चल्यों पराई ॥

दो०—पय सम रुधिर जो बालिका सोइ मुदयंत बखान। तब तिहि मन अनुमान करि दीन्ही शिला परान ॥
बज्रशिला द्वारे दई देखि भय संदेह। निकसत गुपत गोदावरो बालि गयो निज गेह ॥

चौ०—अङ्गद कहा जाउँ मैं पारा। मन संशय कछु फिरती बारा ॥

दो०—अङ्गद कह्यो सकोच यह तुरत जाँव मैं पार। सुधि आवै ऋषिशापकी संशय फिरती बार ॥

चौ०—मसक समान रूप कपि धरी। लङ्का चल्यो सुमिरि नरहरी ॥

दो०—शैव रूप हनुमानने धरो लंकमें जाइ। अन्तरिक्ष मुँदरी गई परी सियाके पाइ ॥

चौ०—कुबलय बिपिन कुन्तबन सरिसा। वारिद तपति तेल जनु बरिसा ॥

दो०—जैसे हिमऋत कमलमें परत तुषार बिचार। प्रात होत बारिधि तपति सूखि जात सब झार ॥
पवनपुत्र पहुँचे जहाँ बैठी वन सिय माय। त्रिजटा आई भवनको प्रकट भयो कपिराय ॥
सकल कथा बहु सङ्गकी कही सियहि समुझाइ। तुलसी छूट्यो शोच तब राम मुद्रिका पाइ ॥

चौ०—मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हा ॥

दो०—लङ्का दाही पवनसुत आये पूँछ बुझाय। देहु मातु कछु चीन्ह तुम जैसे राम पठाय ॥
तब सीता सुमिरन करो निज सीताको ध्यान। तुलसी तब आयी तहाँ चूड़ामणि बहु जान ॥
जो सम्पति शिव रावणहि दीन्ह दिये दशमाथ। सो सम्पदा विभीषणै सकुचि दीन्हि रघुनाथ।
कीन्हीं अर्ज विभीषणै लंक दई भगवान। ये दोनों बाहर रहे सीता पुहुप विमान ॥

चौ०—रावणको दीजै यह पाती। लक्ष्मण वचन मान कुलघाती।

दो०—तेरे सुतके बधनको हौं आयो हौं शेश। आदि शक्ति जिनकी हरी आयो अवधनरेश ॥

चौ०—लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा ॥

दो०—पवनपुत्रको बोलिकर कहा सकल रघुबीर। लंका जावहु तात तुम यज्ञकाज रणधीर ॥
रामचन्द्र पद सुमिरिके गयो महादल हेत। रावणसों तब यों कही चलहु सो सीय समेत ॥
सीताके मन सोच भा तब कपि लीन्ह बुलाइ। कही कथा सब रामकी तब रथपर धर पाइ ॥
हाँक्यो रथ तब सारथी आये सागर तीर। देखि कटक अवधेसकर तब भा [illegible]द शरीर ॥

कीन्ह यज्ञ जब वेद विधि भे परिपूरण काम। तुलसी फिर रथपर सजो देखहु लङ्काधाम ॥
कीन्ह यज्ञ जो आपनी सुनी कोशलाधीश। अब कछु मोकह चाहिये लङ्क देहु बकशीश ॥
लङ्का दई विभीषणै तुमहि देत सुरलोक। तुलसी कछुदिन बीचमें देवन करो विसोक ॥
मैं अनेक अवगुण करे जानत है जगतीत। जनकसुता तब देउँगो जब म्वहि रणमें जीत ॥
यों कहि रावन तुरतही गयो सो अपने धाम। रामकटक सब उतरिके गयो कीन्ह विश्राम ॥

चौ०—साखामृगकी यह प्रभुताई। साखा ते साखा पर जाई ॥

दो०—गइ मुन्दरी वहि पार मणि तब ल्याई यहि पार। राक्षस मारे रिपु दहे सो सब कृपा तुम्हार ॥
नाना युधपा चाप धरि, यातुधान बलबीर। कोट कँगूरन चढ़ गये कोटि कोटि रणधीर ॥
हेम कोट पहिले बनो फिर ताँबेके कोट। लोह कोट क्षत्री लरै घरै कोटकी ओट ॥
चरण छुवा जब पवनसुत सैन कहा समुझाय। राम कला कछु होत है मात पतालै जाय ॥
समर महारथतै बिरथ कियो सुलक्ष्मण बीर। तब धावा बहु क्रोध करि मेघनाद रणधीर ॥
विषम जखम लखि लषणको विलपत जीवन काज। दीनबन्धुकी लखि दशा क्रोध भयो कपिराज ॥
वोरघातिनी घातको सुनो संत हनुमान। उदय अकाज सुहात है यतन करी लख आन ॥
व्याकुल बन्धु बिलोकिके शोचत श्रीरघुबीर। हृदय खँभारत पवनसुत बोलो गिरा गँभीर ॥
सरसो कूटो अग्निमें सुनो संत रघुबीर। मूर सजीवन ल्याइहों गदगद भयो शरीर ॥
राम चरण सिर नाइके जौ लौं पलक परै न। सुग्रीवहि समुझाइके चल्यो सजीवन लैन ॥
काल रूप बहुकालको रुधिर पियत है नित्त। दुश्मन ताको जानिकै हनो पवनसुत चित्त ॥
कालरूप है कालको कालहु ते विकराल। ताको प्रभुजी प्रगट किय महाकाल कपिकाल ॥
जाय अवधपुर पवनसुत बाणी कही अकाश। शकती बेधे लषण हैं रवि न करै परकाश ॥
महाराज रण लंक पर शपथ कौशलाधीश। नाम मात्र कह भरतसो गा योजन चालीश ॥
गिरि सब देखो विविध विधि जरि न परै पहिचान। रामचन्द्र पद सुमिरिकै लिय उखारि हनुमान ॥
सोरह योजन चकरखा दस योजन बहु ऊँच। सो हिम लीन्हों पवनसुत जिमि कीरोको कूँच ॥
बार बार सिय पद सुमिरि बार बार भगवान। लषन चरण पुनि सुमिरिकै चली सुदर्शन बान ॥
शीत लगै तब अग्नि तप प्यास लगे तब नीर। अब चुप साधि रहे हो बिपति बटावन बीर ॥
प्रात होत रण नित चढ़ा रावण सो बलबीर। तुलसी बिना सुमित्र-सुत कौन चलावै तीर ॥
भरत बेध हनुमानको गिरा सो कपि अति दूर। राम राम सुमिरत गिरो गिरि रोप्यो लंगूर ॥
मैं धोखे इक भानके बान बेधियो तात। मोर चूक रघुबीर सो कह्यो न कबहूँ भ्रात ॥
अवधपुरी शिर नाइकै भरतहिं कीन्ह प्रणाम। गिरी सम्हरिकै पवनसुत कीन्ह धरिक विश्राम ॥
कपि तब पूजी बार बहु बिधे युद्ध ये राम। लषण विरोध सो जानिके साना कञ्चन धाम ॥
जैसे चूक जु जड़नकी होत बड़नको माफ। भरत बेध हनुमानको सो ना कहो संताप ॥
गिरि देखौं बहु करन पर ठाढ़ि भरतको तीर। पराकरम सब समुझिकै मन बिहँसे रघुबीर ॥
पाइ सजीवन बैदने कीन्हों तुरत उपाइ। उठि बैठे लक्ष्मण तबै राम सुकण्ठ लगाइ ॥
निज जननीको सुमिरि कपि धर्म रहै जिमि मोर। जलै पवन जब वेद मुख लीन्ही पवन बहोर ॥

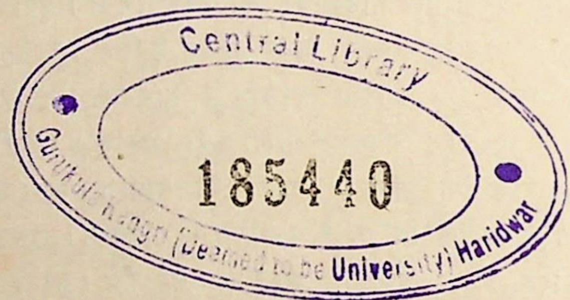
चौ०—उलटा नाम जपत जगजाना। बालमीक भये ब्रह्म समाना ॥

दो०—एक बीस बधपाप यहि भरी तुम्हारी देह। महि मारो तो ना मरे तुलसी चरण सनेह ॥

.पाँच भुजा कैलासको दै पठये रघुबीर। दश दश हृदय गयालको पाँच सिंधुके तीर ॥

चोला छाँड़ि स्वयंभु मनु देवन धरो उठाइ । जबहि निपातै लंकपति दशरथ बाहिर आइ ।।
रही दरशकी लालसा राम लषण सिय-नेह । आये रणकी भूमिमें स्वयंभू मनुकी देह ।।
तुलसी कहत पुकारिके चित सुनि हितकर भान । हेम दान गज दानतें बड़ो दान सनमान ।।
तुलसी या संसारमें पंचरत्न हैं सार । साधु मिलन अरु हरि भजन दया दान उपकार ।।
और बरातीसे लगै जहँ लग नाम अपार । दुलहा दुलहीसे लगै एक रकार मकार ।।
तुलसी राके कहत ही निकसै सबै बिकार । फिर आवनको कहत है देत मकार किवार ।।

।। इति श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत (?) विजयदोहावली सम्पूर्ण ।।



पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।



सुदर्शन मुद्रक प्रकाशक · मुद्रक

४२, उत्तर बेनिया बाग, वाराणसी—१ फोन : ६५७१८